ऋग्वेद

(तृतीय खण्ड)

श्रीराम शर्मा आचार्य,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

प्रथम संस्करण] १९६० [मूल्य-७) रुपया

प्रकाशक—
गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
मुद्रक—
रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।

२६ सूक्त

(ऋषि–विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरस । देवता–अश्विनौ, वायु ।
छन्द–उष्णिक्, गायत्री, अनुष्टुप्)

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥१
युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या ।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥२
ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू ।
पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥३
आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।
उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥४
जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू ।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥५ ॥२६

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों धनवान्, बलवान और वर्षणशील हो। तुम्हारे बल को नष्ट करने में कोई समर्थ नहीं है। मैं तुम्हारे रथ की स्तुति करने वालों के मध्य में आहूत करता हूँ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम कामनाओं के देने वाले, धनशाली एवं सत्य रूप हो। तुम जैसे राजा सुषामा को धन प्रदान करने के लिए आते थे, वैसे ही तुम अपने रक्षा साधनों सहित आगमन करो। हे वरु तुम ऐसी याचना करो ॥२॥ हे अन्न धन सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! प्रातःकाल होने पर हम तुम को हवि से आहूत करेंगे। ३। हे अश्विनीकुमारो ! सब से अधिक वाहक तुम्हारा रथ यहाँ आवे। तुम स्तोता को अपना धन देने के लिए उसके स्तोत्रों को जानो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम कामनाओं के देने वाले हो। तुम रुद्र हो। कुटिल कार्य करने वाले शत्रुओं को अपने सामने खड़ा समझो और वैरियों को व्यथित करो ॥५॥ (२६)

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।
धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥६
उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥७
आ मे अस्य प्रतीव्य मिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥८
वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥९
अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम् ।
नेदीयसः कूळयातः पणींरुत ॥१० ॥२७

हे अश्विद्वय ! तुम हर्ष प्रदायक कान्ति से सम्पन्न, सब के दर्शन-योग्य और जलों के पोषक हो । तुम अपने शीघ्रगामी सुन्दर घोड़ों से इस यज्ञ में आओ ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ? तुम वीर और अजेय हो । अतः संसार का भरण करने वाले धन के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हे अश्विद्वय ! तुम सब देवताओं सहित मेरे इस यज्ञ में अत्यन्त सेवाएं प्राप्त करने के लिए पधारो ॥ ८ ॥ धन प्राप्ति की कामना से व्यश्व के समान हम भी तुम्हें आहूत करते हैं । इसलिये यहाँ आगमन करो ॥ ९ ॥ हे ऋषि ! तुम्हारे आह्वानों को सुनते हुए अश्विनीकुमार पास रहने वाले शत्रुओं और पणियों का हनन करें । इसलिए उन अश्विद्वय की स्तुति करो ॥१०॥ (२७)

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः ।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११
युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् १२
यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव ।

सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३

यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।

वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४

अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।

विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥१५ ॥२८

हे नेताओ! वैयश्व का स्तोत्र श्रवण करो। मेरे आह्वान को जानो। मित्रावरुण और अर्यमा सदा संयुक्त रहते हैं ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय! तुम कामनाओं के देने वाले और स्तुतियों के योग्य हो। तुम स्तोताओं के लिए लाकर जो कुछ देते हो, वह मुझे भी नित्यप्रति प्रदान करो ॥१२॥ वस्त्र से ढकी हुई वधू के समान जो यजमान यज्ञ से ढका रहता है, उस पर दृष्टि रखने वाले अश्विद्वय उसका कल्याण करते हैं ॥ १३॥ हे अश्विनीकुमारो! जो मनुष्य पीने के योग्य सोम-रस को देना जानता है, उस यजमान के घर में सोम पीने की इच्छा से आओ ॥ १४ ॥ हे अश्विद्वय! तुम धनवान और कामनाओं के देने वाले हो। तुम सोम-पान के लिए हमारे यहाँ आगमन करो। स्तोत्र द्वारा यज्ञ को सम्पूर्ण करो ॥१५॥　　　　　　　　　　　　　　　　(२८)

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१६

यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥१७

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८

स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना ॥१९

युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।

आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि ॥ २० ॥२९

हे अश्विनीकुमारो! स्तोत्र तुम्हारे पास पहुँच कर तुम्हें आहूत करें और हर्षित करें ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय! द्युलोक के नीचे वाले समुद्र में या अन्न की कामना वाले यजमान के घर में यदि तुम हर्ष प्राप्त करना चाहो तो हमारी इस स्तुति को श्रवण करो ॥ १७ ॥ हिरण्यमार्ग वाली श्वेतयावरी

माम्नी नदी स्तुतियों के द्वारा तुम्हारे पास पहुँचती हैं ॥ १८ ॥ हे अश्विनीकुमारो। तुम श्वेत वर्ण वाली, यशवती, पुष्टिदायिनी श्वेतयावरी को वहने वाली करो ॥१९॥ हे वायो! वाहक अश्वों को रथ में संयुक्त करो। तुम वास देने वाले हो, पोषण करने योग्य अश्विद्वय को रणक्षेत्र में ले जाओ। फिर हमारे हर्ष प्रदायक सोम रस को पीने के लिए तीनों सवनों में आगमन करो ॥२० ॥ (२९)

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत। अवांस्या वृणीमहे ॥ २

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे।

सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥२२

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम्।

वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे। ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥२४

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः।

कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥३०

हे विचित्र कर्म वाले वायो! तुम यज्ञ के स्वामी और त्वष्टा के जामाता हो। हम तुम्हारी रक्षाएं प्राप्त करें ॥२१॥ वायु सामर्थ्यवान् हैं, वे त्वष्टा के जामाता हैं। उनसे हम सोम को संस्कारित करने के पश्चात धन की याचना करते हैं। उनके धन देने से हम धनवान हो जाँयगे ॥ २२ ॥ हे वायो! तुम महान् हो। अश्व से संयुक्त रथ को चलाते हुए द्युलोक में कल्याण को ले जाओ। इन स्थूल पार्श्व वाले अश्वों को अपने रथ में संयुक्त करो ॥ २३ ॥ हे वायो! तुम अत्यन्त रूपवान् हो। तुम्हारे सभी अंग महिमा से सम्पन्न हैं। हम सोमाभिषव वाले पाषाण से युक्त हुए, तुम्हें यज्ञों में आहूत करते हैं ॥ २४ ॥ हे वायो! तुम देवताओं में प्रमुख हो। तुम हृदय से प्रसन्न होते हुए हमको अन्न और जल दो तथा कर्मों में प्रयुक्त करो ॥२५॥ (३०)

२७ सूक्त

(ऋषि-मनुर्वैवस्वतः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द-बृहती, पंक्तिः)

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पति देवाँ अवो वरेण्यम् ॥१
आ पशुं गासि पृथिवों वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीना भूत प्राविनारः ॥२
प्र सू न एत्वध्वरो ग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३
विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥४
आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥५ ॥३१

इस स्तोत्रों वाले यज्ञ में सोमाभिषव के निमित्त पाषाण तथा अग्रभाग में कुशा बिछाई गई है। मैं ब्रह्मणस्पति, मरुद्गण तथा अन्य सब देवताओं से स्तुतियों के द्वारा रक्षा माँगता हूँ॥ १ ॥ हे अग्ने! हमारे यज्ञ में तुम पशु, वनस्पति और पृथिवी का सामीप्य प्राप्त करते हो और प्रातःकाल तथा रात्रि में भी सोम का अभिषव हमारे कर्मों की रक्षा करें ॥२॥ अग्नि तथा अन्य देवताओं के पास प्राचीन यज्ञ उत्तमता से जाय तथा मरुद्गण, व्रतधारी वरुण और आदित्यों के पास भी पहुँचे ॥ ३ ॥ विश्वेदेवा शत्रुओं का नाश करने वाले तथा बहुत से धनों के स्वामी है। यह मनु की वृद्धि करने वाले हों। हे सब के जानने वाले देवताओ! तुम हमारी रक्षा करते हुए बाधा-हीन घर दो ॥ ४ ॥ हे विश्वेदेवाओ! आज के इस यज्ञ में समान मन वाले होकर तथा परस्पर सुसंगत होते हुए ऋचा रूप वाणी के सहित हमारे पास आगमन करो। हे अदिति देवी और हे मरुद्गण! तुम भी हमारे उस यज्ञ गृह में विराजमान होओ ॥ ५ ॥   (३१)

अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥६
वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ।

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८
वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥९
अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१० ॥३२

हे मरुद्गण ! तुम अपने प्रिय अश्वों सहित इस यज्ञ में आगमन करो हे मित्र देवता ! इस हवि के निमित्त आओ । रणक्षेत्र में शत्रु-वध में शीघ्रता करने वाले आदित्य और इन्द्रावरुण भी हमारे यज्ञ में आकर कुशाओं पर विराजमान हों ॥ ६ ॥ हे वरुण ! हम भी मनु के समान सोम को संस्कारित करके और अग्नि को प्रदीप्त करते हुए, हवि स्थापित कर तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुतो ! हे विष्णो ! पूषा और अश्विनीकुमारों के सहित मेरी स्तुति सुनते ही यज्ञ में आओ । इन्द्र भी इन देवताओं के मध्य प्रथम आवें । इन्द्र की कामना करने वाले स्तोता उन्हें वृत्रहन कहते हुए स्तुति करते हैं ॥८ हे देवताओ ! मुझे बाधा रहित वर दो । तुम्हारे द्वारा दिये हुए वरणीय गृह को कोई पास से या दूर से भी आकर नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ हे देवताओ ! तुम शत्रुओं का भक्षण करने में समर्थ हो । तुम बन्धु-भाव से पूर्ण हो । तुम हमारे अभ्युदय के लिए और अभिनव धन के लिए शीघ्र ही आज्ञा करो ॥ १० ॥ (३२)

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥११
उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२
देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥१३
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वारिवोविदः ॥१४
प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम्।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६   ॥३३

हे देवताओ! तुम सब धनों के स्वामी हो। मैं तुमसे अन्न माँगता हूँ। जो कर्म अभी तक किसी ने नहीं किया, वैसा कर्म तुम्हारे भोग्य धन को पाने के लिए करता हूँ ॥ ११ ॥ हे चारु स्तोत्र मरुद्गण! तुम में ऊपर को गमन करने वाले एवं कर्म प्रेरक सूर्य जब उदित होते हैं तब मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥ तुम में से महान् देवता को हम अपनी स्तुतियों द्वारा कर्म की रक्षा के लिए आहूत करते हैं। अभीष्ट प्राप्ति के लिए हम तेजस्वी देवता को आहूत करते हैं। हम अन्न प्राप्ति के लिए दिव्य देवता का आह्वान करते हैं ॥ १३ ॥ विश्वेदेवता मुझ मनु को धनादि देने के लिए समान बुद्धि वाले होकर एक साथ प्रवृत्त हों। वे मुझे और मेरे पुत्र के लिए नित्यप्रति वरणीय धन प्रदान करने वाले हों ॥ १४ ॥ हे देवताओ! स्तोत्र के आश्रित इस यज्ञ में मैं तुम्हारी अतीव स्तुति करता हूँ। हे मित्रावरुण! जो व्यक्ति तुम्हारे निमित्त हवि रखता है, उसे शत्रुओं के हिंसक कर्म बाधक नहीं होते ॥ १५ ॥ हे देवो! जो यजमान तुम्हें धन की कामना से हवि प्रदान करता है, वह अपने गृह और अन्न की वृद्धि करने वाला होता है। वह संतानों से संपन्न होता हुआ समृद्धि को प्राप्त करता है। उसे कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥ ६॥   (३३)

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥१७
अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम्।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥१८
यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध।

यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥१९
यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥२०
यदद्य सूर उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥२१
वयं तद्वः सम्राजः आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहै ॥२२ ॥३४

वह पुरुष मित्र, वरुण और अर्यमा द्वारा रक्षित होता हुआ, युद्ध के विना ही धन प्राप्त करता है तथा गमनशील सुन्दर अश्वों के द्वारा मार्ग पर चला जाता है ॥ १७ ॥ हे देवताओ ! न जाने योग्य अथवा कठिनता से जाने योग्य मार्ग को सुगम करो । यह आयुध हम में से किसी की हिंसा न करता हुआ स्वयं ही नाश को प्राप्त हो ॥१८॥ हे देवताओ ! आज तुम सूर्योदय होने पर मंगल-मय गृह को धारण करो । तुम सब धनों से सम्पन्न हो, अतः सायंकाल, प्रातः काल और मध्याह्न काल में भी मनु के लिए सब धनों को धारण करो ॥१९॥ हे देवो ! तुम्हारे लाभ की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें हवि देने वाले यजमान को तुम यदि घर देते हो तो हम तुम्हारे उसी कल्याणकारी घर में तुम्हारी उपासना करेंगे ॥ २० ॥ हे देवो ! तुम सब धनों के स्वामी हो । तुम सूर्योदय होने पर, मध्याह्न काल में और सायंकाल में जो रमणीय धन मुझ हविदाता मेधावी मनु के निमित्त धारण करते हो, तुम्हारे पुत्रों के समान हम उसी उपभोग्य धन को पावेंगे । हे आदित्यो ! हम यज्ञ करते हुए तुम्हारे उसी धन से धनवान हो जाँयगे ॥ २१-२२ ॥ (३४)

२८ सूक्त

(ऋषि-मनुर्वैवस्वतः । देवता-विश्वेदेवाः । छन्द-गायत्री, उष्णिक्)

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥१
वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः । पत्नीवन्तो वषट्कृताः ।२
ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् । पुरस्तात्सर्वया विशा ॥३

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषा नकिरामिनत्। अरावा चन मर्त्य ॥४
सप्ताना सप्त ऋष्टय सप्त द्युम्नान्येषाम् । सप्तो अधि श्रियो धिरे ।५ । ५

कुशाग्रों पर विराजमान तेंतीसों देवता हमको जानें और बारम्बार धन प्रदान करें ॥१॥ वरुण, मित्र, अर्यमा देव पत्नियों सहित हविदाता यजमानों के विभिन्न वषट्कारों से आहूत किये गए हैं ॥२॥ हे वरुणादि देवताओ! तुम अपने सभी गणों सहित सब ओर से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ देवताओं की जो इच्छा होती ह, वही होता है, उनकी इच्छा को कोई मिटा नहीं सकता। अदानशील भी बाद में यदि हविदाता बन जाय तो, उसे भी कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ मरुद्गण के सात प्रकार के आयुध, सात आभरण और सात प्रकार क ही तज हैं ॥ ५ ॥   (३५)

२९ सूक्त

(ऋषि—मनुर्वैवस्वत, कश्यपो वा मारीच । देवता—विश्वदेवा
छन्द—गायत्री)

वभ्रुरेको विषुण सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥१
योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिर ॥२
वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुवि ॥३
वज्रमेको विभर्ति हस्त आहित तेन वृत्राणि जिघ्नत ॥४
तिग्ममेको विभर्ति हस्त आयुध शुचिरुग्रो जलाषभेषज ॥५
पथ एक पीपाय तस्करो यथाँ एव वेद निधीनाम् ॥६
त्रीण्येक उरुगाया वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥७
विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसत ॥८
सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती । ९
अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१० । ३६

रात्रियों के नेता, तरुण सोम देवता हिरण्यमय प्रकाश को प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ अग्नि देवता प्रदीप्ति सम्पन्न और ज्ञानी हैं, वे अपने स्थान को प्राप्त

होते हैं ॥ २ ॥ देवताओं के मध्य में विराजमान त्वष्टा अपने हाथों में लौह निर्मित कुठार ग्रहण किये हुए हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र अकेले ही वज्र धारण करके वृत्रादि का संहार करते हैं ॥ ४ ॥ पवित्र, एवं सुखदाता एवं विकराल रुद्र अपने हाथों में तीक्ष्ण आयुध धारण करते हैं ॥५॥ जैसे चोर सब के धनों को जानते हैं, वैसे ही पूषा सब के धनों के जानने वाले हैं, वे मार्ग के रक्षक हैं ॥६ विष्णु ने तीन पैरों में त्रैलोक्य को नाप लिया। उनके इस कर्म से देवता हर्षित-हुए। वे अनेकों की स्तुति के पात्र हैं ॥ ७ ॥ अश्विद्वय सूर्या के साथ, प्रवासी के समान वास करते हैं, वे अश्वों द्वारा गमन करते हैं ॥ ८ ॥ मित्रावरुण घृत रूप हवि से सम्पन्न तथा अत्यन्त दैदीप्यमान हैं। वे स्वर्ग का मार्ग बनाने वाले हैं। स्तुति करने वाले विद्वान् साम-गानों द्वारा सूर्य को तीक्ष्ण बनाते हैं ॥ ९-१० ॥   (३६)

३० सूक्त

(ऋषि मनुर्वैवस्वत.। देवता–विश्वेदेवाः। छन्द–गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्)

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः विश्वे सतोमहान्त इत् ॥१
इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२
ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३
ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥४ ॥३७

हे विश्वेदेवाओ ! तुम में कोई भी बालक नहीं है, तुम सभी महान् हो ॥ १ ॥ हे देवो ! तुम शत्रुओं के भक्षक और यज्ञार्ह हो। तुम तैंतीस देवताओं के रूप में स्तुत होते हो ॥ २ ॥ हे देवताओ ! राक्षसों से हमारी रक्षा करो। धन आदि के द्वारा हमारा पालन करो। तुम हम से अनुग्रह वाक्य कहो। मनु से चले आते हुए सन्मार्ग से तथा दूर स्थिति मार्ग से तुम हमको

भ्रष्ट मत कर देना ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! हे यज्ञ से प्रकट अग्ने ! तुम यहाँ प्रतिष्ठित होकर हमको गौ अश्व आदि धन का सुख दो ॥४॥ [३७]

३१ सूक्त (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि—मनुर्वैवस्वत । देवता—इज्यास्तवो, यजमानप्रशसा च दम्पती, दम्पत्योराशिष । छन्द—गायत्री अनुष्टुप्, पक्ति)

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥१
पुरोळाश यो अस्मै सोम ररत आशिरम् । पादित्त शक्रो अहस ॥२
तस्य द्युमा असद्रथो देवजूत स शूशुवत् विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥३
अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥४
या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावत देवासो नित्ययाशिरा ॥५ ।२८

जो यजमान बारम्बार यज्ञ करता हुआ सोमाभिषव तथा पुरोडाश पाक करता है और इन्द्र की स्तुति करने की बारम्बार इच्छा करता है, जो यजमान पुरोडाश और गव्य मिश्रित सोम इन्द्र को देता है, इन्द्र उसकी पाप से रक्षा करते हैं ॥१–२ ॥ देवताओं द्वारा भेजा गया दमकता हुआ रथ उसी यजमान का होता है और वह शत्रुओं की बाधाओं को नष्ट करता हुआ ऐश्वर्य सहित समृद्धि को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ इस यजमान के घर में पुत्रादि से सम्पन्न अविनाशी धन प्रतिदिन प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे देवगण ! जो पति पत्नी यजमान समान मन वाले होकर अभिषव करते और छन्ने से सोम को छान कर उसमें गव्यादि का मिश्रण करते हुए मधुर बनाते हैं ॥५॥ [३८]

प्रति प्राशव्या इत सम्यञ्चा बर्हिराशाते । न ता वाजेषु वायत ॥६
न देवानामपि ह्नुत सुमतिं न जुगुक्षत श्रवो बृहद्विवासत ॥७
पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुत उभा हिरण्यपेशसा ॥८
वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्य तामृताय कम् ।
समूधो रोमश हतो देवेषु कृणुतो दुव ॥९
आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् । आ विष्णो सचाभुव ॥१० ।२९

वे उपभोग्य अन्न आदि पाते हैं। उन्हें अन्न के निमित्त किसी के पास नहीं जाना पड़ता ॥ ६ ॥ वे दम्पति देवताओं की उपेक्षा नहीं करते और महान् अन्न के द्वारा ही तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ७ ॥ वे पुत्रवान् होकर स्वर्णादि धन से सुसज्जित होते हुए पूर्ण आयु वाले होते हैं ॥ ८ ॥ यज्ञ कर्म वाले इन दम्पति की स्तुतियाँ देवताओं की इच्छा करती हैं, वे देवताओं को हवि रूप अन्न देते हैं। वे संतान-लाभ के लिए रोमश और ऊध को संयुक्त करते हैं। वे देवताओं की उपासना करने वाले होते हैं ॥ ९ ॥ हम देवताओं सहित विष्णु से सुख माँगते हैं। हम पर्वत और नदी से भी सुख की कामना करते हैं ॥ १० ॥ [३९]

ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुरध्वा स्वस्तये ॥११
अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा । आदित्यानामनेह इत् ॥१२
यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः सुगा ऋतस्य पन्था ॥१३
अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥१४
मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१५
न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१६
नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१७
असदत्र सुवीर्यं मुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१८ ॥४०

पूषा धन प्रदान करने वाले तथा सबके पोषक हैं, वह अपनी रक्षात्मक शक्तियों सहित आगमन करें और उनका विस्तृत मार्ग हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥११॥ पूषा की स्तुति करने वाले श्रद्धा सहित स्तुति करते हैं। पूषा किसी के भी वश में न आने वाले हैं। आदित्यों का दान पाप से रहित होता

है ॥ १२ ॥ जैसे मित्र, वरुण और अर्यमा हमारी रक्षा करते हैं, वैसे ही यज्ञ के सभी मार्ग हमारे लिए सुगम हों ॥१३॥ हे देवताओ! तुम में प्रमुख अग्नि देवता की मैं धन प्राप्ति के लिये स्तुति करता हूँ। तुम्हारे सेवक अनेकों के प्रिय होते हैं। वे मित्र के समान ही यज्ञ को सिद्ध करने वाले अग्नि का पूजन करते हैं ॥१४॥ जैसे वीर किसी सेना में प्रविष्ट होता है, वैसे ही देवोपासक मनुष्य का रथ दुर्ग में शीघ्र प्रविष्ट हो जाता है। जो याज्ञिक देवताओं की पूजन-कामना करता है, वह अयाज्ञिक को पराजित करता है॥ १५॥ हे यजमान! तुम सोम का अभिषव करने वाले हो, तुम हिंसित नहीं हो सकते। तुम देवताओं की कामना करने वाले हो, इसलिए नाश को प्राप्त नहीं होगे। जो यजमान देवताओं की पूजा करता है, वह अयाज्ञिक को परास्त करने मे समर्थ होता है ॥ १६ ॥ देव-यज्ञ करने वाले यजमान को कर्म द्वारा व्याप्त करने में समर्थ कोई नहीं होता। वह स्थानच्युत नहीं हो सकता और पुत्रादि से भी दूर नहीं होता। जो यजमान देवताओं की स्तोत्र से पूजा करता है वह अयाज्ञिक को परास्त करने वाला होता है ॥१७॥ देवताओं के मन का यज्ञ करने की कामना वाला यजमान सुन्दर पुत्रवान् होता है। उसे अश्वादि से युक्त धन प्राप्त होता हैं। जो यजमान स्तुतियों के द्वारा देव-पूजन की कामना करता हैं, वह अयाज्ञिक को परास्त करने में समर्थ होता है ॥१८॥   [४०]

३२ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथिः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द-गायत्री)

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मदे सोमस्य वोचत ॥१
य. सृविन्दमनर्शनि पिप्रुं दासमहीशुवम्। वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥२
न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर। कृपे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥३
प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि। हुवे सुशिप्रमूतये ॥४
स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दान. सोम्येभ्यः। पुरं न शूर दर्षसि ॥५ ।१

हे कण्व गोत्र वाले ऋषियो! इन्द्र के यश-कीर्तन करने पर जब इन्द्र शक्ति से भर जाँय तब तुम उनके सब कर्मों का बखान करो ॥१॥ जल को

प्रेरित करने वाले पराक्रमी इन्द्र ने अनर्शनि, पिप्रु, सृविन्द, दास, और अहीशुव का संहार किया ॥२॥ हे इन्द्र ! वृत्र का छेदन करो। इस वीर-कर्म में तत्पर होओ ॥३॥ हे स्तुति करने वालो ! मेघ से जल की याचना करने के समान ही शत्रुओं का नाश करने वाले इन्द्र से तुम्हारी रक्षा की प्रार्थना करता हूँ ॥४ हे वीर इन्द्र ! जब तुम प्रसन्न होते हो तब जैसे तुमने शत्रु-पुरों के द्वार खोले थे, वैसे ही स्तुति करने वालों के लिए गौ और अश्वादि के स्थान का द्वार खोल देते हो ॥५॥ [१]

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः। आरादुप स्वधा गहि ॥६
वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः। त्वं नो जिन्व सोमपाः ।७
उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम्। मघवन्भूरि ते वसु ॥८
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः। इळाभिः सं रभेमहि ॥६
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये। साधु कृण्वन्तमवसे ॥१० ॥२

हे इन्द्र ! मेरे अभिषुत सोम और स्तोत्र की कामना करते हो तो मुझे अन्न देने के लिए दूर देश से भी अन्न के सहित यहाँ आगमन करो ॥६॥ हे इन्द्र ! हे सोमपाये ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं, तुम हमको हर्षित करते हो ॥७॥ हे इन्द्र ! हम पर प्रसन्न होओ। क्षीण न होने वाला अन्न हमको प्रदान करो, क्योंकि तुम अपरिमित धन वाले हो ॥८॥ हे इन्द्र ! हम अन्न से सम्पन्न हों। हमें गौ, अश्व और सुवर्ण आदि धनों से भी सम्पन्न करो ॥६॥ इन्द्र अपनी भुजाओं को जगत की रक्षा के लिए फैलाते हैं और पोषण के लिए हितकर कार्यों को करते हैं। हम उन्हीं उक्थ वाले इन्द्र को आहूत करते हैं ॥१०॥ [२]

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा। जरितृभ्यः पुरूवसुः ।।११
स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः।१२
यो रायो ३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तमिन्द्रमभि गायत ॥१३
आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम्। भूररीशानमोजसा ॥१४
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्। नकिर्वक्ता न दादिति ।१५ ॥३

रणक्षेत्र में बहुकर्मा हुए इन्द्र शत्रुओं का संहार करते हैं, वे वृत्रहन इन्द्र ही स्तुति करने वालों के धनों के ईश्वर हैं ॥११॥ इन्द्र दानशील हैं, वे अपने रक्षण सामर्थ्यों द्वारा हमारे छिद्रों को भरते हैं। वे इन्द्र हमको शक्तिशाली बनावें ॥ १२ ॥ जो इन्द्र सोमाभिषव करने वाले के मित्र हैं, जो सुन्दरता से पार लगाने वाले तथा धनों के रक्षक हैं, उन्हीं इन्द्र की प्रार्थना करो ॥ १३ ॥ जो इन्द्र रणक्षेत्र में विचलित नहीं होते, जो अन्नों को जीतने वाले हैं, वह इन्द्र अपरमित धनों के स्वामी हैं ॥१४॥ इन्द्र को कोई अदाता नहीं कहता और उनके सुन्दर कार्यों को कोई रोक नहीं सकता ॥१५॥ [३]

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे ॥१६
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥१७
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥१८
वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानाम् ॥१९
पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव ॥२० ॥४

सोम का अभिषव करने वाले और सोम पान करने वाले ब्राह्मण देव-ऋण से युक्त नहीं हैं, जिसके पास असीमित दिव्य धन है, वही सोम पीने में समर्थ होता है ॥१६॥ स्तुतियों के योग्य इन्द्र के लिए स्तुति गाओ, उनके लिए ही स्तोत्र उच्चारण करो और उन्हीं इन्द्र के लिए स्तोत्रों की रचना करो ॥१७ पराक्रमी इन्द्र ने सहस्रों शत्रुओं को मार डाला। शत्रु उन्हें आच्छादित नहीं कर सकते। वे यज्ञ करने वाले यजमान की वृद्धि करते हैं ॥१८॥ इन्द्र आह्वान के पात्र हैं। हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों की हवियों के पास घूमो और सुसंस्कारित सोम का पान करो ॥१९॥ हे इन्द्र ! जल से मिश्रित तथा गाय के परिवर्तन में क्रय किये गये इस सोम को पीओ ॥ २०॥ [४]

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिब ॥२१
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति । धेना इन्द्रावचाकशत् ॥२२
सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः । निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२३
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये ॥२४

य उद्नः फलिगं भिनन्न्य क्सिन्धूँरवासृजत् ।
यो गोषु पक्वं धारयत् ॥२५ ॥५

हे इन्द्र ! जो अनुपयुक्त स्थान में अथवा क्रोध पूर्ण मुद्रा में सोम का अभिषव करे उसे लाँघते हुए हमारे द्वारा अभिषुत इस सोम का पान करो ॥२१ हे इन्द्र ! तुम दूर से हमारे पास आवो, पीछे या बगल में आगमन करो। तुमने हमारे स्तोत्र को समझ लिया है अतः पितरों, गंधर्वों, देवताओं और राक्षसों को भी लाँघ कर यहाँ आओ ॥ २२॥ हे इन्द्र ! जैसे सूर्य रश्मियों को प्रदान करते हैं, वैसे ही तुम हमको धन प्रदान करो। जैसे जल नीची भूमि में प्राप्त होता है, वैसे ही मेरे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों ॥ २३ ॥ हे अध्वर्यो ! तुम इन सुन्दर जबड़े वाले इन्द्र के लिए सोम को शीघ्र ही निष्पन्न करो और इन्द्र को सोम-पान के निमित्त सुन्दरता से आहूत करो ॥ २४ ॥ जिन इन्द्र ने जल के लिये मेघ को विदीर्ण किया, जिन्होंने अन्तरिक्ष से जल को पृथिवी पर प्रेरित किया और जिन्होंने गौओं में सुमधुर दूध भरा, इन सब कर्मों के कर्त्ता इन्द्र ही हैं ॥२५॥ [५]

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् ॥२६
प्र व उग्राय निष्टुऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः इन्द्रो देवेषु चेतति ॥२८
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२९
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥३० ।६

इन्द्र ने और्णनाभ, अहीशुव और वृत्र का संहार किया और तुषार-जल के द्वारा मेघ को विदीर्ण कर डाला ॥२६॥ हे सामगायको ! जो इन्द्र पराक्रमी, कठोर, शत्रुओं के हराने वाले हैं, उन इन्द्र के निमित्त देवताओं को प्रसन्न करके प्राप्त किये सुन्दर स्तोत्रों का गान करो ॥ २७॥ सोम का हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र सब देवताओं को अपने सब कर्मों की सूचना देते हैं ॥ २८ ॥ समान शक्ति वाले, स्वर्णिम केश वाले हर्यश्व इस सोमयाग में इन्द्र को हमारे अन्न के सामने लावें ॥ २९ ॥ इन्द्र अनेकों द्वारा स्तुत हैं,

अश्विनीकुमार प्रियमेध के द्वारा स्तुत हैं, वे हमारे सोम को पीने के लिये सामने आवें ॥३६॥ [६]

३३ सूक्त

(ऋषि–मेधातिथिः काण्वः । देवता–इन्द्रः । छन्द–बृहती, गायत्री, अनुष्टुप्)

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥४
यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥५ ॥७

हे वृत्रहन् ! हमने सोम को संस्कारित किया है। उसके सम्पन्न होने पर कुशाऐं बिछाते हुए स्तोतागण, जल के समान तुम्हारे समक्ष जाते हुए तुम्हें पूजते हैं ॥ १ ॥ हे वासक इन्द्र ! सोम के अभिषुत होने पर उक्थ गायक स्तुति करते हैं कि इन्द्र वृषभ के समान शब्द करते हुए यहाँ कब आगमन करेंगे ।२। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का दमन करने वाले हो, कण्व गोत्री ऋषियों को सहस्र संख्यक अन्न प्रदान करो । तुम धनवान से हम पीलेरङ्ग के धन और गवादि युक्त अन्न माँगते हैं ॥३॥ हे मेधातिथि ! सोम को पीओ।। जो इन्द्र हर्यश्वों को रथ में संयुक्त करते हैं, जिनका रथ सोने का है, सोम से हर्ष उत्पन्न होने पर उन्हीं वज्रधारी इन्द्र का स्तव करो ॥४॥ जिनका मस्तक और दक्षिण हस्त सुन्दर हैं, जो मेधावी और सहस्रकर्मा हैं, जो अत्यन्त धनी हैं, जो शत्रु, पुरियों के ध्वसंक हैं, जो यज्ञ में स्थिर रहते हैं, उन इन्द्र की स्तुति करो ॥ ५ ॥ [७]

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥६
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥७
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥८
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥६
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१० ॥८

जो प्रचुर धनवान, शत्रुओं के धर्षक और सोम पीने वाले हैं वे बहुतों के द्वारा स्तुत इन्द्र अपने कर्म में लगे रहने वाले यजमान के लिए दूध देने वाली गाय के समान हैं। उनकी ही पूजा करो ॥ ६ ॥ जो इन्द्र सोम से तृप्त होते हैं, जिनके जबड़े सुन्दर हैं, जो शत्रु पुरों को तोड़ते हैं, उन सोम पीने वाले इन्द्र को जानने वाला कौन है ? उनके निमित्त अन्न धारण कौन करता है ॥ ७॥ जैसे शत्रुओं की खोज करने वाला हाथी मदमत्त हो जाता है, वैसे ही इन्द्र भी यज्ञ मे हर्षयुक्त भाव को धारण करते हैं। हे इन्द्र ! तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। तुम अपने बल से सर्वत्र विचरण करने वाले हो। तुम इस अभिषुत सोम की ओर आगमन करो ॥८॥ जब इन्द्र पराक्रम में भर जाते हैं, तब उन्हें कोई भी दबा नहीं सकता। वे संग्राम के लिए शस्त्रों द्वारा सुसज्जित रहते हैं। वे यज्ञ आह्वान सुनते हैं तो अन्यत्र न जाकर, वहीं पहुँचते हैं ॥६ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम कामनाओं वालों की ओर खिंच जाते हो। तुमको शत्रु आच्छादित नहीं कर सकते। तुम पास में और दूर में भी कामनाओं के वर्षक रूप से प्रसिद्ध हो ॥१०॥ [८]

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥११

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥१२
एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३
वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुज ।
तिरश्चिदर्य सवनानि वृत्रहन्नन्येषा या शतक्रतो ॥१४
अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपा ॥१५ ॥६

हे इन्द्र! तुम्हारे घोड़ों की लगाम और चाबुक कामनाओं की वर्षा करने वाली हैं, तुम्हारे अश्व अभीष्टवर्षक हैं और तुम भी इच्छाओं की वृष्टि करने वाले हो॥ ११ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे लिए सोम का संस्कार करने वाला कामनाओं की वर्षा करने वाला होता हुआ सोमाभिषव करे। तुम्हारे लिए जल में सोम को संस्कृत करने वाले ऋत्विज ने सोम-धारण किया था। हे इन्द्र! हमको धन प्रदान करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम आए बिना स्तुति, स्तोत्र और उक्थों को श्रवण नहीं करते। अतः इस मधुर सोम का पान करने के लिए आगमन करो ॥ १३ ॥ हे मेधावी इन्द्र! तुम रथ-सम्पन्न, वृत्र हनन कर्त्ता और ईश्वर हो। तुम्हारे अश्व अन्यो को लाँघ कर तुम्हें हमारे यज्ञ-स्थान में पहुँचावें ॥ १४ ॥ हे इन्द्र! तुम हमारे निकटस्थ सोमों को धारण करो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिये सुखकारी हो१५॥   [६]

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान्वीर आनयत् ॥१६
इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम ।१७
सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥१८
अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरा पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९ ॥१०

इन्द्र हमारे प्रभु हैं। वे हमारे, तुम्हारे या अन्य किसी के वश में रहना स्वीकार नहीं करते ॥ १६ ॥ इन्द्र का कथन था कि "स्त्री के मन पर नियंत्रण करना दुष्कर कार्य है क्योंकि स्त्री चंचल मन वाली होती है"॥१७ सोम के सामने पहुँचने वाले इन्द्र के दोनों घोड़े रथ का वहन करते हैं। इन्द्र कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं, इसलिए उनका रथ अश्वों की समानता में श्रेष्ठ है ॥१८॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रायोगि ! तुम स्तोता होते हुए भी स्त्री बन गए हो। अतः अपने पैरों को मिलाये रक्खो, तुम्हारे ओष्ठ प्रान्त और कटि से नीचे के भाग को कोई देख न सके ॥१९॥ [१०]

३४ सूक्त

(ऋषि-नीपातिथिः काण्वः, सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः। देवता-इन्द्रः। छन्द-अनुष्टुप् गायत्री)

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२
अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३
आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥४
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥५ ॥११

हे इन्द्र ! कण्व गोत्री महर्षियों की स्तुतियों के प्रति तुम अपने अश्वों सहित आगमन करो। तुम स्वर्ग के शासक हो, अतः स्वर्गलोक को गमन करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सोम का अभिषव करने वाले पाषाण शब्द करते हुए तुम्हें इस यज्ञ में सोम दें। तुम दीप्ति हवि से सम्पन्न हो और स्वर्ग का शासन करने वाले हो, अतः स्वर्ग लोक को गमन करो ॥ २ ॥ अभिषव करने वाला

पाषाण इस यज्ञ भूमि में सिंह द्वारा भेड़ को कँपाने के समान कम्पित करता है। दीप्ति हवियों से सम्पन्न इन्द्र स्वर्ग के शासक ह, अत ह इन्द्र ! स्वर्ग लोक को गमन करो ॥३॥ कण्व गोत्री ऋषि अन्न और रक्षा पाने की कामना करते हुए इस यज्ञ में इन्द्र को आहूत करते हैं। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं, हे सुन्दर हवियों से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्ग लोक को गमन करो ॥ ४ ॥ जैसे कामनाओं की वर्षा करने वाले वायु को प्रथम सोम रस देते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे लिए भी सस्कृत सोम रस दूँगा। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाल हैं। हे हविर्धान इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक को गमन करो ॥५॥ [११]

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वताधीन ऊतये।
दिवो अमुष्य शासता दिव यय दिवावसो ॥६
आ नो याहि महेमते महस्राते शतामघ।
दिवो अमुष्य शासतो दिव यय दिवावसो ॥७
आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्य ।
दिवो अमुष्य शासतो दिव यय दिवावसो ॥८
आ त्वा मदच्युता हरी श्यन पक्षेव वक्षत ।
दिवो अमुष्य शासतो दिव यय दिवावसो ॥९
आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिव यय दिवावसो ॥१० ॥१२

हे इन्द्र ! तुम्हारे धन स्वर्ग के निवासी हैं, तुम हमारे पास आगमन करो। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं, हे हवियुक्त इन्द्र ! तुम स्वर्ग लोक को गमन करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त मेधावी, महान् ऐश्वर्यवान् और सहस्रों रक्षा-साधनों से सम्पन्न हो। तुम हमारे पास आगमन करो। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं, हे हविर्धान् इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक में गमन करो ॥७॥ हे इन्द्र ! मनुष्यों के द्वारा घर में होता रूप म प्रतिष्ठित अग्निदेव स्तुतियों द्वारा स्तुत हैं, वही तुम्हें वहन करें। इन्द्र स्वर्ग क शासक हैं, हे हविर्धान इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक में गमन करो ॥ ८॥ हे इन्द्र ! जैसे बाज अपने दोनों पंखों को

वहन करता है, वैसे ही शक्तिशाली दोनों घोड़े तुम्हें वहन करें। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं। हे इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक में गमन करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब ओर से आगमन करो। तुम्हारे पान के निमित्त सोम रूप हवि देता हूँ। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं। हे दीप्त हवि से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्ग लोक को प्रस्थान करो ॥१०॥ [१२]

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११
सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२
आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३
आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४
आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५
आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥१६
य ऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७
पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥१८॥१३

हे इन्द्र ! तुम इस उक्थों वाले यज्ञ में हमारे पास आकर हमको हर्षित करो। इन्द्र स्वर्ग का शासन करते हैं। हे दीप्त हवियों वाले इन्द्र ! तुम स्वर्ग लोक को प्रस्थान करो ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व हृष्ट पुष्ट हैं, तुम उन एक से रूप वाले दोनों अश्वों के सहित आगमन करो। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं। हे सुन्दर हवियों वाले इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक में प्रस्थान करो ॥१२॥ हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष से अथवा पर्वत से आगमन करो। तुम स्वर्ग के शासक हो। हे श्रेष्ठ हवियों से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक के लिए गमन करो ॥१३ हे इन्द्र ! तुम हमको सहस्र संख्यक धेनु और अश्व प्रदान करो। इन्द्र स्वर्ग

के शासक हैं। हे श्रेष्ठ हवियों से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक के लिए गमन करो ॥१४॥ हे इन्द्र ! हमको सौ, सहस्र और दश सहस्र प्रकार की वस्तुऐं दो। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं। हे श्रेष्ठ हवियों से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्ग लोक को गमन करो ॥ १५ ॥ हम सहस्र मत्यक है, हम और हमारा नेतृत्व करने वाले इन्द्र बलिष्ट घोडे आदि पशुओं का पालन करते है। इस प्रकार हम धन के द्वारा प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं। १६ ॥ वायु के समान वेग वाल, सरलता से चलने वाले, मनोहर अश्व सूर्य क समान तेजस्वी है ॥ १७ ॥ रथ के पहियों को चलने में समर्थ बनाने वाले इन घोडों को जब पारावत ने दिया था, तब मैं वन में था ॥१८॥ [१३]

३५ सूक्त

(ऋषि-श्यावाश्व । देवता-अश्विनौ। छन्द-त्रिष्टुप, पंक्ति, जगती)

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभि सचाभुवा ।
सजोपसा उपसा सूर्येण च सोम पिबतमश्विना ॥१
विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभि सचाभुवा ।
सजोपसा उपसा सूर्येण च सोम पिबतमश्विना ॥२
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभि सचाभुवा ।
सजोपसा उपसा सूर्येण च सोम पिबतमश्विना ॥३
जुपेथा यज्ञं बोधत हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोपसा उपसा सूर्येण चेष नो वोळ्हमश्विना ॥४
स्तोमं जुपेथा युवशेव कन्यना विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोपसा उपसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥५
गिरो जुपेथामध्वरं जुपेथा विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोपसा उपसा सूर्येण चेष नो वोळ्हमश्विना ॥६ ॥१४

हे अश्विनीकुमारो ! आदित्यों, रुद्रों, वसुओं, विष्णु, अग्नि, इन्द्र, वरुण, उषा और सूर्य के सहित तुम सोम पीओ ॥ १ ॥ पराक्रमी अश्विनीकुमारो ! सब प्राणियों, प्रजाओं, स्वर्ग, पृथिवी, पर्वत, उषा और सूर्य के

सहित तुम सोम पान करो ॥२॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम तैंतीस देवताओं, भृगुओं, मरुतों, उषा और सूर्य के सहित सोम-पान करो ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मेरे आह्वान को समझते हुए, मेरे यज्ञ का सेवन करो। इस यज्ञ के सब सवनों में रहो और उषा तथा सूर्य के सहित हमारे हविरन्न को स्वीकार करो ॥४॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे कन्याओं के (स्वयंवर में) बुलाने को युवक स्वीकार करते हैं, वैसे ही इस यज्ञ के स्तोमों को तुम स्वीकार करो। तुम इस यज्ञ के सब सवनों में रहो ! उषा और सूर्य के सहित हमारे हविरन्न को स्वीकार करो ॥५॥ हे अश्विनीकुमारो ! हमारी स्तुतियों और यज्ञ का सेवन करो। इस यज्ञ के सब सवनों में रहो। उषा और सूर्य के सहित हमारे हवि रूप अन्न का भी सेवन करो ॥६॥ [१४]

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७
हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥८
श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥९
पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १०
जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥११
हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१२ ॥१५

जैसे दो पक्षी जल की ओर झुकते हैं, वैसे ही इस संस्कारित सोम की ओर तुम दोनों झुको। सोम को दो भैंसों के समान जानो। हे अश्विद्वय ! तुम उषा और सूर्य के सहित त्रिमार्ग गामी होओ ॥७॥ तुम दो हंसों और दो प्यासे पथिकों के समान संस्कारित सोम की ओर आओ और उसे दो भैंसों के

समान समझो। हे अश्विनीकुमारो! उषा और सूर्य के सहित त्रिमार्गगामी होओ ॥८॥ हे अश्विनीकुमारो! दो वाजों के समान संस्कारित सोमरस की ओर आगमन करो और उसे दो गैमों के समान समझो। उषा और सूर्य के सहित त्रिमार्गगामी होओ ॥९॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त करो। यहाँ आकर धन, संतान दो। उषा और सूर्य के सहित तुम दोनों हमको बल प्रदान करो ॥ १० ॥ हे अश्विनीकुमारो! शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। स्तुति करने वालों की रक्षा करते हुए, उनकी प्रशंसा करो। धन, संतान देते हुए उषा सूर्य के सहित हमको बल प्रदान करे ॥११॥ हे अश्विनीकुमारो! मन्त्री सहित रणक्षेत्र में जाकर शत्रुओं को नष्ट करो। हमको धन, संतान दो। उषा और सूर्य के सहित तुम दोनों हमको बल प्रदान करो ॥१२॥ [१९]

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मिरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१३
अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१४
ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१५
ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सामं सुन्वतो अश्विना ॥१६
क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नृन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सामं सुन्वतो अश्विना ॥१७
धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवा.
सजोषसा उषसा सूर्येण च सामं सुन्वतो अश्विना ॥१८ ॥१६

हे अश्विनीकुमारो! तुम मित्रावरुण, मरुद्गण और धर्म के सहित स्तुति करने वाले के आह्वान की ओर गमन करो। उषा और सूर्य को भी अपने साथ लेलो ॥ १३॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम मरुद्गण, विष्णु, आंगिरस उषा और सूर्य को साथ लेकर स्तुति करने वाले के आह्वान की ओर गमन

करो ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मरुद्गण, ऋभुगण, उषा और सूर्य को साथ लेकर स्तोता के आह्वान की ओर गमन करो ॥ १५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे स्तोत्र और कर्म पर अधिकार करो । दैत्यों का संहार करो । सोम अभिषव करने वाले के सामने, उषा और सूर्य के साथ आकर सोम को पीओ ॥ १६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वीरों और उनके बल को आधीन करो । राक्षसों को वश में करते हुए उन्हें मार डालो । उषा और सूर्य के साथ अभिषुत सोम का पान करो ॥ १७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! विशों और उनके धन गौओं को अपने आधीन करो । दैत्यों को वश में करते हुए मारो । उषा और सूर्य के साथ मिलकर अभिषुत सोम का पान करो ॥१८॥ [१६]

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥१९
सर्गा इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२०
रश्मींरिव यच्छतमध्वरां उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२१
अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२
नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३
स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२४ ॥१७

हे अश्विनीकुमारो ! तुम शत्रुओं के अहंकार को नष्ट करने में समर्थ हो । अत्रि के समान ही मुझ श्यावाश्व की स्तुति भी सुनो । प्रातः सवन में उषा और सूर्य के साथ सोम को पीओ ॥ १९॥ हे अश्विनीकुमारो ! आभरण के समान ही इस सुन्दर स्तोत्र को ग्रहण करो । मुझ श्यावाश्व के प्रातः यज्ञ में उषा और सूर्य के साथ आकर सोम का पान करो ॥ २०॥ हे अश्विनीकुमारो ! मुझ श्यावाश्व के यज्ञ की ओर लगाम के समान आओ । मेरे इस

प्रातः सवन में उषा और सूर्य के सहित आकर अभिषुत सोम रस का पान करो ॥२१॥ हे अश्विनीकुमारो ! अपने रथ को हमारे सामने लाकर सोम पियो । मेरे यज्ञ में सोम के सामने आओ । मैं तुम्हें रक्षा की कामना से आहूत करता हूँ । मुझ हविदाता को रत्न-धन दो ॥२२॥ हे अश्विनीकुमारो ! मेरे इस यज्ञ में किये जाते हुए नमस्कारों के प्रति आकर सोम पान करो । मैं तुम्हें रक्षा की कामना करता हुआ आहूत करता हूँ । मुझ हविदाता को रत्न धन दो ॥२३ हे अश्विनीकुमारो ! इस अभिषुत सोम की दी गई आहुति से तुम तृप्त होओ । मैं रक्षा की कामना करता हुआ तुम्हें आहूत करता हूँ । इसलिए इस यज्ञ में आकर मुझ हवि देने वाले को रत्न धन प्रदान करो ॥२०॥ [१७]

३६ सूक्त

(ऋषि-श्यावाश्व । देवता-इन्द्र । छन्द - शक्वरी, जगती)

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥१
प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥२
ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥३
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥४
जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥५

अश्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥६
श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥७ ॥१८

हे इन्द्र ! तुम अनेक कर्मों के करने वाले हो । सोम का अभिषव करने वाले और कुश बिछाने वाले यजमान की तुम रक्षा करते हो । तुम सत्य के स्वामी और मरुद्‌गण से युक्त हो, तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने निश्चित किया है, उस सोम-भाग की शक्ति के निमित्त सब शत्रुओं को हराते हुए पान करो ॥१ । हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने को पुष्ट करो और स्तुति करने वाले का भी पोषण करो। तुम सत्य के स्वामी और मरुद्‌गण से युक्त हो । तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, उस सोम-भाग को शक्ति के लिए, शत्रुओं को हराते हुए पान करो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम जल के द्वारा अपने को पुष्ट करते हो और अन्न के द्वारा देवताओं का पोषण करते हो । तुम अनेक कर्मों के करने वाले, सत्य के स्वामी तथा मरुतों से युक्त हो । तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, शत्रुओं के वेग को दबाते हुए जल के मध्य विजय प्राप्त करते हुए, उस सोम भाग को हर्ष के निमित्त पान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग और पृथिवी के उत्पन्न-कर्त्ता, सत्य के स्वामी, बहुत से कर्मों के करने वाले और मरुतों से युक्त हो । तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, उस सोम-भाग को, शत्रुओं के वेग को दबाते हुए और जल में विजय प्राप्त करते हुए शक्ति के लिए पान करो ॥ ४॥ हे इन्द्र ! तुम गौओं और घोड़ों के पिता हो । बहुत कर्म करने वाले, सत्य के स्वामी और मरुतों से युक्त हो । तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, उस सोम-भाग को, शत्रुओं के वेग को दबाते हुए तथा जल में विजय प्राप्त करते हुए शक्ति के निमित्त पियो ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम पर्वतों और मरुतों से युक्त हो । तुम सत्य के स्वामी और अनेक कर्मों के कर्त्ता हो । तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने

कल्पित किया है, तुम शत्रुओं के भीषण वेग को वशीभूत करते हुये और जल के मध्य विजय प्राप्त करते हुये उस सोम भाग का शक्ति के निमित्त पान करो ॥ ६॥ हे इन्द्र ! यज्ञानुष्ठान करने वाले महर्षि अत्रि की स्तुति के समान ही मुझ सोम का अभिषव करने वाले श्यावाश्व की भी स्तुति सुनो ! एक मात्र तुमने ही रणक्षेत्र में स्तोत्रों के फल को बढ़ाते हुए, त्रसदस्यु की रक्षा की थी ॥ ७॥ [१८]

३७ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती)

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वत. शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभि. ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥१
सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभि. ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥२
एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिव ॥३
सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभि ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥४
क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वभिरूतिभि. ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥५
क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥६
श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वत. ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ॥७ ॥१९

हे यज्ञ के स्वामी इन्द्र ! अपने सब रक्षा साधनों द्वारा इस स्तोत्र की संग्राम में रक्षा करो । तुम निन्दा रहित, वज्रधारी और वृत्र हन्ता हो । मेरे सोमाभिषव कर्म की रक्षा करते हुए मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥१

हे इन्द्र ! तुम सब कर्मों के स्वामी, और विकराल कर्म वाले हो । शत्रु-सेनाओं को अपने सब रक्षा साधनों द्वारा हरा कर इस स्तोत्र की रक्षा करो । तुम निन्दा-रहित, वज्रधारी और वृत्र हन्ता हो । मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥२॥ हे यज्ञ-स्वामी इन्द्र ! तुम इस लोक के एक मात्र स्वामी होते हुए सब रक्षा-साधनों से सम्पन्न रहते हो, अतः इस स्तोत्र को रक्षित करो । तुम निन्दा रहित, वज्र के धारण करने वाले और वृत्र हन्ता हो । मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥३ ॥ हे यज्ञ स्वामी इन्द्र ! तुम इन दोनों लोकों को पृथक करते हुए दोनों में ही समान रूप से अवस्थित रहते हो । तुम निन्दा-रहित, वृत्र-हन्ता और वज्रधारी हो । मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥४ हे यज्ञपते ! हे इन्द्र ! तुम सब रक्षा-साधनों से सम्पन्न अखिल विश्व, सब कल्याणों एवं प्रयोगों के स्वामी हो । तुम निन्दा-रहित, वृत्रहनन कर्त्ता, और वज्र के धारण करने वाले हो । मांध्यन्दिन में आकर सोम-पान करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब रक्षाओं से सम्पन्न होकर बलवान होते हो । तुम्हें किसी की रक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती । तुम वृत्रहन, वज्रधारी और अनिंद्य हो । मांध्य सवन में सोम-पान करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! अनुष्ठाता अत्रि की स्तुति सुनने के समान ही मुझ श्यावाश्व की स्तुति सुनो । एक मात्र तुमने ही स्तोत्रों को प्रवृद्ध करते हुए रणक्षेत्र में त्रसदस्यु की रक्षा की थी ॥७॥ [१६]

३८ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्वः । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द—गायत्री)

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२

इदं वा मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥४

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥५ ।२०

इन्द्राग्ने ! तुम पवित्र और ऋत्विक् हो । यज्ञों में और संग्रामों में मुझ

यजमान के स्तोत्र को समझो ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम शत्रु की हिंसा करने वाले, रथ के द्वारा विचरण करने वाले, वृत्रहन्ता और अजेय हो। तुम मुझ यजमान को जानो ॥ २॥ हे इन्द्राग्ने ! यज्ञ में पाषाण के द्वारा यह हर्षकारी सोम रस दुहा गया है। तुम मुझ यजमान को जानो ॥ ३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारी एक साथ स्तुति की जाती है, तुम इस यज्ञ का सेवन करो और अभिषुत सोम की ओर आगमन करो ॥४॥ हे नेता इन्द्राग्ने ! तुम यहाँ आओ, जिसके द्वारा तुम सोम का वहन करते हो, उस सवन को सेवन करो ॥५ ॥   [२०]

इमा गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥६
प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥७
श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥८
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९
आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे । याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥१०॥२१

हे इन्द्राग्ने ! तुम इस गायत्री छन्द वाली सुन्दर स्तुति को आकर सुनो ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम धन के विजेता हो। तुम प्रात सवन मे देवताओं सहित आकर सोम-पान करो ॥७॥ हे इन्द्राग्ने ! सोम का अभिषव करने वाले श्यावाश्व के ऋत्विजों का सोम पीने के लिये आह्वान सुनो ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने ! जैसे प्राचीन विद्वानों ने तुम्हें आहूत किया था वैसे रक्षा के लिए और सोम-पान के लिए तुम्हें आहूत करता हूँ ॥९॥ जिन इन्द्राग्नि के निमित्त साम-गान किया जाता है उन्हीं से मैं रक्षा की प्रार्थना करता हूँ ॥१०॥ [२१]

३९ सूक्त

(ऋषि—नाभाकः काण्वः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै ।
अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे
कविरन्तश्चरति दूत्य नभन्तामन्यके समे ॥१
न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषाम् ।

न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो
युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥२
अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः
शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे ॥३
तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे
विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे ॥४
स चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत
इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे ॥५ ॥२२

मैं यज्ञ के लिए ऋक् मन्त्रों के पात्र अग्नि की स्तुति करता हूँ । वे अग्नि हमारे यज्ञ में हवियों से देवताओं को पूजें । जो विद्वान् अग्नि स्वर्ग और पृथिवी में दौत्य-कर्म करते हैं, वे हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ १॥ हे अग्ने ! हमारे प्रति शत्रुओं में जो हिंसा भावना व्याप्त है उसे अभिनव स्तोत्र द्वारा भस्म करो । हम हवि देने वालों के शत्रुओं को भस्म कर डालो । सभी मूढ़ शत्रु यहाँ से पलायन करें । अग्नि देवता हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! मैं तुम्हारे मुख में सुखकारी घृत युक्त हव्य को स्तोत्र द्वारा डालता हूँ । तुम प्राचीन, सुखकर, और देवदूत हो । देवताओं के मध्य हमारे स्तोत्र को जानो और हमारे सब शत्रुओं का संहार कर डालो ॥ ३ ॥ स्तुति करने वाले जिस अन्न की कामना करते हैं, अग्निदेव उन्हें वही अन्न देते हैं । हवियों द्वारा आहूत अग्नि यजमानों को उपभोग के योग्य तथा मंगल करने वाला सुख प्रदान करते हैं । सब देवताओं के आह्वान में रहने वाले अग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥४॥ वे अग्नि सब देवताओं के होता हैं, विविध कर्मों द्वारा वे जाने जाते हैं । वे शत्रुओं के सामने जाने वाले अग्नि हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥५॥

[२२]

अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम् ।
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते
स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ॥६
अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति
देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे ॥७
यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं
यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे ॥८
अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रीरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो
विप्रो दूत. परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥९
त्व नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे । १० ॥२३

मनुष्यों में जो रहस्य है, उसे अग्नि जानते हैं, वे देवताओं की उत्पत्ति के भी जानने वाले हैं। वे धन देने वाले अग्नि हवियों द्वारा बुलाए जाकर धन का द्वार खोलते हैं। वही अग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ ६ ॥ वह अग्नि देवताओं में निवास करते हैं, वे प्रजाओं में भी व्याप्त रहते हैं। पृथिवी जैसे सब संसार का पोषण करती है, वैसे ही अग्नि भी सब कार्यों को पुष्ट करते हैं। वे देवताओं में यज्ञ के पात्र अग्नि हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥ ७॥ अग्नि सातों प्रदेशों के मनुष्यों और सब नदियों में व्याप्त हैं। वे तीनों स्थानों में समान रूप से रहते हैं। उन्होंने यौवनाश्व पुत्र मान्धाता के निमित्त राक्षसों का नाश किया। यज्ञों में मुख्य अग्नि हमारे सब शत्रुओं की हिंसा करें ॥ ८॥ तीनों स्थानों में निवास करने वाले अग्नि इस यज्ञ में सौम्य कर्म से सम्पन्न,मेधावी और सुशोभित होते हुए तैंतीस देवताओं का यजन करें। वे हमारी कामनाओं की पूर्ति करते हुए सब शत्रुओं की हिंसा करें ॥९

हे अग्ने ! तुम प्राचीन हो । देवताओं और मनुष्यों के तुम स्वामी हो । यह जल तुम्हारे चारों ओर गमन करता है । वह अग्नि सब शत्रुओं का संहार करें ॥१०॥ [२३]

४० सूक्त

(ऋषि–नाभाकः काण्वः । देवता–इन्द्राग्नी । छन्द–त्रिष्टुप्, शक्वरी, जगती)

इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित्साहिषीमह्यग्निर्वनेव
वात इन्नभन्तामन्यके समे ॥१
नहि वां वव्रयामहे्ऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम्
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये
गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥२
ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते
सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥३
अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी
मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥४
प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इन्द्र
ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥५
अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य सम्भृतंवस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥६ ॥२४

हे इन्द्राग्ने ! शत्रुओं को पराजित करो और हमको धन प्रदान करो । अग्नि जैसे वायु के द्वारा जङ्गल को दबाते हैं, वैसे ही हम भी शत्रुओं को वशीभूत करेंगे । यह इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ १ ॥ हे

इन्द्राग्ने ! हम तुमसे धन नहीं माँगते । हम नेताओं के नेता एवं महाबली इन्द्र के लिए यज्ञ करते हैं । वे इन्द्र कभी यज्ञ की प्राप्ति को और कभी अन्न को प्राप्ति को आगमन करते हैं । वे इन्द्राग्नि सब शत्रुओं का नाश करें ॥२॥ हे नेताओ ! तुम ही मित्रता के इच्छुक यजमान द्वारा किए गए कर्म को व्याप्त करते हो । जो इन्द्राग्नि रणक्षेत्र में वास करते हैं, वह सब शत्रुओं को हिंसित करें ॥ ३॥ इन्द्राग्नि में सब जगत विद्यमान है, उन इन्द्र और अग्नि को यज्ञ तथा स्तुतियों से प्रसन्न करो । इनकी ही गोद में स्वर्ग और महिमामयी पृथिवी धन को धारण करते हैं । वही इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥४ यह इन्द्राग्नि सात मूल वाले, बल के द्वारा ईश्वर, अपने तेज से समुद्र के आच्छादक और अवरुद्ध द्वार वाले हैं । इन इन्द्राग्नि के लिये, नाभाक के समान ऋषिगण स्तुतियाँ करते हैं । वे इन्द्र और अग्नि हमारे सब शत्रुओं का वध कर डालें ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम दस्युओं के बल को नष्ट करो । लता की शाखाएं जैसे काटी जाती हैं, वैसे ही हमारे सब शत्रुओं को काट डालो । इन्द्र की कृपा से हम एकत्रित धन को बाँट लेंगे । वे इन्द्र और अग्नि हमारे सब शत्रुओं को मार डालें ॥६॥   [२४]

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।

अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो

वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥७

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभि. ।

इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सी

बन्धादमुञ्चता नभन्तामन्यके समे ॥८

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिव. ।

वस्वो वीरस्यापृचो य नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ॥९

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम् ।

उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि

भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥१०

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।

उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः ।
स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥११
एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१२॥२५

जो व्यक्ति अपने धन और स्तुतियों से इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं, उनमें से हम सेनाओं वाले व्यक्ति अपने वीरों को साथ लेकर शत्रुओं को पराजित करेंगे और हम में से जो स्तोता हैं, वह शत्रुओं को पकड़ लेंगे ॥७॥ जो इन्द्र-अग्नि दीप्ति के द्वारा आकाश के लिए ऊर्ध्वगमन करते हैं, हवि वाहक यजमान उनके लिये ही यज्ञ-कर्म करते हैं । उन इन्द्र और अग्नि ने ही प्रसिद्ध सिंधु आदि नदियों को खोला था । वे इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ ८ ॥ हे वज्रिन् ! तुम स्नेह करने वाले, धनवान् और हयश्ववान् हो तुम्हारी प्राचीन स्तुतियाँ बहुत हैं । यह स्तोत्र हमारी बुद्धि को प्रवृद्ध करें । वे इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ ९ ॥ हे स्तुति करने वालो ! धन के भंडार, देदीप्यमान और मन्त्र योग्य इन्द्र को श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करो । शुष्मासुर की संतानों के वध करने वाले इन्द्र ही दिव्य जलों को वश में करते हैं । वे इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥१०॥ हे स्तुति करने वालो ! इन्द्र यजनीय, अविनाशी, ऐश्वर्यवान् और सुन्दर कर्म वाले हैं, उन्हें स्तुतियों द्वारा बढ़ाओ । वे इन्द्र शुष्म के अण्डों को नष्ट करते, दिव्य जलों को अभिभूत करते और यज्ञ में व्याप्त होते हैं । वह इन्द्र-अग्नि हमारे शत्रुओं को नष्ट करें ॥ ११ ॥ इन्द्र और अग्नि के निमित्त मैंने अपने पिता मान्धाता और अङ्गिरा के समान ही अभिनव स्तोत्रों का उच्चारण किया है । वे हमको तीन पर्वों वाला घर दें । उनकी कृपा से ही हम धनवान बनेंगे ॥१२॥ [२५]

४१ सूक्त

(ऋषि-नाभाकः काण्वः । देवता-वरुणः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः ।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गाइव रक्षति नभन्तामन्यके समे ॥ १

तमू षु समना गिरा पितृणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥२
स क्षपः परि षस्वजे न्यु स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३
यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं
स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४
यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या वेद नामानि गुह्या ।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ॥५ ॥२६

हे स्तोताओ ! इन्द्र, वरुण और मरुद्गण को, धन प्राप्ति के निमित्त स्तुति करो। वरुण, मनुष्यों के सब पशुओं की, गौओं की रक्षा करने के समान ही रक्षा करते हैं। वह हमारे शत्रुओं का वध करें ॥१॥ सुन्दर स्तोत्रों से वरुण का स्तव करता हूँ। श्रेष्ठ स्तोत्रों से पितरों की स्तुति करता हूँ। मैं नाभाक के स्तोत्रों से उन सात बहनों वाले, नदियों के पास आविर्भूत होने वाले की स्तुति करता हूँ। वह मेरे शत्रुओं को नष्ट करें ॥ २॥ दर्शनीय वरुण रात्रियों से मिलते हैं, वे ऊर्ध्वगामी होते हुए कर्म के द्वारा जगत को धारण करते हैं। उनके कर्म की इच्छा वाले पुरुष तीन उषाओं को बढ़ाते हैं। वह सब शत्रुओं का वध करें ॥ ३ ॥ वे दर्शनीय वरुण पृथिवी पर दिशाओं को धारण करते हैं। हमारे विचरण स्थान पृथिवी और स्वर्ग के वह स्वामी हैं। वे हमारी गौओं के रक्षक, स्वामी तथा निर्माता हैं। वह सब शत्रुओं का वध करें ॥ ४॥ सब भुवनों के धारक और रश्मियों में निहित नामों के ज्ञाता वरुण ही आकाश के समान कवि कर्मों को पुष्ट करते हैं। वह सब शत्रुओं का वध करें ॥ ५ ॥ [२६]

यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे

युजे अश्वां अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥६
य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम् ।
परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे
देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥७
स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८
यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति

नभन्तामन्यके समे ॥९

य श्वेतां अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णां अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी
अजो न द्यामधारयन्नभन्तामन्यके समे ॥१० ॥२७

चक्र-नाभि के समान सभी काव्य जिन वरुण के आश्रित हैं, उन तीन स्थान वाले वरुण की सेवा करो। गौ जैसे गोष्ठ में जाती है, वैसे ही शत्रु हमको पराजित करने के उद्देश्य से संग्राम के लिए घोड़ों को जोतते हैं, उन सब शत्रुओं को वह मारें ॥ ६ ॥ सब दिशाओं में व्याप्त वरुण शत्रुओं के चारों ओर बने नगरों को ध्वस्त करते हैं। सब देवता वरुण के रथ के सामने ही कर्म करते हैं। वह वरुण हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥७॥ समुद्र रूप में प्रत्यक्ष वरुण आदित्य के समान ही द्यौ पर आरूढ़ होकर सब दिशाओं में अवस्थित प्रजाओं को दान देते हैं। वे अपने प्रतिष्ठित पद से माया को नष्ट करते हुए स्वर्ग को जाते हैं। वह वरुण हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥८॥ वरुण अन्तरिक्ष में निवास करते हैं, उनके अद्भुत और उज्ज्वल तीन तेज तीनों लोकों में प्रख्यात है। वह निश्चल स्थान वाले, सातों नदियों के स्वामी हैं। वह हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥ ९॥ जिनकी किरणें दिन में श्वेत और रात्रि में काले वर्ण की होती हैं, उन वरुण ने आकाश और अन्तरिक्ष को अपने कर्म के लिये रचा। जैसे सूर्य स्वर्ग को धारण करते हैं, वैसे ही वरुण

भी आकाश पृथिवी को अन्तरिक्ष के द्वारा धारण करते हैं। वह सब शत्रुओं का वध करें ॥१०॥ [२७]

४२ सूक्त

(ऋषि—नाभाकः काण्व अर्चनाना वा। देवता—वरुण, अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१
एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम्।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पात नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२
इमा धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्ष वरुण सं शिशाधि।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३
आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥४
यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत्।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥५
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥६ ॥२८

वरुण सब के जानने वाले और बलवान हैं, उन्होंने पृथिवी को विस्तीर्ण किया और आकाश को स्थिर किया। वह सब लोकों के अधीश्वर होते हुए प्रतिष्ठित हुए। वरुण के ऐसे ही अनेक कर्म हैं ॥१॥ हे स्तोता! वरुण बृहत् हैं, वे धीर अमृत की रक्षा करते हैं उन्हें नमस्कार पूर्वक पूजो। वह वरुण हमको तीन पर्वों का भवन प्रदान करें। हम उनके अङ्क में निर्भीक रहते हैं। आकाश और पृथिवी हमारा पालन करने वाले हों ॥ २॥ हे वरुण! मेरे यज्ञ-

कर्म ज्ञान और बल को प्रवृद्ध करो। सब दुष्कर्मों से पार लगाने वाली नाव पर हम आरूढ़ होंगे ॥ ३ ॥ अश्विनीकुमार सत्य रूप वाले हैं। वह ऋत्विज के सब प्रस्तरों और तुम्हारे कर्मों के सामने पहुँचते हैं। यह दोनों हमारे शत्रुओं का वध करें ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे महर्षि अत्रि ने अपने स्तोत्र द्वारा तुम्हें सोम-पान के निमित्त आहूत किया था, वैसे ही मैं भी तुम्हारा आह्वान करता हूँ। वह अश्विद्वय मेरे शत्रुओं को नष्ट करें ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे विद्वानों ने तुम्हें सोम पीने के लिए आहूत किया था, वैसे ही मैं भी अपनी रक्षा के लिये तुम्हें आहूत करता हूँ। अश्विनीकुमार मेरे सब शत्रुओं को नष्ट करें ॥६॥　　　　　　　　　　[२८]

४३ सूक्त (छठवां अनुवाक)

(ऋषि—विरूप आंगिरसः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः। गिरः स्तोमास ईरते ॥१
अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥२
आरोकाइव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति ॥३
हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ॥४
एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत। उषसामिव केतवः। ५ ॥२६

अग्नि ही विधाता हैं। वह मेधावी अपने यजमान को कभी हिंसित नहीं करते। हमारे स्तोता उन्हीं अग्नि की पूजा करते हैं ॥ १ ॥ हे दर्शनीय अग्ने ! मैं तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्र करता हूँ, क्योंकि तुम देने वाले हो ॥२ हे अग्ने ! जैसे पशु दांतों द्वारा तृणादि का भक्षण करता है वैसे ही तुम्हारी तीक्ष्ण ज्वालाऐं वन का भक्षण करती हैं ॥ ३ ॥ धूम्र रूप ध्वज वाले अग्नि हरणशील हैं, वह वायु द्वारा प्रेरित होकर पृथक-पृथक रूप से अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥ ४ ॥ यह समिद्ध अग्नि, होताओं द्वारा उषा की ध्वजा के समान दर्शनीय होते हैं ॥५॥　　　　　　　　　　[२६]

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः। अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥६
धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति। पुनर्यन्तरुणीरपि ॥७

जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥८
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुन. ॥६
उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निसानं जुह्वो मुखे ।१०।`०

जब उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता अग्नि पृथिवी के सूखे हुए काठ के आश्रित होते हैं, तब उनके जाते समय, धूलें कृष्ण वर्ण की हो जाती हैं ॥६॥ औषधियों को अन्न मान कर उन्हें खाने मात्र से ही अग्नि तृप्त नहीं होते, वह तरुणावस्था प्राप्त औषधियों में व्याप्त होते हैं ॥७॥ वनस्पतियों को अपनी जीभ से चाटते हुए अग्नि अपने तेज से प्रदीप्त होते हुए सुशोभित होते हैं ॥८ हे अग्ने ! तुम जल में प्रविष्ट होते हो, तुम औषधियों को स्थित कर उन्हीं के गर्भ से प्रकट होते हो ॥६॥ हे अग्ने ! तुम घृताक्त जुहू के मुख को चाटते हो तब तुम्हारी ज्वाला अत्यन्त सुशोभित होती है ॥ १० ॥　　३०]

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥११,
उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२
उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥१३
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे।१४
स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् ।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥१५ ॥३१

जिनका अन्न कामना करने योग्य तथा हव्य भक्षण करने योग्य है, उन सोम पीठ वाले अग्नि की सुन्दर स्तोत्रों से सेवा करते हैं ॥ ११॥ हे प्रज्ञाग्ने ! तुम वरणीय एवं देवाह्वाक हो । हम समिधा प्रदान करने वाले तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥१२॥ हे अग्ने ! तुम्हें भृगु और मनु ने जिस प्रकार बुलाया था, उसी प्रकार हम भी आहूत करते हैं ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र, संत एवं मेधावी हो । तुम इन्हीं गुण वाली अग्नियों के द्वारा प्रज्वलित किये जाते हो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम हविदाता विद्वान् को सहस्रों धन और पुत्रादि से सम्पन्न अन्न प्रदान करो ॥१५॥　　[३१]

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥१६

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥१७
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे।१८
अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अद्मसद्याय हिन्विरे ॥१६
तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।
वह्निं होतारमीळते ॥२० ॥३२

हे यजमानों के सखा, रोहिताश्व, वाले, बलोत्पन्न पावक ! तुम हमारे स्तोत्र पर प्रतिष्ठित होओ ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! जैसे शब्द करते हुए बछड़ों की ओर गौऐं जाती हैं, वैसे ही हमारे स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करते हैं ॥१७॥ हे अग्ने ! तुम अङ्गिराओं में श्रेष्ठ हो । अभीष्ट की प्राप्ति के लिए सब प्रजाऐं तुम्हारी कामना करती हैं ॥१८॥ सभी चतुर, विद्वान् पुरुष अन्न पाने के लिए, इन अग्नि देवता को प्रदीप्त करते हैं ॥१६॥ हे अग्ने ! तुम होता हो, पराक्रमी एवं हवियों के वहन करने वाले हो । जो स्तोता अपने घर में अनुष्ठान करते हैं, वह तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥२०॥ [३२]

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे।।२१
तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवद्धवम् ॥२२
तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥२३
विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीळे स उ श्रवत्।।२४
अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।
सप्तिं न वाजयामसि । २५ ॥३३

हे अग्ने ! तुम सब को समान देखने वाले, सर्वव्याप्त और स्वामी हो । युद्ध के अवसर पर हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ २१ ॥ घृत की आहुतियों से अग्नि प्रदीप्त होते हैं, वे हमारे आह्वान को सुनते हैं । हे स्तोताओ ! उनका स्तव करो ॥२२॥ हे अग्ने ! तुम शत्रुओं का वध करने में समर्थ हो, तुम उत्पन्न हुओं में धन देने वाले हो और तुम हमारे आह्वान को भी सुनते हो । अतः हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ २३॥ अग्नि महान् कर्मों के स्वामी, मनुष्यों के पति हैं मैं उनका स्तोत्र करता हूँ ॥२४॥ अग्नि मनुष्यों के समान हित करने

वाले, शक्तिशाली और सर्वत्र गमन करने वाले है । उन अग्नि को हम अश्व के समान बलवान बनावेंगे ॥ २५ ॥ [३३]

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि ।२६
यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदाङ्गिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः ।२७
यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥२८
तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वा सुक्षितयः पृथक् । धासि हिन्वन्त्यत्तवे ॥२९
ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरन्त. स्याम दुर्गहा ।३०।३४

हे अग्ने ! तुम राक्षसों को भस्म करते हुए तथा हिंसाशील पापियों को नष्ट करते हुए अपने तेज से प्रवृद्ध होओ ।।२६।। हे अग्ने ! तुम अङ्गिराओं में श्रेष्ठ हो । जैसे तुम्हें मनु ने प्रदीप्त किया था, वैसे ही यह मनुष्य करते हैं । मेरी स्तुति को भी तुम उन्हीं के समान समझो ।।२७।। हे अग्ने तुम अन्तरिक्ष से उत्पन्न बल से प्रकट हुए हो । हम तुम्हें स्तोत्रों द्वारा आहूत करते हैं ।।२८ हे अग्ने ! सब प्राणी तुम्हारे भक्षणार्थ हविरन्न को पृथक् पृथक् प्रदान करते हैं ।।२९।। हे अग्ने ! हम सुन्दर कर्म वाले और सर्वदर्शी होते हुए सभी दुर्गम स्थलों को लाँघ जाँयगे ।।३०।। [३४]

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ।।३१
स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ।३२
तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु ।।३३ ।।३५

वे अग्नि पवित्र दीप्ति वाले, बहुतों के प्रिय और यज्ञ में शयन करने वाले हैं । हम प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों द्वारा उन्हें हर्षित करते हैं ।।३१।। हे अग्ने ! जैसे रश्मियों द्वारा सूर्य बल को बढ़ाते हैं, वैसे ही अपनी लपटों द्वारा तुम भी बल की वृद्धि करते हुए अन्धकार का नाश कर देते हो ।। ३२ ।। हे अग्ने ! तुम्हारा वरण करने योग्य तथा दान-योग्य धन सदा अक्षुण्ण रहता है । उसी धन की हम याचना करते हैं ।।३३।। [३५]

४४ सूक्त

(ऋषि-विरूप आंगिरसः । देवता-अग्निः । छन्द—गायत्री)

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ।।१

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना । प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥२
अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ॥३
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥४
उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥५ ॥३६

हे ऋत्विजो ! अग्नि अतिथि के समान हैं, इनकी हवियों से सेवा करो । इन्हें हवियों से चैतन्य करो ॥ १॥ हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र को ग्रहण करो, उसके द्वारा प्रवृद्ध होओ । हमारे सूक्त की अभिलाषा करो ॥२॥ मैं उन हवि-वहन करने वाले अग्नि की स्थापना करता हुआ उनका स्तव करता हूँ । वे इस यज्ञ में देवताओं का आह्वान करें ॥३॥ हे अग्ने ! तुम्हारे प्रदीप्त होने पर तुम्हारी ज्वालाएं उन्नत होती हुई चमकती हैं ॥४॥ हे अग्ने ! घृतदात्री स्रुक तुम्हारी ओर गमन करे और तुम हमारी हवियों का भक्षण करो ॥५॥ [३६]

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥६
प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम् । अध्वराणामभिश्रियम् ॥७
जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् । अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥८
समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह । चिकित्वान् दैव्यं जनम् ॥९
विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् । यज्ञानां केतुमीमहे ॥१०॥३७

अग्नि ऋत्विज रूप, होता रूप तथा दीप्तिमान् हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ, उसे वह सुनें ॥६॥ अग्नि यज्ञ भूमि के आश्रित हैं, वह मेधावी, स्तुत्य, प्राचीन और होता हैं, मैं उनका स्तव करता हूँ ॥७॥ हे अग्ने ! तुम अंगिराओं में महान् हो । हमारे यज्ञों को सम्पन्न करते हुए हवियों का भक्षण करो ॥८॥ हे अग्ने ! तुम यजनीय और दर्शनीय दीप्ति वाले हो । तुम प्रदीप्त होते ही देवताओं को हमारे यज्ञ में ले आओ ॥ ९ ॥ अग्नि देवता धूम रूप ध्वजा वाले, द्रोह-रहित, मेधावी और होता हैं, हम उनसे अपने इच्छित की याचना करते हैं ॥१०॥ [३७]

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः । भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥११

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१२
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥१३
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥१४
यो अग्निं तन्वो दमे देवं मर्तः सपर्यति । तस्मा इद्दीदयद्वसु ॥१५॥३८

हे बलोत्पन्न अग्ने ! हिंसक शत्रुओं से हमारी रक्षा करते हुए उन्हें हनन कर डालो ॥११॥ प्राचीन और सुन्दर स्तोत्र द्वारा सुशोभित होते हुए अग्नि वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।१२ अन्न से उत्पन्न, पवित्र दीप्ति से सम्पन्न अग्नि को मैं इस हिंसा रहित यज्ञ में आहूत करता हूँ ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम हम सखाओं द्वारा पूजा करने के योग्य हो । अपने उज्ज्वल तेज के सहित देवताओं के साथ यज्ञ में प्रतिष्ठित होओ ॥१४॥ धन की कामना वाला जो मनुष्य अपने घर में अग्नि की सेवा करता है, उसे वे धन प्रदान करते हैं ॥१५॥ [३८]

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥१६
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ॥१७
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥१८
त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥१९
अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा ।
अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥२० ॥३९

अग्नि देवता जल से उत्पन्न प्राणियों को हर्षित करते हैं । वह पृथिवी के स्वामी, आकाश के ककुद् और देवताओं के सिर रूप हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी उज्ज्वल आभाएं तुम्हें तेजस्वी बनाती हैं ॥१७॥ हे अग्ने ! तुम वरण करने योग्य धनों के और स्वर्ग के स्वामी हो । मैं स्तुति करने वाला, सुख-प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करूँ ॥१८॥ हे अग्ने ! विद्वज्जन तुम्हारी स्तुति करते हुए अपने सुन्दर कर्म से तुम्हें प्रसन्न करते हैं, हमारी स्तुतियाँ तुम्हें बढ़ावें ॥ १९ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के दूत और उनके स्तोता हो । तुम बलवान और अहिंसित हो । हम तुम्हारे सख्य भाव की सदा कामना करते हैं ॥२०॥ (३९)

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कवि. । शुची रोचत आहुतः ॥२१
उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः॥२२
यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥२३
वसुर्वसुपतिर्हि कमस्य ने विभावसुः । स्याम स्याम ते सुमतावपि ॥२४
अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः । गिरो वाश्रास ईरते ॥२५॥४०

अग्नि मेधावी, पवित्र, शुभ कर्म वाले तथा कवि हैं। वह आहुतियों द्वारा सुशोभित होते हैं ॥२१॥ हे अग्ने! मेरे अनुष्ठान और स्तुतियाँ तुम्हारी वृद्धि करें। तुम हमारे बन्धु-भाव को सदा जानो ॥२२॥ हे अग्ने! मैं अत्यन्त ऐश्वर्यवाला होकर भी तुम्हारे लिए पूर्ववत् ही रहूँगा। तुम्हारे आशीर्वाद सदा सुफल हों ॥ २३ ॥ हे अग्ने! तुम धन के स्वामी और वासदाता हो। हम तुम्हारी कृपा प्राप्त करें ॥ २४ ॥ हे अग्ने! तुम कर्मों के धारणकर्त्ता हो। नदियाँ जैसे समुद्र की ओर जाती है, वैसे ही मेरी सुन्दर शब्द वाली स्तुतियाँ तुम्हारी ओर जाती हैं ॥२५॥ [४०]

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्मभिः॥२६
यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७
अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय ॥२८
धीरो ह्यस्यद्मसद् विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि ॥२९
पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर ॥३०॥४१

अनेक कर्म वाले अग्नि लोकों के स्वामी, सदा तरुण, सर्व भक्षक और और कवि हैं। मैं उन्हें स्तोत्र से बढ़ाता हूँ ॥२६॥ तीक्ष्ण ज्वाला वाले, पराक्रमी, यज्ञ के नेता अग्नि की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करने की हम कामना करते हैं ॥२७॥ हे अग्ने! तुम पवित्र करने वाले हो। हमारा स्तोता तुम्हारी उपासना करे, तुम उसका कल्याण करो ॥ २८ ॥ हे अग्ने! विद्वान् हविदाता के समान बैठे हुए तुम सदा चैतन्य रहते हुए अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हो ॥२९ हे अग्ने। तुम निवासप्रद हो। पापियों और हिंसकों से हमारी रक्षा करो और हमारी आयु की भी वृद्धि करो ॥३०॥ (४१)

४५ सूक्त

(ऋषि–त्रिशोकः काण्वः । देवता—इन्द्राग्नी, इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरु । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२
अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥४
प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।
यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥५ ॥४२

जिन ऋषियों की तरुण इन्द्र से मैत्री है और अग्नि को भले प्रकार चैतन्य करते हैं, वे सब कुशाएं बिछाते हैं ॥१॥ इन ऋषियों की महिमा मयी समिधाएं हैं, यह प्रचुर स्तोत्रों वाले हैं और इनका यज्ञ भी महान् है । यह सब तरुण इन्द्र से मित्रता रखते हैं ॥ २ ॥ शत्रुओं द्वारा आच्छादित कौन-सा निर्बल मनुष्य अपने बल से बली होकर शत्रुओं का तिरस्कार करता है ॥३॥ इन्द्र ने उत्पन्न होते ही बाण ग्रहण किया और अपनी माता से पूछा कि जगत में अत्यन्त पराक्रमी कौन-कौन हैं ॥ ४ ॥ बल से सम्पन्न माता ने कहा कि तुम्हारा शत्रु दर्शनीय हाथी के समान पर्वत में संग्राम करता है ॥५॥ [४२]

उत त्व मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद्वीळयासि वीळु तत् ॥६
यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥७
वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तम ॥८
अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥९
वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥१०॥४३

हे इन्द्र ! तुम स्तोता को अभीष्ट देते हो, तुम जिसे दृढ़ कर देते हो वही दृढ़ हो जाता है । अतः हमारी भी स्तुति सुनो ॥६॥ वह इन्द्र जब अश्व की कामना करते हुए रणक्षेत्र में गमन करते हैं तब वे रथियों में महारथी होते

हैं ॥ ७ ॥ हे वज्रिन् ! सभी कामना करने वाली प्रजाएं जिससे बढ़ें, वैसे ही तुम बढ़ो। तुम हमारे निमित्त अधिक अन्नवान होओ ॥८॥ हिंसक जिन्हें हिंसित नहीं कर सकते, वह इन्द्र हमको इच्छित प्रदान करने के लिए अपने सुन्दर रथ को सामने लावें ॥९॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे शत्रुओं के पास नहीं रहते। जब तुम बहुत सी गौओं से युक्त काम्य धन प्रदान करते हो, तब हम तुम्हारे पास उपस्थित रहें ॥ १० ॥ [४३]

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ॥११
ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते॥१२
विद्मा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्र दृळहा चिदारुजम् ।
आदारिणं यथा गयम् ॥१३
ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः । आ त्वा पणिं यदीमहे ॥१४
यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ॥१५ ॥४४

हे वज्रिन् ! हम अश्वों से सम्पन्न, अत्यन्त ऐश्वर्यवान्, अद्भुत और युद्ध में वीर होंगे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति करने वाले विद्वानों को वह यजमान नित्य प्रति सौ और हजार संख्यक प्रिय वस्तुएं प्रदान करता है ॥१२॥ हे इन्द्र ! हम तुमको धनों के विजेता, शत्रुओं के हननकर्त्ता और उपद्रवों से घर के समान रक्षा करने वाला जानते हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ, धर्षक, कवि और वणिक् हो। हम जब तुमसे अपने इच्छित की याचना करते हैं तब यह सोम तुम्हारे लिए हर्ष प्रदायक और मधुर हो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! जो दाता होकर भी तुमसे ईर्ष्या करता है अथवा जो धनी होकर भी दानशील नहीं है, ऐसे दोनों प्रकार के पुरुषों का धन लेकर हमारे पास आओ ॥१५॥ (४४)

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥१६
उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७
यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः ॥ १८
यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिन्द्र बोधि नः॥१
आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते ।

उरुमसि त्वा सधस्थ आ ॥२० ॥४५

हे इन्द्र ! घास लाकर पशु स्वामी अपने पशु को देखता है, वैसे हमारे यह मित्र सोम को संस्कारित करके तुम्हें देखते हैं ॥१६॥ हे इन्द्र ! तुम श्रोत्रेन्द्रिय से सम्पन्न हो, तुम बधिर नहीं हो। अतः हम अपनी रक्षा के निमित्त दूर देश से भी तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! हमारे आह्वान को सुन कर शत्रुओं के लिए अपना बल अप्राप्य बनाओ और हमारे निकटस्थ बन्धु होओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! जब हम निर्धन होकर तुम्हारी शरण को प्राप्त हों, तब तुम हमको गौएं देने के लिए चैतन्य होना ॥१६॥ हे बल के स्वामी इन्द्र ! हम दुर्बल होकर दण्ड के समान तुम्हें पावेंगे यज्ञ में हम तुम्हारी इच्छा करेंगे ॥ २० ॥ (४५)

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने । नकिर्यं वृण्वते युधि ॥२१
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥२२
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
माकी ब्रह्मद्विषो वनः ॥२३
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥२४
या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे ।
ता संसत्सु प्र वोचत ॥२५ ॥४६

हे स्तोता ! इन्द्र महान् ऐश्वर्य वाले और दानशील हैं, तुम उनके लिए स्तुतियाँ उच्चारण करो। संग्राम में उन्हें कोई जीत नहीं सकता ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान हो। मैं यह संस्कारित सोम तुम्हें पीने के लिए देता हूँ, इस हर्ष प्रदायक को पीकर तृप्त होओ ॥२२॥ हे इन्द्र ! रक्षा की कामना वाले मूर्ख तुम पर व्यंग न करें, वे तुम्हारी हिंसा न करें। ब्राह्मणों से द्वेष करने वालों को तुम अपनी शरण कभी भी प्रदान न करना ॥२३॥ हे इन्द्र ! महा धन की प्राप्ति वाले इस यज्ञ में दुग्धादि मिश्रित सोम को पीकर हर्षयुक्त होओ। जैसे मृग सरोवर में जल पीकर तृप्त होता है, वैसे ही तुम सोम पीकर तृप्त होओ ॥२४॥ हे वृत्रहन् ! जिस नवीन और प्राचीन धन का तुमने दूर देश में प्रेरण किया है, उसका इस यज्ञ में वर्णन करो ॥२५॥ (४६)

अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६
सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणे शमि ॥२७
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥२८
ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२६
यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥३० ॥४७

हे इन्द्र ! तुमने रुद्र ऋषि के संस्कारित सोम को पिया और सहस्र-बाहु वाले शत्रु को मारा । उस समय तुम्हारा बल अत्यन्त दीप्त होगया ॥२६ हे इन्द्र ! तुमने यादवों के प्रसिद्ध कर्मों को यथार्थ मान कर संग्राम में अन्ह-वाय्य को व्याप्त कर डाला ॥ २७ ॥ हे स्तोताओ ! तुम्हारे पुत्रादि का मंगल करने वाले, शत्रुओं का मर्दन करने वाले, गौओं से सम्पन्न अन्न के देने वाले इन्द्र का पूजन करो ॥२८॥ मैं जलों को प्रवृद्ध करने वाले इन्द्र की, धन-दान के लिए सोम के संस्कारित होने पर उक्थों द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ २६ ॥ जिन इन्द्र ने जल निकालने के लिए मेघ को द्वार रूप से तोड़ा था, त्रिशोक ऋषि के स्तोत्र पर उन्होंने ही जल के प्रवाहित होने का मार्ग निर्मित किया था ॥३०॥　　[४७]

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि । मा तत्करिन्द्र मृळय ॥३१
दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगात्विन्द्र ते मनः ॥३२
तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३३
मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ॥३४
बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः । दस्मादहमृतीषहः ॥३५ ॥४८

हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर जो धारण करते हो, जो देते हो, जो पूजते हो, वह सब कर्म हमारे लिए क्यों नहीं करते ? हे इन्द्र ! हमारा कल्याण करो ।३१। हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा से स्वल्पकर्मा मनुष्य भी पृथिवी में प्रसिद्धि प्राप्त करता है । अतः तुम्हारा मन मेरी ओर आकर्षित हो ॥ ३२ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपनी जिन स्तुतियों को प्राप्त करके हमको सुख देते हो, वह

स्तुतियाँ तुम्हीं को प्राप्त हों ॥ ३३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे द्वारा एक अपराध होने पर हमको हिंसित न करना। दूसरी या तीसरी बार के अपराध पर भी हमारी हिंसा मत करना ॥३४॥ हे इन्द्र ! तुम उग्र, शत्रु हिंसक, पापियों के संहारक और शत्रुओं द्वारा प्रेरित हिंसा कर्मों के सहने वाले हो, मैं तुमसे भयभीत न होऊँ ॥ ३५॥ / [४८]

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद्भूतु ते मनः ॥३६
को नु मर्या अमिथित सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥३७
एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावय. । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥३८
आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदी ब्रह्मभ्य इद्दः ॥३९
भिन्धि विश्वा अप द्विपः परि वाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४०
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४१
यस्य ते विश्वमानुपो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ।४२।६

हे इन्द्र ! तुम्हारे धन का परिमाण नहीं है। मैं तुमसे तुम्हारे मित्र और उसके पुत्र की बात कहता हूँ, वह मैं समृद्ध होऊँ, तुम्हारा मन मुझसे विरक्त न होवे ॥ ३६॥ हे मनुष्यो ! इन्द्र के सिवाय अन्य कौन द्वेष न करने वाला सखा है जो प्रश्न करने से पहिले कह दे कि "मैंने किसे मारा, कौन मुझसे भयभीत होकर भाग जायगा ?" ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित देने वाले हो। संस्कारित होने पर सोम तुम्हारी ओर ही गमन करता है। देवता तुम्हारे सामने से नीचा मुख करके चले गए ॥३८॥ मन्त्र द्वारा सुन्दर रथ में योजित होने वाले इन्द्र के दोनों घोड़ों को आकर्षित करता हूँ। हे इन्द्र ! तुम ब्राह्मणों को धन प्रदान करते हो ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! सब शत्रुओं को विदीर्ण करो और युद्ध की समाप्ति पर अभिलाषा के योग्य सब धनों को ले आओ ॥४० हे इन्द्र ! तुमने जिस धन को, दृढ़ स्थान पर, स्थिर स्थान पर और संदिग्ध स्थान पर रक्खा है, उस कामना के योग्य धन को लेकर यहाँ आगमन करो ॥४१॥ हे इन्द्र ! तुमने जो धन अनजाने में अन्य पुरुषों को दिया है, वह कामना के योग्य धन यहाँ लाओ ॥४२॥

४६ सूक्त

(ऋषि–वशोऽश्व्यः । देवता–इन्द्रः, पृथुश्रवसः कानीतस्य दानस्तुतिः, वायुः । छन्द–गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥१
त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् । विद्म दातारं रयीणाम् ॥२
आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥३
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥४
दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते ।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥५ ॥१

हे ऐश्वर्यवान्, कर्मों में लगाने वाले इन्द्र ! हम तुम्हारे समान सम्पन्न देवता के ही आत्मीय हैं। तुम हर्यश्वों के स्वामी हो ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! तुम अन्न-प्रदान करने वाले हो, ऐसा हम जानते हैं। तुम धन देने वाले हो, यह भी जानते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुकर्मा हो। स्तोता तुम्हारी उस महिमा का बखान स्तुतियों से करते हैं ॥ ३ ॥ जिस पुरुष की मरुद्गण, मित्र और अर्यमा रक्षा करते हैं, वही यशवान होता है ॥४॥ सूर्य की कृपा से ही यजमान गौ, अश्व और वीर्यादि वाला होकर वृद्धि को पाता है। वह कामना किए हुए असंख्य धन से प्रवृद्ध होता है ॥५॥ (१)

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥६
तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥७
यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य आददिः स्वर्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥८
यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥९
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥१० ॥२

भय रहित, बल वाले, मद्र के स्वामी इन्द्र से ही हम धन माँगते हैं ॥६॥ यह मरुद्गण रूप सर्वत्र गमन करने वाली, भय रहित सेना इन्द्र की ही है। असीमित धन प्रदान करने वाले इन्द्र को उनके वेगवान् घोड़े हमारे सोम के समीप लावें ॥७॥ हे इन्द्र! तुम अपनी जिस शक्ति से युद्ध में शत्रुओं को मारते हो, तुम्हारी वह शक्ति वरण करने योग्य है। वह मद तुम्हें शत्रुओं से धन प्राप्त कराने वाला और युद्ध में पार लगाने वाला है ॥ ८ ॥ सब के द्वारा वरणीय, शत्रुओं को लाँघने वाले, सब से पराक्रमी और प्रसिद्ध इन्द्र उसी शौर्य के साथ हमारे यज्ञ में आगमन करें, तभी हम गौओं से सम्पन्न गोष्ठ में प्रतिष्ठित होंगे ॥ ९ ॥ हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्र! गौ, अश्व और रथ की प्राप्ति-कामना करने पर हमको सब कुछ पहिले के समान ही प्रदान करना ॥१०॥(२)

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥११
य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥१२
स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुर. स्थाता । मघवा वृत्रहा भुवत् ॥१३
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥१४
ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ ॥१५।३

हे इन्द्र! तुम्हारा धन यथार्थ ही असीम है, अतः हमको धन प्रदान करो। हे वज्रिन्! धन देकर हमारे कर्म की अन्न के द्वारा रक्षा करो ॥ ११ ॥ इन्द्र दर्शनीय हैं, ऋत्विज उनके मित्र है, वे संसार के सब जीवों के ज्ञाता और अनेकों द्वारा स्तुत हैं। सब मनुष्य हवियों द्वारा उन्हीं इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥१२॥ वह वृत्रहन्ता इन्द्र अपरिमित धन से सम्पन्न हैं, रणक्षेत्र में वे हमारे आगे चलते हुए रक्षा करें ॥१३॥ हे स्तोताओ! सोम से हर्षित होने पर अपनी वाणी की स्फूर्ति के अनुसार महान् स्तोत्रों से इन्द्र की स्तुति करो। वह इन्द्र शत्रुओं को पतित करने वाले, शक्तिशाली, सर्व विख्यात, अत्यन्त मेधावी, महान् हैं ॥१४॥ हे इन्द्र! तुम मुझे धन देने वाले होओ। युद्ध के अवसर पर अन्न

से सम्पन्न धन दो। हमारे पुत्रों द्वारा आहूत किये जाने पर उन्हें भी धन देने वाले होओ ॥१५॥ (३)

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः ।
कृपयतो नूनमत्यथ ॥१६
महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरङ्गमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥१७
ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८
प्रभङ्गं दुर्मतीनामिन्द्र शविष्ठा भर ।
रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥१९
सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२० ॥४

स्तोताओ ! समस्त धनों के स्वामी, युद्ध को कम्पायमान करने वाले और शत्रुओं को परास्त करने वाले इन्द्र की स्तुति करो, क्योंकि हमें धनवान् बनाने में वही समर्थ हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हें बुलाना चाहता हूँ क्योंकि तुम सर्वत्र गमन करने वाले और वर्षक हो। मैं अपने यज्ञ में स्तुतियों से तुम महान् की स्तुति करता हूँ। तुम सब प्राणियों के ईश्वर और मरुद्गण के नेता हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हुआ सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा गुणानुवाद करता हूँ ॥१७॥ जो मरुद्गण मेघ के बलकारी प्राचीन जलों के साथ गमन करते हैं, उन गर्जनशील मरुतों के निमित्त यज्ञ करते हुए हम उनसे जो कल्याण प्राप्त हो सकेगा, उसे लेंगे ॥१८॥ हे इन्द्र ! तुम पाप बुद्धि वालों का नाश करते हो। तुम्हारी मति धन को प्रेरित करने में लगी रहती है। अतः हम तुमसे धन माँगते हैं हमारे लिए श्रेष्ठ धनों को लेकर आगमन करो ॥१९॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के हराने वाले, पराक्रमी, सत्यभाषी, दाता और सब के प्रिय तथा स्वामी हो। तुम हमको युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराभूत करने वाला धन प्रदान करना ॥२०॥ (४)

आ स एतु य ईवदाँ अदेव. पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्य. पृथुश्रवसि कानीते स्या व्युष्यादंदे ॥२१
षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२
दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥२३
दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन् मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४
आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥२५ ॥५

कन्या-पुत्र पृथुश्रवा से जिन अश्व-पुत्र वश ने धन पाया था, वे वश यहाँ आगमन करें ॥ २१ ॥ मैंने साठ सहस्र और दश सहस्र अश्वों को, दो सहस्र ऊँटों को और एक सहस्र कृष्णवर्णं वाली अश्वियों को प्राप्त किया है तथा श्वेत रंग वाली दश सहस्र धेनु भी तीन स्थानों में प्राप्त की है ॥२२॥ दस काले घोड़े रथ की नेमि को खींचते हैं। वे घोड़े अत्यन्त वेग वाले, बली और मथने वाले हैं ॥२३॥ कन्या-पुत्र पृथुश्रवा अत्यन्त धनी हैं, इनके दान में सुवर्ण का रथ भी मिला है। वे महान् दानी हैं इसीलिए उन्होंने महान् कीर्ति का अर्जन किया है ॥२४॥ हे वायो ! पूजनीय बल तथा बृहद् धन के निमित्त हमारे पास आओ। हम तुम्हारा स्तव करते हैं, क्योंकि तुम महान् दानी हो। तुम्हारे आगमन पर हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, क्योंकि तुम असीम धन देने वाले हो ॥ २५॥   (५)

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्तसप्तीनाम्
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६
यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥२७
उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।

अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥२८

अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् । अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥२९

गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥३०

अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् ।

अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥३१

शतं दासे वल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।

ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२

अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् ।

अधिरुक्मा वि नीयते ॥३३ ॥६

सोम को पीने वाले, दीप्त वायु पृथुश्रवा के घोड़ों के साथ आकर घर में रहते हैं और सप्त सप्तति की तिगुनी गायों के साथ गमन करते हैं। वे सोम का अभिषव करने वालों से मिलकर सोम प्रदान करने के लिए ही सोमवान् हुए हैं ॥२६॥ जो पृथुश्रवा गौ, अश्व आदि के दान का विचार करते हुए प्रसन्न हुए थे, उन श्रेष्ठ कर्म वाले पृथुश्रवा ने अपने विभागाध्यक्ष अक्ष, नहुष, सुकृत्व और अष्टव को इसका आदेश दिया ॥२७॥ उच्चथ्य और वपु नामक राजाओं के भी राजा वायु ने अश्वों, ऊँटों और श्वानों के द्वारा जो अन्न भेजा जाता है, "वह तुम्हारा ही है" ऐसा कहा ॥ २८ ॥ धन आदि को प्रेरित करने वाले राजा की कृपा से मैंने साठ सहस्र गौओं को भी प्राप्त किया ॥२९॥ गौएँ जैसे अपने झुण्डों को प्राप्त होती हैं, वैसे ही पृथुश्रवा प्रदत्त वृषभ मुझे प्राप्त होते हैं ॥३०॥ जब ऊँट जङ्गल में प्रेषित किये गए, तब एकसौ ऊँट और दो सहस्र गौएँ मेरे लिए लाये थे ॥३१॥ मैं गौ घोड़ों का पालक ब्राह्मण हूँ। मैंने बल्बूथ से सौ गौ और घोड़े प्राप्त किये थे। हे वायो ! यह सब तुम्हारे ही हैं, इन्द्रादि देवताओं की रक्षा प्राप्त करके यह सब सुखी रहते हैं ॥३२॥ राजा पृथुश्रवा के दान के साथ प्रदत्त सुवर्ण भूषणों से सुसज्जित पूजनीय कन्या को वे अश्व-युक्त यज्ञ के अभिमुख लाते हैं ॥३३॥ (६)

४७ सूक्त

(ऋषि–त्रित आप्त्यः। देवता-आदित्याः, आदित्या उषाश्च।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥१

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम्।
पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥२

व्यस्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥३

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥४

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥५ ॥७

हे मित्रावरुण! हविदाता के निमित्त तुम्हारे रक्षा साधन महान् हैं। तुम जिसे चाहो, वह शत्रु के हाथ से नहीं पड़ता और पाप भी उसे नहीं छू सकता। तुम्हारे द्वारा रक्षित व्यक्ति को उपद्रव व्यर्थ होता है, तुम्हारी रक्षाएं सुन्दर हैं। १॥ हे आदित्यो! तुम दुःख दूर करना जानते हो। जैसे चिड़ियायें पंख फैला कर अपने बच्चों को सुख देती हैं, वैसे ही सुख प्रदान करो। तुम्हारा रक्षण सामर्थ्य शोभनीय है, उसके प्राप्त होने पर किसी उपद्रव का भय नहीं रहता ॥२॥ पक्षियों के पंख के समान जो सुख तुम्हारे पास है उसे

हमको दो। हे आदित्यों ! हम तुमसे घर के योग्य धन की याचना करते हैं। तुम्हारे रक्षा साधन सुन्दर हैं- उन्हें प्राप्त करने पर किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहता ॥३॥ जिस यजमान को आदित्य अन्न देते हैं, उसके लिए सब मनुष्यों के धन का स्वामित्व प्राप्त करते हैं, तुम्हारे रक्षात्मक साधन सुन्दर हैं, उन्हें प्राप्त करने पर किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहता ॥४॥ जैसे रथ को खींचने वाले अश्व दुर्गम पथ पर नहीं चलते, वैसे ही हम भी पाप-पथ पर नहीं चलेंगे। हम आदित्य से रक्षा और कल्याण पावेंगे। उनके रक्षात्मक साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें पाकर किसी प्रकार का भय नहीं रहता ॥५॥ [७]

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥६

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतय सुऊतयो
व ऊतः ॥७

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥८

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥९

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥१० ॥८

हे आदित्यो ! तुम्हारा धन अत्यन्त कष्ट-साध्य है। तुम शीघ्र गमन द्वारा जिस यजमान पर अनुग्रह करते हो, वह धनवान् हो जाता है। तुम्हारे रक्षात्मक आयुध श्रेष्ठ हैं, उन्हें पाकर भय नहीं रहता ॥६॥ हे आदित्यो ! जिसे

तुम सुख देते हो, वह क्रोध रहित रहना हुआ दु खों से भी बचा रहता है। तुम्हारे रक्षात्मक आयुध श्रेष्ठ है, उनसे उपद्रव की आशका नहीं रहती ॥ ७ ॥ हे आदित्यो ! कवच की रक्षा में जैसे वीर रहते हैं, वैसे ही हम तुम्हारी रक्षा में रहेंगे। तुम हमको कम या अधिक अनिष्टों से रक्षित करो। तुम्हारे रक्षा-मक आयुध श्रेष्ठ हैं, उनस उपद्रव का भय नहीं रहता ॥८॥ अदिति हमको सुख दें, वह हमारा मगल करें, वह मित्र, वरुण अर्यमा को माता अदिति के धन मे सम्पन्न हैं। तुम्हारी रक्षाएं श्रेष्ठ हैं, उन्हें प्राप्त करन पर उपद्रव नहीं रहता ॥९॥ हे आदित्यो ! तुम हमको रोग रहित, सुमननीय सुख दो तुम्हारे रक्षा साधन श्रेष्ठ हैं, उनके प्राप्त होने पर किसी प्रकार क उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१०॥   (८)

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पश ।
सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेपथा सुगमनेहसा व ऊतय सुऊनयो
व ऊतय ॥११

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतय सुऊतयो
व ऊतय ॥१२

यदाविर्यदपीच्य देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसा व ऊतय सुऊतयो
व ऊतय ॥१३

यच्च गोषु दुष्वप्न्य यच्चास्मे दुहितर्दिव ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतय सुऊतयो
व ऊतय ॥१४

निष्कं वा घा कृणवते स्रज वा दुहितर्दिव ।
त्रिते दुष्वप्न्य सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतय सुऊतयो
व ऊतय ॥१५ ॥६

हे आदित्यो ! किनारे के नीचे के पदार्थों को जैसे मनुष्य देखता है वैसे ही ऊपर से तुम हमको देखो। जैसे घोड़े को रमणीक घाट पर ले जाते हैं, वैसे ही तुम हमको सुन्दर स्थान प्राप्त कराओ। तुम्हारे रक्षा-साधन श्रेष्ठ हैं, उनके रहते किसी उपद्रव का भय नहीं रहता ॥११॥ हे आदित्यो ! हमारी हिंसा करने की इच्छा वाले सुखी न हों। गौ, पशु और अन्न की कामना वाले हम सुखी हों। तुम्हारे रक्षात्मक साधन उत्तम हैं। उनको पाकर किसी उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१२॥ हे आदित्यो ! प्रकट वा अप्रकट पाप मुझे कोई भी प्राप्त न हो। मुझसे इन्हें दूर ही रक्खो। तुम्हारे रक्षात्मक साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें प्राप्त करने पर कोई उपद्रव नहीं होता ॥१३॥ हे सूर्य पुत्री उषे ! हमारी गौओं के दुःस्वप्न को दूर करो। तुम्हारे रक्षा साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें पाकर उपद्रव का भय नहीं रहता ॥ १४ ॥ हे उषे ! जो मालाकार में दुःस्वप्न है, उसे पृथक् करो। तुम्हारे रक्षा साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें प्राप्त कर लेने पर किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१५॥   (६)

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥१६

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं सन्नयामसि ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥१७

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद्दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥१८ ॥१०

हे उषे ! स्वप्न में अन्न पाने जैसे दुःस्वप्न के पाप को दूर करो। तुम्हारे रक्षा-साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें पाकर किसी प्रकार के उपद्रव का डर नहीं रहता ॥ १६॥ जैसे यज्ञ में दान के लिए विविध वस्तुएँ क्रम से देने योग्य होती हैं, जैसे ऋण धीरे-धीरे चुकाया जाता है, वैसे ही हम सब दुःस्वप्नों को क्रम से दूर कर देंगे ॥ १७ ॥ आज हम पाप से रहित होंगे, आज हमारा

कल्याण होगा, आज हम विजय प्राप्त करेंगे । हे उदे ! हम दुःस्वप्न से भय भीत हैं, तुम्हारे श्रेष्ठ रक्षा साधनों को पाकर किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१८॥   (१०)

४८ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः। देवता-सोमः। छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

स्वादोरभक्षि वयस. सुमेधा. स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥१
अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाण श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्या. ॥२
अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३
शं नो भव हृद आ पीत इन्द्रो पितेव सोम सूनवे सुशेव ।
सखेव सख्य उरुशस धीर प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४
इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दव ॥५ ॥११

मैं श्रेष्ठ बुद्धि, उत्तम कर्म और अध्ययन से सम्पन्न हूँ। मैं अत्यन्त पूजनीय स्वादिष्ट अन्न का स्वाद ले सकूँ। विश्वेदेवा और मनुष्य इस अन्न को सेवनीय कह कर ग्रहण करते हैं ॥१॥ हे सोम ! तुम हृदय प्रदेश में जाते हो। तुम देवताओं को क्रोध-रहित करते हो। तुम इन्द्र से सख्य भाव पाकर, अश्व के समान हमारे धन को वहन करो ॥२॥ हे सोम ! तुम अमृतत्व वाले हो। हम तुम्हारा पान करके ही अमर होंगे। फिर हम स्वर्ग में जाकर देवताओं को जानेंगे। मैं मनुष्य हूँ, हिंसक शत्रु मेरा क्या कर सकेगा ॥ ३ ॥ हे सोम ! पुत्र के लिए पिता के समान सुखकारी तुम पान करने पर प्रसन्नता दायक होओ। हे मेधावी प्रशंसित सोम ! तुम अधिक जीवन के निमित्त हमारी आयु वृद्धि करो ॥४॥ जैसे अश्वों को रथ में बाँधा जाता है, वैसे ही

पान किये जाने पर यह सोम मेरे प्रत्येक अवयव को कर्मों के साथ बाँध दे। यह सोम मुझे रोगों से बचावे और मुझे आवरण-हीन न होने दे ॥५॥ (११)

अग्नि न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६
इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥७
सोम राजन् मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या स्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्द्रो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥८
त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥९
ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्र प्रतिरमेम्यायुः ॥१० ॥१२

हे सोम ! पान कर लेने पर प्रदीप्त अग्नि के समान ही मुझे तेजस्वी बनाओ । मुझ पर अनुग्रह दृष्टि करते हुए धन दो । मैं तुम्हारे हर्ष की याचना करता हूँ, अतः धन द्वारा पुष्टि को प्राप्त करो ॥६॥ हम पैतृक धन के समान ही इस सुसंस्कृत सोम को पीयेंगे । हे सोम ! जैसे सूर्य दिनों की वृद्धि करते हैं, वैसे ही तुम मेरी आयु की वृद्धि करो ॥७॥ हे सोम ! मृत्यु से रक्षित करते हुए हमको सुख दो । हम व्रती तुम्हारे ही हैं, इसलिए हमको जानो । हे इन्द्र ! हमारा शत्रु बहुत बढ़ गया है, वह क्रोध में भरा हुआ जा रहा है, इनके दण्ड से मेरी रक्षा करो ॥८॥ हे सोम ! तुम हमारे देह की रक्षा करने वाले हो । तुम कर्म-प्रेरकों को देखने वाले हो । तुम सब अङ्गों में व्याप्त होते हो । तुम्हारे कार्यों में हमारे द्वारा विघ्न उपस्थित किये जाने पर भी तुम हमारे अन्नवान मित्र होकर हमारा मंगल करो ॥९॥ हे सोम ! तुम मित्र रूप से मेरे शरीर में मिलते हो इसलिए कोई व्याधि उत्पन्न मत करना । पान करने के पश्चात् मुझे हिंसित नहीं करना । हे इन्द्र ! मेरे उदर में गया हुआ यह सोम चिरकाल तक प्रभावकारी रहे ॥१०॥ (१२)

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषु: ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयु: ॥११
यो न इन्दु पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्यां आविवेश ।
तस्मै सोमायहविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥१२
त्वं सोम पितृभि संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३
त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पि: ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियास: सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४
त्वं न: सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षा: ।
त्वं न इन्द्र ऊतिभि: सजोषा. पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥१५॥१३

बलवती होती हुई व्याधियाँ शरीर में कम्प करती हैं, अत: वह असाध्य पीडाऐं मुझ से दूर रहें। इस महान् सोम को पीने से आयु-वृद्धि होती है। हम मनुष्य इस सोम का ही सामीप्य प्राप्त करेंगे ॥११॥ हे पितरो ! जो सोम पीने के पश्चात् हमारे हृदयों में प्रतिष्ठित हुआ है, उसी सोम का हव्य द्वारा सेवन करते हुए हम इसके द्वारा प्राप्त सुन्दर बुद्धि में रहेंगे ॥ १२ ॥ हे सोम ! तुम पितरों से संयुक्त होकर आकाश और पृथिवी का विस्तार करते हो। हम भी हवियों से तुम्हारी सेवा करते हुए धनवान हो जाँयगे ॥ १३ ॥ हे देवताओ ! हमसे मधुर वाणी बोलो। हम दु स्वप्न के वश में न पड़ें। हम सोम के प्रिय होते हुए सुन्दर स्तोत्रों का मधुर उच्चारण करें और निन्दा करने वाले शत्रु कभी हमारी निन्दा न कर सकें ॥१४॥ हे सोम ! तुम स्वर्ग के देने वाले हो सर्वदर्शी हो और सब ओर से अन्न-दान करते हो। तुम हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर प्रसन्नता पूर्वक अपनी रक्षात्मक शक्ति के द्वारा सामने से और पीठ की ओर से हमारी रक्षा करो ॥१५॥   (१३)

॥ अथ वालखिल्यम् ॥

४९ सूक्त

(ऋषि-प्रस्कण्व: काण्व: । देवता इन्द्र- । छन्द-बृहती, पंक्ति:)

अभि प्र व: सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे
गिरेरिव प्ररसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२
आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥३
अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥४
आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥५ ॥१४

हे स्तोताओ ! शोभन-धन इन्द्र को अभिमुख कर पूजन करो। वे स्तुति करने वालों को सहस्रों प्रकार के धन प्रदान करते हैं ॥१॥ शत सैन्यों के अधिपति के समान इन्द्र गर्व सहित गमन करते हैं। हवि देने वालों के हित के लिए वे मेघ को विदीर्ण करते हैं। उनको दिया गया सोमरस पर्वत के सोम के समान ही हृष्टिप्रद है। इन्द्र अनेकों के रक्षक हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! हर्षप्रदायक सोम तुम्हारे लिए ही संस्कारित हुए हैं। हे वज्रिन् ! जल अपने आश्रय स्थान सरोवर को पूर्ण करता है, वैसे ही यह सोम तुम्हें पूर्ण करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग के देने वाले, पालक और पाप-रहित इस मधुर रस को पिओ। इसकी शक्ति से हर्षित होकर क्षुद्रा नामक दान देने वाली के समान तुम इच्छित प्रदान करते हो ॥ ४ ॥ हे अन्नवान् इन्द्र ! तुमने कण्व गोत्रियों को जो हर्षप्रद दान दिया था, वह दान स्तोम को मधुर करने वाला है। अभिषवकर्त्ताओं द्वारा आहूत होकर तुम उस स्तोम की ओर शीघ्रता से आगमन करो ॥५॥ (१४)

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥६
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥७

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाताइव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥८
एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमत ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥६
यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१० ॥१५

इन्द्र अक्षयधन से सम्पन्न, पराक्रमी और विभूति रूप हैं, हम उन्हें नमस्कार करते हुए प्राप्त करेंगे । हे वज्रिन् ! जैसे जल से पूर्ण कूप खेतों को सींचता है, वैसे ही हमारे सब स्तोत्र तुम्हें सींचते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञ के समय पृथिवी में अथवा जहाँ भी हो, वहाँ से अपने शीघ्र गमन करने वाले हर्यश्व सहित हमारे इस यज्ञ स्थान में आगमन करो ।७। हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्यश्व शत्रुओं के जीतने वाले तथा द्रुतगामी हैं, तुम उन्हीं के द्वारा संसार के सब पदार्थों को देखने के लिए गमन करते हो ॥८॥ हे इन्द्र ! गौ से सम्पन्न धन की याचना करता हूँ । तुमने मेधातिथि और नीपातिथि की भी धन के द्वारा रक्षा की थी ॥६॥हे इन्द्र ! तुम्हीं ने त्रसदस्यु, ऋजिश्वा, गोशर्य, कण्व, पक्थ और दशव्रज आदि स्तोताओं को गौओं और सुवर्ण से सम्पन्न श्रेष्ठ धन प्रदान किया था ॥१०॥ [१५]

५० सूक्त

(ऋषि-पुष्टिगुः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द-बृहती, पंक्तिः)

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥१
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदी सुता अमन्दिषुः ॥२
यदी सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषु ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघाइवोप दाशुषे ॥३

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥४
आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥५ ॥१६

हे इन्द्र ! तुम सुन्दर धन से सम्पन्न एवं दान में प्रसिद्ध हो । हे स्तोता ! वह इन्द्र सहस्रों प्रकार के उपभोग्य धन प्रदान करते हैं, अतः उन्हीं इन्द्र का पूजन करो ॥१॥ इन्द्र के सैकड़ों अस्त्र हैं, यह इन्द्र के ही अन्न से प्रकट होते हैं । जब इन्द्र को संस्कारित सोम हर्षयुक्त करता है, तब यह पर्वत के समान उपभोग्य पदार्थों को देते हुए धनी यजमानों को संतुष्ट करते हैं ॥२॥ जब सोम से इन्द्र प्रसन्न हुए तब गौओं के समान, हविदाता के लिए जल स्थित हुआ ॥ ३ ॥ हे ऋत्विजो ! आहूत किए गए इन्द्र को यह सभी कर्म, तुम्हारे निमित्त मधु से सींचते हैं । हे इन्द्र ! स्तोत्र किये जाने के समय सोम को तुम्हारे अभिमुख रखते हैं ॥४॥ अश्व के समान जाने वाले इन्द्र श्रेष्ठ यज्ञ में निष्पन्न सोम से प्रेरित हैं । हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं ने इस सोम को स्वादिष्ट बनाया है । तुम पुरु-पुत्र के आह्वान को सुनो ॥५॥ (१६)

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥६
यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥७
रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥८
एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥९
यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥१० ॥१७

इन्द्र महान् विभूति,युक्त पराक्रमी, विकराल और प्रसन्नता प्रदान करने वाले हैं। हम उनकी स्तुति करते हैं। हे वज्रिन्! जल से पूर्ण कूप के समान महान् धन सहित आकर हविदाता के सुख के निमित्त इस सोम को पिओ ॥६ हे इन्द्र! तुम पृथिवी में, स्वर्ग में, दूर या पास कहीं भी हो, वहीं से अपने हर्यश्व युक्त रथ में आगमन करो ॥७॥ हे इन्द्र! तुम्हारे रथ को खींचने वाले अश्व अहिंसित और वायु के समान वेगवान् हैं। तुमने इनकी ही सहायता से सब पदार्थों को व्याप्त किया, दैत्यों का वध किया और मनु को प्रसिद्ध किया है ॥८॥ हे इन्द्र! तुम्हारे सब धनों को हम जानते हैं। तुमने एतश और दश वज्र वाले वश को धन के निमित्त रक्षा की ॥९॥ हे वज्रिन्! शत्रु के नाश की कामना करने वाले दीर्घनीथ और गोशर्य की, यज्ञ में जिस प्रकार रक्षा की थी, वैसे अश्वों सहित आकर हमारी भी रक्षा करो ॥१०॥　　　　[१७]

५१ सूक्त

(ऋषि-श्रुष्टिगुः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द बृहती, पंक्तिः)

यथा मनौ सावरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१
पार्षद्वाण. प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम्।
सहस्राण्यसिषासद गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२
य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३
यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे।
स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥४
यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गोमति व्रजे ॥५ ॥१८

हे इन्द्र! सावर्णि मनु की प्रार्थना पर जैसे तुमने शोधित सोम को पिया था और शीघ्रगामी गो वाले मेध्यातिथि और नीपातिथि के लिए भी सोम पिया था, उसी प्रकार आज भी सोम-पान करो ॥१॥ हे इन्द्र! अब पार्षद्वाण

ने प्रसुप्त वृद्ध प्रस्कण्व को पक्षी के समान ऊपर बैठा दिया था, तब ५ अपनी रक्षाओं द्वारा उन्हें बचाया और सहस्र गौओं की भी रक्षा की ॥ २ ॥ जो उक्थों से प्राप्त होते हैं, ऋषियों की प्रेरणा से जो सबके जानने वाले हैं, रक्षा देने वाले हैं, उन इन्द्र के निमित्त अभिनव स्तोत्र करो ॥ ३ ॥ जिन इन्द्र के लिए सात शीर्षो और तीन स्थानों वाला स्तोत्र उच्चारित किया जाता है उन इन्द्र ने बल को उत्पन्न करते हुए विश्व को शब्द से युक्त बनाया ॥४॥ उन धनदाता इन्द्र की कृपा-बुद्धि को जानते हैं इसलिए उन्हें आहूत करते हैं। हे इन्द्र! हम गौओं से पूर्ण गोष्ठ के स्वामी हों ॥५॥ [१८]

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥६
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७
प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥९
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥१० ॥१९

हे इन्द्र! तुम जिसे देना चाहते हो, वही तुमसे धनयुक्त रक्षा प्राप्त करता है। तुम्हारे इसी प्रभाव के कारण हम सोमाभिषव करने वाले तुम्हें आहूत करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र! तुम देवता हो, तुम रचना से रहित कभी नहीं होते। तुम्हारा दान बारम्बार आकर मिलता है। तुम इस हविदाता यजमान से सुसंगत होओ ॥७॥ जिन इन्द्र ने अपने बल से शुष्ण को मार कर कूप भरा, जिन्होंने आकाश को आकृष्ट किया और जिन्होंने पृथिवी के सब को प्रकट किया ॥८॥ जिनके धन की रक्षा करने वाले सब स्तोता हैं जो पवीरु के अभिमुख होते हैं, वे धन देने वाले इन्द्र तुम्हारे साथ सुसंगत

हैं ॥९॥ विद्वान् ब्राह्मण मधु-कृत से सम्पन्न पूजा के मन्त्रों को पढ़ते हैं। इनके लिए धन, बल और सोमरस प्रसिद्धि को प्राप्त होता है ॥१०॥ [१६]

५२ सूक्त

(ऋषि-आयुः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द-बृहती, पंक्ति.)

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोपस्यायौ मादयसे सचा ॥१
पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥२
य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥३
यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥४
यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५ ॥२०

हे इन्द्र ! प्राचीन काल में तुमने विवस्वान् मनु का सोम पिया था और त्रित के मन को हर्षित किया था तथा मुझ आयु के साथ हर्षयुक्त हुए थे ॥१॥ जैसे तुम मातरिश्वा के पृषध्र अभिषव से हर्षयुक्त होते हो और दशशिप्र के सोम को पीते हो ॥२॥ जो निर्भीक होकर सोम पीते हैं, जो उक्थों को स्वीकार करते हैं, जिनके प्रति भ्रातृत्व मय कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए विष्णु ने तीन बार पद-प्रहार किया ॥३॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम जिसके यज्ञ में स्तुति की कामना करते हो, उस यज्ञ में हम अन्न की कामना से, दोहनकर्त्ता जैसे गौओं को बुलाता है वैसे ही, तुम्हें आहूत करते हैं ॥४॥ वह इन्द्र हमको देने वाले पिता हैं, वे ऐश्वर्य के करने वाले एवं पराक्रमी हैं। वही विकराल कर्मा और महान् इन्द्र हमको गौ, अश्व आदि प्रदान करें ॥५॥ [२०]

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।

वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्र हवामहे ॥६
कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥७
यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥८
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१० ॥२१

हे इन्द्र ! तुम्हारी देने की इच्छा होने पर ही धन का रक्षण प्राप्त होता है । स्तोतागण धन की कामना करके धनपति और यज्ञपति इन्द्र को आहूत करते हैं ॥६॥ हे आदित्य ! तुम्हारा आह्वान सूर्य मंडल में पहुँचता है, तुम कभी-कभी भ्रम में पड़कर दोनों प्रकार के प्राणियों का पोषण करने वाले हो जाते हो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम स्तवनीय, धनवान् और दाता हो । हम दाता को धन दो । तुमने जैसे कण्व के स्तोत्रों को सुना था, वैसे ही हमारे स्तोत्रों को सुनो ॥८॥ हे स्तोता ! इन्द्र के निमित्त प्राचीन स्तोत्रों का उच्चारण करो । प्राचीन स्तुतियों को कहो और अपनी बुद्धि को तीव्र करो ॥ ९ ॥ इन्द्र ने आकाश, पृथिवी, सूर्य, उज्ज्वल पदार्थ और धनों का प्रेरण किया है । इस इन्द्र को गव्य मिश्रित मधुर सोम ने भले प्रकार तृप्त किया था ॥१०॥ [२१]

५३ सूक्त

(ऋषि—मेध्यः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥१
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥२

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥३
विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४ ॥२२

हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले देवताओं में बड़े, शत्रु-पुरों के ध्वंसक, धनवान् एवं सबके ईश्वर हो। मैं धन की कामना से तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥१॥ जिन इन्द्र ने नित्यप्रति बढ़ते हुए, कुत्स और अतिथिग्व को बचाया उन हर्यश्व वाले इन्द्र को हम अन्न की कामना वाले यजमान आहूत करते हैं ॥ २ ॥ दूर या पास जहाँ भी सोम को अभिषुत किया जाता है, उन सब सोमों का रस हमारे पाषाण द्वारा कूटे जाने पर निकल कर बाहर आवे ॥३ हे इन्द्र ! सोम पीकर तुम जिस स्थान पर हृष्ट होते हो, वहाँ के शत्रुओं को हराकर नष्ट कर देते हो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिए है, यह उपभोग्य हो ॥४॥ [२२]

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५
आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥६
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥७
अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥८ ॥२३

हे इन्द्र ! तुम हमारा मंगल करने वाले निकटस्थ बंधु हो, तुम अतीव बुद्धि, काम्य धन और कल्याण करने वाले रक्षा-साधनों सहित हमारे पास आगमन करो ॥ ५ ॥ हे स्तोताओ ! सज्जनों के रक्षक, सुजनों के ईश्वर और विघ्नकारी प्रजाओं में इन्द्र की पूजा करो। वे इन्द्र कर्मों के सुन्दर फलों के

देने वाले हैं, वे हमारे यज्ञ का सम्पादन करें ॥६॥ हे इन्द्र ! रक्षा के लिये हम तुम्हारे ही आश्रित हैं। तुम्हारे पास जो सर्वश्रेष्ठ धन है, वह हमें प्रदान करो। युद्ध के अवसर पर भी हम तुम्हारी स्तुति करते हुए तुम्हें बुलावेंगे ॥७॥ हे हर्यश्व इन्द्र ! मैं अन्न, गौ और अश्व की कामना से तुम्हारी स्तुति करता हूँ और तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर रणक्षेत्र में जाता हूँ और भय प्राप्त होने पर तुम्हें शत्रुओं के मध्य प्रतिष्ठित करता हूँ ॥८॥ [२३]

५४ सूक्त

(ऋषि-मातरिश्वा काण्वः। देवता-इन्द्रः, विश्वेदेवाः। छन्द-बृहती, पंक्तिः)

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१
नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥२
आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥३
पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४ ॥२४

हे इन्द्र ! स्तोताओं ने तुम्हारी स्तुति से बल प्राप्त किया था। प्रजाओं ने अपने कर्म से तुम्हें व्याप्त किया था। स्तोतागण तुम्हारे बल का सर्वत्र गान करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! जिनके अभिषुत सोम द्वारा तुम हर्षयुक्त होते हो, वे यजमान अपने कर्म से तुम्हें व्याप्त करते हैं। जिस प्रकार तुमने संवर्त्त और कृश पर कृपा की थी, वैसी ही कृपा मुझ पर करो ॥ २ ॥ सब देवता हमारे अभिमुख हों। वे हम पर समान रूप से प्रसन्न होते हुए आवें। वसु, रुद्र और मरुद्गण हमारी रक्षा के लिए स्तुतियों को सुनें ॥३॥ विष्णु, पूषा, सात नदियाँ, सरस्वती, वनस्पति, जल, वायु और पर्वत सब मेरे यज्ञ की रक्षा करें और पृथिवी भी मेरे स्तोत्र को श्रवण करें ॥४॥ [२४]

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम।

तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥५
आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥६
सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥७
वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८ ॥२५

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुमने अपने धन के सहित हर्षित होकर हमें देने के लिए आगे आओ ॥५॥ हे राजन् ! तुम हमको रणभूमि में ले चलो । स्तोत्र और यज्ञ के समय देवगण भक्षण के लिए सुसंगति करते कहे जाते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र के पास मनुष्यों की आयु और समृद्ध का आशीर्वाद है । हे इन्द्र ! तुम हमें पुष्ट करने वाला अन्न दो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे हो । स्तुतियों से हम तुम्हारी उपासना करेंगे । तुमने प्रस्कण्व की रक्षा के लिए स्थूल और समृद्ध धन दिया है ॥८॥ [२५]

५५ सूक्त

(ऋषि-कृश: काण्व: । देवता-प्रस्कण्वस्य दानस्तुति: । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्)

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१
शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥२
शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥३
सुदेवा स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः । अश्वासो न चङ्क्रमत ॥४
आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥५ ॥२६

इन्द्र राक्षसों के लिए व्याघ्र के समान हैं । हम इनके असंख्य कार्यों को

जानते हैं। हे इन्द्र! तुम्हारा धन हमारे अभिमुख होता है ॥ १ ॥ आकाश में तारों के दमकने के समान सौ सौ वृष शोभित होते हुए अपनी महिमा से स्वर्ग को स्तब्ध करते हैं ॥२॥ सौ श्वा, सौ वेणु, सौ म्लात चर्म, सौ वल्वज-स्तुक और चार सौ अरुषी हैं ॥३॥ हे कण्व ऋषियो! तुम सब अन्नों में रमते हुए और अश्वों के समान बारम्बार गमन करते हुए सुन्दर देव सम्पन्न होगए हो ॥४॥ सप्त व्याहृतियों से सम्पन्न इन्द्र के लिए महान् अन्न पृथक होता है। काले वर्ण के मार्ग का उल्लंघन करने पर वह नेत्रों से दिखाई पड़ता है ॥५॥ [२६]

५६ सूक्त

(ऋषि—पृषध्रः काण्वः । देवता—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः, अग्निसूर्यौ ।
छन्द—गायत्री, पंक्तिः)

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत ॥२

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ॥३

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥४

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ।५।२७

राक्षसों के लिए व्याघ्र रूप इन्द्र! तुम्हारा धन महान् है। तुम्हारी सेना आकाश के समान महिमामयी है ॥१॥ राक्षसों को व्याघ्र होने वाले इन्द्र! तुम्हारा धन नित्य है, उसमें से मुझे दस सहस्र प्रदान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! मुझे एक-एक सौ भेड़ें, गधे और दास प्रदान करो ॥३॥ जो पुरुष सुन्दर बुद्धि वाले हैं उन्हीं के पास अश्व समूह के समान यह प्रकट धन पहुँचता है ॥ ४ ॥ अग्नि प्रकट होगये। वे मेधावी, सुन्दर रथ वाले और हवियों के वहन करने वाले हैं। जैसे सूर्य मंडल में सूर्य सुशोभित होते हैं, वैसे ही अग्नि विराट और गतिमान होते हुए सुशोभित होते हैं ॥५॥ [२७]

५७ सूक्त

(ऋषि—मेध्यः काण्वः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥१
युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्या सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥२
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥३
अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४ ॥२८

हे अश्विनीकुमारो ! प्राचीन निर्मित रथ पर आरूढ़ होकर यज्ञ में आगमन करो। तुम दिव्य अपने कर्म की शक्ति से ही तीसरे सवन में रमते हो ॥१॥ तैंतीस देवता सत्य रूप वाले हैं। वे यज्ञ के अभिमुख होते हैं। हे अश्विनीकुमारो ! हम तुम्हारे हैं। हमारे इस यज्ञ में पधार कर सोम पिओ ॥२ हे अश्विनीकुमारो ! तुम आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष में यथेष्ठ वर्षा करते हो। मैंने तुम्हारे लिए ही यह स्तुति की है। सहस्रों स्तुति करने वालों, गो-सेवकों और यज्ञ कर्म वालों के आह्वान पर सोम पीने लिए आओ ॥३॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम यहाँ आगमन करो। तुम्हारा यज्ञ भाग यहाँ रखा है। हविदाता को अपनी रक्षा द्वारा रक्षित करो और मधुर सोम-रस को पीओ ॥४॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[२८]

५८ सूक्त

(ऋषि—मेध्यः काण्वः । देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा । छन्द—त्रिष्टुप्)

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति ।
यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥१
एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥२

ज्योतिष्मतं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥३ ॥२६

विभिन्न कल्पनाओं द्वारा ऋत्विजों ने इस यज्ञ-कार्य का सम्पादन किया है। स्तोत्र न कहने पर भी जो स्तोता कहा जाये उसके संबंध में यजमान क्या जानता है ? ॥१॥ एक अग्नि अनेक कर्म वाले हैं, एक सूर्य स्थान भेद से अनेक होते हैं, उषा उन सब के आगे आती है । यह सब एक ही हुए हैं ॥ २ ॥ अग्नि देवता ज्योति रूप, धूम्रकेतु एवं सुखकारी हैं। उन्हें सोम-पान के लिए इस यज्ञ में आहूत करता हूँ। उनके प्राप्त होने पर दिव्य धन मिलता है ॥३॥ [२६]

५९ सूक्त

(ऋषि-सुपर्णः काण्वः। देवता-इन्द्रावरुणौ। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१
निःषिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२
सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मि दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥३
घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदा ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥४।३०

हे इन्द्रावरुण ! इस सोमाभिषव में तुम्हें आहूत करता हूँ । तुम अपने इस भाग को स्वीकार करो । सोम वाले यजमान को अभीष्ट देते हुए सब घरों में सोम को पुष्ट करो ॥१॥ इन्द्र और वरुण अन्तरिक्ष को लाँघने वाले मार्ग से जाते हैं । देव-द्वेषी कोई भी व्यक्ति उनसे शत्रुता करने में समर्थ नहीं है । उनके प्रभाव से जल और औषधि गुण से सम्पन्न होते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्रा-वरुण ! सप्तवाणी कृश ऋषि के सोम का तुम्हारे निमित्त दोहन करती हैं । तुम शुभ कर्म करने वालों के रक्षक हो । जो व्यक्ति अपने कर्म द्वारा तुम्हें

प्रसन्न करता है, तुम उसी हविदाता यजमान की रक्षा करो ॥३॥ यथेष्ठ देने वाली सात रश्मियाँ यज्ञ गृह में अभीष्ट प्रदान करती हैं। हे इन्द्रावरुण जो तुम्हें सींचती हैं, उनके लिए यज्ञ धारण करते हुए तुम यजमान को अभीष्ट दो ॥४॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[३०]

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्या महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती । ५
इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥६
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः ॥७॥३१

हम इन्द्र और वरुण से सौभाग्य प्राप्त करने के लिए उनकी यथार्थ महिमा का बखान करेंगे। हम घृत सींचने वालों की वे इन्द्रावरुण इक्कीस कार्यों द्वारा रक्षा करें। क्योंकि वे सभी शुभ कर्मों के स्वामी हैं ॥५॥ हे इन्द्रावरुण ! तुमने पूर्वकालीन ऋषियों को जो बुद्धि, बल, वाणी, श्रुत और स्तुति दी है, उन सब को हम इस यज्ञ में तप के द्वारा देख लेंगे ॥ ६ ॥ हे इन्द्रावरुण जो धन अहंकार नहीं बढ़ाता, मन को ही सतुष्ट करता है, उसे इस यजमान को दो। हमको संतान, धन और समृद्धि देते हुए हमारे दीर्घ जीवन के लिए आयु की रक्षा करो ॥७॥　　　　　　　　　　　　　　　　　[३१]

॥ इति बालखिल्यम् समाप्तम् ॥

६० सूक्त

(ऋषि–भर्गः प्रागाथः । देवता—अग्निः । छन्द—बृहती, पंक्ति.)

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥३
अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥४
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५ ॥३२

हे अग्ने ! होता मान कर हम तुम्हारा वरण करते हैं। तुम अन्य अग्नियों के सहित आगमन करो। अध्वर्युओं द्वारा बिछाई हुई श्रेष्ठ कुशाओं पर प्रतिष्ठित कर हम तुम्हारा पूजन करें ॥१॥ हे अङ्गिरा-श्रेष्ठ अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न हो। तुम्हारी प्राप्ति के लिए स्रुक गमन करती है। हम अत्यन्त दैदीप्यमान पुरातन अग्नि की स्तुति करते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम फलों का संपादन करने वाले हो। यज्ञ में विद्वान् ब्राह्मण तुम प्रसन्नताप्रद तेजस्वी की स्तुति करते हैं ॥३॥ हे सदा तरुणतम अग्ने ! देवगण मुझे चाहते हैं, क्योंकि मैं द्रोह रहित हूँ। तुम उन देवताओं को हवि-सेवन करने के लिए यहाँ लाओ। तुम सुन्दर वासप्रद हो इस हविरन्न के पास आकर स्तुतियों से हर्ष को प्राप्त होओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारी रक्षा करने वाले, विद्वान्, प्रदीप्त और विस्तृत हो। यह स्तुति करने वाले सुन्दर मन्त्रों से तुम्हारी सेवा करते हैं ॥५॥ [३२]

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥६
यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने सञ्जूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥
मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥८
पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥९

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥१० ॥३३

हे अग्ने ! तुम प्रज्वलित होओ। हे पावक ! स्तोता के लिए तथा प्रजाओं के लिए कल्याण दो। यह स्तोता देवताओं का दिया हुआ सुख पावें और शत्रुओं को जीतने वाले बनें ॥ ६ ॥ हे मित्र पूजक स्तोताओ ! तुम जैसे शुष्क काष्ठ को भस्म करते हो वैसे ही अग्नि की पूजा द्वारा हमारे वैरियों और पाप बुद्धि वाले हिंसकों को भस्म करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हमको बलवान हिंसकों के अधीन न करो। जो हमारा बुरा चाहते हैं, उनके वश में हमको मत दे देना। हे अग्ने ! तुम तरुणतम हो, अपने सुखकारी एवं उद्धार करने वाले रक्षा-साधनों से हमारे रक्षक होओ ॥८॥ हे अग्ने ! हमको एक, दो या तीन ऋकों से रक्षित करो। चार ऋकों से हमारी रक्षा करो ॥६॥ सब देवताओं और अदानियों से हमारी रक्षा करो। तुम हमारे निकटतम बन्धु हो। रणक्षेत्र में हमारी रक्षा करो। हम यज्ञ के लिए और ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेंगे ॥१०॥ (३३)

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥११
येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥१२
शिशानो वृषभो यथाग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः ॥१३
नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद्वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु ॥१४
शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५ ॥३४

हे पावक ! हमको अन्न की वृद्धि करने वाला यशपूर्ण धन दो। तुम हमारे निकटतम मित्र और धन देने वाले हो। अतः अनेकों द्वारा ग्रहण करने

योग्य अत्यन्त यश प्रदान करने वाला धन हमको दो ॥११॥ जिस प्रकार बाण फेंक कर मारने वाले शत्रुओं से बचते हुए हम उन्हें मार सकें, ऐसा धन दो। तुम अपनी सुन्दर मति के द्वारा वास देने वाले हो। तुम हमें अन्न से बढ़ाओ। जिस कर्म से धन प्राप्त हो सके उस कर्म को दृढ़ करो ॥१२॥ बैल के समान अपने सींग रूप ज्वाला को बढ़ाते हुए अग्नि अपना सिर कम्पित करते हैं। उनके तीक्ष्ण हनु का निवारण करने में कोई समर्थ नहीं। वे बल के पुत्र एवं सुन्दर दाँत वाले हैं ॥१३॥ हे अग्ने! तुम वृष्टिकारक हो। तुम प्रदीप्त होते हो, तब तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। तुम होता रूप से हमारी हवियों को व्याप्त करने वाले हो। हमको वरण योग्य धन प्रदान करो ॥१४॥ हे अग्ने! तुम दो अरणि रूप माताओं में विद्यमान हो। तुम मनुष्यों के द्वारा प्रवृद्ध होते हो। तुम प्रमाद-रहित होते हुए हमारी हवि को देवताओं के पास पहुँचाओ और फिर उन देवताओं में बैठ कर सुशोभित होओ ॥१५॥ [३४]

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥१६
अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥१७
केतन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥१८
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥१९
मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२० ॥३५

हे अग्ने! तुम इच्छित के देने वाले और प्रदीप्त हो। सात होता तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम अपने संतापक तेज से मेघ को विदीर्ण करते हो। हे अग्ने! हमको लाँघ कर आगे बढ़ो ॥१६॥ हे स्तोताओ! हमने कुश उखाड़ लिया, हव्य सम्पन्न किया और अब हम अग्नि को आहूत करते हैं। वह अग्नि

सब यजमानों के होता हैं तथा कर्म के धारण करने वाले सभी लोकों में समान रूप से अवस्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! सुखदायक यज्ञ में संतानवान मनुष्य के सहित यजमान तुम्हारी स्तुति करता है। तुम हमारी रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के अन्नों सहित यहाँ आओ ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति के योग्य हो। तुम प्रजाओं के रक्षक और राक्षसों को सन्तापप्रद हो। तुम यजमान के घर की रक्षा करते हुए उसका कभी त्याग नहीं करते। तुम महान् हो ॥१६॥ हे अग्ने ! हमारे शरीर में पाप रूप राक्षस न घुस बैठें। पिशाचादि भी प्रवेश न करें। उन क्रूरकर्मा राक्षसों, पिशाच आदि को तथा निर्धनता को भी हमारे पास मत आने देना ॥२०॥ [३१]

६१ सूक्त

(ऋषि—भर्गः प्रागाथः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, पंक्तिः)

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२
आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥३
अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥४
शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥५ ॥३६

हे इन्द्र ! हमारे स्तुति वचनों को श्रवण करो। वह इन्द्र हमारे कर्मों से आकर्षित होकर सोम पीने के लिए यहाँ आगमन करें ॥१॥ आकाश-पृथिवी ने इन्द्र को बल के निमित्त संस्कृत किया था। हे इन्द्र ! तुम देवताओं में प्रमुख होकर इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ, क्योंकि तुम्हारा मन सोम की कामना कर रहा है ॥२॥ हे इन्द्र ? तुम अपने उदर में सोम को सींचो। इन यज

जानते हैं कि तुम रणक्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले और स्वयं किसी के वश में न पड़ने वाले हो ॥३॥ हे इन्द्र ! यथार्थ ही तुम हिंसित नहीं होते। हम जिस कर्म द्वारा फल पा सकें, वही कर्म हमें प्राप्त हो। हे वज्रिन् ! तुम्हारे द्वारा पोषित हम अन्न-सेवन करते हुए, शत्रुओं को शीघ्र ही भगा देंगे ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम अपने सब रक्षा-साधनों सहित इच्छित फल दो। तुम अत्यन्त यश वाले और धनेश्वर हो। हम तुम्हारी उपासना भले प्रकार करते हैं ॥५॥ [३६]

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥६
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥७
त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥८
अविप्रो वा यदविधद् विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥९
उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥१० ॥३७

हे इन्द्र ! तुम गौओं की वृद्धि करने वाले, घोड़ों को बढ़ाने वाले और सुवर्ण जैसे वर्ण वाले हो। तुम हमारे लिए जो कुछ देना चाहते हो, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। अतः मैं तुमसे जो कुछ माँगता हूँ उसे लेकर यहाँ आओ ॥६॥ हे इन्द्र ! आओ, अपने उपासक को धन-दान के निमित्त श्रेष्ठ धन दो। मैं गौओं और अश्वों की भी कामना करता हूँ अतः यह सब मुझे प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों हजारों गौऐं दानशील यजमान को प्रदान करते हो। हम उन पुरों को ध्वस्त करने वाले इन्द्र की स्तुति करते हुए उन्हें यहाँ ले आवेंगे ॥८॥ हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! तुम अजेय और युद्ध में अहंकार करने वाले हो। जो विद्वान् अथवा मूर्ख भी तुम्हारी उपासना करता है, वह तुम्हारी कृपा प्राप्त करके सुखी हो जाता है ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम राक्षसों

के हिंसक, पुरों के ध्वंसक और उग्रबाहु हो। यदि वे इन्द्र मेरे स्तोत्र को सुनें तो मैं उनका धन की कामना से आह्वान करूँगा ॥१०॥ (३७)

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥११
उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम् ।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥१२
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१३
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥१४
इन्द्र स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥१५ ॥३८

हम इन्द्र को अग्नि-रहित, निर्धन और अब्रह्मचारी नहीं मानते। हम उनके लिए सोम को संस्कृत करके उन्हें अपना सखा बनावेंगे ॥११॥ इन्द्र का स्तोत्र ऋण के समान फलदायक है। वह रथ के स्वामी अश्वों में अत्यन्त वेग वाले अश्व को जानते हैं। वह अनेक यजमानों में हमको ही प्राप्त हुए हैं। हम उन शत्रु विजेता इन्द्र को प्रतिष्ठित करेंगे ॥१२॥ हे इन्द्र! जो हिंसक हमको भय दिखाता है, उसके भय से हमारी रक्षा करो। तुम हमको अभय देने के लिए अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारे हिंसक शत्रुओं को मार डालो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुम धन के स्वामी, उपासकों के घरों को समृद्ध करने वाले एवं स्तुत्य हो। सोम का अभिषव करने के पश्चात् हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ १४ ॥ इन्द्र वृत्र के मारने वाले, सब के जानने वाले, पालक और वरण करने योग्य हैं। वे हमारे छोटे, बड़े, मध्य के पुत्रों की रक्षा करें। पीठ की ओर से या सामने से भी वे हमारे रक्षक हों ॥१५॥ (३८)

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥१६

अधाद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१७
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८ ॥३९

हे इन्द्र ! चारों दिशाओं से उपस्थित होने वाले भयों से हमको बचाओ । राक्षस या देवताओं के भय को भी हमसे दूर करो ॥१६॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे स्तोता हैं और तुम साधुजनों की रक्षा करने वाले हो। आज, कल परसों और पूरे दिन तुम हमारी रक्षा करने वाले होओ ॥ १७ ॥ यह इन्द्र अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हैं, वह सबसे मेल करते हैं। हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे कामनाओं के देने वाले दोनों बाहु वज्र को ग्रहण करें ॥ १८ ॥ [३६]

६२ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः । देवता-इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, बृहती)

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१
अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥२
अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥३
आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥४
धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥५
अव चष्ट ऋचीषमोऽवतां इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥६॥४०

हे स्तोता ! सेवा करने वाले इन्द्र की स्तुति करो । उनके अन्न को

उक्थों के द्वारा प्रवर्धित किया जाता है और उनका दिया हुआ धन मंगल करने वाला होता है ॥६॥ देवताओं में प्रमुख इन्द्र प्राचीन प्रजा को लाँघ कर आगे बढ़ते हैं, उनका दान मङ्गलकारी है ॥२॥ वे शीघ्र देने वाले इन्द्र आनन्द की कामना करते हैं। हे इन्द्र ! तुम सामर्थ्य के देने वाले हो, तुम्हारी महिमा प्रशंसा के योग्य है और तुम्हारा दान कल्याणों का देने वाला है ॥३॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे उत्साह को बढ़ाने वाले स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, अत यहाँ आओ। तुम अन्न की कामना करने वाले स्तोता का कल्याण चाहते हो। हे महाबली इन्द्र ! तुम्हारा दान कल्याण प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! जो यजमान सोम का अभिषव करके नमस्कारों द्वारा तुम्हारा पूजन करता है, तुम उसे अपरमित फल प्रदान करते हो। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥५॥ हे इन्द्र ! जैसे मनुष्य कूप को देखता है, वैसे ही तुम हमारी स्तुतियों से आकर्षित होकर हमको देख रहे हो। तुम सोम सम्पन्न यजमान के बन्धु हो। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥६॥ [४०]

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददु ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातय' ॥७
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातय. ॥८
समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुपा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातय. ॥९
उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१०
अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा विदद्रिवोऽनु नौ शूर मसते भद्रा इन्द्रस्य रातय. ॥११
सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महा असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींपि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य
रातय ॥१२ ।४१

हे इन्द्र ! तुम्हारे वीर्य और बुद्धि के अनुसार ही सब देवता वीर्यवान् और बुद्धिमान् होते हैं। तुम प्रसिद्ध स्तुतियों के अधीश्वर तथा अनेकों द्वारा द्वारा स्तुत हो। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥७॥ हे इन्द्र ! यज्ञ के निमित्त मैं तुम्हारे उपमा योग्य बल की प्रशंसा करता हूँ। तुमने अपने ही बल से वृत्र को मारा था। उन इन्द्र का दान कल्याणकारी है ॥ ८॥ जैसे रूप की कामना वाले पुरुष को प्रेम प्रदर्शित करने वाली पत्नी अपने वश में कर लेती है, वैसे ही इन्द्र सब प्राणियों को वश में करते हैं। संवत्सर आदि रूप काल को इन्द्र ही बताते हैं। उन इन्द्र का दान कल्याणकारी है ॥६॥ हे इन्द्र ! पशुओं से सम्पन्न यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख को भोगते हैं, वे तुम्हारे बल को बढ़ाते हैं, तुम्हारी बुद्धि को बढ़ा कर तुम्हें भी प्रवृद्ध करते हैं। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम वज्रधारी एवं वृत्रहन्ता हो। अदानशील भी तुम्हारे दान की सराहना करते हैं। हमको जब तक धन न मिले, तब तक हम तुमसे मिलते रहें। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥ ११ ॥ हम इन्द्र की सत्य प्रशंसा ही करते हैं, असत्य नहीं करते। यज्ञ-हीन पुरुषों को इन्द्र बहु संख्या में नष्ट करते हैं। वह अभिषवकर्त्ता को प्रकाश देते हैं, उनका दान कल्याणकारी है ॥१२॥ [४१]

६३ सूक्त

(ऋषि–प्रगाथः काण्वः। देवता–इन्द्रः, देवा। छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री त्रिष्टुप्)

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१
दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः। उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥२
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप। स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥३
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥४
आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥५

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ।६ ।४२

इन्द्र पूजनीय कर्मों द्वारा तेजस्वी हैं । देवताओं में स्थित पिता मनु ने इन्द्र की प्राप्ति के साधनों को खोजा । वे प्रमुख इन्द्र उन साधनों से आते हैं ॥१॥ सोम के अभिषव कर्म वाले पाषाणों ने इन्द्र का त्याग नहीं किया । उनकी प्राप्ति के लिए उक्थों और स्तोत्रों का उच्चारण करना ही साध्य है ॥२ इन्द्र ने अंगिराओं के लिए गौओं को उत्पन्न किया, मैं इन्द्र के उस पराक्रम की प्रशंसा करता हूँ ॥३॥ इन्द्र विद्वानों के बढ़ाने वाले हैं, वे होता के कार्यों का निर्वाह करते हैं । सोम की आहुति के समय वह इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त आवें ॥४॥ हे इन्द्र ! यज्ञपति अग्नि के लिए स्वाहाकार करने वाले, तुम्हारा ही यश गाते हैं । स्तुति करने वाले शीघ्र धन देने के निमित्त तुम्हारा ही स्तोत्र करते हैं ॥५॥ समस्त कर्म इन्द्र में ही निहित हैं, स्तुति करने वाले विद्वान् इन्द्र को महिमक बताते हैं ॥६॥ [४२]

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो र्यो मानस्य स क्षयः ॥७
इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥८
अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥९
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०
बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥११
अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ।१२।४३

इन इन्द्र के लिए जब चारों वर्ण स्तुति करते हैं, तब इन्द्र अपने बल से शत्रुओं को मारते हैं । स्तोता की पूजा के आश्रय-स्थान इन्द्र ही हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जो पराक्रम किये हैं, इन्हीं की यह प्रशंसा है । तुम इस चक्र के मार्ग की रक्षा करो ॥८॥ इन्द्र की वृष्टि के द्वारा विविध अन्न प्राप्त कर लेने पर सब प्राणी अपने विविध कर्मों में लगते हैं और सब मनुष्य, पशुओं के समान ही जौ पाते हैं ॥ ९ ॥ हम रक्षा की कामना करने वाले स्तोता इन्द्र के

हैं। हे ऋत्विजो ! तुम्हारे यत्न से मरुत्वान् इन्द्र को प्रवृद्ध करने के लिए हम अन्नवान् हो जाँयगे ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञ-काल में स्वयं तेजस्वी होते हो। हम तुम्हारी सहायता से ही विजय प्राप्त कर सकेंगे। अतः मन्त्रों द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥११॥ युद्ध काल में आह्वान पर शक्ति सम्पन्न वृत्र-हन्ता इन्द्र स्तोता और यजमान के समीप वेग से आते हैं, वह इन्द्र ही देवताओं में ज्येष्ठ हैं, वह हमारे रक्षक हों ॥१२॥ [४३]

६४ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ।१
पदा पर्णीं रराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ।२
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३
एहि प्रेहि क्षयो दिव्या घोषञ्चर्षणीनाम् । ओभे पृणासि रोदसी ॥४
त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्त्रिणम् । वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥५
वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माक काममा पृण ।६।४४

हे इन्द्र ! यह स्तुतियाँ तुम्हें हर्षित करें । तुम वज्रधारी हो अतः स्तुतियों से द्वेष करने वालों को नष्ट करते हुए, हमको धन प्रदान करो ॥ १ ॥ अदानशील और अयाज्ञिकों को पाँवों से कुचलो। हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रतिद्वन्दी कोई नहीं है। तुम महान् हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम निष्पन्न तथा अनिष्पन्न दोनों प्रकार के सोमों के स्वामी और प्रजाओं के राजा हो ॥३॥ हे इन्द्र ! इस यज्ञ मंडप को शब्दवान करते हुए आओ। तुम आकाश पृथिवी को वृष्टि जल से तृप्त करते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुमने सौ प्रकार के जल वाले तथा असीम जल वाले मेघों का खंडन किया है ॥५॥ हे इन्द्र ! सोमाभिषव होने पर दिन और रात्रि में भी हम तुम्हें आहूत करते हैं। तुम हमारी कामना को पूर्ण करो ॥६॥ [४४,

क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥७
कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वां अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ८

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या। उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥६
अयं ते मानुषे जने सोम. पूरुषु सूयते। तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१०
अय ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः। आर्जीकीये मदिन्तमः ॥११
तमद्य राघसे महे चारुं मदाय घृष्वये। एह्रीमिन्द्र द्रवा पिब ॥१२॥४५

वे सदा तरुण, विशाल स्कन्ध वाले, वृष्टिदाता इन्द्र कहाँ हैं? इस समय कौन उनकी स्तुति कर रहा है? ॥ ७ ॥ वह इन्द्र प्रसन्न होने पर आते हैं। उनकी स्तुति करने का ज्ञान किस यजमान को है? ॥८॥ हे इन्द्र! सुन्दर वीर्य वाले स्तोत्र तुम्हारी सेवा करते हैं, यजमान-प्रदत्त दान भी तुम्हारी सेवा करता है। रणक्षेत्र में कौन-सा योद्धा तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करेगा ॥ ६ ॥ मैं तुम्हारे निमित्त ही सोम को अभिषुत कर रहा हूँ, तुम उसके पास आगमन करो। शीघ्र आकर उस सोम रस का पान करो ॥ १० ॥ हे इन्द्र! यह सोम तृण से सम्पन्न पुष्कर, सुषोमा और व्यास आदि नदियों के किनारे तुम्हें अधिक शक्ति देता है ॥११॥ हे इन्द्र! तुम हमको देने और शत्रु नाश करने के निमित्त शक्तियुक्त होने के लिए उस रमणीय सोम को पिओ। हे इन्द्र! इस सोम पात्र की ओर शीघ्रता से गमन करो ॥ १२ ॥ [४५]

६५ सूक्त

(ऋषि—प्रगाथ् काण्व । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभि। आ याहि तूयमाशुभि ॥१
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे। यद्वा समुद्रे अन्धस ॥२
आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे। इन्द्र सोमस्य पीतये ॥३
आ त इन्द्र महिमान हरयो देव ते मह। रथे वहन्तु बिभ्रत. ॥४
इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत्। एहि न सुतं पिब ॥५
सुतावन्तस्त्वा वय प्रयस्वन्तो हवामहे। इद नो बर्हिरासदे ॥६ ॥४६

हे इन्द्र! तुम को सब दिशाओं के मनुष्य आहूत करते हैं, अत अपने अश्वों द्वारा शीघ्र आगमन करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम अन्न के अपादान अन्तरिक्ष में, अमृत के सींचने वाले स्वर्ग में तथा पृथिवी पर भी शक्तियुक्त

होते हो ॥२॥ हे इन्द्र ! मैं स्तुतियों के द्वारा तुम्हारा आह्वान करता हूँ। मैं तुम्हें सोम पीने और भोग्य प्रदान करने के लिए धेनु के समान आहूत करता हूँ, क्योंकि तुम महान् हो ॥ ३॥ रथ के संयुक्त अश्व तुम्हारी महिमा और तेज को लेकर यहाँ आगमन करें ॥४॥ हे इन्द्र तुम स्तुतियों द्वारा पूजित होते हो। तुम महान् कर्म वाले एवं ऐश्वर्यों के करने वाले हो अतः यहाँ आकर सोम-पान करो ॥५॥ हम अन्नवान् और सोमवान् यजमान, अपने कुशों पर विराजमान होने के लिए तुम्हें आहूत करते हैं ॥६॥ (४६)

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥७
इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥८
विश्वां अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।९
दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् । मा देवा मघवा रिषत् ॥१०
सहस्रे पृषतीनामधिश्चन्द्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११
नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत ॥१२ ॥४७

हे इन्द्र ! तुम अनेक यजमानों के लिए साधारणतः प्राप्त हो, अतः हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥७॥ सोम रूप मधु का हम अध्वर्यु अभिषव करते हैं। हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होते हुए उसका पान करो ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम ईश्वर हो। तुम सब स्तोताओं को लाँघ कर शीघ्र यहाँ आगमन करो। हमको महान् अन्न दो ॥९॥ इन्द्र सुवर्ण और गौओं के स्वामी हैं, वे हमारे ईश्वर हैं। हे देवताओ ! इन्द्र की कोई हिंसा न कर सके ॥ १० ॥ मैं प्रसन्नता करने वाले, विस्तृत और स्वच्छ सुवर्ण को ग्रहण करता हूँ ॥ ११॥ हे इन्द्र ! मैं रक्षा-रहित एवं संकट-ग्रस्त हूँ। मेरे मनुष्य अपरमित धनों के स्वामी हों। देवताओं की प्रसन्नता से यश मिलता है ॥१२॥ [४७]

६६ सूक्त

(ऋषि-कलिः प्रगाथः । देवता-इन्द्रः । छन्द-बृहती, पंक्तिः, अनुष्टुप्)

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२
यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः :
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥३
निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत् करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् । ४
यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वच. ॥५ ॥४८

ऋत्विजो ! जो इन्द्र वेगवान घोड़ों के द्वारा आकर धन देते हैं, उनके लिए साम-गान द्वारा प्रसन्न करते हुए पूजो। जो व्यक्ति कुटुम्ब का हितैषी और पालन करने वाला होता है, उसे बुलाए जाने के समान ही मैं सोमाभिषव वाले यज्ञ में इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥ १ ॥ उन सुन्दर जबड़े वाले इन्द्र के लिए अत्यन्त क्रूर कर्मा एवं विकराल शत्रु भी रोक नहीं सकते। उन्हें मनुष्य भी रोकने में समर्थ नहीं है। जो यजमान सोम के अभिषव द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करते हैं, उन्हें वे ऐश्वर्य देते हैं ॥२॥ इन्द्र अश्व-विद्या में पारंगत, सेव्य, हिरण्यमय, वृत्रहन्ता और अद्भुत हैं तथा वह अनेक गौओं के समूहों को अपने वश में करते हुए कम्पित करते हैं ॥ ३ ॥ यजमान के निमित्त जो इन्द्र भूमि पर उत्पन्न एवं सग्रहीत धनों को उन्नत करते हैं, वह हर्यश्व वाले इन्द्र सुन्दर जबड़े वाले हैं। वे अपनी इच्छा के अनुसार कर्म सम्पादन करते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र बहुतों द्वारा आहूत हैं। हे इन्द्र ! तुमने अपने प्राचीन स्तोता पर जो इच्छा प्रकट की थी, उसे हम अभी पूर्ण करते हैं। यज्ञ, उक्थ या वाणी जो कुछ भी हो, हम तुम्हें देते हैं ॥५॥　　　　　　　　　(४८)

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुव. ॥६
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥७

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥८
कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥९
कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान् वेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणींरभि ॥१०॥४९

हे इन्द्र ! तुम वज्रधारी, बहुतों के द्वारा पूजित, सोम पीने वाले और स्वर्ग के स्वामी हो । तुम सोम के संस्कारित होने पर शक्ति से सम्पन्न होओ । अभिषवकर्त्ता के लिए तुम्हीं धन प्रदान करने वाले होओ ॥६॥ हम उन इन्द्र के लिए आज और कल सोम से हर्षित करेंगे । वह इन्द्र हमारी स्तुति सुन कर आगमन करें । उनके लिए संस्कृत सोम को यहाँ लाकर रखो ॥ ७ ॥ चोर सब पथिकों का नाश करने वाला होते हुए भी इन्द्र को हिंसित नहीं कर सकता । हे इन्द्र ! तुम कर्म के द्वारा प्रसन्न होते हुए यहाँ आगमन करो ॥८॥ ऐसा कोई भी पराक्रम नहीं जिसे इन्द्र ने नहीं किया, उनका वृत्रहनन कार्य तो प्रसिद्ध है ही ॥९॥ इन्द्र का पौरुष सदा ही धर्षक हुआ । जिसे इन्द्र ने मारना चाहा, उसे कोई भी न बचा सका । वे इन्द्र इन सब लोभियों को सदा अभिभूत करते हैं ॥१०॥ (४९)

वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥११
पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥१२
वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥१३
त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधो भिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥४१
सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन ।

अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति ॥१५ ॥५०

हे इन्द्र ! तुम वज्रधारी और वृत्र के मारने वाले हो। हम तुम्हारे वेतन भोगियों के समान नवीन स्तोत्र करते हैं ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम बहुकर्मा हो। तुम में हमारी रक्षाएं और आशाएं व्याप्त हैं। स्तोतागण तुम्हें आहूत करते हैं, इसलिए शत्रुओं के सभी सवनों का उल्लंघन करते हुए हमारे यज्ञ में आगमन करो और हमारे आह्वान को सुनो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! हम स्तोता तुम्हारे ही हैं। तुम बहुत बार पूजित हुए हो, हमें तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी सुख देने वाला दिखाई नहीं देता ॥१३॥ हे इन्द्र ! हमको इस दरिद्रता, भूख और निन्दा के चंगुल से छुडाओ। हमारे लिए अपने अद्भुत कर्म और रक्षा साधनों द्वारा अभीष्ट पदार्थ दो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त सोम संस्कारित किया जाय। हे कलि ऋषि के पुत्रो ! भयभीत न होओ। यह दैत्यादि तो स्वयं ही दूर भागे जारहे हैं ॥१५॥ (५०)

६७ सूक्त

(ऋषि मत्स्यः सांमदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ।
देवता—आदित्या । छन्द—गायत्री)

त्यान्नु क्षत्रिया अव आदित्यान्याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥१
मित्रो नो अत्यंहति वरुण पर्षदर्यमा । आदित्यासो यथा विदु. ॥२
तेषा हि चित्रमुक्थ्य वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरङ्कृते ॥३
महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवास्या वृणीमहे ॥४
जीवान्नो अभि धेतनादित्यास. पुरा हथात् । कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥५॥५१

अभीष्ट फल पाने और बाधाओं से पार होने के लिए हम क्षात्रधर्म वाले आदित्यों से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ मित्र वरुण, अर्यमा और सभी आदित्य कठिन कार्यों के ज्ञाता हैं, वे हमें पाप से बचावें ॥ २ ॥ इन आदित्यों के पास प्रशंसनीय धन है। उनका वह धन हविदाता पुरुष पाते हैं ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! हविदाता की रक्षा करने वाले तुम महान् हो। हम तुमसे रक्षा की याचना करते हैं ॥४॥ हे आदित्यो ! हम जाल में बँधे होने पर भी अभी जीवित हैं। तुम हमारी मृत्यु के पूर्व ही अभिमुख होओ ॥५॥ [५१]

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ॥६
अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ॥७
मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥८
मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ॥९
उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥१० ॥५२

अभिषव वाले यजमान को जो वरणीय धन प्रदान करते हो, उसके द्वारा हमको सुखी करो ॥६॥ हे देवताओ ! पाप कर्म वाला व्यक्ति पापी है और रमणीय कल्याण वाला मनुष्य धर्मात्मा कहा जाता है । तुम पाप रहित हो, अतः हमारी कामना पूर्ण करो ॥ ७ ॥ इन्द्र सब को वशीभूत करने वाले हैं । यह हमें जाल में न बाँधें ॥ ८ ॥ हे देवताओ ! हमको मुक्त करो । हमको हिंसक शत्रुओं के जाल में मत डालो ॥९॥ हे अदिति, तुम महिमामयी और सुखदात्री हो । मैं अभीष्ट पाने के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥१०॥ [२२]

पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥११
अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे ॥१२
ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥१३
ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिते ॥१४
अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥१५। ५३

हे देवो ! हमको सब ओर से रक्षित करो । हिंसाकारी का जाल हमारे पुत्र की हिंसा न करे ॥११॥ हे अदिति ! हमारे पुत्र को जीवित रखने के लिए हम पाप-रहितों की रक्षा करो ॥ १२ ॥ हे आदित्यो ! तुम सुन्दर यश वाले, अहिंसक और द्रोह-रहित रह कर हमारे कर्मों के रक्षक बनते हो ॥ १३ ॥ हे आदित्यो ! हिंसकों द्वारा चोर के समान पकड़े गए हम तुमसे रक्षा माँगते हैं ॥१४॥ हे आदित्यो ! यह जाल हमारी हिंसा में समर्थ न हो, इसे दूर करो । कुबुद्धि को भी हमसे दूर करो ॥२१॥ [२३]

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् पुरा नूनं बुभुज्महे ॥१६
शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः देवाः कृणुथ जीवसे ॥१७

तत्सु नो नव्यं सन्यम आदित्या यन्मुमोचति । बन्धाद् बद्धमिवादिते ।१८
नस्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत ॥१९
मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्या: कृत्रिमा शरु: । पुरा नु जरसो वधोत्।२०
वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।
विष्वग्वि वृहता रप: ॥२१॥५४

हे आदित्यो ! तुम्हारा दान सुन्दर है। तुम्हारी रक्षा में रह कर हम विविध सुखों को प्राप्त करेंगे ॥१६॥ हे आदित्यो ! जो क्रूरकर्मा पापी हमारी ओर बारम्बार आता है, उसे हमारी रक्षा के लिए दूर हटाओ ॥ १७ ॥ हे आदित्यो ! जैसे बँधे हुए पुरुष को खोलने पर बंधन उसे छोड़ देता है, वैसे ही तुम्हारी कृपा से जो हमें मुक्त करता है वह हमारी स्तुति के योग्य है ॥१८ हे आदित्यो ! हम तुम्हारे समान वेग वाले नहीं हैं। वह वेग हमको छुड़ा सकता है, अत. हमको सुख दो ॥१९॥ हे आदित्यो ! सूर्य के आयुध के समान यह कृत्रिम जाल हम जैसे निर्बलों की हिंसा न करे ॥ २० ॥ हे आदित्यो ! वैरियों और पापियों को मारो। जाल को नष्ट करो। पाप को दूर करो ॥ २१॥ [५४]

६८ सूक्त

(ऋषि–प्रियमेध । देवता–इन्द्र, ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुति ।
छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री)

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥१
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥२
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे
रथानाम् ॥४
अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नर: । नाना हवन्त ऊतये ॥५ ॥१

हे सख्य के अधीश्वर, हे इन्द्र ! तुम बहुत कर्मों वाले हो, तुम हिंसा करने वालों को भगाते हो । हम तुम्हें रक्षा रूप सुख के निमित्त बुलाते हैं ॥१ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पराक्रमी, मेधावी, पूज्य एवं बहुकर्मा हो । तुमने अपनी संसार व्यापिनी महिमा के द्वारा ही संसार को पूर्ण किया है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो । तुम्हारे दोनों हाथ पृथिवी में व्याप्त स्वर्णिम वज्र को पकड़ते हैं ॥३॥ मैं बल के स्वामी और शत्रुओं की ओर क्रोध पूर्वक जाने वाले इन्द्र को उनकी, मरुत् रूप सेना सहित तथा रथ सहित आहूत करता हूँ ॥ ४ ॥ जिन्हें रक्षा के लिए नेतागण अनेक प्रकार से आहूत करते हैं, उन सतत प्रवृद्ध इन्द्र को सहायता के लिए आहूत करता हूँ ॥५॥ [१]

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ॥६
तं तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।
यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७
न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः । नकिः शवांसि ते नशत् ॥८
त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम् । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥९
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥२

जो इन्द्र धनवान्, सुन्दर, विस्तृत और स्तुतियों द्वारा परिमित हैं, उन्हें आहूत करता हूँ ॥६ ॥ नेता, यज्ञ के मुख पर स्थित, स्तुतियों के सुनने वाले इन्द्र को धन के निमित्त सोम पीने को बुलाता हूँ ॥७॥ हे इन्द्र ! मनुष्य तुम्हारे बल को व्याप्त नहीं कर सकता और तुम्हारी मित्रता को भी नहीं पेर सकता है ॥ ८ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारी रक्षा में रहते हुए हम जल में स्नान के निमित्त और सूर्य-दर्शन के निमित्त रणक्षेत्र में असीमित धन पाते हुए तुम्हारा अनुग्रह मानेंगे ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों द्वारा प्रशंसित हो । जिस प्रकार तुम संग्राम में हमारी रक्षा कर सको उसी प्रकार करने की हम स्तोता तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ १० ॥ [२]

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥११

उरु णस्तन्वे तन उरु क्षयाय नस्कृधि । उरु णो यन्धि जीवसे ॥१२
उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥१३
उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या । तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥१४
ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि । आश्वमेधस्य रोहिता ॥१५ ॥३

हे वज्रिन् ! तुम्हारा मित्र-भाव मधुर है, तुम्हारा धन आदि सुस्वादु तथा यज्ञ विस्तृत है ॥११॥ हे इन्द्र ! हमारे पुत्र पौत्रादि को अभीष्ट धन दो, हमारे सुन्दर निवास के लिए आवश्यक धन प्रदान करो, हमारे जीवन के लिए इच्छित सम्पत्ति दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! मनुष्यों और गौओं का हित करने की हम तुमसे प्रार्थना करते हैं, हमारे रथ के लिए सुन्दर मार्ग दो और हमारे यज्ञ-कर्म को सम्पन्न करो ॥१३॥ सोम से उत्पन्न हर्ष के कारण, उपभोग्य धन से सम्पन्न हुए छः नेताओं में से दो-दो हमारे समीप आगमन करते हैं ॥१४॥ ऋक्ष के पुत्र से दो हरित् वर्ण वाले, अश्वमेध के पुत्र से दो रोहित वर्ण वाले और इन्द्रोत नामक राजपुत्र से दो सरलता पूर्वक गमन करने वाले घोड़ों को मैंने प्राप्त किया है ॥१५॥ [३]

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥१६
षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पूतक्रतौ सनम् ॥१७
ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी । स्वभीशुः कशावती ॥१८
न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः । अवद्यमधि दीधरत् ॥१९ ॥४

उस अतिथिग्व-पुत्र इन्द्रोत से सुन्दर रथ से युक्त घोड़ों को प्राप्त किया ऋक्ष पुत्र से सुन्दर लगामों वाले तथा अश्वमेध के पुत्र से भी दो सुन्दर अश्व मैंने प्राप्त किए हैं ॥१६॥ श्रेष्ठ कर्म वाले इन्द्रोत से घोड़ियों सहित छः अश्वों को ऋक्ष पुत्र और अश्वमेध पुत्र द्वारा प्रदत्त अश्वों के सहित प्राप्त किया है ॥१७ इन घोड़ों में सेचन समर्थ अश्वों वाली सुन्दर लगामों से सम्पन्न घोड़ियाँ भी सम्मिलित हैं ॥१८॥ हे राजाओ ! तुम अन्न दान करने वाले हो, निन्दा करने वाले पुरुष भी तुम्हारी निंदा करने में समर्थ नहीं होते ॥१९॥ [४]

६६ सूक्त

(ऋषि–प्रियमेधः । देवता–इन्द्रः, विश्वेदेवाः, वरुणः । छन्द–अनुष्टुप, उष्णिक्, गायत्री, पंक्तिः, बृहती)

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥३

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५ ॥५

हे अध्वर्यो ! इन्द्र वीरों में साहस उत्पन्न करते हैं, उनके लिए अन्न संग्रहीत करो । यह प्रजा से युक्त कर्म के द्वारा यज्ञ का फल पाने के लिए तुम्हें समर्थ करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र उषाओं को उत्पन्न करते हैं, वह अहिंसा-योग्य गौओं के स्वामी हैं । यजमान दूध देने वाली इन गौओं से उत्पन्न होने वाले रस की कामना करता है ॥२॥ जो गौऐं देवताओं के उत्पत्ति स्थान और सूर्य के प्रिय धाम स्वर्ग में जा सकती हैं, जिनके दूध से कूप भर जाता है, वे गौएँ इन्द्र के लिए तीनों सवनों में अपना दूध सोम में मिलाती हैं ॥ ३॥ हे इन्द्र ! तुम साधुओं के पालन करने वाले, गौओं के स्वामी और यज्ञ के पुत्र रूप हो । वह इन्द्र यज्ञ के अभीष्ट को जिस प्रकार समझ सकें, उसी प्रकार उन्हें पूजो ॥४ हे हर्यश्व ! तुम वेगवान् होकर इन्द्र को हमारे कुश पर उतार दो । हम उनकी स्तुति करने की कामना करते हैं ॥५॥ [५]

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥६

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥७

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न

धृष्णवर्चत ॥८
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥९
आ यत्पतन्त्येन्य. सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥१० ॥६

जब इन्द्र पास मे स्थित सोम की सब ओर से इच्छा करते हैं, तब गौऐं सोम में मिलाने के लिए दूध देती हैं ॥६॥ जब इन्द्र और मैं सूर्य मंडल मे जावें, तब सूर्य के इक्कीस स्थानों में हम मधुर सोम रस पीकर मिलें ॥७॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र का पूजन करो। हे प्रियमेध के वशजो ! जैसे पुरों को नष्ट करने वाले इन्द्र को पूजा जाता है, वैसे ही पूजो ॥ ८ ॥ रणभेरी भयंकर घोष कर रही है। गोधा शब्दवान् है, पीली ज्या चीत्कार .उठी है, अतः इन्द्र की स्तुति करो ॥९॥ जब श्वेत वर्ण वाली नदियाँ अत्यन्त बढ़ती हैं, उस समय अत्यन्त गुण वाले सोम को इन्द्र के पीने के लिए यहाँ लाओ ॥१०॥　[६]

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥११
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धव. ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥१२
यो व्यतीरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१३
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥१४
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१५
आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् । १६

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१७
अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१८ ॥७

इन्द्र ने सोम पिया, अग्नि ने भी पिया, विश्वेदेवा भी पीकर तृप्त होगए। इस घर में वरुण रहें। सवत्सा गौएं जैसे अपने वत्स के प्रति शब्दवती होती हैं, वैसे ही उक्थ वरुण की स्तुति करते हैं॥ ११॥ वरुण तुम श्रेष्ठ देवता हो, रश्मियाँ जैसे सूर्य के सामने जाती हैं, वैसे ही गंगा आदि सातों नदियाँ तुम्हारे तालु पर गिरती हैं ॥१२॥ जो इन्द्र रथ में युक्त अश्वों को यजमान के पास छोड़ते हैं, जो सभी से मार्ग प्राप्त करते हैं, वे इन्द्र यज्ञ में जाते समय सब में प्रमुख होते हैं ॥१३॥ इन्द्र शत्रुओं को लाँघने में समर्थ हैं, वे सब वैरियों का उल्लंघन करते हैं और अपने शब्द द्वारा मेघ को विदीर्ण कर डालते हैं ॥१४॥ यह इन्द्र नवीन रथ पर प्रतिष्ठित होते हैं। यह बहुत से कर्म वाले इन्द्र मेघ को वर्षाकारक बनाते हैं ॥१५॥ हे रथाधिपति इन्द्र ! तुम सुन्दर हनु वाले हो, तुम अपने पवित्र एवं स्वर्णिम रथ पर आरूढ़ होओ तब हम दोनों भेंट करेंगे ॥१६॥ उन तेजस्वी इन्द्र की अन्न से सम्पन्न यजमान सेवा करते हैं, फिर धन मिलता है ॥ १७ ॥ उन इन्द्र के प्राचीन स्थान को प्रियमेध के वंशजों ने पाया और कुश बिछा कर हव्य को रखा ॥१८॥ (७)

७० सूक्त (आठवां अनुवाक)

(ऋषि—पुरुहन्मा । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, पंक्तिः, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥२

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥३
अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रय. ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्याव: क्षामो अनोनवु: ॥४
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्यु. ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥५ ॥८

जो इन्द्र सब के स्वामी, सब सेनाओं के उद्धारक, सर्वत्र गमनशील, रथ गामी, वृत्रहन्ता और ज्येष्ठ हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ अपनी रक्षा के लिए इन्द्र का पूजन करो। वे उग्र और उदार दोनों प्रकार के स्वभाव वाले हैं, उनके द्वारा धारण किया जाने वाला वज्र सूर्य के समान तेजस्वी है ॥२॥ जो यजमान पूज्य, प्रवृद्ध और यजनीय इन्द्र को अपने अनुकूल करते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उन्हे नहीं घेर सकते ॥ ३ ॥ मैं उन शत्रुजेता, पराक्रमी इन्द्र की स्तुति करता हूँ। उनके प्रकट होते ही वेगवती गौओं ने तथा आकाश और पृथिवी ने भी उनकी स्तुति की थी ॥४॥ हे इन्द्र! सौ आकाश होकर भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकते, सौ पृथिवी भी तुम्हारा माप नहीं कर सकतीं और सौ सूर्य भी तुम्हें प्रकाश नहीं दे सकते। आकाश पृथिवी और जो कुछ इस लोक में उत्पन्न हुआ है वह सब मिलकर भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकते ॥५॥ [८]

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥६
न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥७
तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः । ८
उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥९

त्वं न इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृम्पसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥१० ॥९

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बली, वज्रधारी और धनवान् हो । तुम यजमान को इच्छित फल देते हो । हमारी गौओं के लिए तथा हमारे लिए रक्षक होओ ॥६॥ हे इन्द्र ! जो रथ में श्वेत वर्ण के दो घोड़ों को जोड़ता है, इन्द्र उसी के निमित्त दोनों हर्यश्व युक्त करते हैं । देवताओं से विमुख मनुष्य उनसे अन्न प्राप्त नहीं करता ॥७॥ हे ऋत्विजो ! इन्द्र की पूजा करो, जल प्राप्ति के लिए उनका आह्वान करो, निम्न स्थल की प्राप्ति के लिए अथवा युद्ध में भी इन्द्र को ही आहूत करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको धन प्राप्ति के निमित्त उन्नत करो, महान् धन द्वारा यश प्रदान करने की इच्छा करो ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञ की कामना वाले हो । तुम अपने निन्दक के धन का अपहरण करके प्रसन्न होते हो । तुम हमारी रक्षा के लिए अपना आश्रय दो । अपने वज्र से शत्रुओं का हनन करो ॥१०॥ [९]

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥११
त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।
धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥१२
सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य ।
उपस्तुतिं भोजः सूरियो अह्रयः ॥१३
भूरिभिः समह ऋषीभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।
यदित्थमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥१४
कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् ।
अजां सूरिर्न धातवे ॥१५ ॥१०

हे इन्द्र ! तुम्हारे मित्र रूप पर्वत यज्ञ-रहित और देवताओं से द्वेष करने वालों को स्वर्ग से नीचे गिराते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान् हो । जैसे भुने-हुए जौ को हाथ में लेते हैं, वैसे ही हमें देने को गौओं को हाथ में

लो। तुम हमारी कामना करने वाले हो, अधिक कामना करते हुए ऐसा करो ॥१२॥ हे सखाओ! इन्द्र के लिये कर्म करो। इन्द्र शत्रुओं का भक्षण करने वाले हैं, उनका पतन कभी नहीं होता ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी हविदाता स्तोता स्तुति करते हैं। तुम उन स्तोताओं को वत्स प्रदान करते हो ॥१४ यह इन्द्र धनवान् हैं, यह इन्द्र हिंसक शत्रुओं से प्राप्त हुई गौओं और बछड़ों को हमारे पास उसी प्रकार लावें, जिस प्रकार बकरी का स्वामी बकरी को पकड़ कर लाता है ॥१५॥ [१०]

७१ सूक्त

(ऋषि–सुदीतिपुरुमीह्लौ तयोर्वान्यतरः। देवता–अग्निः। छन्द–गायत्री बृहती)

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः। उत द्विषो मर्त्यस्य ॥१
नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजातः। त्वमिदसि क्षपावान् ॥२
स नो विश्वेभिर्देवभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे। रयिं देहि विश्ववारम् ॥३
न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः। यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४
यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय। स तवोती गोषु गन्ता ॥५॥११

हे अग्ने! अदानियों द्वारा प्राप्त धन से तुम हमारा पालन करो और शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ॥१॥ हे अग्ने! तुम रात्रि में अत्यन्त प्रकाशमान होते हो। मनुष्यों का क्रोध तुम्हारे कार्य में बाधक नहीं हो सकता ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो, सब देवताओं के सहित हमको वरण करने योग्य धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम जिस हविदाता की रक्षा करते हो, उसको अदानशील व्यक्ति हानि नहीं पहुँचा सकते ॥ ४ ॥ हे अग्ने! तुम जिस यजमान को धन-लाभ के लिये यज्ञ कर्म में प्रेरित करते हो, वह गौओं से सम्पन्न होता है ॥५॥ [११]

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय। प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६
उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्ये मर्ताय ॥७
अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनाम् ॥८

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः ॥६
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१० ॥१२

हे अग्ने ! तुम हविदाता के लिए बहुत-से वीरों से सम्पन्न धन दो और निवास के योग्य धन में हमें प्रतिष्ठित करो ॥६॥ हे अग्ने ! हमको हिंसित करने वाले शत्रुओं के हाथ में मत सौंपो । तुम हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान हो । देवताओं से विमुख कोई भी व्यक्ति तुम्हें धन देने से नहीं रोक सकता ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम हम स्तोताओं को महान् ऐश्वर्य दो, क्योंकि तुम सुन्दर वासदाता हो ॥६॥ हमारी स्तुतियाँ अग्नि की ओर गमन करें । यज्ञ की रक्षा के लिये सब हवियों से युक्त होकर यह स्तोत्र अग्नि की ओर गमन करने वाले हों ॥१०॥ [१२]

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ ११
अग्निं वो देवयज्ययाग्निं प्रयत्यध्वरे ।
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षैत्राय साधसे ॥ २
अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् ॥१३
अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥१४
अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्य न शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुर्ऋषूणाम् ॥१५ ॥१३

सभी स्तुतियाँ अग्नि की ओर गमन करें । वे अग्नि मनुष्यों में रहते हुए भी अमर हैं । यह यज्ञ के सम्पादन करने वाले तथा शक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥११॥ हे यजमानो ! मैं देव पूजन के लिये अग्नि की स्तुति करता हूँ । यज्ञ के आरम्भ-काल में, अनुष्ठान के समय, वंशवृद्धि प्राप्ति और क्षेत्र-प्राप्ति पर अग्नि का पूजन करता हूँ ॥१२॥ हम अग्नि के मित्र हैं और अग्नि अपने धन

के स्वामी हैं, वे हमको अन्न प्रदान करें। हम अपने पुत्र और पौत्र के लिए भी यथेष्ट धन माँगते हैं ॥ १३ ॥ रक्षा की कामना करते हुए तुम अग्नि की स्तुति करो। उनकी ज्वाला भस्म करने वाली है। सभी यजमान उनकी स्तुति करते हैं, अत तुम भी अग्नि की स्तुति करो और उनसे वासप्रद घर भी माँगो ॥१४॥ हम शत्रुओं से मुक्ति पाने के लिए अग्नि की प्रार्थना करते हैं, अग्नि राजा के समान तथा वास दाता हैं, उनसे सुख और अभय पाने के लिए उनका आह्वान करते हैं ॥१५॥ [१३]

७२ सूक्त

(ऋषि—हर्यतः प्रगाथ । देवता—अग्निर्हवींषि वा । छन्द—गायत्री)

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् ॥१
नि तिग्ममभ्यं शुं सीदद्धोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यम् ॥२
अन्तरिच्छन्ति त जने रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥३
जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४
चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते । वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥५।१४

हे अध्वर्यो ! तुम हवि लाओ, अग्नि प्रकट होगये। यह अध्वर्यु यज्ञ में हवि देना जानते हैं ॥१॥ इस यजमान की अग्नि से मित्रता है, क्योंकि वे तीक्ष्ण ज्वालाओं वाले अग्नि के पास बैठते हैं ॥२॥ यजमान की अभीष्ट सिद्धि के लिए वे अध्वर्यु अग्नि को सामने स्थापित करते है और स्तुति द्वारा अग्नि को ग्रहण करते हैं ॥३॥ अन्न देने वाले अग्नि सब को लांघते हैं, वे अन्तरिक्ष का उल्लंघन करते और मेघ का हनन करते हैं। वे जल पर भी आरूढ़ होते हैं ॥ ४॥ वे उज्ज्वल वर्ण वाले अग्नि बच्चे के समान चंचल है। वे द्वेषी को प्राप्त नहीं होते। स्तुति करने वाले के सामीप्य की इच्छा करते हैं ॥५॥ [१४]

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥६
दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७
आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया त्रिवृता दिव. ॥८
परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी । मध्वा होतारो अञ्जते ॥९

सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनवारमक्षितम् ॥१०॥१५

इन अग्नि को जोड़ने वाली अश्व सम्पन्न, महिमामय रथ की रस्सी है ॥६॥ सिन्धु-तट पर सात ऋत्विज दोहन करते हैं। इनमें दो प्रस्थाता अन्य पाँच को ग्रहण करते हैं ॥७॥ यजमान की दश उंगलियों से पूजित इन्द्र ने मेघ से तीन किरणों के द्वारा जल-वर्षा की ॥ ८ ॥ वेगवान् तथा तीन वर्ण वाले अग्नि अपनी शिखा सहित यज्ञ में गमन करते हैं। अध्वर्यु उनको मधु से पूजते हैं ॥६॥ चक्र से युक्त, प्रकाश से सम्पन्न, अक्षय और रक्षक अग्नि पर झुके हुए अध्वर्यु घृत सींचते हैं ॥१०॥ [१५]

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥११
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रपसुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१२
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥१३
ते जानत स्वमोक्यं सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ।१४
उप स्रक्वेषु वप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्व ।१५।१६

जब अध्वर्यु अग्नि का विसर्जन करते हैं तब विशाल-पात्र में मधु सींचते हैं ।११॥ हे गौओ ! मन्त्रों द्वारा दूध की आवश्यकता होने पर तुम अग्नि का सामीप्य प्राप्त करो। उनके दोनों कान स्वर्ण और रजत के हैं ॥ १२ हे अध्वर्युओ ! आकाश पृथिवी के आश्रित, मिश्रण के योग्य दूध को सींचो, फिर बकरी के दूध में अग्नि की स्थापना करो ॥१३॥ गौओं ने अपने आश्रय-दाता अग्नि को जान लिया, शिशुओं के अपनी माता से मिलने के समान ही गौएं अपने बंधुओं से मिलती हैं ॥ १४ ॥ शिखा के द्वारा भक्षण किया हुआ अग्नि का अन्न इन्द्र और अग्नि दोनों को पुष्ट करता है। वह अन्न अंतरिक्ष का भी पालन करता है। अतः इन्द्राग्नि को अन्न अर्पित करो ॥१५॥ (१६)

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥१६
सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् ॥१७

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम् । परि द्या जिह्वयातनत् ।१८।१७

गमनशील वायु और चंचला वाणी से सूर्य की सात रश्मियों द्वारा बढ़े हुए अन्न-रस को अध्वर्यु प्राप्त करता है ॥ १६ ॥ मित्रावरुण सूर्योदय के समय सोम को ग्रहण करते हैं, वे हमारे लिए हितकारी भेषज के समान हैं ॥१७॥ हर्यंत ऋषि का स्थान यज्ञ के लिए उपयुक्त है, अपनी ज्वालाओं के द्वारा अग्नि वहीं से स्वर्ग को व्याप्त करते हैं ॥१८॥ [१७]

७३ सूक्त

(ऋषि—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । देवता—अश्विनौ । छन्द—गायत्री)

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१
निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥२
उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूत वामवः ॥३
कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥४
यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥५ । १८

हे अश्विनीकुमारो ! मुझ यज्ञ की कामना वाले के निमित्त उदय को प्राप्त होओ। तुम्हारे रक्षा-साधन हमारे पास टिकें, इसलिए तुम अपने रथ को जोड़ो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! अत्यन्त वेग वाले रथ के द्वारा आगमन करो तुम्हारे रक्षा-सामर्थ्य हमारे निकटवर्ती हों ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! अत्रि के निमित्त अग्नि के दहन स्वभाव को हिम के द्वारा रोको । तुम्हारी रक्षा-शक्ति हमारे पास आवे ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम कहाँ हो ? बाज के समान कहाँ उतरते हो ? तुम्हारी रक्षण शक्तियाँ हमारे पास रहें ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम हमारे आह्वान को कब और कहाँ सुनोगे ? तुम्हारी रक्षाएं हमारे निकट रहें ॥५॥ (१८)

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥६
अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥७

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये । अन्ति षद्भुतु वामवः ॥८
प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥९
इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ।१०।१९

मैं अत्यन्त आह्वानीय अश्विनीकुमारों के पास जाता हूँ। उनके बांधवों के भी पास जाता हूँ। हे अश्विद्वय ! तुम्हारी रक्षाऐं हमारे पास रहें ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने अत्रि की रक्षा के लिए घर बनाया था, तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥७॥ हे अश्विनीकुमारो ! अत्रि तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र करने वाले हैं, उनको अग्नि के दहन स्वभाव से रक्षित करो। तुम्हारी रक्षाऐं हमको प्राप्त हों ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारी स्तुति के प्रभाव से महर्षि सप्तवध्रि ने अग्नि ज्वाला की मंजूषा से निकाल कर फिर उसी में शयन करा दिया था। तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम धनवान् और वृष्टिप्रद हो, यहाँ आकर हमारे स्तोत्र सुनो। तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१०॥ (१९)

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥११
समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१२
यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अन्ति षद्भूतु वामवः ।१३
आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१४
मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ।१५
अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१६
अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१७
पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१८ ॥२०

हे अश्विद्वय ! तुम्हें अत्यन्त वृद्धावस्था प्राप्त व्यक्ति के समान ही बारम्बार क्यों आहूत करना होता है ? तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों समान जन्मा हो। तुम्हारे बन्धु भी समान हैं। तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१२॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा रथ आकाश-पृथिवी तथा अन्य सभी लोकों में विचरण करता है। तुम्हारी रक्षाऐं हमारे पास

रहें ॥ १३ ॥ हे अश्विद्वय ! असंख्य गौ अश्वादि के सहित हमारे पास आगमन करो । तुम्हारी रक्षाएं हमें प्राप्त हों ॥ १४॥ हे अश्विद्वय ! इन असीम गौ और अश्वों के दान को रोकना मत । तुम्हारी रक्षाएं हमें प्राप्त हों ॥१५॥ हे अश्विनीकुमारो ! उषा उज्वर्ण वर्णं वाली, यज्ञ से सम्पन्न और ज्योति को प्रकट करने वाली है । तुम्हारी रक्षाएं हमें प्राप्त हों ॥ १६ ॥ जैसे कुल्हाड़े वाला पुरुष वृक्ष को काटने में समर्थ होता है, वैसे ही ज्योतिर्मान् आदित्य अंधकार को नष्ट करते हैं । मैं अश्विनीकुमारों का आह्वान करता हूँ, उनकी रक्षाएं हमें प्राप्त हों ॥१७॥ हे सप्तवध्रि ! तुम कृष्ण मंजूषा में थे । फिर तुमने उसे पुर के समान भस्म कर दिया । तुम्हारी रक्षाएँ हमे प्राप्त हों ॥१८॥ (२०)

७४ सूक्त

(ऋषि—गोपवन आत्रेयः । देवता अग्नि:, श्रुतर्वण आर्चास्य दानस्तुति: । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री)

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच. स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभि ।२
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३
आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रु तर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥४
अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् ॥५ । २१

हे ऋत्विजो ! यजमानो ! तुम अन्न की कामना से प्राणीमात्र के अतिथि और अनेकों के प्रिय अग्नि का स्तुतियों द्वारा पूजन करो । मैं तुम्हारे मङ्गल के लिए श्रेष्ठ स्तोत्र और गंभीर वाणी का प्रयोग करता हूँ ॥ १ ॥ जिन अग्नि के निमित्त घृत की आहुति दी जाती है और जिन्हें हविर्दान और स्तुतियों से प्रसन्न किया जाता है ॥२॥ जो जातधन अग्नि स्तोता की प्रशंसा करते हुए यज्ञ में प्रदत्त हव्य को स्वर्ग में पहुँचाते है ॥ ३ ॥ जिन अग्नि की ज्वालाओं ने महान् श्रुतर्वा और ऋक्ष पुत्र की वृद्धि की, वे मनुष्यों के हितैषी

और पापियों को नष्ट करने वाले हैं। मैं उन्हीं अग्नि की शरण को प्राप्त हूँ ॥५
अग्नि स्तुति के योग्य, जातधन और अविनाशी हैं। उनको घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं। वह अन्धकार का नाश करते हैं ॥५॥　　　　(२१)

सबाधो यं जना इमे ग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः ॥६
इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७
सा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥८
स द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥९
अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥१० ॥२२

यज्ञ-काम्य पुरुष अपने यज्ञ में स्रुक ग्रहण करके हवि देते हुए अग्नि की स्तुति करते हैं ॥६॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर जन्म वाले, दर्शनीय एवं मेधावी हो हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥७॥ हे अग्ने ! हमारी यह स्तुति तुमको सुख देने वाली, प्रिय तथा अन्न से सम्पन्न हो। तुम उसके द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ ॥८॥ हे अग्ने ! यह यथेष्ट अन्न वाली स्तुति रणक्षेत्र में अन्न पर अन्न एकत्र करने वाली हो ॥९॥ जो अग्नि अपने बल द्वारा शत्रु के अन्न-धन को नष्ट कर देते हैं, उन रथादि से सम्पन्न करने वाले अग्नि का वेगवान् अश्व और सत्य के स्वामी इन्द्र के समान पूजन किया जाता है ॥१०॥　　　　(२२)

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥११
यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये ॥१२
अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥१३
मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥१४
सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥१५ ॥२३

हे अग्ने ! तुमने ऋषि गोपवन की स्तुति सुन कर अन्न प्रदान किया था। तुम शुद्ध करने वाले और सर्वत्र गमनशील हो। गोपवन की स्तुत को श्रवण करो ॥११॥ हे अग्ने ! बाधा प्राप्त पुरुष अन्न की कामना से तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम कर्म क्षेत्र में चैतन्य होओ॥ १२ ॥ ऋक्षपुत्र श्रुतर्वा शत्रु के अहंकार का खंडन करने वाले हैं, उनके द्वारा बुलाए जाने पर, उनके दिये चार घोड़ों के रोम वाले शिरों को मैं अपने हाथ से धोरहा हूँ ॥ १३ ॥ उन श्रुतर्वा के चारों अश्व श्रेष्ठ रथ में संयुक्त होकर अश्विनीकुमारों को चार नौकाओं द्वारा तुग्र-पुत्र भुज्यु का वहन करने के समान अन्न वहन करते हैं ॥ १४ ॥ हे परुष्णी नदी, हे जल ! मैं यथार्थ ही कहता हूँ कि इन महाबली श्रुतर्वा से अधिक अश्व-दान कोई भी नहीं कर सकता ॥१५॥ (२३)

७५ सूक्त

(ऋषि–विरूप.। देवता–अग्नि । छन्द–गायत्री)

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥१
उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टर । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥२
त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥३
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥४
तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥५ ॥२४

हे अग्ने ! देवताओं को लाने के लिए वेगवान् अश्वों को सारथि के समान योजित करो। तुम होता हो अतः मुख्य रूप से विराजमान होओ ॥१॥ हे अग्ने ! देवताओं के सामने हमें विद्वानों में श्रेष्ठ बताते हुए तुम ग्रहणीय हव्य को उनके पास पहुँचाओ ॥२॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम सत्य से सम्पन्न और अनुष्ठान के योग्य हो ॥ ३ ॥ यह अग्नि शिखा वाले, मेधावी, धनों के स्वामी और सौ तथा सहस्र प्रकार के अन्नों के ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम गमनशील हो। ऋभुगण द्वारा रथ नेमि को लाने के समान आहूत देवताओं सहित यज्ञ को ले आओ ॥५॥ (२४)

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥६

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥७
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥८
मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥९
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१० ॥२५

हे ऋषि ! जो अग्नि कामनाओं के वर्षक और वाणी द्वारा संतुष्ट होने वाले हैं, उनकी स्तुति करो ॥६॥ इन विशाल नेत्र वाले अग्नि की ज्वाला से हम गायों की प्राप्ति के लिए किस पणि को मारेंगे ? ॥७॥ पयस्विनी गौओं को कोई नहीं त्यागता, गौएं अपने बछड़ों को नहीं त्यागतीं, वैसे ही अग्नि भी हमारा त्याग न करें, क्योंकि हम देवताओं के सेवक हैं ॥ ८ ॥ समुद्र की लहरें नौका को रोकती हैं, उस प्रकार शत्रुओं की कुबुद्धि हमें रोकने वाली न हो ॥६॥ हे अग्ने ! तुम अपने बल से शत्रुओं को नष्ट करो । तुम्हारे बल को पाने के लिए तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥१०॥ (२५)

कुविरसु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरुणस्कृधि ॥११
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥१२
अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥१३
यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥१४
परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर यत्राहमस्मि ताँ अव ॥१५
विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥१६॥२६

हे अग्ने ! गौएं प्राप्त करने के लिये अभीष्ट धन प्रदान करो । हे समर्द्ध अग्ने ! हमको ऐश्वर्यवान् बनाओ ॥११॥ हे अग्ने ! शत्रुओं द्वारा धन नष्ट हो रहा है, हमारी समृद्धि के लिए उस पर अधिकार करो । हमको इस युद्ध में त्याग मत देना ॥१२॥ हे अग्ने ! स्तुति न करने वालों के लिए ही विघ्न उपस्थित हों । तुम हमारे बल वाले वेग को बढ़ाओ ॥ १३ ॥ जो पुरुष यज्ञादि कर्मों में अग्नि की नमस्कारों द्वारा पूजा करता है, अग्नि उसके पास ही गमन करते हैं ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! हमारी सेनाओं को शत्रु-सेना से पृथक करो । मैं जिन सेनाओं के मध्य हूँ, उनकी रक्षा करो ॥१५॥ हे अग्ने ! प्राचीन के समान

हम तुम्हारे रक्षा साधनों को जानते हैं, तुम रक्षक हो । हम तुमसे सुख माँगते हैं ॥१६॥ (२६)

७६ सूक्त

(ऋषि—कुरुसुतिः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द-गायत्री)

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥१
अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥२
वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥३
अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥४
मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥५
इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥६ ॥२७

शत्रु को मारने के लिये इन्द्र को आहूत करता हूँ, वे मरुत्वान् अपने ही बल से सब के ईश्वर हैं ॥१॥ मरुद्‌गण को साथ लेकर इन्हीं इन्द्र ने अपने सौ पर्वों वाले वज्र से वृत्र का शिर पृथक् किया ॥२॥ इन्द्र ने मरुद्‌गण की सहायता से वृत्र को चीर डाला और उन्होंने अन्तरिक्ष में जल प्रकट किया ॥३ जिन इन्द्र ने मरुद्‌गण सहित सोम पीने के लिए स्वर्ग पर अधिकार किया, यह वही हैं ॥४॥ मरुत्वान् इन्द्र सोम-सम्पन्न, ओज सम्पन्न और महान् हैं। हम स्तुति करते हुए आहूत करते हैं ॥५॥ हम मरुत्वान् इन्द्र को सोम पीने के लिये प्राचीन स्तुतियों के द्वारा आहूत करते हैं ॥६॥ (२७)

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥७
तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥८
पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ॥९
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥१०
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥११
वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१२॥२७

हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा बुलाए गए, फलों की वर्षा करने वाले

और सैकड़ों कर्मों वाले हो। तुम मरुद्गण सहित इस यज्ञ में आकर सोम पियो ॥७॥ हे वज्रिन्! इस सोम को तुम्हारे और मरुद्गण के लिये शोधित किया है। फिर यह उक्थों से स्तुति करने वाले विद्वान् श्रद्धा सहित तुम्हें आहूत करते हैं ॥८॥ हे मरुद्गण के सखा इन्द्र! तुम इस स्वर्गदायक यज्ञ में सोम पान करो और अपने बल से वज्र को तीक्ष्ण करो ॥९॥ हे इन्द्र! सोम-पान करते हुए तुम बल सहित खड़े होकर अपनी ठोड़ी को कम्पित करो ॥१०॥ हे इन्द्र! तुम शत्रुओं का वध करने वाले हो। जब तुम राक्षसों को मारते हो, तब आकाश-पृथिवी दोनों तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ चार दिशाओं, चार कोणों और आदित्य सहित यश को स्पर्श करने वाला स्तोत्र भी इन्द्र से न्यून है। इन्द्र के लिये मैं उसी स्तोत्र को करता हूँ ॥१२॥ (२८)

७७ सूक्त

(ऋषि-कुरुसुतिः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री, बृहती, पंक्तिः)

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरम्। क उग्राः के ह शृण्विरे ॥१
आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवम्। ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥२
समित्तान्वृत्रहाखिदत्खे अराँ इव खेदया। प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥३
एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतम्। इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥४
अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा। इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥५ ।२९

उत्पन्न होते ही अनेक कर्म वाले इन्द्र ने अपनी माता से पूछा कि 'कौन प्रसिद्ध और कौन पराक्रमी है?' ॥१॥ माता ने उत्तर दिया कि—'ऊर्णनाभ, अहीशुव आदि कितने ही हैं, उन्हें पार लगाना चाहिये' ॥२॥ वृत्र हन्ता इन्द्र ने अरों के समान रस्सी से एक साथ ही उन्हें खींच लिया और राक्षसों को मार कर वृद्धि को प्राप्त हुये ॥३॥ इन्हीं इन्द्र ने सोम-रस से भरे हुए तीस पात्रों को एक साथ ही पी लिया ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों को बढ़ाने के लिये इन्द्र ने अन्तरिक्ष में मेघ को चीर डाला ॥५॥ (२९)

निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम्। इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्।
शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत्। यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे । सद्यो जात ऋभुष्ठिर ॥८
एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा हृदा वीड्वधारय. ॥९
विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषित ।
शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥१०
तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनु साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥११ ।३०

इन्द्र ने बृहद् बाण से मेघ को विदीर्ण किया और मनुष्य के लिये पके हुये अन्न की कल्पना की ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे बाण में सौ फल और सहस्र पात्र हैं । यही बाण तुम्हारा सहायक है ॥७॥ हे स्तोताओ ! तुम उत्पन्न होते ही स्थिर हो । पुत्रों और स्त्रियों के सेवनार्थ उसी बाण से प्रचुर धन दो ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम्हीं ने इन विशाल एवं विस्तृत पर्वतों का निर्माण किया । उन्हें स्थिर रूप से धारण करने वाले होओ ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जल को विष्णु देते हैं । वह विष्णु तुम्हारी प्रेरणा से आकाश में घूमते हैं । तुमने ही पशु, दूध, अन्न और जल के अपहरण कर्त्ता मेघ को भी प्रदान किया ॥ १०॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा बाण सुवर्ण निर्मित है । तुम्हारा धनुष सुख देने वाला और अनेक बाण फेंकने वाला है । तुम्हारी भुजायें सुन्दर और यज्ञ को बढ़ाने वाली हैं ॥११॥   [३०]

७८ सूक्त

(ऋषि—कुरुसुति• काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, बृहती)

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर । शता च शूर गोनाम् ।१
आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् । सचा मना हिरण्यया ॥२
उत नः कर्णशोभना पुरूणि घृष्णवा भर । त्वं हि शृण्विषे वसो ॥३
नकी वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥४
नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति
पश्यति ॥५ ॥३१

हे इन्द्र ! इन पुरोडाश को ग्रहण करते हुए, हमको सौ गोएँ प्रदान करो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम हमको गौ, अश्व, बैल और सुन्दर सुवर्ण के आभूषण प्रदान करो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम सुन्दर घर देने वाले और शत्रुओं के नष्ट करने वाले हो। तुम हमको बहुत से कुण्डलादि अलंकार दो ॥३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई वृद्धि कारक नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त युद्ध क्षेत्र में अन्य कोई टिक नहीं सकता। तुम्हारे अतिरिक्त कोई श्रेष्ठ दाता तथा ऋत्विजों का कोई नेता भी नहीं है ॥ ४ ॥ इन्द्र किसी से पराजित नहीं होते, वह किसी का अपमान भी नहीं करते। वह सबके द्रष्टा और सुनने वाले हैं ॥५॥ (३१)

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते । पुरा निदश्चिकीषते ॥६
क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥७
त्वे वसून सङ्गता विश्वा च सोम सौभगा । सुदात्वपरिह्वृता ॥८
त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ॥९
तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।
दिनस्य वा मघवन्त्सम्भृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥१० ॥३२

मनुष्य इन्द्र की हिंसा नहीं कर सकते। वह निन्दा के पूर्व ही निन्दा को मार देते हैं। उनके हृदय में क्रोध के लिए किंचित् भी स्थान नहीं है ॥६॥ सोम पीने वाले, वृत्रहन्ता इन्द्र का उपासकों के कर्म द्वारा ही पेट भरता है ॥७ हे इन्द्र ! तुम सब धनों से सम्पन्न हो, सभी सौभाग्य तुम में निहित हैं। सुन्दर दान में कुटिलता नहीं होती ॥८॥ हे इन्द्र ! मेरा मन जौ, अश्व और स्वर्ण की कामना करता हुआ तुम्हारे पास पहुँचता है ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! मैं इस दरांत को तुम्हारी कामना से ही ग्रहण करता हूँ। तुम संग्रह किए हुए जौ की मुट्ठी के द्वारा सम्पूर्ण आशाओं को पूर्ण करो ॥१०॥ [३२]

७९ सूक्त

(ऋषि—कृत्नुर्भार्गवः । देवता—सोमः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)
अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः । ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥१

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्: । प्रेमन्ध

स्याचि. श्रोणो भूत् ॥२

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथम् ॥३

त्वं चित्ती तव दक्षैदिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।

यावीरघस्य चिद् द्वेष ॥४

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम् ।

ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥५ ॥३३

यह ऋषि मेधावी, कवि और सोम का अभिषव करने वाले हैं। यह विश्वजित् और उद्भिद् नाम के सोम-यागों को सम्पन्न कर चुके हैं ॥१॥ सोम रोगी को निरोग करते, नंगे को आच्छादित करते, पंगु को गमन शक्ति देते और सन्नद रहने वाले को दर्शन शक्ति देते हैं ॥२॥ हे सोम ! शरीर को दुर्बल बनाने वाली व्याधियों से तुम रक्षा करने वाले हो ॥३॥ हे ऋजीषवान् सोम ! तुम अपने बल-बुद्धि द्वारा द्यावा-पृथिवी से और हमारे यहाँ से शत्रु के दुष्ट कर्मों को दूर करो ॥४॥ धन की कामना वाले पुरुष यदि धनवान के पास जाँय तो दान दाता से प्राप्त धन द्वारा याचक की इच्छा पूर्ण होती है ॥५॥ [३३]

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् । ६

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ॥७

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् ।

मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥८

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध. ॥९ ॥३४

प्राचीन धन प्राप्त करने के समय यज्ञ-काम्य पुरुष को प्रेरणा दी जाती है और यज्ञ द्वारा दीर्घायु प्राप्त की जाती है ॥६॥ हे सोम ! तुम हमारे लिए सुखकारी एवं कल्याणप्रद हो, तुम निश्चल एवं यज्ञ का सम्पादन करने वाले हो ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम हमारे अंगों को कम्पित न करना, हमको भय मत

देना और हमको नष्ट मत कर देना ॥ ८ ॥ हे सोम ! शत्रुओं को भगाओ। हिंसकों का वध करो। तुम्हारे गृह में कुबुद्धि प्रविष्ट न हो ॥९॥ [३४]

८० सूक्त

(ऋषि-एकद्यूनौधसः। देवता-इन्द्र, देवाः। छन्द-गायत्री)

नह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो। त्वं न इन्द्र मृळय ॥१
यो नः शश्वत्पुराविथामृध्रो वाजसातये। स त्वं न इन्द्र मृळय ॥२
किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि कुवित्स्विन्द्र णः शकः ॥३
इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्सन्तमद्रिवः। पुरस्तादेनं मे कृधि ॥४
हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि। उपमं वाजयु श्रवः ॥५ ॥३५

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे अतिरिक्त अन्य देवता का इतना सत्कार नहीं करता। अतः मुझे सुख प्रदान करो ॥१॥ जिन इन्द्र ने अन्न के लिए हमारी रक्षा की थी, वह इन्द्र हमारा सदैव मंगल करें ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम अभिषव-कारी का पालन करते हो, अतः हमको यथेष्ट धन दो और उपासक को कर्म में प्रवृत्त करो ॥३॥ हे इन्द्र ! हे वज्रिन् ! हमारे पीछे जो रथ खड़ा है, उसकी रक्षा करते हुए सामने ले आओ ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के संहारक हो। इस समय मौन किस लिए हो ? हमारे रथ को उत्कृष्ट करो। हमारा अभीष्ट अन्न तुम्हारे पास ही है ॥५॥ [३५]

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥६
इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम्। इयं धीर्ऋत्वियावती ॥७
मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम्। अपावृक्ता अरत्नयः ॥८
तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि। आदित्पतिर्न ओहसे ॥९
अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१०॥३६

हे इन्द्र ! अन्न की कामना वाले हमारे रथ की रक्षा करो। तुम हमें रणक्षेत्र में विजय प्राप्त कराओ ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम पुर के समान दृढ़ होओ।

तुम यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हो। कल्याणकारी यज्ञ कर्म तुम्हारी ओर गमन करता है ॥७॥ हमारे पास निन्दनीय व्यक्ति न आवे। सभी दिशाओं में व्याप्त धन के हम स्वामी हों। हमारे शत्रु नष्ट हो जाँय ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे यज्ञात्मक चतुर्थ नाम के धारण करते हों हमने उसकी इच्छा की थी। तुम हमारी रक्षा और पालन करने वाले हो ॥९॥ हे अविनाशी देवताओ! एकद्यु ऋषि तुमको पत्नियों सहित तृप्त करते हैं। तुम हमको बहुत-सा धन प्रदान करो। कर्म प्रेरक इन्द्र प्रातः सवन में ही पधारें ॥१०॥ [२६]

८१ सूक्त (नौवाँ अनुवाक)

(ऋषि-कुसीदी काण्वः। देवता-इन्द्रः। छन्द-गायत्री)

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ॥१
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम्। तुविमात्रमवोभिः ॥२
नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्। भीमं न गा वारयन्ते ॥३
एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम्। न राधसा मर्धिषन्नः ॥४
प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम्। अभि राधसा जुगुरत् ॥५॥३७

हे इन्द्र! तुम वृहद् हाथ वाले हो अतः हमारे दान के निमित्त ग्रहणीय दिव्य धन को दाहिने हाथ में लो ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम अनेक कर्म वाले, बहुत से दान वाले, असीमित धन वाले और महती रक्षाओं वाले हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम जब दान में तत्पर होते हो तब देवता, मनुष्य आदि कोई भी तुम्हें रोक नहीं सकते ॥३ ॥ हे मनुष्यो! इन्द्र दैदीप्यमान धन के ईश्वर हैं, यहाँ आकर इन्द्र की स्तुति करो। वह अपने धन से अन्य धनियों के समान बाधा देने वाले न हों ॥४॥ हे स्तोताओ! तुम्हारी स्तुति की इन्द्र प्रशंसा करें और साम-गान को सुनें। वे धन से सम्पन्न होते हुए हमारे ऊपर कृपा करें ॥५॥ [३०]

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश। इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक्॥
उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम्। अदाशूष्टरस्य वेदः ॥७

इन्द्र यं उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः । अस्माभिः
सु तं सनुहि ।।८
सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः । वशैश्च मक्षू
जरन्ते ।।९ ।।३८

हे इन्द्र ! तुम हमारे निमित्त आओ । हमें दोनों हाथों से दो । हमें धन-हीन मत बनाओ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम धन की ओर गमन करो । जो मनुष्य अदानशील है, उसके धन को लाकर हमें दो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! ब्राह्मणों द्वारा यजनीय धन तुम्हारा ही है । जब हम उसकी याचना करें तभी हमको दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा अन्न सब को पुष्ट करने वाला है, वह शीघ्र ही हमारे पास आवे । हमारे स्तोता विविध कामनाओं वाले होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥९॥ [३८]

८२ सूक्त

(ऋषि—कुसीदी काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ।।१
तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः । पिबा दधृग्यथोचिषे ।।२
इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ।।३
आ त्वशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ।।४
तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम् ।
प्र सोम इन्द्र हूयते ।।५ ।।१

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम इस यज्ञ के हर्ष प्रदायक सोम के लिए दूर या पास जहाँ कहीं हो, वहीं से आओ ॥१॥ हर्ष प्रदायक सोम का अभिषव किया गया है । हे इन्द्र ! यहाँ आकर उसका पान करो ॥२॥ हे इन्द्र ! सोम रूप अन्न के द्वारा प्रसन्न होओ । उसकी शक्ति शत्रु को भगाने वाले क्रोध को उत्पन्न करे । यह सोम तुम्हारे हृदय को मङ्गलकारी हो ॥३॥ हे इन्द्र ! शीघ्र आगमन करो । स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं के तेज से प्रकाशित यज्ञ में तुम उक्थों द्वारा आहूत किए जा रहे हो ॥४॥ हे इन्द्र ! पाषाण से यह सोम

अभिषुत हुआ है, दुग्धादि से मिश्रित करके उसे तुम्हारी प्रसन्नता के लिए होम रहे हैं ॥५॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(1)

इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥६
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥७
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८
यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजास्यस्पृतम् । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥९ ॥२

हे इन्द्र ! हमारे अभिषुत सोम का पान करो । यह गव्यादि से मिश्रित है, तुम इसके द्वारा तृप्ति को प्राप्त होओ। हे इन्द्र ! तुम मेरे आह्वान को सुनो ॥६॥ हे इन्द्र ! चमस और चमू नामक पात्रों में स्थित सोम को पान करो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम ईश्वर हो । चंद्रमा के समान उज्ज्वल जो सोम जल में है, उसका पान करो ॥८॥ हे इन्द्र ! गायत्री पक्षी का रूप धारण कर सोम के रक्षक गंधर्वों को तिरस्कार करती हुई ले आई थी, तुम उस सोम का दोनों सवनों में पान करो ॥९॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(२)

८३ सूक्त

(ऋषि—कुसीदी काण्वः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—गायत्री)

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥१
ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः ॥२
अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्यः ॥३
वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥४
वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।
　　　　　　　　　　　　　　नेमादित्या अघस्य यत् ॥५ ॥३

हे देवताओ ! अपनी रक्षा की कामना करते हुए हम तुम्हारी अभीष्ट वर्षिणी रक्षाओं को माँगते हैं ॥१॥ हे विश्वेदेवो ! वरुण, मित्र, अर्यमा हमारे सहायक होते हुए हमारी वृद्धि करें ॥२॥ हे देवताओ ! जैसे नाव जल से पार करती है, वैसे ही हमें शत्रु की विशाल सेनाओं से पार करो ॥३॥ हे अर्यमा !

हे वरुण ! भजनीय और प्रशंसनीय धन हमारे पास हो। हम धन के लिए तुमसे याचना करते हैं ॥४॥ हे देवताओ ! तुम सेवनीय धनों के स्वामी हो तुम्हारा धन हमारे पास आवे ॥५॥ (३)

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ॥६
अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥७
प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥८
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥६ ॥४

हे देवो ! हम मार्ग में या गृह में जहाँ भी हैं, वहीं पर तुम्हें अन्न की वृद्धि के लिए आहूत करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र, अश्विद्वय, मरुद्गण तुम हमारे समान मनुष्यों में केवल हमारे यहाँ ही आगमन करो ॥ ७ ॥ हे देवताओ तुम्हारा दान सुन्दर है। हम पहिले तुम्हें प्रकट करेंगे और फिर तुम्हारे दो-दो करके साथ जन्म लेने वाले बन्धुत्व को भी कहेंगे ॥ ८ ॥ हे देवो ! तुम में इन्द्र ज्येष्ठ हैं। तुम सब हमारे यज्ञ में प्रतिष्ठित होओ । फिर मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥६॥ [४]

८४ सूक्त

(ऋषि-उशना काव्यः । देवता-अग्निः-छन्द-गायत्री)

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् ॥१
कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधु ॥२
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥३
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥४
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥५ ।५

मैं तुम्हारे निमित्त मित्र और अतिथि के समान प्रिय और रथ के समान वहन करने वाले अग्नि का पूजन करता हूँ ॥ १ ॥ देवताओं ने महान ज्ञानी के समान जिन अग्नि को दो प्रकार से प्रतिष्ठित किया है, मैं उनका

स्तव करता हूँ ॥२॥ हे अग्ने ! इन मनुष्यों की स्तुति सुनते हुए हमारी और हमारी संतानों की रक्षा करो ॥३॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम शत्रुओं का सामना करने वाले हो, मैं तुम्हारा किस स्तोत्र से स्तव करूँ ॥ ४॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! हम तुम्हें यजमान की इच्छा के अनुसार हव्य प्रदान करेंगे। मैं तुम्हारे लिए कब नमस्कार करूँगा ? ॥५॥ [५]

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ।६
कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते । गोषाता यस्य ते गिर. ।७
तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥८
क्षेति क्षेमेभि· साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः ।
अग्ने सुवीर एधते ॥९ ॥६

हे अग्ने ! हमारे सब स्तोत्रों को घर, धन और अन्न से सम्पन्न करो ॥६॥ हे गार्हपत्याग्ने ! तुम इस समय किसके कर्म को सफल कर रहे हो ? तुम्हारे स्तोत्र धन प्रदान करने वाले हैं ॥७॥ यह अग्नि बलवान्, रण में अग्रगण्य, सुन्दर मति वाले हैं। अपने गृह में यजमान इन्हें पूजते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! जो मनुष्य तुम्हारी रक्षाओं सहित अपने गृह में निवास करता है, उसकी हिंसा कोई नहीं कर सकता। वह शत्रु का हिंसक होता हुआ, सुन्दर पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त होता है ॥९॥ [६]

८५ सूक्त

(ऋषि—कृष्णः । देवता-अश्विनौ । छन्द—गायत्री)

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥१
इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् । मध्व. सोमस्य पीतये ॥२
अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥३
शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥४
छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सामस्य पीतये ॥५ ॥७

हे अश्विनीकुमारो ! मेरा आह्वान सुन कर मेरे यज्ञ में हर्षप्रद सोम के

पास आओ ॥१॥ हे अश्विद्वय ! इस हर्ष प्रदायक सोम को पीने के लिए मेरे स्तोत्र रूप आह्वान को सुनो ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुम अन्न-धन से सम्पन्न हो। मैं कृष्ण ऋषि तुम्हें हर्ष प्रदायक सोम के लिए आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! हर्ष प्रदायक सोम को पीने के लिए मुझ कृष्ण का आह्वान सुनो ॥४ हे अश्विद्वय ! मुझ विद्वान् स्तोता कृष्ण ऋषि के लिए हर्ष प्रदायक सोम के निमित्त घर दो ॥ ५ ॥ [७].

गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥६
युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥७
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥८
नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥८

हे अश्विद्वय ! मुझ हविदाता के घर में हर्ष प्रदायक सोम को पीने के लिए आगमन करो ॥६॥ हे अश्विनीकुमारो ! हर्ष प्रदायक सोम के लिए दृढ़ अवयव वाले रथ में अश्व संयुक्त करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तीन फलकों वाले त्रिकोण रथ पर हर्ष प्रदायक सोम को पीने के लिए आओ ॥८॥ हे अश्विद्वय ! मेरी स्तुति रूप वाणी के प्रति सोम पीने के लिए शीघ्र आगमन करो ॥९॥ [८]

८६ सूक्त

(ऋषि—कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती)

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥१
कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्य इष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥२
युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्य इष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥३
उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं मासाह मह्नि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ।५।

हे अश्विद्वय ! तुम दर्शनीय और सुखकारी हो। दक्ष की स्तुति के समय तुम उपस्थित थे । मैं विश्वक तुम्हें सन्तान के निमित्त आहूत करता हूँ । हमारे बन्धुत्व को नष्ट मत करो । अश्वों को लगाम से खोल दो ॥१॥ हे अश्विद्वय ! प्राचीन काल में विमना नामक ऋषि ने तुम्हारी स्तुति की थी और विमना को धन प्राप्त कराने का तुमने विचार किया था । मैं विश्वक तुम्हें आहूत करता हूँ। हमारा बंधुत्व पृथक न हो। अश्वों को लगाम से खोल दो ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुमने अनेकों का पालन किया है । मेरे पुत्र विष्णवायु की कामना-पूर्ति के लिए तुमने धन दिया था, वैसे ही मैं विश्वक तुम्हें सन्तान के निमित्त आहूत करता हूँ । हमारा बंधुत्व पृथक न हो, अश्वों को लगाम से खोल दो ॥३॥ हे अश्विद्वय ! सोम से सम्पन्न विष्णुवायु तुम्हें आहूत करते हैं, मेरे समान उनके स्तोत्र भी मधुर हैं । तुम हमारी मित्रता को दूर न करो ॥४ हे अश्विनीकुमारो ! सत्य से सूर्य अपनी किरणों को समेटते हैं, फिर रश्मि समूह को फैलाते हैं । वही सूर्य सेना सम्पन्न शत्रु को हराते हैं । सत्य के द्वारा हमारा बन्धुत्व स्थिर रहे । घोड़ों की लगाम पृथक करो ॥५॥ [६]

८७ सूक्त

(ऋषि—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वा । देवता—अश्विनौ ।
छन्द—बृहती, पंक्ति)

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥१
पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥२
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥३
पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।

ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥४
आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५
वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥६ ॥१०

हे अश्विनीकुमारो ! यह द्युम्नीक ऋषि नामक स्तोता यज्ञ में संस्कारित हर्ष प्रदायक सोम को छानने वाला है । वर्षा ऋतु में जैसे कुँए पूर्ण हो जाते हैं, वैसे पूर्ण होकर आगमन करो और जैसे हरिण तालाब आदि का पानी पीते हैं, वैसे ही तुम सोम को पिओ ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम इस रस युक्त सिंचित सोम का पान करो । इस यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हुए तुम हवियों सहित सोम को पिओ ॥२॥ हे अश्विनीकुमारो ! जिस यजमान ने तुम्हारे लिए कुश को विस्तृत किया है, उसके द्वारा सम्पन्न हवि के निमित्त प्रातःकाल ही आगमन करो । यह यजमान तुम्हें सब रक्षण-शक्तियों सहित आहूत करते हैं ॥३॥ हे अश्विद्वय ! इस रसमय सोम को पीकर कुशों पर विराजमान होओ । फिर जैसे श्वेत हरिण ताल की ओर गमन करते हैं, वैसे ही बढ़ते हुए तुम हमारी स्तुतियों की ओर आगमन करो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने अश्वों के सहित आगमन करो । तुम दोनों स्वर्णिम रथ युक्त, जल-रक्षक और यज्ञ-वर्द्धक हो । यहाँ आकर सोम पिओ ॥५॥ हे अश्विनीकुमारो ! हम स्तुति करने वाले ब्राह्मण हैं । तुम अनेकों कर्म वाले तथा सुन्दरता से गमन करने वाले हो । हम तुम्हें अन्न प्राप्ति के लिए आहूत करते हैं । तुम हमारे स्तोत्रों के प्रति शीघ्र आगमन करो ॥६॥ (१०)

८८ सूक्त

(ऋषि—नोधा । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्त वाज शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळव
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥४
प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधा ववक्षिथ ॥५
नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥६ ॥११

गौऐं अपने बछड़ों को गोष्ठ में बुलाती है, वैसे ही हम शत्रु हन्ता, दुःख शमन कर्त्ता, सोमपान से प्रसन्न होने वाले तथा दर्शनीय इन्द्र को स्तोत्र पूर्वक आहूत करते हैं ॥१॥ इन्द्र अनेकों का पालन करने वाले, बल से आच्छादित, श्रेष्ठ दानी, स्वर्ग के निवासी हैं। हम उनसे पुत्रादि संतान, सौ सहस्र संख्यक धन तथा गवादि संपन्न अन्न को शीघ्र ही माँगते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! यह विशाल पर्वत भी तुम्हारे कर्म में बाधक नहीं हो सकते। तुम मुझ स्तोता को जो धन देना चाहते हो, उसे अन्य कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम अपने वज्र से शत्रुओं का संहारक कर्म करते हो। तुम अपने बल-कर्म से ही सब वस्तुओं पर अधिकार करते हो। मैं स्तोता देव पूजक हूँ। अपनी रक्षा-कामना करता हुआ मैं तुम्हारी शरण प्राप्त करता हूँ। तुम्हें गौतमों ने प्रकट किया है ॥४॥ हे इन्द्र! तुम आकाश से भी बड़े हो, पृथिवी भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकती। तुम हमारा अन्न प्राप्त करने की कामना करते हुए आओ ॥५॥ हे इन्द्र! तुम जिस हविदाता को धन देते हो, उसमें बाधक कोई नहीं होता। तुम हमारे स्तोत्र को समझते हुए धन को प्रेरित करने वाले और अत्यन्त दान वाले होओ ॥६॥ (११)

८९ सूक्त

(ऋषि-नृमेधपुरुमेधौ। देवता—इन्द्र। छन्द—बृहती, पंक्ति, अनुष्टुप्)

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥१
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥२
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥३
अभि प्र भर धृषता धृषन्मन श्रवश्चित्ते असद् बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥४
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥५
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥६
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥७ ॥१२

हे मरुद्गण ! इन्द्र के पवित्र गुणों को गाओ । विश्वेदेवाओं ने तेजस्वी इन्द्र को इस गान से ही चैतन्य और सूर्य रूप से ज्योतिमान् किया था ॥ १ ॥ इन्द्र स्तोत्र-रहित पुरुषों के नाशक हैं, इन्होंने शत्रुओं के हिंसा कर्मों को नष्ट कर दिया । इसके पश्चात् इन्द्र यशस्वी हुए । हे मरुत्वान् इन्द्र ! तुम्हारी मैत्री को देवताओं ने स्वीकार कर लिया है ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! महान् इन्द्र की स्तुति करो । उन सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ने सौ पर्व वाले वज्र से वृत्र को मारा था ॥३॥ हे इन्द्र ! जब तुम शत्रु को मारने के लिए प्रस्तुत होते हो तब तुम्हारे पास बहुत-सा अन्न होता है । अतः हमको सुन्दर धन प्रदान करो। हमारे मातृ-भूत जल पृथिवी की ओर प्रवाहित हों । तुम स्वर्ग पर अधिकार करो और जल के रोकने वाले वृत्र का वध करो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो । तुम जब वृत्र को मारने के लिए प्रकट हुए तब तुमने पृथिवी को स्थिर किया और आकाश को ऊपर ही रोक दिया ॥५ ॥ उस समय सुन्दर यज्ञ और हर्षदाता मन्त्रों की तुम्हारे निमित्त उत्पत्ति हुई, तब तुमने सब जगत को वश

में किया ॥६॥ हे इन्द्र ! तब तुमने कच्चे दूध वाली गौओं के दूध को परिपक्व किया और सूर्य को आकाश पर चढ़ाया। उन इन्द्र को साम गान द्वारा प्रवृद्ध करो। क्योंकि वे स्तुतियों का सेवन करने वाले हैं ॥७॥ [२२]

९० सूक्त

(ऋषि—नृमेधपुरमेधौ । देवता—इन्द्र. । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥१
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो मह ॥२
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥३
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ।४
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीपी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥५
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥६ ॥१३

इन्द्र सभी संग्रामों में आहूत करने योग्य हैं, वे हमारे स्तोत्र के आश्रित हों। उनकी प्रत्यंचा कभी भी नहीं टूटती, वे वृत्रहन्ता स्तुतियों द्वारा अभिमुख किए जाते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम सब धनदाताओं में प्रमुख हो। हम स्तोताओं को धन से सम्पन्न करो। हम तुम्हारे धन के आश्रय की कामना करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे यथार्थ स्तोत्रों से सुसंगत होओ और उनका सेवन करो। हमारे द्वारा उच्चारित मन्त्रों को ग्रहण करते हुए प्रसन्न होओ ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम सत्य रूप हो। तुम धनवान् हो। तुम किसी के भी वश में नहीं पड़ते। तुमने अनेक राक्षसों को मारा है। हविदाता जिस प्रकार धन प्राप्त कर सके, वैसा करो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम सोम के द्वारा ही तेजस्वी हुए हो। तुमने अकेले

ही अजेय दैत्यों को वज्र से नष्ट किया ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान् और श्रेष्ठ ज्ञानी हो। पैतृक धन-भाग पाने वालों के समान हम तुमसे ही धन माँगते हैं। तुम्हारे यश के अनुरूप ही स्वर्गलोक में तुम्हारा निवास स्थान है। हम तुम्हारे कल्याणों में निःशंक रहें ॥६॥ [१३]

९१ सूक्त

(ऋषि-अपालात्रेयी । देवता—इन्द्रः । छन्द-पंक्तिः, अनुष्टुप्)

कन्या वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥१
असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ॥२
आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३
कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सङ्गमामहै ॥४
इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥५
असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥६
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥७ ॥१४

स्नान के निमित्त जल की ओर गमन करती हुई कन्या ने इन्द्र की प्रसन्नता के लिए सोम को पाया। उसने सोम से कहा—मैं तुम्हें सामर्थ्यवान् इन्द्र के लिए निष्पन्न करती हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम प्रत्येक घर में जाने वाले, अत्यन्त तेजस्वी और वीर हो। तुम उक्थों से युक्त पुरोडाशादि का तथा अभिषुत सोम का सेवन करो ॥२॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें जानना चाहती हैं।

इस समय हम तुमको प्राप्त नहीं करतीं । हे सोम ! तुम इन्द्र के लिए धीरे और फिर वेग से प्रवाहित होओ ॥३॥ वह हमको और अपाला को पूना के लिए सुन्दर वाणी से सम्पन्न करें । वह इन्द्र हमको अनेक बार धन दें । वह हमें अनेक करें । हम पति द्वारा त्यागी जाने से यहाँ आकर इन्द्र से मिलेंगी ॥४॥ हे इन्द्र ! मेरे पिता के मस्तक, खेत और मेरे उदर के पास वाले स्थान, इन तीनों को उत्पादन शक्ति दो ॥५॥ मेरे पिता के मरुस्थल रूप खेत, पिता का केश रहित मस्तक और मेरे शरीर को उर्वर बनाते हुए उन्हें रोम वाले करो ॥६॥ वे इन्द्र सैकड़ों कर्म वाले हैं, इन्होंने अपने रथ के बड़े छेदों, गाड़ी के छेदों और जोड़ों को अपनयन द्वारा शुद्ध करके अपाला को सूर्य के समान तेजस्विनी बना दिया ॥७॥ [१४]

९२ सूक्त

(ऋषि—श्रुतकक्ष सुकक्षो वा । देवता—इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री)

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठ चर्षणीनाम् ॥१
पुरुहूत पुरुष्टुत गाथान्यं सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२
इन्द्र इन्नो महाना दाता वाजाना नृतु । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३
अपादु शिप्र्यन्धस. सुदक्षस्य प्रहोषिण इन्दोरिन्द्रो यवाशिर ॥४
तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये । तदिद्धयस्य वर्धनम् ॥५ ॥१५

ऋत्विजो ! सोम पीने वाले इन्द्र की स्तुति करो । वे सब को वश में करने वाले, सैंकड़ों कर्म वाले और सब से अधिक धन प्रदान करने वाले हैं ॥१ तुम अनेकों द्वारा आहूत, अनेकों से स्तुत, गायन के पात्र देवता को सनातन इन्द्र कहो ॥२॥ इन्द्र हमको धन देने वाले, अन्नदाता और सब के नचाने वाले हैं । वे महान् हमारे अभिमुख आकर धन प्रदान करें ॥३॥ सुन्दर मुकुट धारी इन्द्र ने जौ से युक्त सोम का भले प्रकार पान किया ॥४॥ यह सोम इन्द्र को बढ़ाने वाला है, अत सोम पीने के लिए इन्द्र से प्रार्थना करो ॥५॥ [१५]

अस्य पीत्वा मदाना देवो देवस्योजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ॥६

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥७
युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥८
शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥९
अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥१०।१६

वह इन्द्र सोम के हर्षदायक रस का पान कर बली होते और सब लोकों को वश में कर लेते हैं ॥६॥ हे स्तोताओ ! तुम्हारे स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध और विश्व के नचाने वाले इन्द्र को ही अपनी रक्षा के लिए आहूत करो ॥७॥ इन्द्र के कर्मों में कोई बाधक नहीं हो सकता । उन्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता क्योंकि वे सोम पीने वाले, सब के नेता और राक्षसों के लिए दुर्धर्ष हैं ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी और स्तुतियों द्वारा सम्बोधनीय हो । शत्रु से छीन कर हमको अनेक बार धन प्रदान करो । शत्रु के उस धन से हमारा पालन करो ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग से ही सहस्रों गुणा अन्न और बलों के सहित यहाँ आओ ॥१०॥ [१६]

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥११
वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥१२
विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो । अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥१३
त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः । न त्वमिन्द्राति रिच्यते ॥१४
स नो वृषन्त्सनिष्ठया स घोरया द्रवित्न्वा ।
धियाविड्ढि पुरन्ध्या ॥१५ ॥१७

हे इन्द्र ! हम कर्मवान् हैं । संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए हम कर्म करेंगे और घोड़ों के द्वारा युद्ध को जीतेंगे ॥११॥ गौओं का स्वामी जैसे घास से गौओं को तृप्त करता है, वैसे ही हे इन्द्र ! हम तुम्हें उक्थादि के द्वारा हर प्रकार तृप्त करते हैं ॥१२॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! सब संसार ही कुछ न कुछ कामना करता है, उसी प्रकार हम भी धनादि की कामना करते हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! अपने अभीष्ट के प्रति आर्त्त हुए पुरुष ही तुमको आश्रित करते हैं, अतः कोई भी देवता तुम्हारा उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! सब

के अतिरिक्त तुम ही अधिक धन देते हो। तुम धन से हमारा भी पालन करो, क्योंकि तुम अनेकों का पालन करने में समर्थ हो और विकराल शत्रुओं को भी नष्ट कर देते हो ॥१५॥ (१७)

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मद । तेन नूनं मदे मदेः ॥१६
यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तम. । य ओजोदातमो मद. ॥१७
विद्मा हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सोमपा. । विश्वासु दस्म कृष्टिपु ॥१८
इन्द्राय मद्वने सुत परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।

इन्द्रं सुते हवामहे ॥२० ॥१८

हे इन्द्र ! प्राचीन काल में हमने जिस सोम को तुम्हारे लिए संस्कृत किया था उसके द्वारा हर्षित हुए तुम हमें आज भी हर्ष प्रदान करो ॥१६॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा मद विभिन्न यशों से सम्पन्न है, इसलिए हमने जिस सोम का अभिषव किया है वह सर्वाधिक बलप्रद और पाप नाशक है ॥ १७ ॥ हे वज्रिन् ! हे सोमपायें ! तुमने जो धन सब मनुष्यों को दे रखा है, हम उसे ही जानते हैं ॥१८॥ हमारे स्तोत्र इन्द्र के हर्ष के लिए सोम की स्तुति करें। स्तुति करने वाले, सोम की भले प्रकार पूजा करें ॥१९॥ जिन इन्द्र में सभी तेज विद्यमान हैं, जिनमें सात होता सोम देने के लिए तत्पर रहते हैं, सोम के संस्कृत होने पर हम उन इन्द्र को आहूत करते हैं ॥२०॥ (१८)

निकद्रुकेपु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते २२
विव्यक्थ महिना वृपन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेपु ते ॥२३
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥२४
अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥२५
अरं हि ष्मा सुतेपु णः सोमेष्विन्द्र भूपसि । अरं ते शक्र दावने ।२६।१९

हे देवताओ ! तुमने त्रिकद्रुक के लिए ज्ञान का साधन करने वाले यज्ञ

को विस्तृत किया.समारे स्तोत्र उस यज्ञ को बढ़ावें ॥२१॥ नदियाँ जैसे समुद्र में प्रवेश करती हैं, वैसे ही यह सोम तुम्हारे शरीर में प्रवेश करें। हे इन्द्र ! तुम्हारा कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट पूरक और चैतन्य हो। तुम अपने बल से सोम को व्याप्त करते हो, वह सोम तुम्हारे पेट में पहुँचता है ॥२३॥ हे इन्द्र ! यह सिंचित होने वाला सोम तुम्हारे देह में यथेष्ट रूप से पहुँचे ॥२३॥ मैं श्रुतकक्ष अश्व पाने के लिए इन्द्र के गृह का गुण गाता हूँ ॥ २५ ॥ हे इन्द्र ! सोम अभिषुत होने पर वह तुम्हारे लिए यथेष्ट हो, तुम धन देने वाले हो ॥२६॥ [१९]

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः । अरं गमाम ते वयम् ॥२७
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥२८
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥२९
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३०
मा न इन्द्राभ्या दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् । त्वा युजा वनेम तत् ॥३१
त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥३२
त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ॥३३ ॥२०

हे वज्रिन् ! यदि तुम दूर हो तो भी हमारे स्तोत्र तुम्हारे पास पहुँचें, जिससे हम स्तोता तुमसे धन पा सकेंगे ॥२७॥ हे इन्द्र ! तुम वीर कर्म से सम्पन्न हो। तुम वीरों की कामना करते हो। हम तुम्हारे मन के उपासक हों ॥२८॥ हे इन्द्र ! तुम धन से सम्पन्न हो। तुम मेरी सहायता करो। सभी यजमानों के पास तुम्हारा धन है ॥२९॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न के स्वामी हो। तुम निद्रामग्न स्तोता के समान मत हो जाना। तुम दुग्ध मिश्रित सोम को पीकर हर्ष प्राप्त करना ॥३०॥ हे इन्द्र ! बाण फेंकने वाले राक्षस रात्रि में हमको बाधा न दें। हम तुम्हारी सहायता से उन्हें मारेंगे ॥ ३१ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी सहायता से शत्रुओं को भगा देंगे, क्योंकि हम स्तोता तुम्हारे ही हैं ॥३२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी कामना करने वाले बंधु रूप स्तोता बारम्बार स्तुतियाँ करते हुए तुम्हें पूजते हैं ॥३२॥ [२०]

९३ सूक्त

(ऋषि–सुकक्ष । देवता – इन्द्रः, ऋभवश्च । छन्द—गायत्री)

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥४
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्सत्यमित्तव ॥५ ॥२१

हे इन्द्र ! तुम यशस्वी, धन सम्पन्न, अभीष्ट पूरक हो। तुम यजमान के चारों ओर प्रकट होते हो ॥१॥ जिन इन्द्र ने असुरों के निन्यानवे पुरों को तोड़ा और मेघ को विदीर्ण किया ॥२॥ वे इन्द्र हमारे लिए गौ, अश्व, औ आदि से सम्पन्न धन का पयस्विनी गौओं के समान दोहन करें ॥ ३ ॥ हे सूर्यात्मक इन्द्र ! सभी पदार्थ सामने प्रकट हुए हैं। यह अखिल विश्व तुम्हारे वश में है ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम अपने को अविनाशी मानते हो, यह बात यथार्थ ही है ॥५॥ [२१]

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥६
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥७
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥८
गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥९
दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं च मघवन् वशः ॥१० ॥२२

जो सोम पास या दूर कहीं भी उत्पन्न हुए हैं, तुम उन सब के अभिमुख होते हो ॥ ६ ॥ हम वृत्र नाश के लिए इन्द्र को ही बली बनायेंगे। हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट प्रदान करने वाले हो ॥ ७ ॥ धन दान के निमित्त ही इन इन्द्र को प्रजापति ने रचा है। ये सोम के पात्र, यशस्वी और ओजस्वी हैं ॥८

स्तुतियों से प्रवृद्ध हुए इन्द्र धन आदि के वहन करने में तत्पर होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम हम पर अनुग्रह करते हो तब दुर्गम पथ को भी सुगम कर देते हो ॥१०॥ [२२]

यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् । न देवो नाध्रिगुर्जनः ११
अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदसी ॥१२
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत् पयः ॥१३
वि यदहेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य ताँ अमः ॥१४
आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् । अजातशत्रुरस्तृतः ॥१५ ॥२३

हे इन्द्र ! तुम्हारे बल और शासन की आज तक कोई हिंसा नहीं कर सका । देवता और रणकुशल वीर भी तुम्हारा नाश नहीं कर सकते ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! आकाश और पृथिवी दोनों ही तुम्हारे दुर्धर्ष बल को पूजती हैं ॥१२ हे इन्द्र ! तुम कृष्ण या लोहित वर्ण वाली गौओं को उज्ज्वल दूध से पूर्ण करते हो ॥१३॥ जब सभी देवता वृत्र के डर से भाग खड़े हुए और उसके तेज के सामने न रुक सके उस समय इन्द्र ने ही वृत्र को मारा । उन्होंने ही अपने पौरुष से उसे जीता ॥१४–१५॥ [२३]

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्ध चर्षणीनाम् । आ शुषे राधसे महे ॥१६
अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभवः ॥१७
बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥१८
कया त्वन्न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१६
कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत् । वृत्रहा सोमपीतये ।२०।२४

हे ऋत्विजो ! उन वृत्रहन्ता इन्द्र की स्तुति करने के पश्चात् में तुम्हें इच्छित धन प्रदान करूँगा ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा अनेकों नामों से पूजे गए हो । तुम प्रत्येक सोम-पान में जाते हो, तब हम गौओं की कामना वाली बुद्धि से युक्त होते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारी इच्छाओं को जानो । हमारे आह्वान को सुनो ॥१८॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । तुम किस सेवा द्वारा हम स्तोताओं को धन देते हुए

हर्षित करोगे ॥ १६ ॥ वे वृत्रहन्ता, काम्य वर्षक, मरुत्वान् इन्द्र सोम-पान के लिए किस के यज्ञ में रमण करते हैं ॥२०॥ [२४]

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दमानः सहस्रिणम् । प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥२१
पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये । अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥२२
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥२३
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२४
तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥२५ ॥२५

हे इन्द्र ! तुम हविदाता को नियुक्त करने वाले हो। अत हर्ष प्राप्त होने पर हमको सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान करो ॥२१॥ इस जल युक्त सोम का अभिषव किया गया है। इन्द्र के पीने की कामना करता हुआ सोम इन्द्र की ओर गमन करता है। जब इन्द्र उसे पी लेते हैं तब वह उन्हें हर्षित करता है ॥२२ यज्ञ के बढ़ाने वाले सात होता यज्ञ की समाप्ति पर इन्द्र का विसर्जन करते हैं ॥२३॥ इन्द्र के स्वर्ण केश वाले हर्यश्व इन्द्र के साथ ही हर्ष युक्त होने वाले हैं, यह इन्द्र को अन्न की ओर लेकर आवें ॥२४। हे अग्ने ! यह सोम तुम्हारे लिए संस्कृत हुआ है, यहाँ कुशों का आसान भी बिछा दिया गया है, अतः सोम पानार्थ इन्द्र को आहूत करो ॥२५॥ [२५]

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे । स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥२६
आ ते दधामेन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृलय ॥२७
भद्रम्भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२८
स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२९
त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३० ॥२६

हे यजमानो ! हवि-दान के लिए इन्द्र तुम्हें धन दें। स्तोताओं को इन्द्र रत्नादि प्रदान करें। अतः इन्द्र की स्तुति करो ॥२६॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त सुवीर्य सोम और सुन्दर स्तोत्रों को सम्पादित करते हैं, तुम स्तोताओं को सुख दो ॥२७॥ हे इन्द्र ! तुम हमको सुख देना चाहते हो तो अन्न और

बल के सहित हमारा मंगल करो ॥२८॥ हे इन्द्र ! तुम हमारा कल्याण करना चाहते हो तो सभी सुखों को यहाँ ले आओ ॥२९॥ हे इन्द्र ! तुम हमें सुखी करना चाहते हो अतः हम संस्कृत सोम से सम्पन्न होकर तुम्हें आहूत करते हैं ॥३०॥ [२६]

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३१
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभः सुतम् ॥३२
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३३
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥३४ ॥२७

हे इन्द्र ! अपने हर्यश्वों से हमारे सोम के समीप आगमन करो ॥३१॥ इन्द्र वृत्रहन्ता, सैकड़ों कर्म वाले और सर्व श्रेष्ठ हैं, वे दो तरह जाने जाते हैं। हे इन्द्र ! तुम हमारे सोम के समीप आगमन करो ॥ ३२ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम के पीने वाले हो, अतः हर्यश्वों के सहित हमारे सोम के पास आगमन करो ॥३३॥ जो ऋभु अविनाशी और अन्न प्रदान करने वाले हैं, इन्द्र उन्हें और उनके वाज नामक भ्राता को हमें दें ॥३४॥ [२७]

९४ सूक्त (दशवाँ अनुवाक)

(ऋषि-बिन्दुः पूतदक्षो वा । देवता-मरुतः । छन्द—गायत्री)

गोर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥१
यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् ॥२
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ॥३
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ।
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥
उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ।६ ।२

मरुद्गण की माता धेनु अपने पुत्रों को सोम पिलाती है, वह पू धेनु मरुद्गण को रथ में लगाती और अन्न की कामना करती है ॥ १ ॥ स

देवता गौ के शृङ्ग में निवास करते हुए अपने कर्मों में लगते हैं। सूर्य, चन्द्रमा भी इनके पास रहते हुए सब लोकों को प्रकाशित करते हैं ॥ २ ॥ हमारे स्तुति करने वाले विद्वान् सोम पीने के लिए मरुद्गण से निवेदन करते हैं ॥ ३ ॥ मरुद्गण और अश्विनीकुमार इस अभिषुत सोम-रस को आदर पीवें ॥ ४ ॥ मित्र, अर्यमा, वरुण छन्ने द्वारा छने हुए और तीन स्थानों में स्थापित इस सोम को पीवें ॥५॥ अभिषुत और दुग्धादि मिश्रित सोम की इन्द्र प्रातः सवन में होता के समान प्रशंसा करते हैं ॥६॥ [२८]

कद्धत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः । अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥७

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥८

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः । मरुतः सोमपीतये ॥९

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥१०

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥११

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥१२।२९

वे मेधावी मरुद्गण वक्र गति से कब प्रकट होंगे ? वह शत्रुओं का नाश करने वाले, हमारे यज्ञ में कब आगमन करेंगे ? ॥ ७॥ हे मरुद्गण ! तुम तेजस्वी, महान् और दीप्त हो, मैं तुम्हें कब पुष्ट करूँगा ? ॥८॥ जिन मरुद्गण ने पृथिवी के सब पदार्थों और आकाश की ज्योतियों को समृद्ध किया है, मैं उन्हें सोम पीने के लिए आहूत करता हूँ ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम शुद्ध बल वाले हो और तेजस्वी हो। इस सोम को शीघ्र पीने के लिए मैं तुम्हें आहूत करता हूँ ॥ १० ॥ जिन मरुद्गण ने आकाश पृथिवी को स्थिर किया है, मैं उन्हें सोम पीने के लिए आहूत करता हूँ ॥११॥ जो मरुद्गण पर्वत पर अवस्थित, वृष्टि जल से सम्पन्न और सब ओर से विस्तृत हैं, मैं उन्हें सोम पीने के लिए आहूत करता हूँ ॥१२॥ (२९)

९५ सूक्त

(ऋषि-तिरश्चीः । देवता-इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप्)

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातर ॥१
आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्व स्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥२
पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥३
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥४
इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥५ ॥३०

हे इन्द्र ! तुम स्तुत्य हो । हमारे स्तोत्र रथी के समान तुम्हारी ओर जाते हैं । गौएं अपने बछड़ों को देख कर जैसे शब्द करती हैं, वैसे सोम के अभिषुत होने पर हमारे स्तोत्र तुम्हारा स्तव करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुत्य हो । पात्र स्थित सोम तुम्हारी ओर गमन करें । तुम इस सोम रस का पान करो । चरु पुरोडाश आदि यहाँ सब ओर स्थिति हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! पक्षी रूप वाली देवी इस सोम को स्वर्ग से लाई थी, तुम सब देवताओं और मरुतों के स्वामी, उस सोम रस को पिओ ३॥ हे इन्द्र ! हवि द्वारा पूजन करने वाले मुझ तिरश्ची का आह्वान सुनो, तुम हमको सुन्दर पुत्र, गौ आदि से सम्पन्न धन देकर हमको ऐश्वर्यवान् बनाओ ॥४॥ तुम्हारे लिए हर्षप्रद नवीन स्तोत्र जिस यजमान ने रचा है, उसकी रक्षा के लिए अपने बुद्धिकारक, सत्य से ओतप्रोत और सनातन कार्यों को करो ॥५॥ (३०)

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥६
एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥७
इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥८

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥९ ॥३१

जिन इन्द्र ने हमारे स्तोत्र और उक्थ को बढ़ाया है, हम उनका स्तव करते हैं। उनके अनेक बलों को उपभोग करने के लिए उनसे माँगेंगे ॥ ६ ॥ हे ऋषियो ! यहाँ आओ । साम-गान और उक्थों द्वारा हम इन्द्र की पूजा करेंगे और निष्पन्न सोम के द्वारा इन्द्र को हर्षित करेंगे ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम पवित्र हो । अपने रक्षा-साधनों और मरुद्गण के सहित आगमन करो। तुम सोम पीने के पात्र हो अत यहाँ आकर हर्षयुक्त होओ और हमको धन में प्रतिष्ठित करो ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम पवित्र हो । हमको धन प्रदान करो । हविदाता को भी रत्नादि धन दो । हे वृत्रहन्ता ! तुम हमको अन्न प्रदान की कामना करते हो । तुम पवित्र हो ॥९॥   (३१)

९६ सूक्त

(ऋषि-तिरश्चीर्द्युतानो वा मारुतः । देवता—इन्द्रः, मरुतश्च, इन्द्राबृहस्पती । छन्द- त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥१
अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥२
इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥३
मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥४
आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥५ ॥३२

उषाओं ने इन्द्र के भय से अपनी गति को शीघ्र किया है। इंद्र के लिए सब रात्रियाँ आगामी रात्रियों के लिए सुन्दर वाणी वाली होती हैं। गंगा

आदि सातों नदियाँ इन्द्र के लिए सर्वव्यापिनी होती हुई, सरलता से पार लगाने वाली होती हैं ॥१॥ इन्द्र ने बिना किसी की सहायता प्राप्त किये इक्कीस पर्वतों को विदीर्ण किया। उन अभीष्टदाता इन्द्र के जैसा पराक्रम कोई भी मनुष्य या देवता नहीं कर सकते ॥ २ ॥ इन्द्र का लौह-चक्र उनके बलवान हाथ में सुशोभित है। इन्द्र जब संग्राम में जाते हैं, तब उनके सिर पर मुकुट आदि रहते हैं। इन्द्र के आदेश के लिए सब उनके सम्मुख उपस्थित होते हैं ॥३॥ हे इन्द्र! तुम यज्ञ पात्र हो, तुम पर्वतों के तोड़ने वाले हो, तुम सेनाओं में विजय-पताका रूप हो और तुम मनुष्यों को इच्छित प्रदान करते हो, ऐसा मैं समझता हूँ ॥४॥ हे इन्द्र! जब तुम वृत्र के हननार्थ वज्र ग्रहण करते हो, जब तुम शत्रुओं का अहंकार नष्ट करते हो जब मेघ और जल शब्दवान् होते हैं, तब इन्द्र के चारों ओर स्थित स्तोतागण इन्द्र का पूजन करते हैं ॥५॥ (३२)

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥६
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वा पृतना जयासि ॥७
त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥८
तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥९
मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥१० ॥३३

जिन इन्द्र के पश्चात् सब संसार उत्पन्न हुआ, जिन इन्द्र ने सब प्राणियों की रचना की, उन इन्द्र को स्तुति के द्वारा ही हम अपना सखा बनायेंगे। हम उन अभीष्ट के देने वाले इन्द्र को नमस्कार द्वारा अपने अभिमुख करेंगे ॥६॥ हे इन्द्र! जो विश्वेदेवा तुम्हारे मित्र हुए थे, वे वृत्र के श्वास लेते ही डर कर भाग खड़े हुए। उन्होंने तुम्हें अकेला ही छोड़ दिया। जब

तुमने मरुद्गण से मित्रता की तब तुमने शत्रु-सेनाओं पर विजय प्राप्त की ॥७ हे इन्द्र ! मरुद्गण ने गौओं के समूह के समान एकत्र होकर तुम्हें बढ़ाया था। इसीलिए वे उपास्य हुए। हम उन्हीं इन्द्र का आश्रय लेंगे। हे इन्द्र ! तुम हमको महान् बल प्रदान करो। हम भी तुम्हारे लिए शत्रु-नाशक शक्ति प्रदान करेंगे ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी सेना यह मरुद्गण हैं। तुम्हारे आयुध तीक्ष्ण हैं। तुम्हारे वज्र को व्यर्थ करने में समर्थ कौन है ? हे सोमवान् इन्द्र ! देवताओं के विद्वेषी राक्षसों को चक्र से नष्ट कर डालो ॥ ९ ॥ हे स्तोताओ ! उन अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र की पशु प्राप्ति के लिए स्तुति करो। इन्द्र स्तुतियों के पात्र हैं, वह हमारे पुत्र के लिए यथेष्ट धन प्रेरित करें ॥१०॥ (३३)

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥११
तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥१२
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥१५ ॥३४

हे स्तोताओ ! इन्द्र मन्त्रों द्वारा प्रकट होते हैं, उनके निमित्त नदी से पार करने वाली नाव के समान स्तुति करो। वह इन्द्र हमको धन दें और हमारे पुत्र को भी धन प्राप्ति करावें ॥११॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र के लिए सुन्दर स्तुति करो। वह जो कामना करते हैं, वैसा करो। तुम अपनी दरिद्रता के लिए शोक न करो, स्वस्थ मन से इन्द्र की स्तुति करो, वह तुम्हें यथेष्ट धन प्रदान करेंगे ॥१२॥ कृष्णासुर अपने दश सहस्र सैनिकों के सहित अंशुमती के किनारे निवास करता था, उसे अपनी बुद्धि के बल से इन्द्र ने प्राप्त कर लिया

और मनुष्यों का हित करने के लिए इन्द्र ने उसकी सेनाओं को नष्ट कर दिया ॥१३॥ उस समय इन्द्र ने कहा था—"कृष्णासुर को मैंने देख लिया है, वह अंशुमती के तट पर बने खारों में घूमता है। हे कामनाओं के देने वाले मरुद्गण ! मेरी इच्छा है कि तुम संग्राम में उसे मार डालो ॥१४॥ अंशुमती के किनारे द्रुतगामी कृष्णासुर तेजस्वी होकर रहता है। उसके सहित, उसकी सब सेना को इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से मार डाला ॥१५॥ (३४)

त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धा ॥१६
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥१७
त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥१८
स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥१९
स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत्तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥२०
स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।
कृण्वन्नपांसि नर्या पुरूणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥२१ ॥३५

हे इन्द्र ! तुम परम पराक्रमी हो। तुमने उत्पन्न होते ही कृष्ण, वृत्र पणि, शुष्ण, शम्बर, नमुचि आदि सात असुरों से शत्रुता की थी। तुमने अन्धकार से पूर्ण आकाश-पृथिवी को व्याप्त किया था। तुम मरुद्गण सहित लोक-कल्याण के लिए आनन्द को धारण करते हो ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुमने रण-कुशल होते हुए शुष्ण के भीषण बल को अपने वज्र से नष्ट कर दिया। राजर्षि कुत्स के लिए तुमने ही उसे औंधे मुख गिरा कर मार दिया और तुम्हीं ने अपने पराक्रम से गौओं को प्रकट किया ॥१६॥ हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों को प्राप्त होने वाले उपद्रवों को दूर करने के लिए ही वृद्धि को प्राप्त हुए हो। रोकी हुई नदियों को तुमने ही प्रवाहित करने को मुक्त किया, फिर दस्युओं द्वारा

वश किए जल को तुमने अधिकार में कर लिया ॥ १८ ॥ वे सुन्दर बुद्धि वाले इन्द्र संस्कारित सोम को पीने के लिये उत्साहित होते हैं। वह दिन के समान ऐश्वर्यशाली हैं। इनके क्रोध को सह सकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। वे वृत्रहन्ता और सब शत्रु-सेनाओं के नष्ट करने वाले हैं ॥१६॥ इन्द्र मनुष्यों का पालन करने वाले, आह्वान के पात्र और वृत्रहन्ता हैं। हम उन्हें अपने यज्ञ में सुन्दर स्तुतियों द्वारा आहूत करते हैं। वह ऐश्वर्यवान्, हमारे रक्षक और यश प्रदान करने वाले हैं ॥ २० ॥ उत्पन्न होते ही इन्द्र आह्वान के पात्र होगए। उन्होंने वृत्र को मारा और मनुष्यों के हित के लिए अनेक कार्य किए। इसीलिए वह मित्रों द्वारा आह्वान के पात्र हुए ॥२१॥ [१२]

६७ सूक्त

(ऋषि–रेभः काश्यपः। देवता–इन्द्रः। छन्द–बृहती, अनुष्टुप्, जगती)

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥१
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥२
य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥३
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥४
यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि।
यत्पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि ॥५ ॥१३

हे इन्द्र ! तुमने राक्षसों से जो उपभोग्य धन प्राप्त किया है उससे स्तोता का पोषण करो। हे सुख सम्पन्न इन्द्र ! यह कुश तुम्हारे लिए बिछाए गए हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पास गौ, अश्व आदि स्थायी धन है, वह सब इस सोमाभिषवकर्त्ता और दक्षिणादाता यजमान को प्रदान करो। तुम अपने उस धन को पणि जैसे अयाज्ञिक को मत दे देना ॥२॥ हे इन्द्र ! देवताओं की

कामना न करने वाला जो अनाचारी उन्मत्त होता है, वह अपने ही कर्म से अपनी सम्पत्ति को नष्ट कर डालेगा। तुम उसे कर्म से रहित स्थान में स्थापित करो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र जैसे भयंकर शत्रुओं के संहारक हो। तुम्हें दूर या पास, जहाँ भी हो, वहीं इस स्तोत्र से सोम-सम्पन्न यजमान यज्ञ में बुलाता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम दमकते हुए सूर्य मंडल में निवास करते हो। तुम पृथिवी, अन्तरिक्ष या समुद्र में जहाँ कहीं भी हो, वहीं से आगमन करो ॥५॥ [३६]

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते ।
मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा ॥६
मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्यः ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥७
अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधुः ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥८
न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वाः जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥९
विश्वा पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१० ॥३७

हे बल के स्वामी इन्द्र ! तुम सोम-पान करने वाले हो। तुम सोम के अभिषुत होने पर बल को साधन रूप अन्न देकर हमें संतुष्ट करो ॥६॥ हे इन्द्र ! हमारा त्याग न करना। तुम हमारे साथ सोम पीकर हर्ष को प्राप्त होओ। तुम ही हमारे निकटस्थ बंधु हो, अतः हमको अपनी रक्षा में स्थित करो, हमारा त्याग मत कर देना ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सोम के अभिषुत होने पर इस हर्ष प्रदायक सोम को पीने के लिए हमारे साथ बैठो और इस स्तोता को अपनी दृढ़ रक्षा दो ॥८॥ हे वज्रिन् ! कोई भी देवता या मनुष्य तुम्हें व्याप्त नहीं कर सकता। तुमने अपने बल से सभी प्राणियों को वशीभूत किया हुआ है ॥९॥ शत्रुओं को जीतने वाले इन्द्र को सब सेनाएं आयुध

आदि से सुसज्जित करती हैं। स्तोतागण यज्ञ में सूर्यात्मक इन्द्र को प्रकट करते हैं। यह इन्द्र कर्म से बली, शत्रु-संतापक, उग्र, प्रवृद्ध, वेगवान् और तेजस्वी हैं, धन के निमित्त सब स्तोता उनका स्तव करते हैं ॥१०॥ [३७]

समी रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥११
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥१२
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा
कृणोतु वज्री ॥१३
त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४
तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥१५॥३८

रेभ नामक ऋषि ने सोम पीने के लिए इन्द्र का आह्वान किया था। जब इन्द्र को प्रवृद्ध करने के लिए स्तोत्र किये जाते हैं, तब पुष्टि और बल के द्वारा इन्द्र उन्हें प्राप्त होते हैं ॥११॥ कश्यप वंशी रेभ इन्द्र को देखते ही प्रणाम करते हैं, विद्वज्जन उन मेढ़ के समान इन्द्र की पूजा करते हैं, हे स्तोताओ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो अतः इन्द्र के कानों में अपने स्तुति मंत्रों को गुंजित करो ॥१२॥ मैं सत्य बल वाले, धनेश्वर, विकराल और दुर्धर्ष इन्द्र को आहूत करता हूँ। वे वज्रधारी हमारे धन-प्राप्ति के मार्गों को सरल करें और हमारी स्तुतियों से यज्ञ में आवें ॥१३॥ हे इन्द्र! तुम शत्रु को नष्ट करने में समर्थ हो। तुम ही अपने बल से शम्बर के पुरों को नष्ट करने के लिए जानते हो। हे वज्रिन्! तुम्हारे भय से आकाश और पृथिवी भी काँपते हैं ॥१४॥ हे इन्द्र! तुम बलवान हो। तुम्हारे सत्य के द्वारा मेरी रक्षा हो। हे वज्रिन्! जैसे मल्लाह जल से पार करता है, वैसे ही मुझे पापों से पार करो। तुम

हमारे लिए विभिन्न रूप वाला अभीष्ट धन कब दोगे ? ॥१२॥ (३८)

६८ सूक्त

(ऋषि–नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द–उष्णिक्)

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ।१
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।२
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३
एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ।४
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥४
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिव ।६ ।१

हे उद्‌गाताओ ! स्तोत्र की कामना करने वाले मेधावी इन्द्र के लिए बृहत् स्तोत्र को गाओ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को वश में करने वाले, सब के देवता, सब से बढ़े हुए और जगत के रचयिता हो । तुमने ही आदित्य को अपने तेज से प्रकाशमान किया है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम ज्योति के द्वारा सूर्य को प्रकाशमान करते हो । तुम्हारी मित्रता के लिए सभी देवता उत्सुक हुए थे । तुमने ही स्वर्ग को दैदीप्यमान किया था ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब महान् व्यक्तियों को भी वश में करने वाले हो । तुम्हें कोई छिपा नहीं सकता । तुम सर्व व्याप्त और स्वर्ग के अधिपति हो । हमारे यहाँ आगमन करो ॥ ४ ॥ हे सोमपाये ! तुमने आकाश-पृथिवी को जीता है तुम स्वर्ग के भी स्वामी हो । अभिषवकर्त्ता तुम्हारी कृपा से ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के अनेक नगरों को ध्वंस करने वाले हो । तुम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हो । तुम यजमानों के बढ़ाने वाले और स्वर्ग के स्वामी हो ॥६॥ [१]

अधा ह्यिन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ॥७

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥८

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।

इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥९

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।

आ वीरं पृतनाषहम् ॥१०

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

अधा ते सुम्नमीमहे ॥११

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥१२॥२

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों के पात्र हो जैसे क्रीड़ा के लिए जल उछाला जाता है, वैसे ही हम तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोम प्रेरित करते हैं ॥७॥ हे वज्रिन् ! जैसे नदियाँ जल के स्थान को विस्तृत करती हुई बढ़ती हैं, वैसे ही बढ़ते हुए स्तोता तुम्हें नित्य प्रति स्तोत्रों से बढ़ाते हैं ॥८॥ इन्द्र के दो घोड़ों वाले रथ में कथन मात्र से युक्त होने वाले दो हरित् अश्व इन्द्र को वहन करते हैं। स्तोता उन्हें स्तोत्रों द्वारा संयोजित करते हैं ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रु की पराक्रमी सेना के विजेता, रण कुशल एवं अनेक कर्म वाले हो। तुम हमको धन और बल प्रदान करो ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे लिये पिता के समान रक्षक और माता के समान पुष्ट करने वाले होओ। फिर हम तुमसे अपने लिए सुख माँगेंगे ॥११ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा बुलाए गए हो। मैं भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ। मुझे वीर्यवान् ऐश्वर्य प्रदान करो ॥१२॥ [२]

९९ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१

यत्वा गुर्षिप्र हरिवस्तदीगहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२
आयन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥३
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥४
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥५
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं होतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥७
इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम् ।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥८ ॥३

हे वज्रिन् ! हवियों से पालन करने वाले नेताओं ने तुम्हें सोम पिलाया है, तुम इस यज्ञ में हम स्तोताओं की प्रार्थना सुनो और यहाँ आओ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे उपासक सोम को अभिषुत करते हैं, उसे पीकर हर्ष प्रदान करो । अभिषव के पश्चात् तुम्हारे अन्न विस्तृत हों हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥२॥ यजमानो ! सूर्य की आश्रित रश्मियाँ सूर्य की कामना करती हैं, वैसे ही तुम भी सूर्य के समस्त धनों की कामना करो । इन्द्र सब प्रकार के धनों को हम पैतृक सम्पत्ति के समान प्राप्त करेंगे ॥३॥ इन्द्र पाप-शून्य व्यक्ति को ही धन देते हैं, उनका दान कल्याण का वहन करने वाला है । सेवक की आशा को नष्ट न करते हुए वह उसे इच्छित प्रदान करते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के लिए विघ्न रूप हो । तुम उनकी सेनाओं को वश में करते हो । तुम दैत्यों का नाश करने वाले एवं महान् हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! माता जैसे बालक के पीछे चलती है, वैसे ही आकाश पृथिवी तुम्हारे बल को हिंसित

करने वाले शत्रु के पीछे चलती है। तुम वृत्र के मारने वाले हो, इसलिए युद्ध करने वाली सब सेनाएं तुम्हारे क्रोध के भयभीत होती हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र श्रेष्ठ रथी हैं। वे गमनशील, जल वर्द्धक, शत्रु प्रेरक और अहिंसक हैं। उन्हें अपनी रक्षा के लिए आगे बढ़ाओ ॥७॥ शत्रुओं के शोधक, अन्य द्वारा वश न आने वाले, सैकड़ों यज्ञ वाले तथा धन को आच्छादित करने वाले इन्द्र को अपनी रक्षा की कामना करते हुए आहूत करते हैं ॥८॥ [२]

१०० सूक्त

(ऋषि-नेमो भार्गव । देवता-इन्द्र, वाक् । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्)

अय त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥१
दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भाग सुतो अस्तु सोम ।
असश्च त्वं दक्षिणत सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥२
प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्य यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥३
अयमस्मि जरित पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥४
आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्त सखाय ॥५
विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावत यत्पुरुसम्भृत वस्वपावृणो शरभाय ऋषिबन्धवे ॥६ ॥४

हे इन्द्र ! शत्रु पर विजय पाने के लिये मैं अपने पुत्र के सहित तुम्हारे आगे आगे चल रहा हूँ। सब देवता मेरे पीछे चल रहे हैं। हे इन्द्र ! मुझे पराक्रम दो, क्योंकि तुम शत्रु के धन का भाग मुझे देना चाहते हो ॥१॥ हे इन्द्र ! यह हर्ष प्रदायक सोम तुम्हारे लिए देता हूँ, यह तुम्हारे हृदय में

व्याप्त हो। तुम मेरे मित्र होते हुए दाँये हाथ के समान होओ, फिर हम दोनों मिलकर राक्षसों को नष्ट कर देंगे ॥२॥ हे रणाकांक्षियो! तुम इन्द्र की सत्ता को सत्य मानते हो तो उनके लिए सत्य रूप सोम कहो। भृगु कुलोत्पन्न नेम ऋषि कहते हैं कि इन्द्र किसी का नाम नहीं है, इन्द्र को किसी ने भी नहीं देखा, फिर हम किसका स्तव करें ॥ ३ ॥ हे स्तुति करने वाले नेम ऋषि! मैं इन्द्र तुम्हारे समीप आ गया मैं अपनी महिमा से विश्व को अभिभूत करता हूँ। सत्य यज्ञ के देखने वाले मुझे बढ़ाते हैं। मैं सब लोकों का विदारण करने वाला हूँ ॥४॥ जब यज्ञ की कामना वालों ने मुझे अकेले ही स्वर्ग पर आरूढ़ किया था, तब उन्हीं के मन ने मुझे संदेश दिया कि मेरे पुत्रवान् स्नेही मेरे निमित्त रुदन कर रहे हैं ॥५॥ हे इन्द्र! इन याज्ञिकों के हित में तुमने जो कार्य किये हैं, वे सब वर्णन करने के योग्य हैं। अपने मित्र ऋषि शरभ के लिए तुमने परावसु का धन छीन कर दिया था ॥६॥ [७]

प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत्।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥७
मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥८
समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ॥९
यद्वाग् वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥१०
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥११
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥१२ ॥५

हे इन्द्र! तुम्हें व्याप्त न करते हुए दौड़ते हुए शत्रु पर तुमने वज्र से प्रहार किया ॥७॥ वेगवान् गरुड़ लौहमय पुर के समीप गए और इन्द्र के लिए

सोम लेकर चले आए ॥८॥ तुम्हारा वज्र जल से ढका हुआ, समुद्र में शयन करता है, उस वज्र के लिए युद्धाकांक्षी शत्रु अपने प्राणों का उपहार प्रस्तुत करते हैं ॥९॥ जब यज्ञ में राष्ट्री और देवताओं को प्रसन्न करने वाला स्तोत्र प्रतिष्ठित होता है तब अन्न और जल का दोहन होता है। उस में जो श्रेष्ठ वाक् है, वह किधर गमन करता है? ॥१०॥ जिस ओजस्विनी वाणी को देवगण दोह करते हैं, उसी वाणी को पशु बोलते हैं। अन्न-रस प्रदात्री गौ के समान यह आनन्ददायिनी वाणी हमारे द्वारा स्तुत होती हुई, हमको प्राप्त हो ॥११॥ हे आकाश! वज्र के जाने के लिए मार्ग दो, हे विष्णो! तुम अधिक पाँव फैलाओ। मैं तुमसे मिल कर वृत्र को मारता हुआ नदियों को ले जाऊँगा। वह नदियाँ इन्द्र की आज्ञा से प्रवाहमती हों ॥१२॥ [५]

१०१ सूक्त

(ऋषि—जमदग्निर्भार्गवः। देवता-मित्रावरुणौ, मित्रावरुणावादित्याश्च, आदित्याः, अश्विनौ, वायुः, सूर्यः, उषाः सूर्यप्रभा वा, पवमानः, गौः।
छन्द—बृहती, पंक्तिः, गायत्री, त्रिष्टुप्,)

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥१
वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥२
प्र यो वां मित्रावरुणाजिरो दूतो अद्रवत्। अयःशीर्षा मदेरघुः ॥३
न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥४
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो।
वरूथ्यं वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥५ ॥६ ॥

जो विद्वान् मित्रावरुण को हविदाता यजमान के लिए संबोधित करता है, वह यथार्थ में यज्ञ के लिए हव्य संस्कृत करता है ॥१॥ मित्रावरुण अत्यन्त मेधावी, महान् बली, सुन्दर दर्शनीय और नेता हैं। वे सूर्य, रश्मियों से दोनों

बाहुओं के समान कर्मों में लगते हैं ॥ २॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारे सामने जाने वाला गमनशील यजमान देव-दूत होता है। वह सुवर्ण से सुसज्जित शिर वाला हर्ष प्रदायक सोम को प्राप्त करता है ॥३ ॥ हे मित्रावरुण ! बारम्बार पूछने पर, वारम्वार आमंत्रित करने पर और बारम्बार कहने सुनने पर भी जो शत्रु प्रसन्न न हो, उसके आक्रमण और बाहुबल से हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे स्तोताओ ! मित्र देवता के लिए यज्ञ मंडप में उत्पन्न होने वाले स्तोत्र को गाओ। अर्यमा और वरुण को प्रसन्न करने वाला यश-गान करो। मित्र आदि तीनों की स्तुति करो ॥५॥ [६]

ते हिन्वरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम् ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥६
आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ७
रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रा प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥८
आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो यं शुक्रो अयामि ते ॥९
वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥१० ॥७

आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष इन तीनों के लिए देवगण सूर्य रूप एक पुत्र देते हैं और वे अविनाशी देवता मनुष्यों के स्थान पर दृष्टि रखते हैं ॥६॥ हे अश्विनीकुमारो ! मेरे द्वारा उच्चारित ओजस्विनी वाणी के प्रति-हवि-सेवनार्थ आगमन करो ॥७॥ हे अन्न-धन सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे पाप-रहित दान की हम याचना करेंगे। तब तुम जमदग्नि से आहूत होते हुए आगमन करना ॥८॥ हे वायो ! पवित्रता में आश्रित उज्ज्वल सोम तुम्हारे लिए ही रखा है। तुम हमारे स्वर्ग को छूने वाले यज्ञ में सुन्दर स्तोत्र के प्रति आगमन करना ॥९॥ हे वायो ! यह अध्वर्यु तुम्हारे सेवन के लिए हवि

हुआ अत्यन्त सरल मार्ग से तुम्हें प्राप्त करता है, इसलिए तुम दोनों प्रकार के सोमों को पियो ॥१०॥ [७]

बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥११
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥१२
इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य न्तर्दशसु बाहुषु ॥१३
प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य न्य अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५
वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवी देवेभ्यः पर्येयुषी गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६ ॥८

हे आदित्य ! तुम यथार्थ ही महान् हो । तुम्हारी महिमा अत्यन्त यशवती है ॥११॥ हे सूर्य ! तुम अपनी महिमा से प्रवृद्ध हुए हो, यह असत्य नहीं है । तुम शत्रुओं के नाशक और देवताओं के हितैषी हो, यह बात यथार्थ है । तुम्हारा महान् तेज हिंसित नहीं हो सकता ॥१२॥ यह रूपवती उषा नीचे की ओर मुख करके सूर्य की महिमा से ही प्रकट हुई है । यह विश्व की दशों दिशाओं में आगमन करती हुई चित्रवती गऊ के समान दर्शनीय है ॥ १३ ॥ तीन प्रजाएं लाँघ कर चली गईं । अन्य प्रजाएं अग्नि की आश्रित हुईं, पव वायु दिशाओं में प्रविष्ट हुए और सूर्य महान् होकर लोकों पर छागए ॥ १४ ॥ जो गौ देवी आदित्यों की भगिनी, रुद्रों की जननी, वसुओं की पुत्री और पयस्विनी है, उसकी हिंसा मत करना । यह बात मैंने मेधावी मनुष्य से कही थी ॥१५॥ प्रकाश से समस्त वाणी के देने वाली, देवता के निमित्त मुझे

पहिचानने वाली, स्तोत्रों के साथ ही उपस्थित होने वाली गौ रूपिणी देवी को अल्प बुद्धि वाला मनुष्य ही हिंसित कर सकता है ॥१६॥ [८]

१०२ सूक्त

(ऋषि—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः, अथवाग्नी गृहपति-यविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥१
स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा । चिकिद्विभानवा वह ॥२
त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य । अभि ष्मो वाजसातये ॥३
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥४
हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः । अग्निं समुद्रवाससम् ॥५ ॥६

हे अग्ने ! तुम गृह-रक्षक, मेधावी, नित्य युवा और यजमान को यथेष्ट अन्न के देने वाले हो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम जानने वाले होकर हमारी वाणी से देवताओं को यहाँ लाओ, क्योंकि हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम धनों के प्रेरक हो । हम तुम्हारी सहायता से अन्न-प्राप्ति के लिए शत्रुओं को वशीभूत करेंगे ॥३॥ और्व, भृगु और अप्नवान ऋषियों के समान मैं भी समुद्र में स्थित अग्नि को आहूत करता हूँ ॥४॥ मेघ के समान गर्जनशील, वायु के समान शब्दवान्, समुद्र में शयन करने वाले, बली और मेधावी अग्नि को आहूत करता हूँ ॥५॥ (६)

आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥६
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥७
अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥८
अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥९
विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् । अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥१० ॥१०

भग देवता के भोग के समान और सूर्य के उदित होने के समान समुद्र में शयन करने वाले अग्नि को आहूत करता हूँ ॥ ६ ॥ हे ऋत्विजो !

मनुष्यों के मित्र, प्रवृद्ध, अहिंसनीय और बलवान अग्नि की ओर गमन करो ॥ ७ ॥ हम अग्नि के ज्ञान से यश प्राप्त करेंगे, क्योंकि यह अग्नि हमको कर्म में लगाते हैं ॥८॥ अग्नि ही देवताओं में सब मनुष्यों की सम्पत्ति पाते हैं। यह अग्नि अन्न के सहित हमारे यहाँ आगमन करें ॥ ९ ॥ हे स्तोता! सब होताओं में श्रेष्ठ और यज्ञ में मुख्य अग्नि का पूजन करो ॥१०॥ (१०)

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ॥११
तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम् । मित्रं न यातयज्जनम्॥१२
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥१३
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥१४
पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥१५॥ १

देवताओं में मुख्य और अत्यन्त मेधावी अग्नि यज्ञकर्त्ता यजमानों के घर में प्रज्वलित होते हैं, उन पवित्र तेज वाले अग्नि की पूजा करो ॥ ११ ॥ हे स्तोता! अग्नि बलवान्, शत्रु-हन्ता, भोग्य, मेधावी और मित्र रूप हैं, तुम उनकी स्तुति करो ॥१२॥ हे अग्ने! भगिनियों के समान यजमानों के स्तोत्र तुम्हारा पूजन करते हुए तुम्हें वायु के निकट प्रतिष्ठित करते हैं ॥ १३ ॥ जिन अग्नि के तीन कुश हैं, उन अग्नि में जल भी आश्रित होता है ॥ १४ ॥ अग्नि कामनाओं की वर्षा करने वाले और प्रकाश से सम्पन्न है। उनका स्थान भोग के योग्य तथा सुरक्षित है। सूर्य के समान ही उनकी दृष्टि भी कल्याण देने वाली है ॥१५॥ [११]

अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा । आ देवान्वक्षि यक्षि च ।१६
तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः । हव्यवाहममर्त्यम् ॥१७
प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम् । हव्यवाहं नि षेदिरे ॥१८
नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति । अथैतादृग्भरामि ते ॥१९
यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । ता जुषस्व यविष्ठ्य ।२०
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥२१

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमीधे विवस्वभिः ॥२२ ॥१२

हे अग्ने ! तुम्हारी प्रवृद्धि के साधन रूप घृत भण्डार से पुष्ट होते हुए तुम अपनी ज्वालाओं से देवता का आह्वान करो ॥१६॥ हविदाता, मेधावी, अविनाशी और सनातन अग्नि को देवगण रूपी माताओं ने प्रकट किया ॥१७॥ हे अग्ने ! तुम्हारे चारों ओर देवगण विराजमान होते हैं, क्योंकि तुम मेधावी वरण करने योग्य दूत और हवियों के वहन करने वाले हो ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! मेरे पास गौ का अभाव है, काष्ठ को काटने वाला कुलहाड़ा भी मेरे पास नहीं है। यह सब मैंने तुम्हें ही दे दिया ॥१९॥ हे अग्ने ! मैं जब तुम्हारे निमित्त कोई कर्म करता हूँ तब तुम कटे हुए काष्ठ का सेवन करते हो ॥२०॥ जो काष्ठ तुम्हारी ज्वालाओं से जल जाते हैं, अथवा जो काष्ठ जलने से बच जाते हैं, हे अग्ने ! वे सभी काष्ठ तुम्हारे निमित्त घृत के समान हो जाँय ॥२१॥ काष्ठ के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करने वाला पुरुष कर्म करता है तब ऋत्विगण अग्नि को प्रवृद्ध करते हैं ॥२२॥ (१२)

१०२ सूक्त

(ऋषि—सोभरिः काण्वः । देवता—अग्निः, अग्निर्मरुतश्च ।
छन्द—बृहती, पंक्तिः, उष्णिक्, गायत्री, अनुष्टुप्)

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यदधुः ।
उपोषु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥१
प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥३
प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४

स इळहे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रव. ।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥५ ॥१३

यजमानों द्वारा किए हुए सब कर्म जिन अग्नि मे व्याप्त होते है, वे अग्नि विस्तृत मार्ग वाले हैं। उन अग्नि के प्रकट होने पर हमारी स्तुतियाँ उनकी ओर गमन करती हैं ॥१॥ उन अग्नि का दिवोदास ने आह्वान किया था, तब वे अपनी माता पृथिवी के सामने देवताओं के लिए हवि वाहक कर्म में नहीं लगे। दिवोदास के बल पूर्वक बुलाए जाने के कारण, वह अग्नि स्वर्ग के समीप ही रह गए ॥२॥ हे मनुष्यो! यह अग्नि सहस्रों धनो के देने वाले हैं। जो मनुष्य कर्म नहीं करते, वे कर्मवान् के वश में रहते हैं, इसलिए यज्ञ रूप कर्म में अग्नि की परिचर्या करो ॥३॥ हे अग्ने! तुम सुन्दर निवास प्रदान करते हो। तुम जिसे धन दान के लिए प्रेरित करते हो, वह पुरुष तुम्हें हवि प्रदान करता हुआ सहस्रों प्रकार से सेवा करने वाले पुत्र को पाता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने! हे बहु धनेश! तुम्हारे लिए हवि देने वाला यजमान शत्रु के दृढ़ नगर को तोड़ कर उसके अन्न को नष्ट करता हुआ, महान् धन धारण करता है। हम भी तुमको हवि देकर तुम्हारे धनों को प्राप्त करेंगे ॥५॥   (१३)

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥६
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥७
प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥८
आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥९
प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम् । अग्निं रथानां यमम् ॥१४ ॥१४

देवाह्वाक, मङ्गलमय, अन्नदाता अग्नि के लिए हर्षकारी सोम के पात्र सदा प्रस्तुत रहते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम लोकों के पालन करने वाले और दर्शनीय हो। देवताओं की कामना वाले यजमान अपनी सुन्दर स्तुति से

तुम्हारी सेवा करते हैं। हे अग्ने ! तुम हमारे पुत्रादि के लिए धनवान् बनाने वाला धन प्रदान करो ॥७॥ हे स्तोताओ ! अग्नि यज्ञ से सम्पन्न, प्रदीप्त तेज से युक्त और सर्व श्रेष्ठ दान के देने वाले हैं, उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥ अग्नि वीर के समान प्रतापी, धन और अन्न से महान् और आहूत किए जाने पर यशस्वी अन्न देने वाले हैं। उनकी अन्नवती बुद्धि यहाँ आगमन करे ॥ ९ ॥ हे स्तोता ! अग्नि पूज्य अतिथि, प्रिय से भी प्रिय और रथों को नियंत्रित करने वाले हैं, उन अग्नि की स्तुति करो ॥१०॥ [१४]

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति ।

दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥११

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः॥१२

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।

कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥१३॥

आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।

सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४ ॥१५

जो अग्नि सुने हुए और प्रकट धन को लाते हैं, जिनकी महती ज्वालाएँ नीचे की ओर जाती हुई समुद्र की लहरों के समान विकराल हैं, हे स्तोताओ ! उन अग्नि का स्तव करो ॥ ११ ॥ वे अग्नि देवताओं का आह्वान करने वाले हैं, बहुतों द्वारा स्तुत और सुन्दर यज्ञ वाले हैं। वह अतिथि रूप अग्नि हमारे यहाँ आते हुए, किसी के द्वारा न रुकें ॥१२॥ हे अग्ने ! स्तुतियों से जो मनुष्य तुम्हारा अनुग्रह पाने को तुम्हारी परिचर्या करते हैं, वे मनुष्य हिंसित न हों। यह हविदाता स्तोता इस श्रेष्ठ यज्ञ में तुम्हारी पूजा करता है ॥१३॥ हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ में अपने प्रिय मरुद्गण के सहित आकर सोम पान करो। हे अग्ने ! मुझ सौभरि के सुन्दर स्तोत्रों के सामने आकर सोम से हर्ष-युक्त होओ ॥१४॥ (१५)

॥ इति अष्टम मंडलम् समाप्तम् ॥

॥ अथ नवम मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता–पवमानः सोमः । छन्द–गायत्री)

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥२
वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३
अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥४
त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्द्रो त्वे न आशसः ॥५ ॥१६

हे सोम ! अभिषुत होने पर सुस्वादु होकर तुम अपनी हर्ष प्रदायक धाराओं सहित इन्द्र के पीने के लिए निचुड़ो ॥१॥ यह सोम असुरों के नाशक हैं । यह लोहे द्वारा पिस कर कलश में जाते और अभिषव वाले स्थान पर स्थित होते हैं ॥२॥ हे सोम ! तुम अपने दान द्वारा वृत्र को नष्ट करो और धनवान् शत्रुओं का धन हमें प्राप्त कराओ ॥३॥ हे सोम ! तुम अन्न के सहित देव यज्ञ की ओर गमन करो । तुम महिमावान् हो, अतः अन्न, बल से सम्पन्न करो ॥४॥ हे सोम ! हम तुम्हारी नित्यप्रति परिचर्या करते हैं ॥५॥ [१७]

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥६
तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥७
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ॥८
अभी ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोमामिन्द्राय पातवे ॥९
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।
शूरो मघा च मंहते ॥१० ॥१७

हे सोम ! सूर्य पुत्री श्रद्धा तुम्हारे रस को बढ़ाती हुई छन्ने से नित्य छानती है ॥६॥ सोम छानने के समय भगनियों के समान दश उंगलियाँ रूपी स्त्रियाँ, सोम को यज्ञ से पहिले पकड़ती हैं ॥७॥ उंगलियों द्वारा सम्पादित सोम रूप मधु तीन स्थानों में अवस्थित होता है और शत्रुओं का नियामक

बनता है ॥८॥ अहिंस्य गौऐं वत्स के समान इस सोम को इन्द्र के पीने के लिए दूध से शोधित करती हैं ॥९॥ सोम को पीकर हर्ष युक्त हुए इन्द्र शत्रुओं का संहार करते हुए, यजमानों को धन प्रदान करते हैं ॥१०॥ [१७]

२ सूक्त

(ऋषि–मेधातिथिः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश । १
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्द्रो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सद.।२
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५ ॥१८

हे सोम ! तुम देवताओं की कामना वाले होकर छन्ने से टपको । हे इन्द्र ! तुम सोम के मध्य प्रतिष्ठित होओ ॥१॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त यशस्वी कामनाओं के वर्षक और धारक हो । तुम अपने स्थान पर स्थित होते हुए, जल का प्रेरण करो ॥२॥ सोम कामनाओं का देने वाला है, उसकी धारा मधुर रस का दोहन करती है । सुन्दर गुण वाले सोम जल को अपना-सा बना लेते हैं ॥३॥ हे सोम ! जब तुम गोरस से ढक जाते हो तब जल तुम्हारे अभिमुख होता है ॥४॥ यह सोम स्वर्ग का धारण करते हुए उसे स्तब्ध करते हैं । यह हमारी कामना करते हुए जल में शुद्ध होते हैं, इनसे मधुर रस प्रकट होता है ॥५॥ [१८]

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥६
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥८
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥९
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ।१०।१९

यह हरे रंग वाले, काम्य वर्षक, मित्र के समान उपकारी सोम सूर्य

के साथ गुण-सम्बद्ध होते हुए शब्द करते हैं ॥६॥ हे सोम ! तुमको जिन स्तुतियों से हर्ष प्रदायक बनाया जाता है, वे स्तुतियाँ तुम्हारे ही बल से शुद्ध होती है ॥७॥ हे सोम ! तुमने शत्रु का मर्दन करने की कामना वाले यजमान के लिए श्रेष्ठ लोक को रचा है। तुम्हारी महिमा भी महान् है। हम तुमसे हर्ष की प्रार्थना करते हैं ॥८॥ हे सोम ! तुम इन्द्र की कामना करते हुए, वृष्टि सम्पन्न मेघ के समान वर्षक होकर अपने मधुर रस को हमारे अभिमुख करो ॥९ हे सोम ! यज्ञ कर्म के तुम प्राचीन कालीन प्राण हो। तुम हमको गौ, अश्व, पुत्रादि तथा अन्न दो ॥१०॥ [१९]

३ सूक्त

(ऋषि—शुन शेप. । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् ॥१
एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥२
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभि. । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥३
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभि । पवमानः सिषासति ॥४
एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् । ५॥२०

द्रोण कलश में प्रविष्टित होने के लिए यह अमरत्व गुण वाले सोम पक्षी के समान अभिमुख गमन करते हैं ॥१॥ अंगुलियों द्वारा निचोड़े हुए सोम शुद्ध होकर गमन करते हैं ॥ २ ॥ यज्ञ की कामना करने वाले यजमान संग्राम के लिए इन सोमों को सजाते हैं ॥३॥ सोम अपने बल से जाते हैं और सब धनों के वितरित करने की कामना करते हैं ॥४॥ यह सोम रथ की कामना करते और अभीष्ट सिद्ध करते हुए शब्दवान् होते हैं ॥५॥ [२०]

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥६
एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥७
एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥८
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥९
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१०॥२१

जब विद्वज्जन इस सोम की स्तुति करते हैं, तब यह हविदान यजमान को रत्नादि देते हुए जल में निवास करते हैं ॥६॥ यह सोम स्वर्ग को जाते हुए सभी लोकों पर विजय प्राप्त करते हैं ॥७॥ यह सोम यज्ञ से सम्पन्न होते हुए सब लोकों को हरा कर स्वर्ग को गमन करते हैं ॥८॥ यह हरे रंग के सोम प्राचीन काल से ही देवताओं के लिए संस्कृत होने को छन्ने की ओर गमन करते हैं ॥ ९ ॥ यह सोम अनेकों कर्म वाले हैं, अपने जन्म के साथ ही यह संस्कारित होकर धारा रूप में गिरते और अन्न को उत्पन्न करते हैं ॥१०॥ (२१)

४ सूक्त

(ऋषि—हिरण्यस्तूपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१
सना ज्योतिः सना स्व विश्वा च सोम सौभगा ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४
त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५ ॥२२

हे पवमान सोम ! तुम महान् हो, हमको जयशील बनाते हो हमारे लिए कल्याणकारी होओ ।१। हे सोम ! हमको स्वर्ग दो, सौभाग्य और ज्योति दो फिर हमारा कल्याण करो ॥२॥ हे सोम ! हमारे हिंसकों को नष्ट करो । हमको कर्म युक्त बल देते हुए हमारा कल्याण करो ॥३॥ हे सोमाभिषवकर्त्ताओ ! तुम इन्द्र के लिए सोम को सुसंस्कृत करो और फिर हमको सुख दो ॥ ४ ॥ हे सोम ! अपनी रक्षा-शक्ति से हमें सूर्य गुण प्राप्त कराओ और फिर हमारा मङ्गल करो ॥५॥ [२२]

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७

अभ्यर्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८
त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथानो वस्यसस्कृधि ॥९
रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१० ॥२३

हे सोम ! तुम्हारी रक्षा पाकर हम दीर्घकाल तक सूर्य को देखने वाले होंगे । तुम हमको सुखी करो ॥६॥ हे सोम ! तुम्हारी रक्षाएं सुन्दर हैं । तुम हमको दिव्य और पार्थिव धन देकर सुखी बनाओ ॥७॥ हे सोम ! तुम शत्रु को पराभूत करते हो, तो भी तुम स्वयं नहीं बुलाए जाते (देवता ही बुलाए जाते हैं) तुम हमको धन देकर सुखी करो ॥८॥ हे सोम ! यजमान अपनी रक्षा के लिए यज्ञ में तुम्हारी वृद्धि करते हैं । तुम हमारा मङ्गल करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको विविध वर्ण वाले अश्वों से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करो और फिर हमको सुख दो ॥१०॥ [२३]

७ सूक्त

(ऋषि–असितः काश्यपो देवलो वा । देवता–आप्रियः । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्)

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥१
तनूनपात् पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् ॥२
ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥३
बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते ॥४
उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥५ ॥२४

कामनाओं की वर्षा करने वाले पवमान सोम सब के स्वामी हैं, क्योंकि यह शब्दवान होते हुए देवताओं को प्रसन्न करते हुए बैठते हैं ॥ १ ॥ पवमान और जल के पौत्र सोम, ऊँचे भू भाग में तेजस्वी होते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥२॥ हे सोम ! तुम इच्छित देने वाले, स्तुतियों के योग्य और तेजस्वी हो । तुम अपनी मधुर धाराओं के सहित सुशोभित होते हो ॥३ हरे रंग के यह सोम यज्ञ के पूर्वाग्र में कुश बिछाते हुए अपने गुणों के द्वारा

वेगवान् होते हैं ॥४॥ पवमान सोम के सहित पूजित होती हुई स्वर्णिम रश्मियाँ दिशाओं में बढ़ती हैं ॥५॥ (२४)

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥६
उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा ॥७
भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।
इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥८
त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे ।
इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥९
वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया ।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥१०
विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥११ ॥२५

यह सोम सुन्दर रूप वाली, महिमामयी एवं विस्तृत दिन-रात्रि का भजन करते हैं ॥६॥ मनुष्यों के दृष्टा और होता दोनों देवताओं का मैं आह्वान करता हूँ। यह सोम कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। ७॥ हमारे इस याग में भारती, सरस्वती और इडा यह तीनों देवियाँ आगमन करें ॥ ८ ॥ मैं उन सब से पहिले उत्पन्न, सब से आगे चलने वाले और प्रजाओं के पालनकर्त्ता त्वष्टादेव को आहूत करता हूँ जो देवताओं में श्रेष्ठ, अभीष्टवर्षक प्रजापति हैं ॥९॥ हे सोम ! हरी, स्वर्णिम और सहस्र शाखा वाली वनस्पति को अपनी मधुर धारा से शोधित करो ॥१०॥ हे इन्द्र, अग्नि, वायु, बृहस्पति और विश्वेदेवाओ ! तुम सब सोम के स्वाहाकार के पास एकत्र होओ ॥११॥ [२५]

६ सूक्त

(ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वा । देवता—पवमानः सोमः ।
छन्द—गायत्री)

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥१

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर । अभि वाजिनो अर्वत ॥२
अभि त्य पूर्व्यं मद सुवानो अर्प पवित्र आ । अभि वाजमुत श्रव ॥३
अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् । पुनाना इन्द्रमाशत ॥४
यम यमिव वाजिनं मृजन्ति यापणो दश ।
वने क्रीळ यमत्यविम् ॥५ ॥२६

हे सोम ! तुम देवताओं की कामना करने वाले और काम्य वर्षक हो। तुम हमको भी चाहते हो। छन्ने में मधुर धारा से निकलते हुए तुम हमारे रक्षक होओ ॥१॥ हे सोम ! तुम हर्षकारी सोम की वर्षा करो और हमको वेगवान अश्व दो ॥२॥ हे सोम ! तुम शुद्ध होकर अपने हर्ष प्रदायक रस सहित छन्ने की ओर जाओ तथा अन्न बल को प्रेरित करो ॥३॥ जल जैसे नीचे की ओर गमन करता है, वैसे इन्द्र की ओर द्रुतगति से जाता हुआ सोम-रस उन्हें हर्षयुक्त करता है ॥ ४ ॥ सोम की बलवान अश्व के समान दश उंगलियाँ छन्ने को लंघाती हुई परिचर्या करती हैं ॥५॥ (२६)

तं गोभिर्वृषणं रस मदाय देववीतये । सुतं भराय स सृज ॥६
देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुत । पयो यदस्य पीपयत् ॥७
आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाण. पवते सुतः । प्रत्नं नि पाति का यम् । ८
एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये । गुहा चिद्दधिषे गिर ॥९ ॥२७

हे यजमान ! देवताओं के पीने पर हर्ष उत्पन्न करने वाले अभीष्ट पूरक सोम रस को दुग्धादि से मिश्रित करो ॥६॥ इन्द्र के लिए सोम धारा के रूप में गिरते और इन्द्र को व्याप्त करते हैं ॥७॥ यज्ञ के प्राण रूप सोम वेग से क्षरित होते हुए यजमान के लिए कामनाओं के देने वाले हैं ॥८॥ हे सोम ! तुम इन्द्र की कामना करते हुए, उनके पीने के लिये यज्ञ मंडप में शब्दवान् होओ ॥९॥ (२७)

५ सूक्त

(ऋषि-अमित कश्यपो देवलो वा । देवता-पवमान सोम ।
छन्द-गायत्री)

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रिय. । विदाना अस्य योजनम् ॥१

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥२
प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३
परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४
पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५ ॥२८

यह सोम इन्द्र के सम्बन्ध को जानते हैं। यह सुन्दर धन से सम्पन्न सोम यज्ञ में शोधित होते हैं ॥१॥ सोम जल में धोये जाते हैं और फिर उनकी धाराएं चरित होती हैं। यह सब हव्यों में श्रेष्ठ हैं ॥२॥ यह सोम हिंसा-रहित सत्य रूप और काम्य-वर्षक हैं। यह यज्ञ मंडप में जल के सहित शब्द करते हैं ॥३॥ धन को ग्रहण करते हुए सोम जब स्तोत्र के ज्ञाता होते हैं तब वे इन्द्र के बल को स्वर्ग में प्रकट करते हैं ॥४॥ जब यह सोम यज्ञकर्त्ता द्वारा प्रेरित किए जाते हैं तब राजा के समान शासक होते हुए यज्ञ के विघ्नों की ओर गमन करते हैं ॥५॥ [२८]

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६
त वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ॥८
आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥७
अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि सं जितम् ॥९ ॥२९

जल में मिलकर भेड़ के बालों पर बैठने वाले सोम शब्दवान् होते हुए स्तुतियों का अनुगमन करते हैं ॥६॥ सोम के इस कार्य से हर्षित हुआ पुरुष इन्द्र, वायु और अश्विनीकुमारों को हर्षित मुद्रा में पाता है ॥ ७ ॥ जिन यजमानों की सोम-धाराएं मित्र, वरुण और भग देवता को सींचती हैं, वे यजमान सोम के गुणों से ज्ञाता होकर सदा सुख को पाते हैं ॥८॥ हे आकाश ! हे पृथिवी ! हमको अन्न, पशु, धन आदि प्रदान करो, जिससे हम हर्षकारी सोम को पा सकें ॥९॥ [२९]

८ सूक्त

(ऋषि-असितः काश्यपो देवलो वा । देवता-पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

एते सोमा अभि प्रिय मिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१
पुनानामश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥२
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । ऋतस्य योनिमासदम् ॥३
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषु ॥४
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्य । सं गोभिर्वासयामसि ॥५।३०

यह सोम इन्द्र के बल की वृद्धि करते हैं और उनके लिए रुचिकर तथा इच्छित रसों को बरसाते हैं ॥१॥ सोम कूटे जाते है, चमस में रखे जाते हैं तब ये वायु और अश्विनीकुमारों के प्रति गमन करते हैं। यह देवता हमको सुन्दर कर्म वाला बल दें ॥२॥ हे सोम! तुम अभीष्ट के अनुरूप होकर यज्ञ मंडप में इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए विराजमान होओ ॥३॥ हे सोम! सात होता और दश उंगलियाँ तुम्हारी सेवा करते हैं और विद्वान् तुम्हें हर्षित करते हैं ॥४॥ हे सोम! तुम भेड के बालों और जल में शोधे जाते हो। हम तुम्हें देवताओं के हर्ष के लिए दधि आदि से मिश्रित करेंगे ॥५॥ [३०]

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥६
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥७
वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥९ ।३१

शोधित, कलश में सींचा हुआ, हरे रंग वाला उज्ज्वल सोम दधि आदि को वस्त्र के समान ढकता है ॥६॥ हे सोम! तुम हम धनवानों के सामने गिरो और हमारे मित्र इन्द्र को प्रसन्न करो। फिर सब शत्रुओं को नष्ट कर डालो ॥७॥ हे सोम! तुम स्वर्ग से पृथिवी पर वृष्टि करो। संग्राम में हमको स्थिर करते हुए धन और निवास प्रदान करो ॥८॥ हे सोम! तुम प्रमुख देवों के देखने वाले और सब के जानने वाले हो। जब इन्द्र पी लेते हैं, तब हम

तुम्हें पीते हैं । तुम्हारे प्रताप से हम अन्न और अपत्य से सम्पन्न हों ॥६॥ [३१]

६ सूक्त

(ऋषि–असित: काश्यपो देवलो वा । देवता पवमानः सोमः । छन्द–गायत्री)

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । सुवानो याति कविक्रतुः ॥१
प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ।।२
स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ।।३
स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः । या एकमक्षि वावृधुः ॥४
ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः । इन्दुमिन्द्र तव व्रते ।५ ॥३२

यह सोम अभिषव वाले पाषाण से संस्कृत होकर आकाश के प्रिय पक्षियों के समान गमन करते हैं ॥१॥ हे सोम ! स्तुति करने वाले, देव-सेवक पुरुष के लिए यथेष्ट अन्न वाली धाराओं सहित आगमन करो ॥ २ ॥ द्यावा-पृथिवी के पवित्र और महान् पुत्र रूप सोम यज्ञ के बढ़ाने वाली इन दोनों को तेज से युक्त करते हैं ।३। सोम नदियों के जल से प्रवृद्ध हुए हैं, वे सोम उंगली से टपकते हुए, सप्त नदियों को हर्षित करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! उन उंगलियों ने उस अहिंसित सोम को तुम्हारे यज्ञ के लिए ग्रहण किया है ॥५॥ [३२]

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६
अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जङ्घनः ॥७
नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८
पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ।६।३३

देवताओं को तृप्त करने वाले सोम सात नदियों को देखते हैं और पूर्ण होकर नदियों को भी पूर्ण करते हैं ॥६। हे सोम ! युद्धाकांक्षी असुरों का नाश करते हुए, हमारी रक्षा करो ॥७॥ हे सोम ! तुम स्तुति के योग्य सूक्त के प्रति शीघ्र आगमन करके स्तोत्रों को दीप्त करो ।८॥ हे सोम ! तुम हमको अपत्य युक्त धन, गौ, अश्व और अन्नादि देने वाले हो। अतः यह सब देते हुए हमारे अभीष्ट को पूर्ण करो ॥६॥ [३३]

१० सूक्त

(ऋषि—असित काश्यपो देवलो वा। देवता—पवमान सोम।
छन्द—गायत्री)

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यव। सोमासो राये अक्रमु ॥१
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्यो। भरास कारिणामिव ॥२
राजानो न प्रशस्तिभि सोमासो गोभिरजते। यज्ञो न सप्त धातृभि ॥३
परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा। सुता अर्षन्ति धारया ॥४
अपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम्।

सूरा अण्व वि तन्वते ।५ ।३४

हे सोम! तुम रथ और अश्व के समान शब्दवान् हो। तुम यजमान के धन लाभ की अन्न की कामना करते हुए प्राप्त हुए हो ॥ १ ॥ यज्ञ की ओर सोम रथ के समान जाते हैं नैसे ढोने वाला व्यक्ति बोझ को बाहु पर धारण करता है, वैसे ही ऋत्विग्गण इन सोमों को अपनी भुजाओं में ग्रहण करते हैं ॥२॥ जैसे राजा को स्तुतियां पूर्ण करती हैं, जैसे सात होता यज्ञ को सम्पन्न करते हैं, वैसे सोम गव्य से पूर्ण होता है ॥३॥ महिमामयी स्तुति से संस्कृत हुए सोम हर्ष उत्पन्न करने के लिए धाराओं के रूप में गमन करते हैं ॥ ४ ॥ यह सोम इन्द्र के स्थान रूप, उषा के भाग्य को जगाने वाले हैं। यह गिरते हुए शब्दवान् होते हैं ॥५॥ [३४]

अप द्वारा मतीना प्रत्ना ऋण्वन्ति कारव। वृष्णो हरस आयव ॥६
समीचीनास आसते होतार सप्तजामय। पदमेकस्य पिप्रत ॥७
नाभा नाभि न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा। कवेरपत्यमा दुहे ॥८
अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितं।

सूर पश्यति चक्षसा ॥९ ॥३५

हे स्तोता! सोम का सेवन करने वाले, कामनाओं की वर्षा करने वाले पुरुष यज्ञ के द्वार को खोलते हैं ॥६॥ सात बन्धुओं के समान सोम के स्थान

को पूर्ण करने वाले सात होता यज्ञशाला में बैठते हैं ॥७॥ यज्ञ के नाभि रूप सोम को मैं अपनी नाभि में स्थित करता हूँ। सूर्य में नेत्र के संगत होने के समान, मैं कवि सोम को गुणवान् बनाता हूँ ॥ ८ ॥ जो सोम इन्द्र के हृदय प्रदेश में रमता है, उसे वे अपने नेत्रों द्वारा देखने में समर्थ हैं ॥६॥ [३५]

११ सूक्त

(ऋषि-असितः काश्यपो देवलो वा । देवता-पवमानः सोमः)
छन्द-गायत्री)

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१
अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३
वभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥४
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥५ ॥३६

हे नेताओ ! यह सोम देव-याग की कामना करता है, इसके प्रति आगमन करो ॥१। हे सोम ! तुम्हारे देव कामना वाले रस को अथर्वाओं ने गो दुग्ध में मिला कर इन्द्र के लिए रखा है ॥ २ ॥ हे सोम ! हमारी गौओं, अश्वों, औषधियों और पुत्रों आदि के लिये सुख देने वाले होकर क्षरित होओ ॥३॥ हे स्तोताओ ! तुम पीले, अरुण स्वर्गस्पर्शी सोम के लिये स्तुति करो ॥४॥ ऋत्विजो ! तुम अभिषव प्रस्तर से अभिषुत सोम को गोदुग्ध में मिश्रित करो ॥५॥ [३६]

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥८
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६ ॥३७

ऋत्विजो ! सोम के पास जाकर नमस्कार करो और दधि मिश्रित कर इन्द्र के समक्ष रखो ॥६॥ हे सोम ! तुम शत्रु का संहार करने वाले हो । तुम देवताओं की इच्छा पूर्ण करते हो । हमारी गौ के लिए सुख पूर्वक क्षरित

होओ ॥७॥ हे सोम ! तुम मन की जानने वाले हो। तुम्हें इन्द्र के हर्ष के लिए पात्रों में सींचा जाता है ॥८॥ हे सोम ! तुम इन्द्र को प्रसन्न करते हुए हमको सुन्दर बल सम्पन्न धन प्रदान करो ॥९॥ (३७)

१२ सूक्त

(ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वा । देवता–पवमानः सोम ।
छन्द-गायत्री)

सोमा असृग्रमिन्दव सुता ऋतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमा ॥१
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातर । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२
मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रित ।३
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते । सोमो य सुक्रतु कवि ॥४
य सोमः कलशेष्वां अन्त पवित्र आहित । तमिन्दु परि षस्वजे ।५।३८

यह अत्यन्त मधुर सोम यज्ञ मंडप में इन्द्र के लिए पूर्ण किया जारहा है ॥१॥ बछड़ों को देख कर गौओं के बोलने के समान, विद्वज्जन सोम पीने के लिए इन्द्र से कहते हैं ॥२॥ हर्ष प्रदायक सोम नदी की लहरों के और मेधावी सोम वाणी के आश्रित होते हैं ॥३॥ यह सूक्ष्म दर्शक, सुन्दर सोम अन्तरिक्ष के नाभि रूप भेड़ के बालों में प्रतिष्ठित होते हैं ॥४॥ छन्ने में निहित सोम और कलश में रक्खे हुए सोम रूप अंशों में सोम स्वयं प्रविष्ट होते हैं ॥५॥ (३८)

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ।६
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्त सबर्दुघ । हिन्वानो मानुषा युगा ॥७
अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कवि ।८
आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥९।३९

मेघ को प्रसन्न करने वाले सोम अन्तरिक्ष स्थान रूप छन्ने में शब्द करते हैं ॥६॥ अमृत का दोहन करने वाले सोम, मनुष्यों के कर्मों में एक दिन के लिए रहते हुए प्रसन्न होते हैं ॥७॥ सोम अन्तरिक्ष में प्रेरित होकर विद्वानों

द्वारा धारा रूप को प्राप्त होकर प्रिय स्थानों में गमन करते हैं ॥८॥ हे सोम ! हमको अत्यन्त यशस्वी धन से सम्पन्न वर प्रदान करो ॥९॥ (३६)

१३ सूक्त

(ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वा । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥५॥१

असंख्य धाराओं वाले सोम छन्ने से निकलकर वायु और इन्द्र के पीने के लिये शुद्ध पात्र में गमन करते हैं ॥१॥ हे रक्षा की कामना वालो ! तुम देवताओं के पीने के लिये सोम की ओर जाओ ॥२॥ वीर्यवान् सोम यज्ञ को सिद्ध करने के लिए और अन्न की प्राप्ति के लिये संस्कृत होते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! हमको अन्न प्राप्त कराने के निमित्त सुन्दर बल देने वाली महिमामयी रस-धारा की वृष्टि करो ॥४॥ यह अभिषुत सोम हमको सहस्रों धन और सुन्दर वीर्य प्रदान करे ॥५॥ (१)

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥६
वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९ ॥२

जैसे रण भूमि में घोड़ों को भेजा जाता है, उसी प्रकार भेजे गये सोम छन्ने में से निकल कर अन्न प्राप्ति के निमित्त गमन करते हैं ॥ ६ ॥ बछड़ों को देख कर जैसे गौएं शब्द करती हुई जाती हैं, वैसे ही पात्रों की ओर गमन करते हुये सोम भी शब्द करते हैं । उन सोमों को ऋत्विज अपने बाहु पर धारण करते हैं ॥७॥ इन्द्र के लिये यह सोम अत्यन्त प्रिय है, यह उन्हें हर्ष

देता है। हे सोम ! तुम शब्द करते हुये सब वैरियों का संहार कर डालो ॥८॥
हे सोम ! तुम श्रदानियों के नष्ट करने वाले और सब प्राणियों के देखने वाले हो। तुम इस यज्ञ मंडप में प्रतिष्ठित होओ ॥९॥ (२)

१४ सूक्त

(ऋषि–असितः काश्यपो देवलो वा। देवता–पावमानः सोमः। छन्द–गायत्री)

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः। कारं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ।१
गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यव।

परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥२
आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत। यदी गोभिर्वसायते ॥३
निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा। अत्रा सं जिघ्नते युजा ।४
नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा।

गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥५ ॥३

इन सोमों के शब्द की अनेकों कामना करते हैं। यह सोम नदी के जलों में आश्रित रहने वाले हैं। यह शब्द करते हुये क्षरित हो रहे हैं ॥ १ ॥ जब पञ्च देशीय मनुष्य कर्म करने की इच्छा से सोम को स्तुतियों से सजाते हैं तब सोम में गोदुग्ध मिश्रित करके सब देवता उससे हर्ष प्राप्त करते हैं ॥२-३॥ छन्ने के छिद्रों से निकलते हुए सोम नीचे को दौड़ते हुये सखा इन्द्र के साथ संगति करते हैं ॥४॥ युवा और गमनशील अश्व को जैसे स्वच्छ करते हैं, वैसे ही अपने लिये गव्य से मिश्रित करते हुये सोम उपासक की उंगलियों द्वारा धोये जाते हैं ॥५॥ (३)

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या। वग्नुमियर्ति यं विदे ।६
अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम्। पृष्ठा गृभ्णात वाजिनः ॥७
परि दिव्यानि मर्मृशद्विश्वानि सोम पार्थिवा। वसूनि याह्यस्मयुः ॥८॥४

शोधित सोम गव्य में मिश्रित होने के लिये दौड़ते हुए शब्द करते हैं। मैं उसी सोम को पाऊँगा ॥६॥ शुद्ध करती हुई उंगलियाँ सोम से संगति

करती हुई वलवान सोम के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ होती हैं ॥७॥ हे सोम ! सब दिव्य और पार्थिव धनों को लेकर हमारी ओर आगमन करो ॥८॥　　(४)

१५ सूक्त

(ऋषि-असितः काश्यपो देवलो वा । देवता-पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।१
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥२
एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ।३
एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥४
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५
एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥६
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥७
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदिन्तमम् ।८ ।५

उंगलियों द्वारा शुद्ध होता हुआ सोम कर्म और बल से शीघ्र ही रथारूढ़ होता हुआ इन्द्र के साथ स्वर्ग गमन करता है ॥१॥ जिस यज्ञ स्थान में देवगण निवास करते हैं उसी यज्ञ में सोम भी बहुत से कर्मों की कामना करता है ॥२॥ हव्य में स्थापित यह सोम हव्य के मार्ग से ही जब आहुत किये जाते हैं तब अध्वर्यु भी इसे पाते हैं ॥३॥ यह सोम शिखर को कम्पित करते हैं। यह अपने ही बल से धनों के धर्त्ता हैं ॥४॥ यह उज्वल रस वाले सोम सभी प्रवाहित रसों के स्वामी होते हुए गमन करते हैं ॥ ५॥ यह सोम आच्छादन कर्त्ता असुरों के पार जाते हुये उन्हें देखते हैं ॥६॥ इन शोधित सोमों को द्रोण-कलशों में निष्पन्न किया जारहा है। यह सोम अधिक रस से सम्पन्न हैं ॥७॥ दशों अंगुलियाँ और सप्त ऋत्विज् सुन्दर सोम को धो कर स्वच्छ कर रहे हैं ॥८॥　　(५)

१६ सूक्त

(ऋषि-असितः काश्यपो देवलो वा । देवता-पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

प्र ते सोतार ओण्यो रसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तक्त्येतशः ।१

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा । गोषामण्वेषु सश्चिम ॥२
अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३
प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४
प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ॥५
पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६
दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रे अर्षति ॥७
त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ॥८ ॥६

हे सोम ! तुम आकाश-पृथिवी के मध्य शत्रु को परास्त करने वाली शक्ति के लिए प्रकट किये जाकर अश्व के समान भेजे जाते हो ॥१॥ जल को छनने वाले, अन्नवान् और बलवान् सोम के साथ कर्म में प्रवृत्त उँगुलियों को संगत करते हैं ॥२॥ हे अभिषवकर्त्ता ! यह सोम अन्तरिक्ष में स्थित, शत्रुओं को प्राप्त न होने वाला है। इसे इन्द्र के पीने के निमित्त छन्ने में डाल कर शुद्ध करो ॥३॥ पवित्र सोम स्तुति द्वारा छन्ने में गमन करते और द्रोण-कलश में निवास करते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! नमस्कार वाले स्तोता के द्वारा तेजस्वी हुआ सोम तुम्हें संग्राम में प्रवृत्त करने के लिये प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ भेड़ के बालों में निष्पन्न सोम वीर के समान ही गौओं के लाभ वाले कर्म में लगा है ॥६॥ जैसे अन्तरिक्ष से जल पृथिवी पर गिरता है, वैसे ही सोम की बल उत्पन्न करने वाली धाराएँ छन्ने में गिरती हैं ॥७॥ हे सोम ! मनुष्यों में जो स्तुति करने वाला होता है उसी की तुम रक्षा करते हो। तुम वस्त्र में छन कर भेड़ के बालों में स्थित होते हो ॥८॥ [८]

१७ सूक्त

(ऋषि-असित: कश्यपो देवलो वा । देवता-पवमान. सोमः । छन्द-गायत्री)

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः ॥१
अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥२
अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४
अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् । इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ।५
अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥६
तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजन्ति देवतातये ॥७
मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः । चारुर्ऋताय पीतये ॥८ ॥७

नदियों का जल जैसे निचले भू भाग में जाता है, उसी प्रकार शीघ्रगामी सोम कलश की ओर गमन करते हैं ॥१॥ जैसे वर्षा का जल पृथिवी पर गिरता है, वैसे ही निष्पन्न सोम इन्द्र पर गिरते हैं ॥२॥ अत्यन्त बढ़े हुए सोम असुरों का संहार करते हुए देवताओं की कामना से छन्ने की ओर जाता है ॥३॥ कलश को प्राप्त होने के लिए सोम छन्ने में निष्पन्न होते हैं और उक्थों से बढ़ाये जाते हैं ॥४॥ हे सोम ! तुम तीनों लोकों को पार करते हुए स्वर्ग को प्रकाश देते और सूर्य को प्रेरित करते हो ॥५॥ विद्वान् स्तोता सोम अभिषवकर्त्ता और सोम के भी प्रिय होकर स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ हे सोम ! विद्वज्जन अन्न की कामना से कर्म के द्वारा तुम्हें संस्कारित करते हैं ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम प्रवाहित होते हुए मधुर बनो और यज्ञ स्थान में पीने के लिए प्रतिष्ठित होओ । ८॥ [६]

१८ सूक्त

(ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वा । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः । मदेषु सर्वधा असि ॥१
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥२
तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ।३
आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे । मदेषु सर्वधा असि ।४
य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते । मदेषु सर्वधा असि ।५
परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति । मदेषु सर्वधा असि ।६
स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् । मदेषु सर्वधा असि ।७ ।८

यह सोम पाषाण पर अवस्थित हैं, यही छन्ने मे चरित होते है। हे सोम ! तुम सब के धारण करने वाले हो ॥१॥ हे सोम ! तुम ज्ञानी हो। अन्न द्वारा उत्पन्न मधुर रस प्रदान करो, क्योंकि तुम सब के धारक और हर्षयुक्त हो ॥२॥ हे सोम ! सब देवता तुम्हें पीते हैं। हर्षोत्पन्न करने वाले पदार्थों में तुम्हीं सब के धारण करने वाले हो ॥३॥ महणीय धनों को सोम स्तोता को प्राप्त कराते हैं। हे सोम ! तुम सब के धारण करने वाले हो ॥ ४ ॥ हे सोम ! जैसे एक बालक का दो माताऐं पालन करें, वैसे ही तुम द्यावा पृथिवी द्वारा पुष्ट होते हो ॥५॥ अन्न से सोम आकाश-पृथिवी को व्यापते है। हे सोम ! तुम हर्ष प्रदायक पदार्थों में सब के धारण करने वाले हो ॥६॥ वे वीर्यवान् सोम निष्पन्न होते समय कलश में शब्दवान हुए थे ॥७॥ [९]

१९ सूक्त

(ऋषि–असित: काश्यपो देवलो वा । देवता–पवमानः सोम । छन्द–गायत्री)

यत्सोम चित्रमुक्थ्य दिव्य पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ।१
युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ईशाना पिप्यतं धिय ।२
वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि वर्हिषि । हरि. सन्योनिमासदत् ।३
अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि। सूनोर्वत्सस्य मातर ॥४
कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । या. शुक्रं दुहते पय. ॥५
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिम् ।६
नि शत्रो. सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर ।
दूरे वा सतो अन्ति वा ।७ ।६

हे सोम ! पृथिवी के और आकाश के जितने धन हैं उन सबको तुम शुद्ध होने पर हमारे लिए प्राप्त कराओ ॥१॥ हे सोम ! हमारे भाग्य को विस्तृत करो। तुम और इन्द्र दोनों ही गौ पालक और सब के ईश्वर हो ॥२॥ निष्पन्न होने पर यह काम्य वर्षक सोम हरे रंग के होते हुए विस्तृत कुश पर शब्द करते हुए बैठते है ॥३॥ सोम की माता के समान वसतीवरी आदि सोम के मार्ग को चाहती है ॥४॥ मिश्रित किये जाने के समय सोम की कामना वाली

वसतीवरी को सोम गर्भ देते हैं और इन जलों से दूध को दुहते हैं ॥ ५ ॥ हे सोम ! हमारी जो कामना दूर दिखाई दे रही है, उसे निकटस्थ करो । शत्रुओं को डर देते हुए उनके धन को जानने वाले होओ ॥६॥ हे सोम ! तुम दूर या पास कहीं भी हो, शत्रुओं के बल को वहीं से आकर नष्ट करो । उनके तेज को भी मिटा डालो ॥७॥ [९]

सूक्त २०

(ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वा । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ।१
स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् २
परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३
अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ।४
त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ।५
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ।६
क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ।७ ।१०

भेड़ों के बालों के द्वारा यह सोम देवताओं के पीने के लिए गमन करते हैं । यह सब हिंसकों को मारते और शत्रुओं को पराजित करते हैं ॥ १॥ वही सोम स्तुति करने वालों को गौओं से सम्पन्न असीमित अन्न देते हैं ॥२॥ हे सोम ! तुम स्वेच्छापूर्वक सब धनों के दाता हो, हमको भी अन्नादि धन दो ॥३॥ हे सोम ! तुम महान् यश दो । स्तोताओं को अन्न और हविदाता को धन प्रदान करो ॥४॥ हे सोम ! तुम शोभनकर्मा हो । निष्पन्न हुए तुम हमारी स्तुति को राजा के समान ग्रहण करो । तुम विचित्र गति वाले एवं वहन करने वाले हो ॥५॥ सोम कठिनाई से मर्दित किए जाते हैं तब वे पात्र में पहुँचते हैं । वही सोम अन्तरिक्ष में विद्यमान होते हैं ॥६॥ हे सोम ! तुम देने की कामना करते हो । अतः स्तोता को श्रेष्ठ बल देकर छन्ने में क्षरित होते हो ॥७॥ [१०]

२१ सूक्त

(ऋषि–असितः काश्यपो देवलो वा । देवता–पवमान सोमः । छन्द–गायत्री)

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः । मत्सरास. स्वर्विदः ।१
प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः । स्वयं स्तोत्रे वयस्कृत. ।।२
वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ।।३
एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत। हिता न सप्तयो रथे ।।४
आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ।५
ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ।६
एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठा वाजिनो अक्रत ।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ।७।११

सोम हर्षप्रदायक और लोकों का पालन करने वाले हैं, वे इन्द्र की ओर गमन करते हैं ॥१॥ सोम अभिषवरण के आश्रित होते हुए सब से मिलते हैं। स्तोता को अन्न और यजमान को धन देते हैं ॥२॥ वसतीवरी को प्राप्त होते हुए सोम द्रोण कलश में गिर कर एकत्र होते हैं ॥ ३ ॥ रथ में जुड़े हुए घोड़े जैसे भार वाहक होते हैं, वैसे ही यह निष्पन्न हुए सोम सब धनों का वहन करते हैं ॥४॥ हे सोम ! यजमान की विविध इच्छाऐं पूरी होने को धन दो, क्योंकि यह यजमान हम ब्राह्मणों को दान देने वाला है ॥ ५ ॥ हे सोम ! ऋभुगण जैसे सारथि को चातुर्य देते हैं वैसे ही इस यजमान की बुद्धि दो और जल से मिलकर उज्ज्वल होते हुए क्षरित होओ ॥ ६ ॥ यह सोम यज्ञ काम्य हैं। यह यजमान की बुद्धि को प्रेरित करने वाले और निवासदाता हैं ॥७॥　　　　　　　　　　　　　　　　[११]

२२ सूक्त

(ऋषि–असितः काश्यपो देवलो वा । देवता–पवमानः सोमः । छन्द–गायत्री)

एते सोमास आशवो रथाइव प्र वाजिनः । सर्गाः सृष्टा अहेषत ।१
एते वाताइवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ।२
एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । विपा व्यानशुर्धियः ।३

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः । इयक्षन्तः पथो रजः ।४
एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः । उतेदमुत्तमं रजः ।५
तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत । उतेदमुत्तमाय्यम् ॥६
त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तन्तुमचिक्रदः ७।१२

रणभूमि की ओर रथ और घोड़े जिस प्रकार जाते हैं, वैसे ही यह सोम छन्ने के पास पहुँचते हैं ॥२॥ यह सोम वायु, मेघ और अग्नि ज्वालाओं के समान सब में व्याप्त हो जाते हैं ॥२॥ शोधित होने पर यह सोम गव्य से मिश्रित होकर हम में रस जाते हैं ॥३॥ यह सब सोम पवित्र एवं अमृतत्व से युक्त हैं। यह गमन करते हुए थकते नहीं हैं ॥३॥ सभी सोम आकाश पृथिवी की पीठ पर घूमते हुए स्वर्ग लोक को भी व्याप्त करते हैं ॥४॥ यज्ञ की वृद्धि करने वाले श्रेष्ठ सोम को जल व्याप्त करता है। सोम से यज्ञ श्रेष्ठ हो जाता है ॥६॥ हे सोम ! तुम गौ रूप हितकारी धन को पणियों से ग्रहण करते हो। इस यज्ञ की वृद्धि करने वाला शब्द करो ॥७॥ (१२)

२३ सूक्त

(ऋषि–असितः काश्यपो देवलो वा। देवता–पवमानः सोमः। छन्द–गायत्री)

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या ॥१
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥२
आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् । कृधि प्रजावतीरिषः ।३
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । अभि कोशं मधुश्चुतम् ।४
सोम अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् । सुवीरो अभिशस्तिपाः ।५
इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्य सधमाद्यः । इन्दो वाजं सिषाससि ।६
अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति । जघान जघनच्च नु ।७ ।१३

यह द्रुतगामी सोम स्तोत्र के समय निष्पन्न किए जाते हैं ॥ १ ॥ प्राचीन सोम नवीन होते हुए सूर्य को प्रकाशमान बनाते हैं ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर अदानशील का धर हमें प्राप्त कराओ और अपत्य युक्त धन

प्रदान करो ॥३॥ यह सोम अपने हर्ष प्रदायक और मधुस्रावी रसों को सींचते हैं ॥४॥ यह सोम संसार के धारण करने वाले हैं। इन्द्रियों को पुष्ट करने वाले रस को धारण करते हुए हिंसा से रक्षा करते हुए वीर कर्म से युक्त होते हैं ॥५॥ हे सोम ! तुम यज्ञ के पात्र हो। इन्द्रादि देवताओं के लिए क्षरित होते और हमें अन्न देना चाहते हो ॥६॥ इन्द्र अजेय हैं। उन्होंने इस अत्यन्त हर्षप्रदायक सोम को पीकर शत्रुओं का वध किया और अब भी उसी प्रकार करते हैं ॥७॥ (१३)

२४ सूक्त

(ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वा। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—गायत्री)

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः। श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥१
अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः। पुनाना इन्द्रमाशत ॥२
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे। नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे। सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥४
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि। अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥५
पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः। शुचिः पावको अद्भुतः ॥६
शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः। देवावीरघशंसहा ॥७ ॥१४

यह सोम दीप्त होकर दुग्धादि में मिश्रित होते हैं और जल में शोधे जाते हैं ॥१॥ जल जैसे नीचे की ओर बहता है, वैसे ही सोम इन्द्र की ओर प्रवाहित होते हैं ॥२॥ हे सोम ! निष्पन्न करने पर मनुष्य तुम्हें जहाँ भेजते हैं, वहीं तुम इन्द्र के पीने के लिए पहुँचते हो ॥३॥ हे सोम ! तुम शत्रुओं के धर्षक इन्द्र के लिए गिरो। तुम मनुष्यों के लिए हर्ष करने वाले हो ॥४॥ हे सोम ! तुम जब पत्थर से कूटे जाकर छन्ने की ओर गमन करते हो, तब इन्द्र के पेट के लिए यथेष्ट होते हो ॥५॥ हे सोम ! तुम इन्द्र के साथ वृत्रहन्ता हो। तुम उक्थों द्वारा स्तुत होते हुए अद्भुत गुण वाले एवं शोधक बनते हो ॥६॥ सोम-रस शोधक बनाये जाते हैं। वे शत्रुओं का नाश करने वाले और देवताओं के हर्षित करने वाले हैं ॥७॥ (१४)

२५ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—दृहळच्युतः आगस्त्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ।१
पवमान धिया हितोभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमा विश ।२
सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । वृत्रहा देववीतमः ।।३
विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः । यत्रामृतास आसते ।४
अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक् । इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ।५
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ।६।१५

हे सोम ! तुम पाप नाशक एवं बल-साधक हो । तुम मरुद्गण, वायु और देवताओं के लिए सिंचित होओ ॥१॥ हे सोम ! तुम शब्द करते हुए अपने स्थान में पहुँचो और वायु से संगति करो ॥२॥ यह सोम अभीष्टवर्षी, प्रिय, उज्ज्वल, वृत्रहन्ता होते हुए देवताओं की कामना वाले होकर शुद्ध होते हैं ॥३॥ यह निष्पन्न स्वच्छ सोम देवताओं के निवास स्थान की ओर गमन करते हैं ॥४॥ सुन्दर सोम शब्द करते हुए गिरते और इन्द्र को प्राप्त होकर मेधावी बन जाते हैं ॥५॥ सब से अधिक हर्ष प्रदान करने वाले सोम छन्ने को लाँघते हुए धारा रूप होकर इन्द्र से मिलते हैं ॥६॥ [१५]

२६ सूक्त

(ऋषि इध्मवाहो दार्ढच्युतः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि । विप्रासो अण्व्या धिया ।१
तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् । इन्दुं धर्तारमा दिवः ।२
तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि । धर्णसिं भूरिधायसम् ।।३
तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः । पतिं वाचो अदाभ्यम् ।४
तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । हर्यतं भूरिचक्षसम् ।५
तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् ।
इन्दविन्द्राय मत्सरम् ।६ ।।१६

वेगवान् सोम विद्वानों द्वारा अंगुलियों और स्तुतियों द्वारा शोधा जाता है ॥१॥ बहुत धाराओं वाले सोम को स्वर्ग का धारणकर्त्ता मानती हुई स्तुतियाँ सोम को पूजती हैं ।।२॥ सोम सबके स्वामी, असंख्यकर्मा और सब के धारक हैं। उनके निष्पन्न होने पर विद्वज्जन स्वर्ग की ओर भेजते हैं ॥ ३ ॥ पात्र में प्रतिष्ठित सोम स्तुतियों के स्वामी और अहिंस्य हैं, उन्हें ऋत्विग्गण दसों अंगुलियों द्वारा निष्पन्न करते हैं ॥४॥ जिन सोमों को अंगुलियाँ ऊपर की ओर प्रेरित करती हैं, वे सोम बहुतों के देखने वाले और रमणीय हैं ॥ ५ ॥ हे सोम! तुम स्तुत, बढ़े हुए और हर्ष प्रदान करने वाले हो, ऋत्विग्गण तुम्हें इन्द्र की ओर प्रेरित करते हैं ॥६॥ [१६]

२७ सूक्त

(ऋषि-नृमेध । देवता—पवमान सोमः । छन्द—गायत्री)

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ।।१
एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥२
एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ।।३
एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४
एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥५
एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥६ ॥१७

यह सोम सब ओर से प्रशंसित है। यह छन्ने का उल्लंघन करते हैं। निष्पन्न होने पर यह शत्रु-नाशक हो जाते हैं ॥२॥ यह सोम अत्यन्त बल देने वाले और विजयशील हैं। इन्हें इन्द्र और वायु के लिए छन्ने में डाला जाता है ॥१॥ यह सोम आकाश के मूर्धा है। मनुष्य इन्हें विभिन्न प्रकार से रखते हैं। यह सुन्दर पात्र में रखे हुए सोम सब के जाने वाले और संस्कृत हैं ॥३॥ निष्पन्न होने पर यह जो शब्द करते हैं वो यह हमारे लिए गौ और सुवर्ण की कामना करते हैं। यह शत्रुओं के जीतने वाले, दीप्त एवं हिंसा से शून्य हैं ॥४॥ यह हर्ष प्रदायक सोम शुद्ध करने वाले हैं, पवित्र सूर्य लोक में सूर्य के द्वारा छोड़े जाते हैं ॥५॥ यह सोम छन्ना रूप अन्तरिक्ष में गमन करते हुए

इन्द्र को प्राप्त होते हैं । यह हरे वर्ण वाले अभीष्टवर्षक, शोधक और उज्वल हैं ॥७॥ [१७]

२८ सूक्त

(ऋषि—प्रियमेधः । देवता - पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

एष वाजो हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यो वारं वि धावति ॥१
एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥२
एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥३
एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ।४
एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५
एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥६ ॥१८

पात्र स्थित सोम सब के ज्ञाता, सब के स्वामी और गमनशील होते हुए भेड़ के बालों पर जाते हैं ॥१॥ देवताओं के लिए निष्पन्न होने वाले सोम देव-शरीर में प्रविष्ट होने के लिए छन्ने में गमन करते हैं ॥२॥ यह सोम देवताओं की कामना करते हैं और वृत्रहन्ता होते हुए अपने स्थान में प्रतिष्ठित होते हैं ॥३॥ यह अभीष्ट वर्षक अंगुलियों से निष्पन्न सोम द्रोण-कलश की ओर गमन करते हैं ॥४॥ सब देखने वाले तेजस्वी सोम सूर्य आदि सब तेजों को शुद्ध करते हैं ॥५॥ यह सोम हिंसा के अयोग्य, बलवान, पापियों को नष्ट करने वाले और देवताओं के पोषक हैं ॥६॥ [१८]

२६ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः । देवता—पावमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ।१
सप्ति मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ।२
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ।३
विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ।४
रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ।५

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमन्तं शुष्ममा भर ।६।१६

यह निष्पन्न सोम वर्षक हैं । देवताओं को प्रभावित करने वाले यह सोम धारा रूप से गिरते हैं ॥१॥ हे स्तोता ! कर्मवान् अध्वर्यु इस तेजस्वी सोम को संस्कृत करते हैं ॥२॥ हे ऐश्वर्यवान् सोम ! निष्पन्न-काल में तुम्हारे सुन्दर तेज प्रवृद्ध होते हैं, अस जल जैसे समुद्र को पूर्ण करता है, वैसे ही तुम इस द्रोण-कलश को पूर्ण करो ॥३॥ हे सोम ! सब धनों को वश में करते हुए धारा रूप से त्वरित होओ और सब शत्रुओं को दूर करो ॥ ४ ॥ हे सोम ! अदानशील व्यक्तियों और निन्दा करने वालों से हमें बचाओ ॥ ५ ॥ हे सोम ! धारा रूप से गिरते हुए तुम पार्थिव और स्वर्गीय धनों के सहित यशस्वी बल बल को लेकर आओ ॥६॥   [१६]

३० सूक्त

(ऋषि-बिन्दु । देवता—पवमान सोमः । छन्द—गायत्री)

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ।१
इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ।२
आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् । पवस्व सोम धारया ।३
प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदम् ।४
अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ।५
सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरम् ।६।२०

सोम की धाराऐं छन्ने में से निकलती हुई शुद्ध होती हैं उस समय वे शब्द करती हैं ॥१॥ अभिषव करने वालों के द्वारा शुद्ध होते हुए बलवान् सोम इन्द्रात्मक शब्द करते हैं ॥२॥ हे सोम ! तुम धारा बन कर गिरो और मनुष्यों की काम्य बल और वीरों से युक्त धन दो ॥३॥ शुद्ध किए जाते हुए यह सोम धारा बन कर छन्ने को लाँघते हुए कलश को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम हरे रंग के और जलों में सब से अधिक मधुर हो । तुम्हें इन्द्र के पानार्थ पाषाण से मर्दित करते हैं ॥५॥ हे ऋत्विजो ! तुम इस बलकारी और रम्य सोम को इन्द्र के पीने के निमित्त निष्पन्न करो ॥६॥   [२०]

३१ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥१
दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२
तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः । सोम वर्धन्ति ते महः ॥३
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥४
तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५
स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥६ ॥२१

यह सुसंस्कृत होते हुए सोम श्रेष्ठ कर्मा हैं । यह गमन करते हुए हमको धन प्रदायक हैं ॥१॥ हे अन्नाधिपति सोम ! तुम आकाश पृथिवी को प्रकाशित करने वाले धन को बढ़ाओ ॥१॥ हे सोम ! वायु तुम्हें तृप्त करते हैं, नदियाँ तुम्हारी ओर गमन करती हुई गुणवान् बनाती हैं ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम वायु और जल से बढ़ो । तुम्हें सब ओर से बल प्राप्त हो । तुम युद्ध क्षेत्र में अन्नों को जीतो ॥४॥ हे सोम ! गौएं तुम्हारे लिए कभी क्षय न होने वाला दूध और घृत देती हैं । तुम ऊँचे स्थानों पर रहते हो ॥५॥ हे लोकपालक ! सोम ! हम तुम्हारी मित्रता चाहते हैं क्योंकि तुम्हारे आयुध श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ [२१]

३२ सूक्त

(ऋषि-श्यावाश्वः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः । सुता विदथे अक्रमुः ॥१
आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२
आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥३
उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥४
अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् । अगन्नाजिं यथा हितम् ॥५

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च।
सनिं मेधामुत श्रवः ।६।२२

हर्ष को सींचने वाले यह सोम हविदाता के यज्ञ में निष्पन्न होकर अन्न के लिए गमन करते हैं ॥१॥ त्रित ऋषि की अंगुलियाँ इन्द्र के पीने के लिए हरे रंग वाले सोम को पाषाण से निकालती हैं ॥२॥ हंस के जल में प्रविष्ट होने के समान सब सोम स्तुति करने वाले के मन में रहते हैं। यह सोम घृतादि से चिकने होते हैं ॥३॥ हे सोम ! तुम यज्ञ मंडप में आश्रित होते हुए मृग के समान आकाश पृथिवी को देखने वाले होते हो ॥ ४ ॥ स्त्री जैसे पुरुष की स्तुति करती है। हे सोम ! तुम अपने हित के लिए लक्ष्य पर पहुँचते हो ॥५॥ हे सोम ! मुझ हवियुक्त स्तोता को बुद्धि, बल, धन, अन्न और यश प्रदान करो।.६॥ [२२]

३३ सूक्त

(ऋषि-त्रितः। देवता-पवमानः सोमः। छन्द—गायत्री)

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः। वनानि महिषाइव ॥१
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन् ।२
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः। सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥३
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत् ।।४
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीरृतस्य मातरः। मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ।।५
रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः ।६।२३

जल की लहरों के समान सोम पात्रों में गमन करते हैं। जैसे वृद्ध हरिण वन में प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही सोम प्रवेश करते हैं ॥ १ ॥ वे सोम गौओं से युक्त अन्न देते हुए धारा बन कर कलश में गिरते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र वायु, वरुण, विष्णु और मरुतों की ओर यह निष्पन्न सोम जाते हैं ॥ ३ ॥ तीन स्तुतियाँ प्रकट होती हैं, दुग्ध दुहने के लिए गौएं शब्दवती हुई हैं और यह हरे रंग के सोम शब्द करते हुए कलश में जाते हैं ॥ ४ ॥ यज्ञ की माता

रूपिणी स्तुतियाँ स्तोताओं द्वारा उच्चारित की जारही है, उनके द्वारा स्वर्ग लोक के शिशु (सूर्य) के समान सोम दीप्त किये जारहे हैं ॥ ५ ॥ हे सोम ! धनों से सम्पन्न हजारों समुद्रों के स्वामित्व को सब दिशाओं से लेकर हमारे पास आगमन करो और हमको अपरिमित कामनाएं प्राप्त कराओ ॥६॥ (२३)

३४ सूक्त

(ऋषि-त्रितः । देवता-पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥१
सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥२
वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ॥३
भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥४
अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥५
समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥६॥२४

निष्पन्न होने के पश्चात् प्रेरित सोम छन्ने में गिरते हैं और शत्रुओं के दृढ़ नगरों को भी तोड़ डालते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र, वरुण, वायु, विष्णु और मरुतों के सामने यह निष्पन्न सोम गमन करते हैं ॥२॥ पाषाण के द्वारा रस को सींचने वाले इस सोम को अध्वर्युगण निष्पन्न करते हैं । इस प्रकार वे अपने कर्म द्वारा सोम-रूप दूध का दोहन करते हैं ॥ ३ ॥ त्रित ऋषि द्वारा लाया गया यह सोम हरे रंग का है । इन्द्र के पीने के लिए यह शुद्ध किया जारहा है ॥४॥ यज्ञ के आश्रय रूप श्रेष्ठ सोम को पृश्नि-पुत्र मरुद्गण अपने बल से दुहते हैं ॥५॥ सुन्दर स्तुतियाँ शब्दवती होती हुई सोम से संगति करती हैं और शब्द करते हुए सोम भी उन स्तुतियों को चाहते हैं ॥६॥ [२४]

३५ सूक्त

(ऋषि-प्रभूवसुः । देवता पवमानः सोमः । छन्द-गायत्री)

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् । यया ज्योतिर्विदासि नः ॥१

इन्दो समुद्रमोङ्खय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओजसा ।।२
त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यत. क्षरा णो अभि वार्यम् ।।३
प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिपासन्वाजसा ऋपि व्रता विदान आयुधा ।।४
तं गीर्भिर्वाचमीङ्खय पुनानं वासयामसि । सोम जनस्य गोपतिम् ।।५
विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पते. । पुनानस्य प्रभूवसो ।६।२५

हे सोम ! तुम हमारे चारों ओर धारा रूप से गिरो और हमको यज्ञ से युक्त धन प्रदान करो ॥१॥ हे सोम ! तुम शत्रुओं को कम्पित करने वाले और जलों के प्रेरित करने वाले हो। तुम अपने बल से हमारे लिये धनों के धारण करने वाले बनो ॥२॥ हे सोम ! युद्धोद्यत शत्रुओं को हम तुम्हारे बल से पराभूत करेंगे। तुम हमारे लिए ग्रहणीय धन प्रेरित करो ॥३॥ अन्न देने वाले, कर्म के ज्ञाता, सबके द्रष्टा सोम यजमान के आश्रित होते हुए अन्न प्रेरण करते हैं ॥४॥ मैं उन सोमों की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करता हूँ। वे सोम गौओं का पालन करने वाले और स्तुति प्रेरणा करने वाले हैं। हम उसी सोम के आश्रित रहेंगे ॥५॥ यह सोम कर्मों के स्वामी और पवित्र धन वाले हैं। हम उनके अभिषव-कर्म की कामना करते हैं ॥६॥ [२५]

३६ सूक्त

(ऋषि—प्रभूवसुः। देवता-पवमान सोम । छन्द-गायत्री)

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वो. सुत । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ।।१
स वह्नि जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतम् । २
स नो ज्योतीषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ।।३
शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्यो । पवते वारे अव्यये ॥४
स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवतामान्तरिक्ष्या ।।५
आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयु. शवसस्पते ।६ ।।२६

छनने में निष्पन्न हुए सोम रथ में योजित अश्वों के समान दोनों स्रुकों से युक्त होते हुए कर्म में घूमते हैं ॥१॥ हे सोम ! तुम देवताओं की कामना वाले,

चैतन्य और वाहक हो। तुम छन्ने को पार करते हुए गिरो ॥२॥ हे सोम ! तुम हमारे लिए स्वर्गादि लोकों को खोलो और हमें यज्ञादि कर्मों की प्रेरणा दो ॥३॥ यज्ञ की कामना वाले ऋत्विजों द्वारा सुसंस्कृत सोम भेड़ के बालों वाले छन्ने में शोधे जाते हैं ॥४॥ यह निष्पन्न सोम हवि देने वाले यजमान को पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष के सब धन प्रदान करें ॥५॥ हे सोम ! स्तुति करने वालों को तुम गौ, अश्व और वीर पुत्र देने की इच्छा करते हुए स्वर्ग की पीठ पर आरूढ़ होओ ॥६॥ [२६]

३७ सूक्त

(ऋषि—रहूगणः। देवता-पवमानः सोमः। छन्द—गायत्री)

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः। अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति। रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्। जामिभिः सूर्यं सह ॥४

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः। सोमो वाजमिवासरत् ॥५

स देवः कविनेषितो भि द्रोणानि धावति। इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥६।२७

इन्द्र आदि देवताओं के पीने लिए यह सोम अभीष्टवर्षक, देव-काम्य और असुरहन्ता होते हुए छन्ने में गिरकर निष्पन्न होते हैं ॥१॥ सर्व द्रष्टा सोम सबके धारक होते हुए छन्ने में गिरते हैं। फिर यह हरे रंग वाले सोम शब्द करते हुए द्रोण कलश में क्षरित होते हैं ॥२॥ यह क्षरणशील सोम स्वर्ग के प्रकाशक बनते हुए मेषलोम निर्मित छन्ने को पार कर गिरते हैं ॥३॥ त्रित ऋषि के श्रेष्ठ यज्ञ में पवित्र होते हुए उन सोमों ने अपने महान् तेजों द्वारा सूर्य को ज्योतिर्मान किया ॥४॥ रणभूमि की ओर गमन करते हुए अश्व के समान वृत्रनाशक अहिंसनीय, निष्पन्न और कामनाओं के देने वाले सोम द्रोण-कलश में प्रविष्ट होते हैं ॥५॥ वे सोम विद्वानों द्वारा प्रेरित एवं महान् हैं। वे इन्द्र की कामना करते हुए द्रोण-कलश में प्रविष्ट होते हैं ॥६॥ [२७]

३८ सूक्त

(ऋषि—रहूगणः। देवता-पवमानः सोमः। छन्द-गायत्री)

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति। गच्छन् वाज सहस्रिणम् ॥१
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२
एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः। याभिर्मदाय शुम्भते ॥३
एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति। गच्छञ्जारो न योषितम् ॥४
एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः। य इन्दुर्वारमाविशत् ॥५
एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः। क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥६॥२८

यह सोम यजमान को अपमित अन्न प्रदान करने के लिए कामनाप्रद होते हुए अन्न वस्त्र के छन्ने को लाँघकर द्रोण कलश में गमन करते हैं ॥१॥ त्रित ऋषि की अँगुलियों से यह हरे रङ्ग के सोम इन्द्र के पीने के लिए पाषाण द्वारा मदित होते हैं ॥२॥ दश अँगुलियाँ इन सोमों को संस्कृत करती हैं। इन्द्र के लिए यह सोम शोधे जाते हैं ॥३॥ मनुष्यों में यह सोम बाज के समान बैठते हैं। जैसे पति पत्नी के पास जाता है, वैसे ही यह सोम कलश में गमन करते हैं। ॥४॥ सोम के हर्ष प्रदायक रस सब पदार्थों के दृष्टा हैं। स्वर्ग के पुत्र रूप सोम छन्ने में गिरते हैं ॥५॥ हरे रंग के और सबके धारणकर्त्ता सोम पीने के लिए निष्पन्न होते हुए द्रोण कलश में गिरते हैं ॥६॥   (२८)

३६ सूक्त

(ऋषि—बृहन्मतिः। देवता-पवमानः सोमः। छन्द-गायत्री)

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना। यत्र देवा इति ब्रवन् ॥१
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥१
सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा। विचक्षाणो विरोचयन ॥३
अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥४
आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः। इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५
समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। योनावृतस्य सीदत ॥६॥ ६

यह सोम कह रहे हैं कि "जहाँ देवगण हैं, उसी दिशा में हम गमन करते हैं।" हे सोम ! तुम शीघ्र ही देवताओं के शरीरों में रमण करने के लिए जाओ ॥१॥ हे सोम ! सबको शुद्ध करते हुए तुम यज्ञकर्त्ता को अन्न रूप वृष्टि प्रदान करो ॥२॥ तेजस्वी होते हुए यह सोम पदार्थों को देखते और शीघ्र ही छन्ने में क्षरित होते हैं ॥३॥ जल की तरङ्गों के समान यह सोम छन्ने द्वारा छन कर गिरते और स्वर्ग की ओर गमन करने की कामना करते हैं ॥४॥ यह निष्पन्न सोम दूर या पास में स्थित इन्द्र के लिए मधुर रस सींचते हैं ॥५॥ एकत्र हुए स्तोता हरे वर्ण वाले सोम को पाषाण से कूटते हुए स्तुति करते हैं। इसलिए हे देवताओ ! तुम इस यज्ञ में प्रतिष्ठित होओ ॥६॥ [२६]

४० सूक्त

(ऋषि—बृहन्मतिः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभि. ।१
आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २
तू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वत. । आ पवस्व सहस्रिणम् ।३
विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ।।४
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् । जरितुर्वर्धया गिरः ।।५
पुनान इन्दवा भर सोम द्विवर्हसं रयिम् । वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ।६।३०

सबके देखने वाले सोम हिंसकों का उल्लंघन करते हैं। उस सोम को स्तोतागण स्तुतियों से सजाते हैं ॥१॥ यह अरुण वर्ण वाले सोम द्रोण-कलश को प्राप्त होते हैं फिर कामनाओं के देने वाले होकर इन्द्र की ओर गमन करते हुए यथा स्थान पहुँचते हैं ॥२॥ हे सोम ! निष्पन्न होकर तुम हमको सब ओर से बहुत सा धन लाकर दो ॥३॥ हे सोम ! तुम हमको सहस्रों प्रकार के धन और अनेक प्रकार के अन्न लाओ ॥४॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर पुत्रों से सम्पन्न धन लाकर स्तुतियों को अलंकृत करो ॥५॥ हे सोम ! शुद्ध होते समय तुम आकाश-पृथिवी में बढ़े हुए धनों को हमारे पास लाओ ॥६॥३०

४१ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—गायत्री)

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः। घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ।१
सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम्। साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥२
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्। अश्ववद्वाजवत् सुतः ॥४
स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण। उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः। सरा रसेव विष्टपम् ।६।३१

हे स्तोता! असुरों को मार कर विचरण करने वाले, जल के समान द्रव, तेजयुक्त और निष्पन्न सोमों की भले प्रकार स्तुति करो ॥१॥ दुष्ट बुद्धि को तिरस्कृत करते हुए हम सोम के निमित्त राक्षसों को मारने वाली स्तुति करते हैं ॥२॥ बलवान् सोम के तेज अभिषव किये जाते समय अन्तरिक्ष में घूमते हैं और सोम का शब्द, वर्षा के शब्द के समान ही सुनाई पड़ता है ॥ ३ ॥ हे सोम! निष्पन्न होकर तुम गौ, अश्व, पुत्रादि से सम्पन्न धन का प्रेरण करो ॥४॥ हे सोम! तुम बहो। सूर्य के द्वारा दिनों को पूर्ण किये जाने के समान तुम आकाश-पृथिवी को पूर्ण करो ॥५॥ हे सोम! जैसे नदियाँ पृथिवी को पूर्ण करती हैं, वैसे ही तुम अपनी कल्याणमयी धाराओं से सम्पन्नता दो ॥६॥ [३१]

सूक्त ४२

(ऋषि—मेध्यातिथिः। देवता—पवमानः सोम। छन्द—गायत्री)

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम्। वसानो गा अपो हरिः ॥१
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि। धारया पवते सुतः ॥२
वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये। सोमाः सहस्रपाजसः ॥३
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते। क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥४
अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः। सोमः पुनानो अर्षति ॥५
गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः। पवस्व बृहतीरिषः ॥६।३२

यह सोम हरे रंग के हैं, यह नक्षत्रों और सूर्य को उत्पन्न करते हुए नीचे गिरने वाले जलों से ढकते हैं ॥१॥ यह सोम प्राचीन ढंग से निष्पन्न होकर देवताओं के निमित्त धारा रूप में क्षरित होता है ॥२॥ यह असंख्य सोम बढ़े हुए अन्न की प्राप्ति के लिए शीघ्र ही गिरते हैं ॥३॥ यह रसयुक्त सोम छन्ने को पार करते हुए शब्द करते हैं और देवताओं को प्रकट करते हैं ॥४॥ निष्पन्न होते समय यह सोम अपने धनों के सहित यज्ञ के बढ़ाने वाले देवताओं के अभिमुख होते हैं ॥५॥ हे सोम ! निष्पन्न होकर तुम हमें गौ, घोड़े, वीर आदि से सम्पन्न अन्न धन प्रदान करो ॥६॥ (३२)

सूक्त ४३

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥१
तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२
पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥३
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् । इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥४
इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ । यदक्षारति देवयुः ॥५
पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे । सोम रास्व सुवीर्यम् ।६।३३।८

निरन्तर गमन वाले सोम देवताओं के निमित्त गव्य से मिश्रित होते हैं । हम उन सोम के लिये स्तुतियाँ करते हुए प्राप्त करते हैं ॥१॥ रक्षा की कामना वाले स्तोत्र इन्द्र के पीने के लिए सोम को गुणयुक्त करते हैं ॥२॥ निष्पन्न किये जाते समय मेधातिथि के लिए यह सोम स्तुतियों से सजकर कलश में पहुँचते हैं ॥३॥ यह निष्पन्न होते हुए सोम हमको सुन्दर तेज वाले तथा समृद्ध धन दें ॥४॥ वे सोम युद्ध में जाते हुए घोड़े के समान शब्द करते हुए देवताओं की कामना करते हैं ॥५॥ हे सोम ! स्तुति करने वाले सुभ मेध्यातिथि की वृद्धि के लिए सिंचित होओ । हे सोम ! मुझे सुन्दर बल वाला पुत्र और अन्न प्रदान करो ॥६॥ [३३]

॥ षष्ठ अष्टक समाप्त ॥

सप्तम अष्टक

प्रथम अध्याय

सूक्त ४४

(ऋषिः—अयास्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री ।)

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मि न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥१॥
मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥
अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ॥३॥
स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् । बर्हिष्माँ आ विवासति॥४॥
स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥
स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद् गातुवित्तमः । वाजं जेषि श्रवो बृहत् ।६।१

हे सोम ! तुम हमारे लिए महान् धन देने वाले होते हुए आगमन करते हो । अयास्य ऋषि तुम्हारी धाराओं को धारण करते हुए देव पूजन के निमित्त गमन करते हैं ॥ १ ॥ स्तोताओं ने सोम की स्तुति कर यज्ञ में स्थापित किया । उस सोम की धाराएँ दूर देश तक गमन करती हैं ॥ २ ॥ यह सोम निष्पन्न होकर देवताओं की ओर गमन करते हैं । यह पहिले छन्ने में गिरते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! कुश-सम्पन्न ऋत्विज तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम हमारे प्रति आकर्षित होते हुए हमारे अहिंसात्मक यज्ञ, को सम्पन्न करते हुए गिरो ॥ ४ ॥ विद्वान् उन सोमों को भग और वायु देवता के लिए प्रेरित करत

हैं। यह सदा प्रवृद्ध सोम हम यजमानों के लिए धन प्रदान करें ॥ ५ ॥ हे सोम ! तुम हमारे कर्मों के अनुसार प्राप्त होने वाले लोकों के मार्गों को जानते हो। हमारे धन लाभ के लिए तुम अन्न और बल पर आज अधिकार करो ॥ ६ ॥ [१]

सूक्त ४५

(ऋषिः— अयास्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥
स नो अर्षाभि दूत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे । देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥२॥
उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
अत्यू पवित्रमक्रमी द्वाजी धुरं यामनि । इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥
समी सखायो अस्वरन्वने क्रीलन्तमत्यविम् । इन्दु नावा अनूषत ॥५॥
तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ।६।२

हे सोम ! तुम नेताओं के देखने वाले हो। तुम देवताओं के आह्वान के लिए शक्ति सहित सिंचित होओ ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम इन्द्र द्वारा पान किये जाते हो। हमारे लिए दौत्य-कर्म वाले होकर देवताओं के पास से श्रेष्ठ वरणीय धनों को हमारे पास लाओ ॥ २ ॥ हे सोम ! हम तुम्हें गव्य में मिश्रित करते हैं। तुम हमारे लिए धन-द्वार का उद्घाटन करो ॥ ३ ॥ जाते समय घोड़ा जैसे रथ के धुरे को छोड़ जाता है वैसे ही छन्ने को लाँघकर सोम देवताओं में पहुँचता है ॥ ४ ॥ जब सोम छन्ने को लाँघता हुआ क्रीड़ा करता है तब स्तोता उसकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ हे सोम ! तुम जिस धारा के पीने पर स्तोता को सुन्दर बल प्रदान करते हो, उसी धारा के रूप में क्षरित होओ ॥ ६ ॥ [२]

सूक्त ४६

(ऋषिः—अयास्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—गायत्री)

असृग्रन्देववीतये ऽत्यासः कृत्व्याइव । क्षरन्तः पर्वतावृध ॥ १ ॥
परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥
एते सोमास इन्दव प्रयस्वन्तश्चमू सुताः । इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभि.॥३॥
आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृम्णीत मन्थिना ।
गोभि श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥
स पवस्व धनञ्जय प्रयन्ता राधसो महः ।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥
एत मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः । इन्द्राय मत्सरं मदम्।.६॥३।

पाषाणों द्वारा कूटने पर रस रूप सोम, कर्त्तव्य पथ में बढ़ते हुए अश्व के समान यज्ञ में गमन करते हैं ॥ १ ॥ जैसे पिता द्वारा अलङ्कारों से विभूषिता कन्या पति की ओर गमन करती है, उसी प्रकार यह सोम वायु की ओर गमन करते हैं ॥ २ ॥ सभी अन्न-सम्पन्न सोम निष्पन्न होकर यज्ञ में इन्द्र को हर्षित करते हैं ॥ ३ ॥ हे ऋत्विजों ! तुम्हारी भुजाएँ सुन्दर कर्म वाली हैं । तुम शीघ्र यहाँ आओ और इस उज्ज्वल सोम को मथानी से मथो । फिर इसे गव्यादि के मिश्रण से सुस्वादु बनाओ ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम शत्रु के धनों को जीतने वाले और अभीष्ट मार्ग पर ले जाने वाले हो । तुम हमारे लिए अपरिमित धन देने वाले होकर गिरो ॥ ५ ॥ दसों अँगुलियाँ हर्षकारी और शरण-धर्मा सोम को छानने में शुद्ध करती हैं ॥ ६ ॥ [३]

सूक्त ४७

(ऋषि—कविर्भार्गवः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द–गायत्री,)
अया सोमः सुकृत्यया महिश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥१
कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२
आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥३
स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति । यदी मर्मृज्यते धियः ॥४
सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषाममि ।.५॥ ४

यह सोम श्रेष्ठ संस्कार-कर्म द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए हैं और प्रसन्न होकर बलवान वृषभ के समान शब्द करने वाले हैं ॥ १ ॥ इस सोम को हमने असुर नाशक कर्म से सम्पन्न किया है। यह सोम ऋण के भी चुकाने वाले हैं ॥ २ ॥ इन्द्र के स्तोत्र के प्रकट होते ही इन्द्र के लिए बलवान्, वज्र के समान अहिंसनीय और हर्षप्रद रस से सम्पन्न सोम धन दाता होते हुए क्षरित होते हैं ॥ ३ ॥ अँगुलियों द्वारा संस्कृत होने वाले सोम, कामनाओं के धारण करने वाले इन्द्र से मेधावी स्तोता के लिए श्रेष्ठ धन प्राप्त कराने वाले होते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! जैसे रणभूमि की ओर गमनशील अश्वों को तृणादि देते हैं, वैसे ही तुम भी रणभूमि में शत्रु का पराभव करने वाले को धन प्रदान करते हो ॥ ५ ॥ [४]

सूक्त ४८

(ऋषि—कविर्भार्गवः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२
अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥३
विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥४॥
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥५॥५॥

हे सोम ! तुम स्वर्ग के निवासी देवताओं में स्थित और धनों के धारण करने वाले हो। तुम्हारे माध्यम द्वारा यज्ञ करते हुए तुमसे धन माँगते हैं ॥ १ ॥ हे सोम ! प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म वाले, शत्रुओं के हन्ता और शत्रुओं के दृढ़ नगरों के तोड़ने वाले हो। अतः तुमसे हम धन की याचना करते हैं ॥ २ ॥ हे सुन्दरकर्मा सोम ! तुम धनों के स्वामी हो। तुम्हें बाज स्वर्ग से सुगमतापूर्वक यहाँ लाया था ॥३॥ यज्ञ के संरक्षक, जलप्रेरक और

स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं के लिए बाज सोम को स्वर्ग से लाया था ॥४॥ हे सोम ! तुम यजमानों के अभीष्टों को देने वाले और मनुष्यों के कर्मों को सूक्ष्मता से देखने वाले हो । तुम अपनी स्तुति के योग्य महिमा को पाते हो ॥५॥   [४]

सूक्त ४६

(ऋषि—कविर्भार्गवः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—गायत्री)

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मि दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥
तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥
स न ऊर्जे व्य पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन्हिकम् ॥४॥
पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥५ । ६

हे सोम ! आकाश में जल को तरङ्गित करो । हमारे निमित्त वर्षा करते हुए अक्षय अन्नों से पृथिवी को भर दो ॥१॥ हे सोम ! तुम्हारी जिस धारा के प्रभाव से शत्रुओं के देशों में उत्पन्न हुई गौऐं हमें प्राप्त होती हैं, उसी धारा के रूप में क्षरित होओ ॥२॥ हे सोम ! तुम इस यज्ञ मंडप में देवताओं की कामना करते हो । तुम हमारे लिये घृत के साथ गिरो ॥३॥ हे सोम ! हमारे अन्न के निमित्त तुम छन्ना में धारा रूप से गमन करो । तुम्हारे जाने की ध्वनि को देवगण श्रवण करें ॥४॥ यह सोम राक्षसों का संहार करने वाली अपनी दीप्ति को बढ़ाते हुए क्षरित होते हैं ॥५॥ (६)

सूक्त ५०

(ऋषि—उचथ्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२॥
अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥५ । ७

हे सोम ! तुम्हारा वेग समुद्र के समान है। धनुष से छोड़े हुए बाण के समान तुम शब्द करते हो ।।१।। हे सोम ! तुम जब छन्ने को प्राप्त होते हो, तब, तुम्हारे शोधित होने पर यज्ञ करने वाले यजमान के मुख से तीन प्रकार की वाणी प्रकट होती है ।।२।। यह सोम पाषाणों द्वारा अभिषुत, मधुर रस से सम्पन्न, हरे रङ्ग के और देवताओं के लिए प्रिय है। ऋत्विगगण इन्हें भेड़ के बालों पर रखते हैं ।। ३ ।। हे सोम ! तुम अत्यन्त शोभन कर्म वाले और अधिक हर्ष वाले हो, तुम छन्ने को पार करते हुए इन्द्र के उदर को प्राप्त होने के लिए उनके सामने गिरो ।। ४ ।। हे सोम ! तुम सुमधुर दुग्धादि से मिश्रित होकर इन्द्र के पीने के निमित्त हर्षप्रदायक होते हुए गिरो ।।५।। (७)

सूक्त ५१

(ऋषि—उचथ्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्रायपातवे ।।१।।
दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ।।२।।
तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ।।३।।
त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये । वृषन्त्स्तोतारमूतये ।।४।।
अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ।। ५।८

हे ऋत्विज ! पाषाणों द्वारा पिसे हुए सोमों को छन्नों पर डाल कर इन्द्र के लिए संस्कृत करो ।।१।। हे अध्वर्युओ ! स्वर्ग के अमृतरूप, सुमधुर सोम को वज्रधारी इन्द्र के लिए निष्पीड़ित करो ।। २ ।। हे सोम ! तुम्हारे हर्षप्रदायक रस को इन्द्र और मरुद्गण आदि देवता अपने शरीर में रमाते हैं ।।३।। हे सोम ! निष्पीड़न के पश्चात् तुम देवताओं को हर्षित करो और कामनाओं के वर्षक होते हुए शीघ्र ही स्तोता की रक्षा के लिए तत्पर होओ ।।४।। हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर छन्ने में पहुँचो और हमारे अन्न से सम्पन्न यश की रक्षा करो ।।५।। [८]

सूक्त ५२

(ऋषि—उचथ्यः । देवता—पवमानः सोम. । छन्द—गायत्री)

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ॥१॥
तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात्तना ॥२॥
चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीह्वय ॥३॥
नि शुष्ममिन्दवेषा पुरुहूत जनानाम् । यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥
शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५।६

हे सोम ! तुम धनदाता हो। छनने में क्षरित होते हुए तुम हमारे बल को बढ़ाने वाले होओ ॥१॥ हे सोम ! तुम्हारी धाराओं से देवता हर्षित होते हैं। उनके द्वारा बढ़ते हुए तुम छनने की ओर जाते हो ॥२॥ हे सोम ! चरु के समान खाद्य को हमें दो। तुम पाषाण द्वारा ताड़ित किये जाने पर प्रवाहित होते हो। अतः पाषाणों से कूटे जाकर रस रूप से प्रकट होओ ॥३॥ हे सोम ! तुम बहुतों द्वारा आहूत हो । हमारे जिन शत्रुओं का बल हमें संग्राम के लिये आमन्त्रित करता है, तुम उन शत्रुओं को हमसे दूर भगाओ ॥४॥ हे सोम ! तुम धनदाता हो। अपनी स्वच्छ धाराओं सहित बहते हुए तुम हमारे पालक होओ ॥५॥ [६]

सूक्त ५३

(ऋषि—अवत्सार. । देवता—पवमानः सोमः । छन्द- गायत्री)

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्॥४।१०

हे सोम ! तुम्हें पाषाण ही प्रकट करता है । जब तुम रस रूप होते हो तब तुम्हारा असुर-हन्ता वेग उत्पन्न होता है । अपने उसी वेग से हमारी बाधक शत्रु-सेनाओं को रोको ॥१॥ हे सोम ! मैं भय से रहित होता हुआ

शत्रुओं द्वारा रथ पर लेजाते हुए धनों के लिये स्तोत्र करता हूँ, क्योंकि तुम शत्रुओं के नाश करने में समर्थ हो ॥२॥ हे सोम ! तुम्हारे तेज को सहने में असुर भी समर्थ नहीं हैं। तुम्हारे साथ संग्राम के इच्छुक दुष्ट का नाश करो ॥३॥ हरे रङ्ग के इन हर्ष प्रदायक सोमों को इन्द्र के लिये ऋत्विज जलों में युक्त करते हैं ॥४॥ [१०]

सूक्त ५४

(ऋषिः—अवत्सारः । देवता—पवमानः सोमः छन्द—गायत्री)

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥
अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥
परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः । पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥४॥११

सोम के प्राचीन काल से दुहे जाते तेजस्वी रस का मेधावीजन दोहन करते हैं ॥१॥ यह सोम सब विश्व को सूर्य के समान ही देखते हैं। यह स्वर्ग और सप्त नदियों को भी व्याप्त किये हुये हैं। यह तीसों दिन रात्रि की ओर गमनशील हैं ॥२॥ यह निष्पन्न सोम सूर्य के समान ही सब लोकों से ऊपर निवास करते हैं ॥३॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर इन्द्र की कामना करते हो। हमारे इस यज्ञ में गौओं से सम्पन्न अन्न सब ओर से हमें प्राप्त कराओ ॥४॥ (११)

सूक्त ५५

(ऋषिः—अवत्सारः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—गायत्री)

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव । सोम विश्वा च सौभगा ॥१
इन्द्रो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२
उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥
यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥४१२

हे सोम ! हमको असंख्य जौ आदि से युक्त अन्न और सुन्दर भाग्य वाला धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे सोम ! हमने-तुम्हारी अन्न वाली स्तुति कही है। तुम हमारे हर्षप्रद कुश पर विराजमान होओ ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम हमको अश्वों और गौओं के देने वाले हो। तुम शीघ्र ही अन्न के साथ गिरो ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम असंख्य बैरियों के जीतने वाले हो। तुम शत्रुओं को गिराते हो। हे सोम ! तुम गिरो ॥ ४ ॥ (१२)

सूक्त ५६

(ऋषि:—अवत्सारः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द:—गायत्री)

परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥
यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः । इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥२
अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत । मृज्यसे सोम सातये ॥३
त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव । नृन्त्स्तोतृन्पाह्यंहसः ४।१३

देवताओं की कामना करने वाले सोम छन्ना में गिर कर प्रचुर अन्न देने वाले और असुरों के नाशक होते हैं ॥ १ ॥ कर्म की इच्छा करने वाली सोम की सौ धाराऐं जब इन्द्र से सख्य भाव स्थापित करती हैं, तब सोम के द्वारा ही हमको अन्न लाभ होता है ॥ २ ॥ जैसे स्त्री अपने प्रिय पुरुष को बुलाती है, वैसे ही हे सोम ! हमारी दसों उँगलियाँ हमें धन प्राप्त कराने के उद्देश्य से तुम्हें इन्द्र के लिए शोधती हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त मधुर रस वाले हो। इन्द्र और विष्णु के निमित्त निष्पन्न होते हुए गिरो। तुम हमारे कर्मों के प्रेरक हो, अतः पाप से मुक्त करो ॥ ४ ॥ (१३)

सूक्त ५७

(ऋषि:—अवत्सारः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द:—गायत्री)

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥
स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥४॥१४

आकाश से होने वाली जल वृष्टि जैसे मनुष्यों को अन्न प्रदान करती है, वैसे ही हे सोम ! तुम्हारी श्रेष्ठ धारा भी हम अन्नाभिलाषियों को अभीष्ट देती है ॥ १ ॥ हरे रङ्ग के सोम, देवताओं के प्रिय कर्मों के द्रष्टा होते हुए और राक्षसों को अपने अस्त्रों से दबाते हुए यज्ञ मंडप में आगमन करते हैं ॥ २ ॥ मनुष्यों के द्वारा निष्पन्न होने वाले सुन्दर कर्मों से युक्त यह सोम राजा और बाज के समान भय-रहित होते हुए जल में निवास करते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम निष्पीडित होकर दिव्य और पार्थिव सभी धनों को यहाँ लाओ ॥ ४ ॥ [१४]

सूक्त ५८

(ऋषिः—अवत्सारः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—गायत्री)

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥१॥
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥२॥
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥३॥
आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥१५

यह सोम ! देवताओं को हर्षित करने वाले हैं । यह स्तोताओं के कल्याण के लिए गिरते हैं । निष्पन्न सोम की यह धारा अन्न रूप में क्षरित होती है ॥ १ ॥ सोम की धारा धन सींचने वाली, प्रकाश से सम्पन्न और मनुष्यों की रक्षक है । यह प्रसन्नतादायक सोम स्तोताओं का कल्याण करने के लिए क्षरित होते हैं ॥ २ ॥ ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक राजाओं ने हमें सहस्र-सहस्र मुद्राएँ प्रदान की हैं । यह कल्याणकारी सोम स्तोताओं को प्रसन्न करते हुए क्षरित होते हैं ॥ ३ ॥ ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक राजाओं ने हमें तीस सहस्र वस्त्र दान में दिये हैं । यह सोम स्तुति करने वालों का कल्याण करते हुए क्षरित होते हैं ॥ ४ ॥ [१५]

सूक्त ५६

(ऋषि—अवत्सारः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—गायत्री)

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित्। प्रजावद्रत्नमा भर ॥१॥
पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः। पवस्व धिषणाभ्यः ॥२॥
त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर। कविः सीद नि बर्हिषि ॥३
पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान्। इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥४।१६

हे सोम! तुम गौ, घोड़े आदि सभी सुन्दर धनों के जीतने वाले हो। तुम हमारे लिये पुत्रादि से सम्पन्न धन प्राप्त कराते हुए क्षरित होओ ॥ १ ॥ हे सोम! तुम सूर्य रश्मियों से, जलों से, औषधियों और पाषाणों से प्रवाहित होओ ॥ २ ॥ हे सोम! तुम दुष्टों के सब उपद्रवों को दूर करते हुये इस कुश पर प्रतिष्ठित होओ ॥ ३ ॥ हे सोम! तुम प्रकट होते ही पूज्य हो जाते हो और शीघ्र ही समस्त शत्रुओं के पराक्रमों को अभिभूत करते हो। अतः इन यजमानों को अभीष्ट दो ॥ ४ ॥ (१६)

सूक्त ६०

(ऋषि—अवत्सारः। देवता—पवमानः, सोमः। छन्दः—गायत्री)

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम्। इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥१॥
तं त्वा सहस्रचक्षसमथो सहस्रभर्णसम्। अति वारमपाविषुः ॥२॥
अति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशाँ अभि धावति। इन्द्रस्य हार्द्या-
विशन् ॥३॥
इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे। प्रजावद्रेत आ भर ॥४।१७

हे संस्कार को प्राप्त सोम! तुम सहस्राक्ष हो। हे स्तोताओ! इन सोम की स्तोत्रों से पूजा करो ॥ १ ॥ हे सोम! तुमको ऋत्विगगण अभिषुत करते और भेड़ के बालों पर छानते हैं ॥ २ ॥ भेड़ के लोम से गिरते हुए सोम द्रोण कलश को प्राप्त होते हैं। फिर इन्द्र के हृदय में रमण करते हैं

॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम इन्द्र के पूजन के निमित्त क्षरित होते हुए, हमको पुत्रादि वाला धन प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त ६१ [तीसरा अनुवाक]

(ऋषिः—अमहीयुः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—गायत्री)

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२
परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥
ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृलय ॥५॥१८

हे सोम ! तुम्हारे जिस रस ने युद्ध करते हुए राक्षसों के निन्यानबे पुरों को तोड़ा था, उसी रस के सहित इन्द्र के पीने के लिये प्रवाहित हो ओ ॥ १ ॥ शम्बर के नगरों को तोड़ने वाले सोमरस ने ही उस शत्रु को दिवोदास के आधीन किया । फिर इसके अन्य शत्रु तुर्वश और यदुओं को भी वशीभूत किया ॥ २ ॥ हे सोम ! गौ, घोड़े और सुवर्ण युक्त धनों को हमें बाँटो क्योंकि तुम अश्वादि धनों के दाता हो ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम छन्ने को भिगो देने वाले हो । हम तुम्हारी मित्रता चाहते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम्हारी जो धारायें छन्ने के चारों ओर क्षरित होती हैं, उनसे हमें सुखी करो ॥ ५ ॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥६
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥७
समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥८॥
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥९॥
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥१९

हे सोम ! तुम संसार भर के स्वामी हो । तुम निष्पन्न होकर पुत्रादि सम्पन्न अन्न धन लाओ ॥ ६ ॥ नदियाँ जिन सोमों की माता हैं, उन

सोमों को दशों अँगुलियाँ मलती हैं, तब वे सोम आदित्यों के पास गमन करने वाले होते हैं ॥ ७ ॥ यह निष्पन्न सोम छन्ने से गिरते हुए इन्द्र, वायु और सूर्य की रश्मियों से सङ्गत होते हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न और मधुर रस से सम्पन्न हो। तुम भग, पूषा, मित्र, वरुण और वायु देवताओं के हर्ष के निमित्त क्षरित होओ ॥ ६ ॥ हे सोम ! तुम्हारा अन्न स्वर्ग में प्रकट होता है और अन्न रूप सुख पृथिवी पर प्रकट होता है ॥१०॥ [१६]

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥११

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥१२

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदसनिः ॥१४

अर्षा ण सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्।१५।२०

हम अपने सब सुखों को इन सोमों की सहायता से ही प्राप्त करते हैं। जब इन्हें बाँटने की इच्छा करेंगे तभी बाँट लेंगे ॥११॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर इन्द्र, वरुण और मरुद्गण के लिये क्षरित होओ, क्योंकि तुम अन्न देने वाले हो ॥१२॥ यह सोम जलों द्वारा प्रेरित, शत्रुओं को मर्दित करने वाले दूध आदि द्वारा संस्कारित हैं। इनको देवता प्राप्त होते हैं ॥१३॥ इन्द्र के हृदय में रमण करने वाला सोम हमारे स्तोत्रों से प्रवृद्ध हो। पयस्विनी माताएं जैसे अपने शिशु की कामना करती हैं, वैसे ही यह स्तुतियाँ सोम की कामना करती हैं ॥१४॥ हे सोम ! हमको अन्न प्रदान करो। हमारी गौओं को सुखी करो ! निर्मल जलों की वृद्धि करो ॥१५॥ [२०]

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१६

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥१७॥

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥१८

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१९॥

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे।गोषा उ अश्वसा असि।२०।२१

सोम ने गिरते समय वैश्वानर अग्नि को स्वर्ग के वैचित्र्य को बढ़ानेके लिए प्रकट किया ॥१६॥ हे सोम तुम्हारा हर्ष प्रदायक रस मेष लोम की ओर गमन करता है ॥१७॥ हे क्षरणशील सोम ! तुम्हारा रस बढ़ता हुआ क्षरित होता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करता हुआ स्वयं दीप्तिमय होकर उसे देखता है ॥१८॥ हे सोम, जो देवताओं की कामना वाला, शत्रु-नाशक, और स्तुत्य तुम्हारा रस है, उसके सहित तुम अन्न के साथ क्षरित होओ ॥१९॥ हे सोम ! तुमने शत्रु को मारा है । तुम नित्य ही रणक्षेत्र के आश्रित होते हो । तुम गौ और अश्वों को देते हो ॥२०॥ [२१]

सम्मिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥
सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः । पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३
त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥
अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।२५।२०

हे सोम ! तुम गव्यादि से मिश्रित होते हुए, बाजके समान द्रुत-गति वाले होकर अपने स्थान पर बैठो ॥२१॥ हे सोम ! वृत्र ने जब जलों को रोका था, तब उसका संहार करने के समय तुमने इन्द्र की रक्षा की थी । ऐसे गुण वाले तुम इस यज्ञ में क्षरित होओ ॥२२॥ हे सोम ! हम आंगिरस अमहीयु आदि वैरियों के धन पर अधिकार करने वाले हों । तुम सेचन-समर्थ होते हुए हमारी स्तुतियों को बढ़ाओ ॥२३॥ हे सोम ! तुम्हारी रक्षाएँ पाकर हम अपने शत्रुओं को मार डालें । तुम हमारी रक्षा में सावधान रहो ॥२४॥ हे सोम ! तुम अदानियों और वैरियों का वध करते हुए इन्द्र से मिलते हुए क्षरित होओ ॥२५॥ [२२]

मह्रो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२६
न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥
अस्य ते सख्ये वयं तवन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः ॥२९॥
या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥ २३

हे सोम ! शत्रुओं को नष्ट करो ! हमारे लिए धन लाओ और पुत्रादि से सम्पन्न यश दो ॥२६॥ हे सोम ! अपने शोधन काल में जब तुम हमें धन देना चाहते हो और जब हमको अन्नादि से सम्पन्न करने की इच्छा करते हो तब सौ शत्रु भी तुम्हें हिंसित करने में समर्थ नहीं होते ॥२७॥ हे सोम ! तुम हमारे यश को सब देशों में विस्तृत करो और हमारे बैरियों को नष्ट करो ॥२८॥ हे सोम ! हम इस यज्ञ में तुम्हारी मैत्री को प्राप्त करेंगे और तब हम श्रेष्ठ अन्न से बलवान् होकर युद्ध की कामना वाले अपने शत्रुओं का संहार करेंगे ॥२९॥ हे सोम ! तुम्हारे जो आयुध शत्रु का हनन करने वाले, भयंकर और तीक्ष्ण हैं, उनके द्वारा हमें, शत्रुओं द्वारा प्राप्त होने वाले अपयश से बचाओ ॥३०॥ [२३]

सूक्त ६२

(ऋषि—जमदग्निः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वन्तो अर्वते ॥२
कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ॥३
असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥४॥
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः॥५२४

यह सोम छन्ने के पास शीघ्रतापूर्वक इसलिए लाए जाते हैं कि यह हमें सब सौभाग्य प्रदान करेंगे ॥१॥ यह बलवान् सोम हमारे पुत्रादि को सुख देने वाले तथा हमारे पापों को दूर करने वाले हैं। इन्हें हम इसलिए छन्ने के समीप ले जाते हैं ॥२॥ यह सोम हमारी गौओं को और हमको भी

अन्न प्रदान करते हुए हमारे स्तोत्रों की ओर गमन करते हैं ॥३॥ हे सोम ! तुम पर्वत में उत्पन्न होते, जल में बढ़ते और हर्ष के लिए निष्पन्न होते हो। वेगवान् बाज के समान यह भी अपने स्थान को वेग से प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ ऋत्विजों द्वारा वसतीवरों में संस्कृत सोम देवताओं के लिए निवेदित और सुन्दर रस वाले होते हैं। इन्हें गो दुग्धादि में मिश्रित करके सुस्वादु बनाते हैं ॥५॥

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय। मध्वो रसं सधमादे ॥६॥
यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये। ताभिः पवित्रमासदः ॥७॥
सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया। सीदन्योना वनेष्वा ॥८॥
त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः। वरिवोविद्घृतं पयः ॥९॥
अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति। हिन्वान आप्यं बृहत्॥१०।२५

फिर ऋत्विज इन हर्षप्रदायक सोमों के रस को यज्ञ स्थान में अमृतत्व की प्राप्ति के लिए विराजमान करते हैं ॥६॥ हे सोम ! मधुर रस सींचने वाली तुम्हारी धाराएं रक्षा के लिए प्रकट हुई हैं, तुम उनके साथ छन्ने में प्रतिष्ठित होओ ॥७॥ हे सोम ! भेड़ के बाल रूप छन्ने से निकल कर इन्द्र के पीने के लिये पात्र में स्थित होओ ॥८॥ हे सोम ! तुम हमारे लिये धन प्राप्ति में सहायक हो। तुम दूध और घृत रूप से हम आंगिरसों के लिये वर्षणशील होओ ॥९॥ इन सोमों को जल में उत्पन्न अपने महान् रस को देते हुए सब जानते हैं ॥१०॥

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा। करद्वसूनि दाशुषे ॥११॥
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्। पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥१२
एषस्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः। उरुगायः कविक्रतुः ॥१३॥
सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः। इन्द्राय पवते मदः ॥१४॥
गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते। विर्योना वसताविव ॥१५।२६

यह सोम धनों की वृष्टि करने वाले, पूज्य, असुरहन्ता और

टपकने वाले हैं। हविर्दाता यजमान इसके द्वारा धन प्राप्त करते हैं ॥ ११॥ हे सोम ! तुम यथेष्ट एवं बहुतों द्वारा काम्य गवादि धन के सहित क्षरणशील होओ ॥१२॥ यह क्षमतावान् सोम मनुष्यों द्वारा संस्कृत होकर सिंचित होते हैं। यह सोम अनेक स्तुतियों से सुशोभित हैं ॥१३॥ इन्द्र के लिए क्षरित होने वाले यह सोम विश्वसृष्टा, शान्तकर्मा, रक्षक और हर्षप्रदायक हैं ॥१४॥ पक्षी के घोंसले में जाने के समान स्तोत्रों द्वारा स्तुत सोम इस यज्ञ में इन्द्र के लिए प्रस्तुत होते हैं ॥१५॥

पवमान सुतो नृभि सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्मनासदम्॥१६
त त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुर रथे युञ्जन्ति यातवे । ऋषीणा सप्त धीतभि.।१७
त सोतारो धनस्पृतमाशु वाजाय यातवे । हरि हिनोत वाजिनम् ॥१८
आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रिय.।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥१९॥
आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु ॥२०॥२०

यह निष्पन्न सोम चमसों में अपने स्थान को प्राप्त करने के लिए यज्ञ में गत है ॥१६॥ ऋत्विगगण तीन पृष्ठों वाले तीन स्थानों और सात रश्मियों वाले इस यज्ञ रूप रथ में इस सोम को देवताओं के निमित्त योजित करते हैं ॥१७॥ सोम को संस्कृत करने वाले ऋत्विजो ! यह सोम धन का उत्पन्न करने वाला और बलवान् है। जैसे युद्ध के लिए अश्व सजाया जाता है वैसे ही इसे यज्ञ में जाने के लिए सजाओ ॥१८॥ गौओं में जैसे वृषभ जाते हैं, वैसे ही कलशों की ओर गमन करते हुए और सब धनों को हमें प्रदान करते हुए यह सोम निर्भय होकर वास करते हैं ॥१९॥ हे सोम ! इन्द्र आदि देवताओं के निमित्त स्तोतागण तुम्हारे मधुर रस का दोहन करते हैं ॥२०॥

आ नः सोम पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् । देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥२१
एते सोमा असृक्षत गृणाना. श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया॥२२

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥२
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥२
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।

अभि विश्वानि काव्या ॥२५।२

हे ऋत्विजो ! जिनका नाम भी रुचिकर है, उन सोमों को इन्द्र देवताओं के निमित्त छन्ने में रखो ॥ २१॥ यह स्तुत्य सोम महान् अन्न के निमित्त अत्यन्त शक्तिशाली धाराओं से सम्पन्न होते हैं ॥ २२ । हे सोम ! तुम सेवनार्थ गव्यादि को प्राप्त करते हो और अन्न देते हुए गिरते हो ॥२३ । हे सोम मैं जमदग्नि ऋषि तुम्हारा स्तोता हूँ । तुम हमको गवादि से युक्त धन प्रदान करो ॥२४॥ हे सोम ! अपने पूज्य रक्षा-साधन सहित हमारे स्तोत्रों पर क्षरित होओ ॥२५॥

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वमेजय ॥२६
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः॥
प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः । अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥
इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनम् : ईशानं वीतिराधसम् ॥
पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत्। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्॥३०॥

हे सोम ! तुम संसार को कंपाने वाले हो । हमारी स्तुतियों प्रसन्न होकर आकाश से जल वृष्टि करो ॥ २६ ॥ हे सोम ! लोक तुम्हारी महिमा से ही स्थित हैं और सब न तुम्हारे अनुकूल चलती हैं ॥ २७ ॥ हे सोम ! दिव्य जलधारा समान तुम्हारी उज्ज्वल धाराऐं छन्ने की ओर गमन करती हैं ॥२८॥ ऋत्विजो ! बल के कारण रूप, धन के स्वामी और प्रदाता उग्रकर्मा सो को इन्द्र के लिए अर्पित करो ॥२९॥ यह सोम क्रान्तकर्मा और सत्य हैं। हमारे स्तोत्रों को बल देते हुए यह सोम छन्ने पर बैठते हैं ॥३०॥

सूक्त ६३

(ऋषि—निध्रुविः काश्यपः । देवता—पवमान सोमः । छन्द—गायत्री ।)

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥१॥
इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः । चमूष्वा नि षीदसि ॥२॥
सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् । मधुमाँ अस्तु वायवे ॥३॥
एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः । सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ॥५॥
॥ ३० ॥

हे सोम ! तुम असंख्य धन और बल सींचो । हमको अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम अत्यंत हर्ष प्रदायक हो । इन्द्र को अन्न, बल और रस से तुम्हीं पूर्ण करते हो और चमसों में स्थित होते हो ॥२॥ यह मधुर रस वाले सोम विष्णु, वायु और इन्द्र के निमित्त निष्पीड़ित होकर द्रोण-कलश में पहुँचते हैं ॥ ३ ॥ यह पीले रंग के सोम जल के द्वारा मिश्रित होते हैं और असुरों की ओर गमन करते हैं ॥ ४ ॥ यह सोम इन्द्र की वृद्धि करते हुए और हमारे लिए भी कल्याणकारी होते हुए गमन करते हैं । यह सोम रस लोभी व्यक्तियों को नष्ट कर देते हैं ॥ ५ ॥ [३०]

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः । इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥६॥
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥८॥
उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥
परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् । अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥१०॥
॥ ३१ ॥

यह निष्पन्न पीत सोम अपने स्थान को प्राप्त करने के लिए इन्द्र की ओर गमन करते हैं ॥ ६ ॥ हे सोम ! तुमने मनुष्यों के उपकारी जलों की

आकाश से वृष्टि की और अपने रस से ही सूर्य को प्रकाश दिया। अपने उसी रस को प्रवाहित करो ॥ ७ ॥ यह सोम अन्तरिक्ष में चलने के लिए और मनुष्यों के हित के निमित्त सूर्य के अश्व को योजित करते हैं ॥८॥ इन्द्र का नामोच्चारण करते हुए यह सोम सूर्य के रथ में दशों दिशाओं में गमन करने के लिए अश्व को योजित करते हैं ॥ ९ ॥ हे स्तोताओ ! वायु और इन्द्र के निमित्त इस हर्षकारी एवं निष्पन्न सोम को मेषलोम पर स्थित करो ॥ १० ॥ [३१]

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् । यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥
अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥
सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसम् ॥१३॥
एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥१४॥
सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥
॥ ३२ ॥

हे सोम ! तुम्हारा जो धन शत्रुओं के लिए दुर्लभ है, जिस धन को हिंसक असुर भी नष्ट करने में समर्थ नहीं हैं। अपने उस धन को हमें प्रदान करो ॥ ११ ॥ हे सोम ! हमें असंख्य गौएँ, अश्व, बल, अन्न आदि श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥१२॥ यह सोम सूर्य के समान दमकते हुए हैं। पाषाणों से निष्पन्न सोम रस रूप होकर कलश में गिरते हैं ॥ १३ ॥ यह निष्पन्न, उज्वल सोम यजमानों के घरों में अन्न, पशु आदि के रूप में स्वयं बरसते हैं ॥१४॥ यह दधि आदि से मिश्रित एवं निष्पन्न सोम इन्द्र के लिये ही छन्ने में जाकर टपकते हैं ॥ १५ ॥ [३२]

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ॥१६॥
तमी मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥१७॥
आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत् सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर ॥१८॥
परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत । इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥१९॥

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः । वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥
॥ ३३ ॥

हे सोम ! तुम्हारे अत्यंत मधुर रस की इच्छा देवता करते हैं, उस रस को हमें धन-लाभ कराने के लिए प्रवाहित करो ॥ १६ ॥ यह सोम हरे रंग के हैं। ऋत्विज् इन्हें वसतीवरी जलों में इन्द्र के लिए संस्कारित करते हैं ॥ १७ ॥ हे सोम ! तुम हमारे लिए पशु आदि धनों को प्राप्त कराओ। अश्वादि से सम्पन्न सुवर्ण और पुत्रादि से युक्त धन हमें बाँटो ॥ १८ ॥ यज्ञ की कामना वाले यह सोम अत्यन्त मधुर हैं। हे ऋत्विजो ! इसका शोधन करो ॥ १६ ॥ रक्षा की कामना वाले विद्वान् जिन कान्तकर्मा सोमों को अपनी दशों अँगुलियों द्वारा शुद्ध करते हैं, वह क्षरणशील सोम शब्द करते हुए कलश को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥   [३३]

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममतस्य धारया । मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥
पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । प्रिय: समुद्रमा विश ॥२३॥
अपघ्नन् पवसे मृध क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥२४॥
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥
॥ ३४ ॥

कामनाओं के वर्षक सोम को ऋत्विगगण अपनी बुद्धि से अँगुलियों द्वारा जल के सहित प्रेरित करते हैं ॥ २१ ॥ हे सोम ! तुम उज्जल हो। तुम्हारा मदकारी रस तुम्हारी कामना करने वाले इन्द्र की ओर गमन करे। तुम अपने धारक रस के सहित वायु से सुसंगत होओ ॥ २२ ॥ हे सोम ! तुम शत्रुओं के ऐश्वर्य को निर्मूल करने वाले हो। तुम इस कलश में प्रविष्ट होओ ॥ २३ ॥ हे सोम ! तुम शत्रु-हन्ता और मदकारी हो, तुम देवताओं से द्वेष करने वाले असुरों को ऐश्वर्यहीन करते हो। तुम हमको सुमति प्रदान करते हुए क्षरित होओ ॥ २४ ॥ हे सोम ! तुम दीप्त और क्षरणशील हो। स्तोत्रों को सुनते हुए तुम ऋत्विजों द्वारा शोधित होते हो ॥२५॥ [३४]

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ।२६।
पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥
पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः । जहि रक्षांसि सुक्रतो ।२८।
अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९॥
अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा ।
इन्दो विश्वानि वार्या ॥३०॥ ३५ ॥

सब शत्रुओं के नाशक सोम सुन्दर, क्षरणशील, दीप्त और शीघ्रगामी हैं ॥२६॥ यह सभी सोम पृथिवी के ऊँचे भाग—पर्वत, आकाश और यज्ञ स्थान में प्रकट होते हैं ॥ २७ ॥ हे सोम ! तुम सुन्दर कर्म वाले हो । धारा रूप से प्रवाहित होते हुए सब शत्रुओं का हनन करो ॥ २८ ॥ हे सोम ! हमारे शत्रुओं और असुरों को नष्ट करते हुए तुम हमको यशस्वी बल प्रदान करो ॥ २९ ॥ हे सोम ! द्युलोक और पृथिवी में प्रकट अपने सब धन हमें प्रदान करो ॥ ३० ॥ [३५]

सूक्त ६४

(ऋषिः—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—गायत्री)

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ।।१॥
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन् वृषेदसि ॥२॥
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि।३।
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः।४।
शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ।।५॥
॥ ३६ ॥

हे वर्षक सोम ! तुम मनुष्यों के हित करने वाले तथा देवताओं द्वारा अनुमोदित कर्मों के धारण करने वाले हो । तुम अपने उज्वल गुणों के सहित बरसते हो ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम्हारा बल कामनाओं की वर्षा करने वाला है । तुम्हारे अवयव व रस भी वर्षक हैं । तुम सब प्रकार से वर्षणशील और मधुर

गुणों से सम्पन्न हो ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम घोड़े के समान शब्द करने वाले हो। हमें अश्वादि पशु देते हुए धन द्वार का उद्घाटन करो ॥३॥ गौ, अश्व, पुत्र आदि की कामना से इस सुन्दर, वेगवान् और बल सम्पन्न सोम का सत्कार किया गया है ॥ ४ ॥ यज्ञ करने वाले विद्वान् इन सोमों को अपने हाथों से स्वच्छ करते हैं तब यह सोम मेष लोमों पर गिरते हैं ॥५॥ [३६]

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६॥
पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥
केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥
हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥
इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥३७

हविदाता यजमान के निमित्त दिव्य पार्थिव और अन्तरिक्ष के सब धनों की यह सोम वृष्टि करे ॥ ६ ॥ हे सोम ! तुम संसार के देखने वाले हो। तुम्हारी धाराएं सूर्य रश्मियों के समान दमकती हुई निकल रही हैं ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम हमको अन्तरिक्ष से सब रूप के अन्नों को भेजो और विभिन्न धन-रत्नादि भी हम प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे सोम ! जैसे सूर्य आकाश पर आरूढ़ होते हैं, वैसे ही जब तुम्हारा रस छन्ने पर आरूढ़ होता है, तब तुम शब्द करते हुए उसी मार्ग में प्रेरित होते हो ॥ ९ ॥ यह सोम देवताओं को प्रिय है । यह स्तोताओं के स्तोत्रों से गिरते हैं । रथी जिस प्रकार अपने अश्व को चलाता है वैसे ही यह सोम अपनी तरंगों को चलाते हैं । १०॥ [३७॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥
स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः । इन्दविन्द्राय पीतये॥१२॥
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१३
पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥१४॥
पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥ ३८

हे सोम ! देवताओं की कामना करने वाली तुम्हारी तरंगें छन्ने पर

गिरते हैं ॥ ११ ॥ हे देवताओं की कामना करने वाले सोम ! तुम अपने हर्षकारी गुण सहित इन्द्र के पीने के लिए छन्ने पर गिरते हो ॥ १२ ॥ हे सोम ! तुम ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होकर हमारे अन्न के लिए गिरो और गौओं की ओर वृद्धि के लिए गमन करो ॥१३॥ हे सोम ! तुम दुग्धादि में मिश्रित किये जाते हो। निष्पन्न होने पर तुम यजमान के लिए अन्न-धन प्रदान करो ॥१४॥ हे सोम ! तुम यजमानों द्वारा लाये जाने पर, यज्ञ के निमित्त निष्पन्न होओ और इन्द्र के प्रति गमन करो ॥ १५ ॥ [३८]

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः। धिया जूता असृक्षत ॥१६॥
मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७॥
परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा। पाहि न. शर्म वीरवत् ॥१८॥
मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः। प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥
आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति। जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥ ३९

यह सोम अँगुलियों द्वारा उठाये जाकर अन्तरिक्ष की ओर जाते हैं ॥ १६ ॥ यह निष्पन्न सोम अन्तरिक्ष की ओर सरलता से गमन करते हैं और जल पात्र में प्रविष्ट होते हैं ॥ १७ ॥ हे सोम ! तुम हमारी कामना करते हो। तुम अपने बल से हमारे सब धनों का पालन करो और हमारे पुत्र तथा घर आदि की भी भले प्रकार रक्षा करो ॥ १८ ॥ हे सोम ! वहनशील अश्व शब्द करता हुआ यज्ञ में स्तुति करने वालों द्वारा नियत स्थान पर आता है तब वह अश्व के समान सोम जल में बैठता है ॥ १९ ॥ वेगवान् सोम यज्ञ के स्वर्णिम स्थान पर जब प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तब वे स्तुतियों से रहित मनुष्यों के कर्मों को प्राप्त नहीं होते ॥ २० ॥ [३९]

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः। मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२॥
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः। सं त्वा मृजन्त्यायवः॥२३॥
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे। पवमानस्य मरुतः ॥२४॥
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि। इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५॥४०

सुंदर बुद्धि वाले स्तोता सोम का स्तुति पूर्वक पूजन करते हैं और कुबुद्धि वाले पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ हे अत्यन्त मधुर सोम ! इन्द्र और मरुद्गण के लिए यज्ञ मंडप में क्षरित होओ ॥ २२ ॥ हे सोम ! कर्म करने वाले स्तोता भले प्रकार संस्कृत करने के पश्चात् तुमको स्तुतियों से सुसज्जित करते हैं ।२३। हे सोम ! मित्र,अर्यमा, वरुण आदि देवता तुम्हारे रस का पान करते हैं ॥ २४ ॥ हे सोम ! तुम ज्ञान से छना हुआ और बहुतों का पालन करने में समर्थ शब्द प्रेरित करते हो ॥ २५ ॥ [४०]

उतो सहस्रमर्णस वाच सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर ॥ २६ ॥
पुनान इन्दवेषा पुरुहूत जनानाम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥ २७ ॥
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिर ॥२८॥
हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाज वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९
ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥ ४१

हे क्षरणशील सोम ! तुम सहस्रों के पालने वाला, यज्ञ की कामना युक्त वाक्य हमें प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥ हे सोम ! तुम बहुतों द्वारा आहूत एवं क्षरणशील हो । तुम स्तोताओं के स्नेही रूप से कलश में स्थित होओ ॥२७॥ यह दुग्ध में मिश्रित किये जाने वाले सोम सब ओर शब्द करने वाली दीप्तिमयी धाराओं से युक्त होते हैं ॥ २८ ॥ युद्धस्थल में पहुँचते ही वीर पुरुष आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार यह सोम स्तुति करने वालों से प्रेरित होकर यज्ञ में आ जाते हैं ॥ २९ ॥ हे सोम ! तुम श्रेष्ठ बल से युक्त होते हुए सुन्दर दर्शन के निमित्त आकाश से बहो ॥ ३० ॥ [४०]

सूक्त ६५

(ऋषि—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥१
पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

गिरती हैं ॥ ११ ॥ हे देवताओं की कामना करने वाले सोम ! तुम अपने हर्षकारी गुण सहित इन्द्र के पीने के लिए छन्ने पर गिरते हो ॥ १२ ॥ हे सोम ! तुम ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होकर हमारे अन्न के लिए गिरो और गौओं की ओर वृद्धि के लिए गमन करो ॥१३॥ हे सोम ! तुम दुग्धादि में मिश्रित किये जाते हो। निष्पन्न होने पर तुम यजमान के लिए अन्न-धन प्रदान करो ॥१४॥ हे सोम ! तुम यजमानों द्वारा लाये जाने पर, यज्ञ के निमित्त निष्पन्न होओ और इन्द्र के प्रति गमन करो ॥ १५ ॥ [३८]

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः । धिया जूता असृक्षत ॥१६॥
मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७॥
परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा । पाहि न शर्म वीरवत् ॥१८॥
मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥
आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥ ३९

यह सोम अँगुलियों द्वारा उठाये जाकर अन्तरिक्ष की ओर जाते हैं ॥ १६ ॥ यह निष्पन्न सोम अन्तरिक्ष की ओर सरलता से गमन करते हैं और जल पात्र में प्रविष्ट होते हैं ॥ १७ ॥ हे सोम ! तुम हमारी कामना करते हो। तुम अपने बल से हमारे सब धनों का पालन करो और हमारे पुत्र तथा घर आदि की भी भले प्रकार रक्षा करो ॥ १८ ॥ हे सोम ! वहनशील अश्व शब्द करता हुआ यज्ञ में स्तुति करने वालों द्वारा नियत स्थान पर आता है तब वह अश्व के समान सोम जल में बैठता है ॥ १९ ॥ वेगवान् सोम यज्ञ के स्वर्णिम स्थान पर जब प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तब वे स्तुतियों से रहित मनुष्यों के कर्मों को प्राप्त नहीं होते ॥ २० ॥ [३९]

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२॥
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२३॥
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥२४॥
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५।४०

सुन्दर बुद्धि वाले स्तोता सोम का स्तुति पूर्वक पूजन करते हैं और कुबुद्धि वाले पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ हे अत्यन्त मधुर सोम ! इन्द्र और मरुद्गण के लिए यज्ञ मंडप में क्षरित होओ ॥ २२ ॥ हे सोम ! कर्म करने वाले स्तोता भले प्रकार संस्कृत करने के पश्चात् तुमको स्तुतियों से सुसज्जित करते हैं ।२३। हे सोम ! मित्र,अर्यमा, वरुण आदि देवता तुम्हारे रस का पान करते हैं ॥ २४ ॥ हे सोम ! तुम ज्ञान से युक्त हुआ और बहुतों का पालन करने में समर्थ शब्द प्रेरित करते हो ॥ २५ ॥ [४०]

उतो सहस्रभर्णसं वाच सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर ॥ २६ ॥
पुनान इन्दवेपा पुरुहूत जनानाम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥ २७ ॥
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥
हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९
ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥ ४१

हे धारणशील सोम ! तुम सहस्रों के पालने वाला, यज्ञ की कामना युक्त वाक्य हमें प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥ हे सोम ! तुम बहुतों द्वारा आहूत एवं धारणशील हो । तुम स्तोताओं के स्नेही रूप से कलश में स्थित होओ ॥२७॥ यह दुग्ध में मिश्रित किये जाने वाले सोम सब ओर शब्द करने वाली दीप्तिमयी धाराओं से युक्त होते हैं ॥ २८ ॥ युद्धस्थल में पहुँचते ही वीर पुरुष आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार यह सोम स्तुति करने वालों से प्रेरित होकर यज्ञ में आ जाते हैं ॥ २९ ॥ हे सोम ! तुम श्रेष्ठ बल से युक्त होते हुए सुन्दर दर्शन के निमित्त आकाश से बहो ॥ ३० ॥ [४०]

सूक्त ६५

(ऋषि—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—गायत्री)

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥१
पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥३॥
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ॥४॥
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥५॥ १

हे सोम ! यह अँगुलि रूप दश स्त्रियाँ तुम्हारे निष्पीडन की कामना करती हुई तुम्हें हरित करती हैं ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम छन्ने द्वारा शुद्ध होकर दमकते हो । तुम देवताओं के पास से सब धनों को हमें प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ हे सोम ! देवताओं की सेवा के लिए सुन्दर स्तोत्र से युक्त वृष्टि करते हुए हमें अन्न दो ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम इच्छित फल देने वाले हो। हम तुम्हें अपने इस सुन्दर कर्म वाले यज्ञ में आहूत करते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम्हारे आयुध सुन्दर हैं । तुम हमारे यज्ञ में देवताओं को हर्ष युक्त करते हुए हमको सुन्दर और बलवान् पुत्र प्रदान करो ॥ ५ ॥ [१]

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥६॥
प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ॥७॥
यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥
तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे॥९
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ।१०।२

हे सोम ! तुम भुजाओं के द्वारा वसतीवरी जल से सिंचित होते हो । तुम उस समय काष्ठ के पात्र में बैठकर अपने नियत स्थान पर पहुँचते हो ॥ ६ ॥ हे स्तोताओं ! जैसे व्यश्व ऋषि ने सोम के शोधन-काल में स्तुति की थी, वैसे ही तुम भी निष्पन्न होने पर महिमावान् हुए सोम के लिए स्तुतियों का गान करो ॥ ७ ॥ हे अध्वर्युओ ! तुम शत्रुओं को रोकने वाले, हरे, मधुर और दमकते हुए सोम को इन्द्र के लिए पाषाणों से निष्पन्न करो ॥८॥ हे सोम ! तुम शत्रुओं के सब धनों के स्वामी हो, हम तुम्हारी मैत्री चाहते हैं ॥ ९ ॥ हे सोम ! तुम इच्छित फलों के दाता हो । तुम द्रोण कलश में क्षरित होओ और इन्द्र तथा मरुद्गण के लिए हर्षित करो । तुम स्तुति करने वालों को धन देते हुए अपनी शक्ति को बढ़ाओ ॥ १० ॥ [२]

तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ।११।
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युज वाजेषु चोदय ।१२।
आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।
अस्मभ्य सोम गातुवित् ॥ १३ ॥
आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा । एन्द्रस्य पीतये विश ॥१४॥
यस्य ते मद्य रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभि. । स पवस्वाभिमातिहा ।।१५।।३

हे सोम ! तुम स्वर्ग-द्रष्टा, आकाश-पृथिवी के धारक और बलवान हो। मैं तुम्हें रणक्षेत्र में प्रेरित करता हूँ ॥११॥ हे सोम ! हमारी अँगुलियों से निष्पीडित होकर द्रोण कलश में गमन करो। तुम हरे रङ्ग वाले हो, अपने सखा इन्द्र को हर्षित करते हुए रणक्षेत्र में प्रेरित करो ॥ १२ ॥ हे सोम ! तुम संसार को प्रकाशित करने वाले हो । तुम हमको यथेष्ट अन्न दो और अन्त में स्वर्ग के द्वार को बताओ ॥ १३ ॥ हे सोम ! शोधित होते हुए तुम्हारी बलवती धाराएँ द्रोण-कलश में जाती हुईं स्तुति करने वालों के द्वारा प्रशंसित होती हैं । हे क्षरणशील सोम ! तुम इन्द्र के पीने के लिए यहाँ आकर चमस में स्थित होओ ॥ १४ ॥ हे सोम ! तुम्हारा रस हर्षप्रदायक है। अध्वर्यु आदि उसे पाषाणों के द्वारा दुहते हैं । तुम पापियों को नष्ट करने वाले होते हुए गिरो ॥ १५ ॥ [३]

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥१६॥
आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥१७॥
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥१८॥
अर्षा सोम द्युमत्तमो ऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ १९ ॥
अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ।२०। ४

यज्ञ के आरम्भ होने पर सोम को आकाश से क्षरित होकर द्रोण-कलश में आने के लिए स्तुति की जाती है ॥ १६ ॥ हे सोम ! हमारे पोषण के लिए सहस्रों गौओं से सम्पन्न और सब को पुष्टि देने वाले धन को दो

तथा अश्वादि से युक्त ऐश्वर्य भी दो ॥ १७ ॥ हे सोम ! तुम देवताओं के पीने के लिए निष्पन्न होओ तथा शत्रु के नाश में समर्थ बल और श्रेष्ठ सौंदर्य भी हमको प्रदान करो ॥ १८ ॥ हे सोम ! बाज पक्षी के अपने नीड़ में जाने के समान ही यह देदीप्यमान, उज्वल और चरणशील सोम कुन्ने में छनते हुए द्रोणकलश को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ यह सोम विष्णु वायु, वरुण, इन्द्र तथा अन्य सब देवताओं के लिए प्रवाहित होते हैं ॥ २० ॥ [४]

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ।२१।
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥२२॥
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३॥
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥२४॥
पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ।२५।५

हे सोम ! तुम हमको सहस्रों की संख्या में बल धन प्रदान करो और हमारे पुत्र को भी अन्नादि दो ॥ २१ ॥ दूर अथवा पास में निष्पन्न होने वाले सोम शर्यणावत् सरोवर में उत्पन्न हुए हैं । वे श्रेष्ठ गुण वाले सोम हमको इच्छित फल प्रदान करें ॥ २२ ॥ जो आर्जीक में, सरस्वती के किनारे और पंचजन में अभिषुत होने वाले सोम हैं, वे हमें इच्छित फल दें ॥ २३ ॥ यह उज्वल सोम आकाश-मार्ग से आकर सुन्दर बल वाले पुत्र और धन प्रदान करें ॥ २४ ॥ यह देवताओं की कामना वाले हरे रङ्ग के सोम जमदग्नि द्वारा स्तुत होकर पात्र में स्थित होते हैं ॥ २५ ॥ [५]

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत।२६।
तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥२७॥
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२८॥
आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२९॥
आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥३०॥ ६

जैसे जल से घोड़ों को धोया जाता है, वैसे ही यह अन्नों को प्रेरित

करने वाले, उज्ज्वल सोम दुग्धादि में मिश्रित किये जाते और वसतीवरी जलों में धोये जाते हैं ॥ २६ ॥ हे सोम ! स्वच्छ होने के पश्चात् ऋत्विग्गण तुम्हें देवताओं के निमित्त पाषाणों के द्वारा कूटते हैं। हे दिव्यगुण सोम ! तुम अपनी श्रेष्ठ धाराओं के रूप में द्रोण-कलश को प्राप्त होओ ॥ २७ ॥ हे सोम ! हम यज्ञ करने वाले तुम्हारे रक्षक, अभिलाषणीय और सुखकारी बल की यज्ञ स्थान में कामना करते हैं ॥ २८ ॥ हे हर्षप्रदायक सोम ! तुम अनेकों द्वारा स्तुत, मेधावी, सब के रक्षक और सुन्दर मति वाले हो। हम यज्ञकर्त्ता विद्वान् तुम्हारी इच्छा करते हैं ॥ २९ ॥ हे सोम ! तुम हमारे पुत्रों को बुद्धि और धनों से युक्त करो, तुम सब की रक्षा करने वाले और अनेकों द्वारा कामना किये गए हो। हम तुम्हारी शरण लेते हैं ॥ ३० ॥ [६]

सूक्त ६६

(ऋषि-शतं वैखानसाः । देवता पवमानः सोमः अग्निः । छन्द गायत्री, अनुष्टुप्)

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥१॥
ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥२॥
परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे॥३॥
पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या । सखा सखिभ्य ऊतये ॥४॥
तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते । पवित्रं सोम धामभिः ॥५॥

हे स्तुत्य सोम ! तुम हमारे मित्र और सूक्ष्म दर्शक हो । तुम हमारी स्तुतियों वाले श्रेष्ठ कर्म में गिरो ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम अपने तिर्यक् पत्रों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हो जाते हो ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम श्रेष्ठ कर्म वाले हो। तुम्हारा तेज सब ओर व्याप्त है । तुम अपने उस तेज से ही सब ऋतुओं में व्याप्त होते हुए शोभा पाते हो ॥ ३ ॥ हे मित्र रूप सोम ! हमारी रक्षा के लिए हमारे स्तोत्रों को सुनते हुए तुम हमको अन्न प्रदानार्थ आगमन करो ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम्हारी दैदीप्यमती रश्मियाँ भूलोक में जल को बढ़ाती हैं ॥ ५ ॥ [७]

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥६॥

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः । दधानो अक्षिति श्रवः ॥७॥
समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः । विप्रमाजा विवस्वतः ॥८॥
मृजन्ति त्वा समग्रुवो ऽव्ये जीरावधि ष्वणि । रेभो यदज्यसे वने ॥९॥
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१०८

हे सोम ! सप्त नदियाँ तुम्हारी अनुवर्तिनी हैं । गौऐं तुम्हें दुग्धादि से पूर्ण करने को दौड़ती हैं ॥ ६ ॥ हे सोम ! हमने तुम्हें इन्द्र के हर्ष के लिए ही निष्पीडित किया है । तुम छन्ने से द्रोण-कलश में क्षरित होओ और हमको यथेष्ट धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम मेधावी और क्षरणशील हो । स्तुति करने वाले सात होताओं ने देवताओं की सेवा करने वाले यजमान के यज्ञ स्थान में तुम्हारी स्तुति की थी ॥८॥ हे सोम ! जब तुम वसतीवरी जलों से सींचे जाते हुए शब्द करते हो तब दशों अँगुलियाँ तुम्हें भेड़ के बालों वाले छन्ने पर गिराती हुई निचोड़ती हैं ॥ ९ ॥ हे सोम ! अन्न वाहक अश्व जैसे द्रुतवेगकारी होते हैं वैसे ही तुम्हारी उज्वल धाराऐं यजमान के लिए अन्न की इच्छा करती हुई वेग से गमन करती हैं ॥ १० ॥ [८]

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥११॥
अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२॥
प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥
अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः । इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥१४॥
आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । एन्द्रस्य जठरे विश ॥१५॥९

ऋत्विजों द्वारा द्रोणकलश पर और मेषलोम पर मधुर रस-वर्षक सोम रखे जाते हैं । उन सोमों को संस्कारित करने को हमारी अँगुलियाँ कामना करती हैं ॥ ११ ॥ जैसे पयस्विनी गौऐं अपने गोष्ट में गमन करती हैं, वैसे ही यह सोम द्रोणकलश में गमन करते हैं । यही सोम यज्ञ-स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ हे सोम ! जब तुम गव्य से मिश्रित किये जाते

हो, तब हमारे यज्ञ में धमनीवत् जल गमन करते हैं ॥ १३ ॥ हे सोम ! हम पूजन करने वाले पुरुष तुम्हारे बंधुत्व को प्राप्त करने वाले कर्म में लगकर तुम्हारे स्थामक साधनों और मैत्री भाव को चाहते हैं ॥ १४ ॥ हे सोम ! जिन इन्द्र ने अङ्गिराओं की गौओं को खोज निकाला था, उन महान् इन्द्र के निमित्त प्रवाहित होकर तुम उनके उदर में स्थित होओ ॥ १५ ॥ [६]

महा असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठ ।

युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥१६॥

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः ।

भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥१७॥

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् ।

वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१९॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।

तमीमहे महागयम् ॥२०॥१०

हे सोम ! तुम देवताओं को देने वाले, स्तुत्य और महान् हो । तुमने शत्रुओं से संग्राम कर उनके धनों को प्राप्त किया था । तुम महान् बल वालों में भी बली हो ॥१६॥ यह सोम बलवानों में बली, वीरों में वीर और देने वालों में अत्यन्त देने वाले हैं॥१७॥ हे यज्ञ प्रेरक सोम ! तुम शोभन बल वाले हो । हमें पुत्र प्रदान करो । हमको अन्नादि धन दो । हे सोम ! शत्रु के द्वारा बाधित होने पर हम तुमसे रक्षा की याचना करते हैं और तुम्हारी मैत्री भी चाहते हैं ॥१८॥ हे सोम ! तुम हमारे रक्षक हो। असुरों को हमसे दूर भगाओ। हमको रस और अन्न प्रदान करो ॥१९॥ अग्निदेवता ऋषियों, ऋत्विजों, चारों वर्ण वाले मनुष्यों और निषाद के हितैषी हैं। उन्हीं अग्नि से हम अन्न और धनादि माँगते हैं ॥२०॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ।।२१।।
पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् । सूरो न विश्वदर्शतः ।।२२
स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः । इन्दुरत्यो विचक्षणः।।२३
पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ।।२४
पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ।।२५।।११

हे अग्ने ! तुम सुन्दर कर्म वाले हो, हमको तेजस्वी बनाओ और गौ तथा पुत्रादि प्रदान करो ।।२१।। सोम शत्रुओं के पार जाते हैं, वे सूर्य के समान सब प्राणियों के लिए दर्शन करने योग्य हैं, वे स्तुति करने वालों के सुन्दर स्तोत्र को प्राप्त होते हैं ।।२२।। बारम्बार शोधन [illegible] सोम देवताओं का सामीप्य प्राप्त करते हैं। वे सर्वद्रष्टा सोम-हितैषी और हर्ष-दायक अन्न से सम्पन्न हैं ।।२३।। इन सोम ने अंधकार नाशक, दीप्त, सर्व-व्यापी और उज्वल तेज को प्रकट किया ।। २४ ।। यह सोम हरे रंग के, अन्धकार—नाशक और चरणशील हैं, उनकी प्रसन्नता देने वाली, धाराऐं छन्ने से छन रही हैं ।।२५।।

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः २६
पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ।।२७
प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ।।२८
एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः । इन्द्रं मदाय जोहुवत् ।।२९
यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ।।३०।।१२

हे सोम ! तुम अपनी तरंगों से जगत को व्याप्त करते हो। तुम हरे रंग की धारा वाले, स्वच्छ कीर्ति वाले, चरणशील और मरुद्गण से सुसंगत हो।। ६।। यह सोम चरणशील, अन्न देने वाले और स्तोता को पुत्रवान बनाने वाले हैं। यह अपनी तरंगों से सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करते हैं ।।२७

यह सोम मेष लोम वाले छन्ने से पार होते हुए गिरे हैं। यह संस्कृत होकर इन्द्र के उदर में स्थित हो ॥२८॥ तरंगों वाले यह सोम पाषाणों से क्रीडा करते हैं। इन्होंने हर्षपूर्वक इन्द्र को आहूत किया है ॥२९॥ हे सोम! तुम्हारे पास रस रूपी अन्न है। उसके द्वारा हमारी दीर्घायु के लिए आनन्द दो ॥३०॥ [१२]

सूक्त ६७

(ऋषि—भरद्वाजः, कश्यपः, गोतमः, अत्रि, विश्वामित्रः, जमदग्नि, वशिष्ठ। देवता—पवमानः सोमः, अग्निः, सविता, विश्वेदेवा
छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे। पवस्व मंहयद्रयिः ॥१
त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः। इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥२
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥३
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया। हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥४
इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥५।१३

हे सोम! तुम अत्यन्त ओजस्वी हो। इस हिंसा रहित यज्ञ में तुम स्तुति करने वालों को धन देते हो। हे सोम! तुम द्रोण-कलश में क्षरित होओ ॥१॥ तुम ऋत्विजों को प्रसन्न करने वाले हो। हे सोम! उन ऋत्विजों को धन-प्रदान करते हुए तुम निष्पन्न अन्न के सहित इन्द्र को हर्ष प्रदान करने वाले होओ ॥२॥ हे सोम! तुम पाषाणों से पीसे जाकर शब्द करते हुए कलश की ओर गमन करो और वन शत्रु को सुखाने वाले उज्जल बल से सम्पन्न होओ ॥३॥ यह सोम लोढ़े से पीसे जाकर भेड़ के बालों वाले छन्ने पर चढ़ते हैं और यह हरे रंग वाले सोम अन्न को सम्बोधित करते हैं कि 'तुम्हारे साथ में इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥४॥ हे सोम! भेड़ के बालों वाले छन्ने से निष्पन्न होते हुए तुम गौओं से युक्त बल, सौभाग्य तथा हव्य आदि को पाते हो ॥५॥ [१३]

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् । भरा सोम सहस्रिणम्॥६
पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । इन्द्रं यामेभिराशत ॥७
ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः । आयुः पवत आयवे ॥८
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् । अभि गिरा समस्वरन् ॥९
अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि । आ भक्षत्कन्यासु नः॥१०।१४

हे सोम ! तुम पात्रों में क्षरित होते हो । हमको सहस्र घोड़े, गौऐं और धन प्रदान करो ॥६॥ छन्ने से छनते हुए सोम अनेक धाराओं के रूप में कलश में गिरते हैं और चमस आदि में रहते हुए इन्द्र को अपनी शक्ति से हर्षित करते हैं ॥७॥ यह सोम, पूर्व पुरुषों द्वारा निष्पीड़ित सोम के समान ही इन्द्र के लिए द्रोण-कलश में गिरते हैं ॥८॥ कार्य-रत अँगुलियाँ हर्षकारी रस को प्रेरित करती हैं तब स्तुति करने वाले विद्वान् इनका भले प्रकार स्तव करते हैं ॥६॥ अजवाहन वाले पूषा देवता हमारे लिए यात्राओं में रक्षक हों । वे हमें दर्शनीय वधू प्रदान करें ॥१०॥　　　[१४]

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११
अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२
वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया । देवेषु रत्नधा असि ॥१३
आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म विगाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत्॥१४
परि प्र सोम ते रसो ऽसर्जि कलशे सुतः ।
श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५।१५

यह सोम घृत के समान पूषा के लिए गिरें और हमें रमणीय वधू दें ॥११॥ हे तेजस्वी पूषन् ! शुद्ध घृत के समान यह निष्पन्न सोम तुम्हारे लिए क्षरित होते हैं ॥१२॥ हे सोम ! तुम स्तोता के स्तोत्र को उत्पन्न करने वाले हो, तुम दिव्य रत्नादि के देने वाले हो । तुम निष्पन्न होकर द्रोण कलश को प्राप्त होओ ॥१३॥ बाज अपने घोंसले की ओर जाता हुआ जैसे शब्द करता है वैसे ही शब्द करते हुए यह सोम द्रोण-कलश में जाते हैं

॥१४॥ हे सोम ! तुम्हारा निष्पीडित रस श्येन के समान सर्वत्र गमनशील है, यह चमसों में विस्तार को प्राप्त होता है ॥१५॥ [१५]

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१६
असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथाइव ॥१७
ते सुतासो मदिन्तमा शुक्रा वायुमसृक्षत ॥१८
ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्। १९
एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥२०।१६

हे सोम ! तुम अत्यन्त मधुर रस से सम्पन्न हो। तुम इन्द्र को हर्षित करते हुए आगमन करो ॥१६॥ ऋत्विग्गण निष्पन्न और अन्न से युक्त सोम को देवताओं के लिए अर्पित करते हैं। रथ के समान यह सोम भी शत्रुओं के ऐश्वर्य को छीन लेते हैं ॥१७॥ यह उज्ज्वल, दीप्त सोम-रस वायु के लिए शोधित हुआ है॥१८॥हे सोम ! पाषाणों से पीसे जाकर तुम स्तुति करने वाले को सुन्दर धन देने वाले होकर छन्ने की ओर जाते हो ॥१९॥ यह पाषाणों से कूट कर निकाले गये सोम-रस राक्षसों का हनन करने वाले हों। यह सोम छन्ने को पार करते हुए द्रोण कलश में जाते हैं ॥ २० ॥ [१६]

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह। पवमान वितज्जहि ॥२१
पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। य. पोता स पुनातु नः॥२२
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने वितमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि न. ॥२३
यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः। ब्रह्मसवै. पुनीहि न. ॥२४
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः ॥२५।१७

हे सोम ! दूर या पास, कहीं भी स्थित भय को तुम नितांत नष्ट करो ॥२१॥ यह सोम सबके देखने वाले और चरणशील हैं। यह छन्ने द्वारा शुद्ध हुए सोम हमारा शोधन करें ॥२२॥ हे सोम रूप अग्ने ! तुम्हारे तेज में जो शो.धन-सामर्थ्य है, उसके द्वारा हमारे शरीर को पुत्रादि के

बढ़ाने वाले सामर्थ्य से सम्पन्न करो ॥२३॥ हे अग्ने ! तुम्हारा सूर्यादि ज्योतियों वाला तेज शुद्ध करने वाला है, उससे हमें शुद्ध करो और सोम के अभिषव द्वारा भी हम में पवित्रता स्थापित करो ॥ २४ ॥ हे सोम ! तुम तेजस्वी हो, तुम्हारा तेज भी पाप के शुद्ध करने वाला है। उसके द्वारा मुझे शुद्ध करो ॥२५॥ [१७]

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः॥२६

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।

विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥२७॥

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः॥२८

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।

आखुं चिदेव देव सोम ॥३०

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।

सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।

तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२॥१८

हे पवमान अग्ने ! तुम अपने सर्व समर्थ तीन तेजों के द्वारा हमको पवित्र करो ॥२६॥ इन्द्रादि देवता मुझे पवित्र करें। वसु देवता, अग्नि तथा अन्य सब देवता मुझे शुद्ध करें ॥२७॥ हे सोम ! हमारी वृद्धि करो और अपनी तरङ्गों के द्वारा देवताओंको रस रूप अन्न प्रदान करो ॥२८॥ हे सोम ! तुम आहुतियों द्वारा बढ़ने वाले हो। तुम शब्द करने वाले, तरुणशील और हर्षदायक हो। हम ऐसे तुम्हारी सेवा में नमस्कार करते हुए उपस्थित होते हैं ॥२९॥ हे सोम ! तुम अपने तेज के सहित क्षरित होओ। हम सबके मारने वाले शत्रु का तुम नाश करो। हे सोम ! उस आक्रमणकारी वैरी के आयुध नष्ट होजाँय ॥३०॥ ऋषियों द्वारा सम्पादित वेद के सार रूप सोमयुक्त सूक्तों का पाठ करने वाला पुरुष वायु देवता के

द्वारा शुद्ध किये गए पाप शून्य अन्न को खाता है ॥३१॥ जो पुरुष ऋषियों द्वारा सम्पादित वेद के सार रूप सोमात्मक सूक्तों का पाठ करता है उस वेद पाठी के लिए देवी सरस्वती दूध घृत और सोम का स्वयं दोहन करती है॥३२।

सूक्त ६८ (चौथा अनुवाक) [१८]

(ऋषि:—वत्सप्रिर्भालन्दनः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१॥
स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२
वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता।
मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३॥
स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम्।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४
सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥५॥१६

जैसे दुग्ध को सींचने वाली गौएं आनन्द देने वाली होती हैं, वैसे ही क्षरणशील सोम इन्द्र के लिए हर्षदायक होते हैं। शब्द करने वाली गौएं मद और प्रवाहमान सोम से संयुक्त होने वाले दूध को इन्द्र के लिए धारण करती हैं ॥१॥ यह हरे रङ्ग वाले सोम स्तोताओं के श्रेष्ठ स्तोत्रों को धारण करते हुए वृक्षों पर आरूढ औषधियों को फलवाली बनाकर छन्ने में वेग से प्रवाहित होते हैं और यजमानों को उत्कृष्ट धनदान करते हुए राक्षसों का हनन करते हैं ॥२॥ सोम ने अपने साथ स्थित रहने वाली आकाश-पृथिवी की रचना की और उन्हें विस्तृत सामर्थ्य देने के लिए अपने रस से सिंचित किया। अधिक विस्तारमयी इन आकाश-पृथिवी को यथास्थान सोम ने अमृतत्व से युक्त पाया ॥३॥ यह सोम आकाश-पृथिवी

में घूमते और अन्तरिक्ष से जल का प्रेरण करते हैं। अन्न के साथ ही वे अपने स्थान में रहते हैं और ऋत्विजों द्वारा जौ से मिश्रित होते हुए अंगुलियों से संगति करते हुए सब प्राणियों के पालक होते हैं ॥ ४ ॥ यज्ञ में स्तुतियों के योग्य सोम पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं। वे देवताओं द्वारा नियमित सूर्य में रमते हुए सर्वोदय काल में विशेषत: प्रकट होते हैं। इनमें से एक सोम गुफा में छिप जाते हैं और दूसरे उत्पन्न होते हैं ॥५॥ १९

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥
त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥
परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥
अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ॥९॥
एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥ २०

इस सोम रूप अन्नको पक्षी रूप वाली गायत्री स्वर्ग से लाई थी। उस सोम के स्वरूप को मेधावी जन जानते हैं। यह सोम देवताओं की अभिलाषा करने वाले, सब ओर गमनशील, सब प्रकार प्रवृद्ध और स्तुत्य हैं। ऋत्विज् इन्हें वसतीवरी जलों में शुद्ध करते हैं ॥ ६ ॥ हे सोम! तुम ऋषियों के दोनों हाथों द्वारा उत्पन्न होकर पात्रों में जाते हो। इनकी दसों अँगुलियाँ तुम्हें मेषलोम वाले छन्ने पर शुद्ध करती हैं। देवाह्वाक ऋत्विजों के द्वारा तुम एकत्र किये जाते हुए, स्तुति करने वाले को अन्न प्रदान करते हो ॥ ७ ॥ यह सोम पात्रों में गमन करने वाले, देवताओं द्वारा कामना किये गए, सुन्दर स्थान वाले हैं। स्तोता इनका स्तव करते हैं। यह सोम वसतीवरी

जलों के साथ कलश में प्रविष्ट होते हैं। यह अमृत गुण वाले सोम शत्रुओं के धनों को वशीभूत करते हैं ॥ ८ ॥ आकाश से सब जलों को प्राप्त कराने वाले सोम छन्ने में छनते हुए द्रोण कलश को प्राप्त होते हैं। यह सोम पाषाणों से पिसते, जल और दूध से मिश्रित होते और फिर पूर्णतया शोधित होकर स्तोताओं को उत्कृष्ट धन प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ हे सोम! क्षरित होकर तुम हमको विविध अन्न देने वाले बनो। हे देवताओ! हमको वीर पुत्रादि से सम्पन्न धन प्रदान करो। हम द्यावापृथिवी की स्तुति करते हैं ॥ १० ॥   [२०]

सूक्त ६६

(ऋषि—हिरण्यस्तूपः । देवता—पवमानः सोम । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥
अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥
अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥ २१

धनुष पर बाण चढ़ाने के समान ही हम चरणशील इन्द्र में अपने स्तोत्रों को चढ़ाते हैं। दुग्ध से पूर्ण स्तनों के साथ बछड़ा जन्म लेता है, उसी प्रकार इन्द्र के प्राकट्य के साथ ही हम सोम की सृष्टि करते हैं। गौ के बछड़े के पास जाने के समान ही इन्द्र इन स्तोताओं द्वारा दिये जाने वाले सोम के निमित्त आगमन करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र के लिए

ही हम सोम को सींचते हैं। इन्द्र के लिए ही स्तुतियाँ की जातीं और हर्ष वाली रस धारायें इन्द्र के मुख में सींची जाती हैं। जैसे रणकुशल वीर द्वारा प्रेषित बाण शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त होता है, वैसे ही घरों में रखेहुए क्षरणशील मधुर, हर्ष प्रदायक और प्रवृद्ध सोम गति करतेहुए मेष लोम के छन्नेपर पहुँचते हैं ॥ २ ॥ जिन वसतीवरी जलों में सोम का शोधन किया जाता और फिर उन्हें मिलाया जाता है, वह जल उन सोमों की स्त्री के समान हैं, जिससे मिलने के लिए वह मेष लोम पर गिरते हैं। यही सोम पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली औषधियों द्वारा सत्य कर्म रूप यज्ञ में जाकर यजमान को फल से सम्पन्न करते हैं। यह सोम ऋतु की सामर्थ्य को अपने तेज से बढ़ाते और शत्रुओं का उल्लङ्घन करते हैं। सबके यज्ञ योग्य यह हरे रङ्ग के सोम, घरों में एकत्र होते हैं ॥ ३ ॥ देवता के लिए पवित्र किये गए स्थान पर जैसे देवता गमन करते हैं, वैसे ही गौएँ सोम के स्थान पर गमन करती हैं। यह क्षरणशील सोम शब्द करते हुए मेष लोम वाले उज्ज्वल छन्ने को पार करते हैं। यह शुभ्र कवच के समान गव्यादि से अपने देह को आच्छादित करते हैं ॥ ४ ॥ स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ सूर्य को पाप रहित शुद्धि के लिए प्रतिष्ठित किया। आकाश पृथिवी के ऊपर इस सूर्य रूप तेज को सबको पवित्र करने के लिए स्थापित किया, यह अमृत गुण वाले हरे रङ्ग के सोम निष्पीडन काल में वस्त्र के द्वारा सब ओर ढके जाते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६॥
सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥७॥
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद् गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥८

एते सोमा. पवमामास इन्द्रं रथाइव प्र ययु: सातिमच्छ ।
सुना: पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रि हरितो वृष्टिमच्छ ॥९॥

इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादा: ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावत न: ॥१०॥ २२

यह सोम शत्रुओं के मर्दन करने वाले, चमसों में स्थित, सूर्य की किरणों के समान सब ओर प्रवाहित होने वाले हैं। यह सूत के बने वस्त्रों के द्वारा सब ओर जाते हैं और इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी देवता के लिए नहीं गिरते ॥ ६ ॥ नदियाँ जैसे समुद्र में जाती हैं, वैसे ही यह सोम ऋत्विजों के द्वारा निष्पीडित होकर इन्द्र के पास जाते हैं। हे सोम! हमको अन्न पुत्रादि धन प्रदान करो। हमारे घर में सन्तान और पशुओं को सुख दो ॥ ७ ॥ हे सोम! तुम मेरे पितरों के भी उत्पन्न करने वाले हो, अतः तुम मेरे स्वर्गादि लोकों पर स्थित हविरन्न के करने वाले एवं पितर ही हो। हे सोम! तुम हमको गौ, अश्व, अन्न, भूमि और सुवर्णादि से सम्पन्न धन प्रदान करो ॥ ८ ॥ पाषाणों द्वारा निष्पीडित सोम मेष लोम के छन्ने को पार करते हैं। हरे रङ्ग के सोम वृद्धावस्था को हटाकर वृष्टि प्रेरण के लिए गमन करते हैं। इन्द्र के रथ के रणक्षेत्र में गमन करने के समान ही निष्पन्न सोम इन्द्र के आश्रय में जाते हैं ॥ ६ ॥ हे सोम! तुम इन्द्र को हर्ष प्रदान करने वाले, शत्रुओं के जेता और निन्दा रहित हो। तुम इन महानकर्मा इन्द्र के लिए क्षरित होओ और मुझ स्तोता को आनन्द दायक धन प्रदान करो। हे द्यावापृथिवी! तुम अपने श्रेष्ठ धनों से हमारा पालन करो ॥ १० ॥ [२२]

सूक्त ७०

(ऋषि—रेणुर्वैश्वामित्रः। देवता—पवमान: सोम:। छन्द–जगती)

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥
स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४॥
स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५॥ २३

यज्ञों में जब सोम प्रवृद्ध किये गए तब उन्होंने चार जलों को शोधन-गण प्रदान किया, उन यज्ञ स्थित सोमों के लिए इक्कीस गौऐं दूध दुहती हैं ॥ १ ॥ जब याज्ञिकों ने जल की याचना की तब सोम ने ही आकाश-पृथिवी को जल से भरा। यह सोम अत्यन्त उज्ज्वल जलों को अपनी महिमा से आच्छादित करते हैं। हवियों से सम्पन्न ऋत्विक् इस दीप्त सोम के स्थान के ज्ञाता हैं ॥ २ ॥ सोम की अवध्य तरंगें सब प्राणियों का पोषण करने वाली हों। अपनी इन्हीं तरंगों के द्वारा यह सोम देवताओं के योग्य हव्य प्रदान करते हैं । जब इन सोम का संस्कार हो जाता है, तभी इनके लिए स्तुतियाँ गमन करती हैं ॥ ३ ॥ चरणशील सोम यज्ञादि की, जल-वृष्टि के निमित्त रक्षा करते और अन्तरिक्ष से पृथिवी के प्राणियों को देखते हैं। दस अँगुलियाँ द्वारा संस्कारित सुन्दर कर्मा सोम अन्तरिक्ष की मध्यमा वाणी में निवास करते हुए लोकों को देखते हैं ॥ ४ ॥ आकाश-पृथिवी में वर्तमान सोम इन्द्र को हर्षित करने के लिए छन्ने द्वारा शुद्ध होते हुए सब ओर गमन करते हैं। रणक्षेत्र में योद्धा जैसे शत्रु-पक्ष को बाणों से बींधता है, वैसे ही यह सोम दुःख देने वाले राक्षसों को ललकारते हुए उन्हें अपने बल से बींधते हैं ॥ ५ ॥ [२३]

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया श्रृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षण. ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभि. ॥८॥
पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥६॥
हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निद. स्प ।१०।२४

जैसे मरुद्गण शब्द करते हुए गमन करते हैं जैसे बछड़ा गौ को देखकर शब्द करता हुआ उसकी ओर जाता है, वैसे ही मातृभूत आकाश-पृथिवी को देखते हुए यह सोम शब्द करते हुए सर्वत्र गमन करते हैं। यह सोम मनुष्यों का कल्याण करने वाले जल के ज्ञाता होते हुए, मेरे अतिरिक्त अन्य किस पुरुष के स्तोत्र की कामना करेंगे ? ॥ ६ ॥ यह पवमान सोम जल की वर्षा करने वाले, शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष और सर्व दर्शक हैं। यह दो हरे रंग की धारा रूप सींगों को तीक्ष्ण करते हुए शब्द करते और द्रोण-कलश में स्थित होते हैं ॥ ७ ॥ यह हरे रंग वाले सोम अपने रूप को शोधते हुए ऊँचे होकर छन्ने पर चढ़ते हैं । फिर मित्र, वरुण और वायु के निमित्त दधि-दुग्ध और जलादि से मिश्रित होकर श्रेष्ठ कर्म वाले ऋत्विजों द्वारा अर्पित किये जाते हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! इन दुर्गम राक्षसों द्वारा पीड़ित किये जाने के पूर्व ही उनसे हमारी रक्षा करो। तुम जल-वृष्टि करने वाले हो, अतः देवताओं के निमित्त बरसो और इन्द्र के उदर में आश्रित होओ । जैसे मार्ग के जानने वाला व्यक्ति पथिक का मार्ग दर्शन करता है, वैसे ही तुम हमारे लिये यज्ञ मार्ग का दर्शन कराओ ॥ ६ ॥ रणभूमि को प्रेरित अश्व जैसे गमन करता है, वैसे ही तुम ऋत्विजों की प्रेरणा से द्रोण कलश को प्राप्त होओ। हे सोम ! इसके पश्चात् इन्द्र के उदर में सिंचित होओ। मल्लाह जैसे नदी से पार करते हैं, वैसे ही तुम हमको पार लगाओ और हमारी

रक्षा के लिए निन्दा करने वाले शत्रुओं का संहार कर डालो ॥१०॥ [२४]

सूक्त ७१

(ऋषि—ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती,त्रिष्टुप्)

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो ब्रह्म निर्णिजे ॥ १ ॥
प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥
अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ ३ ॥
परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥४॥
समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ५ ॥ २५

इस यज्ञ में बली सोम द्रोण-कलशों में स्थित हैं। ऋत्विजों को दक्षिणा प्रदान की जा रही है। सोम ने आकाश-पृथिवी का अन्धकार नष्ट करने के लिए आदित्य को आकाश में आरूढ़ किया। यही सोम आकाश को जल-धारण करने वाला बनाते हैं और यही सोम विद्वेषी असुरों से स्तोताओं की रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ शत्रु के संहार में प्रवृत्त वीर के शब्द करने के समान ही सोम शब्द करते हुए गमन करते हैं। यह युवा होकर असुरों के लिए बाधा देने वाले बल को उत्पन्न करते हैं। यह द्रव-रूप से द्रोण-कलश में पहुँचते हुए, छन्ने में अपने रूप को निखारते हैं ॥ २ ॥ भुजाओं के बल से पत्थरों द्वारा कूटे गए सोम पात्रों में गमन करते हैं। वृष के समान आचरण करने वाले यह सोम स्तोत्रों से प्रसन्न होते हुए अन्तरिक्ष में पहुंचते हैं। जल से शुद्ध होने वाले यह सोम हवि वाले यज्ञ में पूजित होते और स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ यह सोम शत्रु-पुरों के विध्वंसक इन्द्र को

तृप्त करते हैं। यह स्वर्ग में वास करने वाले और मेघों के बढ़ाने वाले हैं। हवि सेवन करने वाली गौएँ अपने दूध को सोम में मिश्रित होने पर इन्द्र को प्रेरित करती हैं ॥ ४ ॥ जैसे रथ को प्रेरित करते हैं, वैसे ही दशों अँगुलियाँ सोम को यज्ञ में प्रेरित कर रही हैं। जब स्तोतागण सोम के स्थान को निश्चित करते हैं, तब गौओं का दूध भी उस स्थान पर गमन करता है ॥ ५ ॥ [२५]

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६ ॥
परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥
त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८॥
उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९॥ २६

बाज अपने घोंसले में जाता है, उसी प्रकार चरणशील सोम अपने कर्म से उपलब्ध गृह में गमन करते हैं। यज्ञ योग्य सोम देवताओं के पास उसी प्रकार जाते हैं जैसे भेजा हुआ घोड़ा जाता है। यज्ञ में स्तोता इस सोम की स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ यह अभीष्ट पूरक, त्रिपृष्ठ, सुन्दर, जल से सिक्त सोम शुद्ध होकर कलश में गमन करते हैं। वे विभिन्न पात्रों में आवागमन करते हुए सोम स्तुतियों के प्रति शब्दवान् होते हैं। अनेक उपायों में निष्पन्न होने वाले सोम शब्द करते हुए शोभा पाते हैं ॥ ७ ॥ शत्रुओं का शमन करने वाले सोम की दीप्ति अपने रूप को निखारती है। यह युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं का नाश करती है और हव्य के सहित देवोपासक के पास पहुँचती हुई स्तुतियों से सुसङ्गत होती है। स्तोताओं द्वारा पशुओं की प्रशंसा करने वाली वाणी से यह सोम संगति करते हैं ॥ ८ ॥ गौओं को देखकर वृष शब्द करता है उसी प्रकार सोम भी स्तुतियों के प्रति शब्दवान होते हैं। यह

सोम आकाश में उत्पन्न तथा भले प्रकार गमन करने वाले हैं। वे सूर्यरूप से आकाश में स्थित होकर पृथिवी को और प्रजाओं को देखते हैं ॥६॥ [२६]

सूक्त ७२

(ऋषि—हरिमन्तः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१॥
साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीलाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥
अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥३॥
नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरन्धिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ४ ॥
नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ॥५॥ २७ ॥

हरे रंग के सोम को ऋत्विग्गण शुद्ध करते हैं। कलश स्थित सोम दूध से मिश्रित होते हैं। सोम को अश्व के समान योजित किया जाता है। स्तोताओं द्वारा स्तुत होने पर सोम शब्द करते और सुन्दर धन प्रदान करते हैं ॥ १ ॥ जब इन्द्र के जठर में ऋत्विजों द्वारा सोम का दोहन किया जाता है, तब स्तोतागण समान मंत्र का उच्चारण करते हैं। उस समय कर्मनिष्ठ पुरुष इस कामना के योग्य सोम का निष्पीडन करते हैं ॥ २ ॥ जब देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पात्र स्थित सोम दुग्ध आदि से मिश्रित होते हैं, तब सोम-पुत्री उषा के शब्द की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। श्रेष्ठ हाथों से निष्पन्न सोम परस्पर एकत्र होते हुए यत्र तत्र गमनशीला अंगुलियों से संगति करते हैं। उस समय स्तोतागण उनकी स्तुति करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! कर्म का नेतृत्व करने वाले ऋत्विजों द्वारा संस्कारित यह सोम तुम्हारे लिए

क्षरित होता है। यह देवताओं को प्रसन्न करने वाला सोम अनेक कर्म वाला, पात्रों में प्रवाहित, पुरातन, यज्ञ साधक है। यह छन्ने में छनता हुआ धारा रूप से तुम्हारे निमित्त ही पात्रों में क्षरित होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! कर्मचारों के बाहुओं द्वारा प्रेरित सोम तुम्हारी पुष्टि के लिए निष्पन्न होकर आगमन करते हैं। तब तुम सोम को पीकर शत्रुओं को जीतते और कर्मों को पूर्ण करते हो। पक्षियों के वृक्ष पर बैठने के समान ही यह हरित् सोम निष्पीडन के लिए प्रस्तुत होते हैं ॥ ५ ॥   [२७]

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७ ॥
स तू पवस्व परि पार्थिवं रज स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥८॥
आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥९॥२८॥

मेधावी ऋत्विज् शब्दवान सोम का निष्पीडन करते हैं। फिर उत्पादन में समर्थ गौएँ और मनन योग्य स्तोत्र सुसंगत होकर सोम से उत्तरवेदी पर एकाकार करते हैं ॥ ६ ॥ यह कामनाओं के वर्षक सोम धन-सम्पन्न, आकाश के धारक, ऋत्विजों द्वारा उत्तर वेदी पर अवस्थित, जलों में सिक्त एवं इन्द्र के वज्र रूप हैं। यह मधुर रस से युक्त होकर इन्द्र को सुखी करने के लिए गिरते हैं ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम पृथिवी पर मनुष्यों के लिए क्षरित होओ। हे श्रेष्ठ कर्म वाले ! तीनों सवनों में तुम्हारा अभिषवकर्त्ता तुमसे धन प्राप्त करे। हे सोम ! हम विविध स्वर्णादि धनों को प्राप्त करें। हमारे पुत्रादि और धनों को हमसे पृथक् मत करना ॥ ८ ॥ हे सोम ! हमको अश्वों से युक्त सहस्र संख्यक धन प्रदान करो। तुम हमको अपरिमित दूध देने वाली गौओं से युक्त तथा अन्य पशुओं के सहित धन दो। हे पवमान सोम ! तुम

हमारी स्तुतियों के प्रति आगमन करो ॥ ६ ॥ [२८]

सूक्त ७३

(ऋषि:—पवित्रः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—जगती)

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥ १ ॥
सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥
पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ ३ ॥
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥४॥
पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५॥२६॥

यज्ञ-स्थान में सोम की तरंगें उन्नत होती हैं । सोम-रस ऊपर उठते हैं । यह सोम मनुष्य के उपभोग के लिये तीनों लोकों को उपयुक्त करते हैं । नौका के समान, इस सोम की चार स्थालियाँ यजमान को इच्छित फल देने वाली होती हुई पूजती हैं ॥ १ ॥ स्वर्गादि की कामना करने वाले मुख्य ऋत्विज् प्रवाहमान जलों में सोम को प्रेरित करते हैं । इस सोम को रुव मिलकर निष्पन्न करते हैं । श्रेष्ठ स्तुतियाँ करने वाले स्तोताओं द्वारा इस हर्ष प्रदायक सोम की धाराएं प्रवृद्ध होती हैं ॥ २ ॥ सोम की किरणें अंतरिक्ष में निवास करती हैं । किरणों के पिता सोम किरणों के तेज की रक्षा करते हैं । अपने तेज से विश्व को ढक लेने वाले सोम किरणों द्वारा अंतरिक्ष को व्याप्त करते हैं । सब के धारण करने वाले जलों में ऋत्विगण सोम को मिश्रित करते हैं ॥ ३ ॥ अंतरिक्ष में सहस्र धारों से निवास करने वाले सोम की धाराएँ पृथिवी पर बरसती हैं । आकाश के ऊपर अवस्थित कल्याण-

कारिणी रश्मियाँ, मधुर जीभ वाली और शीघ्र गामिनी होती हैं। सोम की यह रश्मियाँ पापियों के लिए विघ्न रूप होती हैं॥ ४॥ आकाश पृथिवी में अधिक उत्पन्न होने वाली सोम की रश्मियाँ ऋत्विजों के स्तोत्रों से प्रदीप्त होती हैं। वे अकर्मण्यों का नाश करती हुईं, असुरों को पृथिवी और आकाश से भी इन्द्र के निमित्त दूर भगाती हैं॥ ५॥ [२१]

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥
सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥
ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे ।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८॥
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥ ३० ॥

यह शीघ्रगामिनी सोम की किरणें अंतरिक्ष में एक साथ उत्पन्न हुईं। उन किरणों को देवताओं की स्तुतियों के विरोधी, दुष्टों के साथी, चक्षु विहीन पापी मनुष्य नहीं पा सकते॥ ६॥ सुन्दर कर्म वाले ऋत्विज अनेक रश्मियों वाले, बिछे हुए छन्ने में अवस्थित सोम की स्तुति करते हैं। जो मरुद्गण शोभा वाणी का स्तव करते हैं, उनकी बात को रुद्रपुत्र मरुद्गण टालते नहीं। वे मरुद्गण द्वेष-रहित, अहिंसनीय, सुन्दर गति वाले और कर्मों का नेतृत्व करने वाले हैं॥ ७॥ यह सोम अग्नि, वायु और सूर्य इन तीनों तेजस्वी रूपों को धारण करते हैं। इनके सामने कोई अहंकार नहीं कर सकता। यह यज्ञ की रक्षा करने वाले, सत्य रूप सोम सब लोकों को देखते हुए अकर्मण्य पुरुषों का संहार करते हैं॥ ८॥ यज्ञ को बढ़ाने वाले यह सत्य रूप सोम भेषलोम वाले छन्ने में वसतीवरी में निवास करते हैं। उन सोमों को कर्म करने वाले ही पाते हैं। कर्म से रहित पुरुष सोमों को प्राप्त नहीं कर सकता, वह नरक को प्राप्त होता है॥ ९॥ [३०]

सूक्त ७४

(ऋषि:—कक्षीवान् । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥ १ ॥
दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥
महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ग्मियः ॥३॥
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४॥
अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५॥ ३१

यह बलवान घोड़े के समान वेगवान् सोम स्वर्ग के आश्रित होने की कामना करते हैं। वसतीवरी जलों में जन्म लेने वाले सोम बालक के समान नीचे की ओर मुख करके रुदन करते हैं। आकाश स्थित सोम ओषधियों के रस रूप से भूमि पर आने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार के इन सोमों से हम सुन्दर स्तुति करते हुए धनों से सम्पन्न घर की याचना करते हैं ॥ १ ॥ यह सोम सब ओर बढ़ने वाले, सबके धारण करने वाले और आकाश को टिकाने वाले हैं। इस पात्र स्थित सोम की धाराएँ सब ओर जाने वाली हैं। यह सोम महिमामयी आकाश-पृथिवी को अपने सामर्थ्य से पूर्ण करें और स्तोताओं को अन्न प्रदान करें। इन सोम ने ही सुसंगत हुई आकाश पृथिवी को धारण किया है ॥ २ ॥ संस्कारित सोम अत्यन्त मधुर और सुस्वादु होता है, यह इन्द्र के लिए अत्यन्त प्रिय है। इन्द्र का पृथिवी पर आने वाला मार्ग भी चौड़ा है। वह इन्द्र जल की वर्षा करने वाले, यज्ञ के नेता और गौओं का हित करने वाले हैं ॥ ३ ॥

सूर्य मण्डल से यह सोम घृत और दूध का दोहन करते हैं। इनसे ही जल रूप अमृत उत्पन्न होता है, क्योंकि यह यज्ञ की नाभि के समान हैं। दाता सोम इन सोमों मे मिलकर प्रसन्नताप्रद होते हैं। इनकी रश्मियाँ वृष्टि करती हैं ॥ ४ ॥ ऋत्विजों द्वारा जल में मिश्रित करने पर सोम शब्दवान् होते हैं उनका प्रवाहमान शरीर देवताओं का पालन करने वाला है। यह सोम अपनी रश्मियों से ही औषधियों में उत्पन्न होते हैं। हम भी उन सोम से ही दुःख को नष्ट करने वाला पुत्र पाते हैं ॥ ५ ॥ [३१]

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावती. ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृत घृतश्चुतः ॥६॥
श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥
अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वार वि पवमान धावति ।
स मृज्यमान कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥९॥ ३२

परस्पर संयुक्त सोम किरणें स्वर्ग से पृथिवी पर क्षरित होती हैं। यह अनेक धाराओं के रूप में स्वर्ग से नीचे वास करते हैं। यही सोम-किरणें जल वृष्टि के रूप से देवताओं के लिए हव्य उत्पादन करती हैं ॥ ६ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले बलवान सोम स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं। यह अपने आश्रय स्थान पात्रों को भी उज्वल करते हैं। यह अपनी बुद्धि से कर्म को पाते हुए जल वाले मेघ को वृष्टि के लिए विदीर्ण करते हैं ॥ ७ ॥ यह सोम श्वेत दुग्ध वाले कलश का अश्व के समान उल्लङ्घन करते हैं। देवताओं की कामना वाले ऋत्विज सोम की स्तुति करते हैं। कक्षीवान् ऋषि की प्रार्थना पर यह सोम उन्हें पशु प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! जल में मिला हुआ तुम्हारा रस छन्ने पर पहुँचता है।

हे हर्षकारी सोम ! तुम अत्यन्त श्रेष्ठ हो। सुन्दर कर्म वाले ऋत्विजों के द्वारा संस्कारित होकर इन्द्र के पीने के लिए तुम मधुर रस से सम्पन्न होओ ॥ ६ ॥ [३२]

सूक्त ७५

(ऋषिः—कविः । देवता–पवमानः सोमः । छन्दः—जगती)

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥
अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥३॥
अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥४॥
परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥५॥ ३३

यह सोम जल के चारों ओर गिरते हैं, यह अन्न के लिए बढ़ाने वाले हैं। यह सोम जल से ही स्वयं बढ़ते हैं और सूर्य के रथ पर आरूढ़ होकर सबके द्रष्टा होते हैं ॥ १ ॥ सोम कर्मों का पालन करने वाले, अहिंसित और शब्दवान् हैं। यह अत्यन्त प्रिय रस को क्षरित करते हैं। आकाश को दीप्त करने वाले यह सोम, निष्पीडित होने पर पुत्र नाम धारण करते हैं। उनके इस नाम को उत्पन्न करने वाले नहीं जानते ॥ २ ॥ अभिषव स्थान पर ऋत्विजों द्वारा स्थापित सोम को यज्ञ का दोहन करने वाले ऋत्विज ही निष्पन्न करते हैं। तीन सवनों वाले सोम, यज्ञ के दिनों में प्रातःकाल अधिक सुशोभित होते हुए कलश में शब्द करते हैं ॥ ३ ॥ अन्न के लिए यह सोम पाषाणों से निष्पन्न किये जाते हैं। यह छन्ने पर जाते हुए

पृथिवी को तेज से पूर्ण करते हैं। जलों में मिले हुए इन सोमों की धारा छन्ने पर बहती है ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम हमारे सुख के निमित्त आगमन करो। तुम कर्म के द्वारा शुद्ध होकर दूध में मिश्रित होओ। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले, प्रतिज्ञायुक्त, अभिषुत और महान हो। ऐसे सोम धन प्रदान करने वाले इन्द्र को हमारे पास प्रेषित करें ॥ ५ ॥

सूक्त ७६

(ऋषिः—कविः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरि.सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजासि कृणुते नदीष्वा ।।१।।
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ।।२।।
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वत. ।।३
विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
य सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्य. ।।४।।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ।।५।। १

यह सोम अन्तरिक्ष से गिरते हैं। यह सबके धारण करने वाले हैं। यहबल के बढ़ाने वाले, शुद्ध होने योग्य हरे रङ्ग के, ऋत्विजों द्वारा स्तुत्य हैं। यह अपने वेग को वसतीवरी जलों में अश्व के समान प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ इन सोमों ने गौओं की खोज के समय स्वर्ग की कामना की थी। इन्होंने यजमानों को रथ प्राप्त कराये थे। यह वीरों के समान आयुधों से सज्जित सोम इन्द्र के बल को चैतन्य करने के लिये दुग्धादि से मिश्रित किये जाते हैं ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम बढ़ाये जाने पर इन्द्र के उदर में प्रविष्ट होओ। तुम अपने कर्मों को करते हुए, विद्युत द्वारा मेघ को दुहने के समान

आकाश पृथिवी का दोहन कर अन्न प्रदान करते हो ॥३॥ यह सत्यभूत सोम सबके देखने वाले, विश्व के स्वामी सबसे श्रेष्ठ हैं। इन क्षरणशील सोम ने इन्द्र को कर्मों की प्रेरणा दी। इन सोम के कर्म को विद्वान पुरुष भी नहीं जानते। हमारी स्तुति को पुष्ट करने वाले सोम सूर्य की निम्नमुखी रश्मियों से शुद्ध होते हैं ॥४॥ हे सोम! तुम वर्षणशील, शब्दवान् और हर्ष प्रदायक होते हुए गौओं को प्राप्त होने वाले वृष के समान अन्तरिक्ष से द्रोण-कलश को प्राप्त होते हो। तुम इन्द्र के लिए ही गिरते हो। तुम्हारी रक्षा में निर्भीक रहते हुए हम संग्राम में जीतेंगे ॥५॥ [१]

सूक्त ७७

(ऋषि—कविः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती)

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१॥
स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥
ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते।
ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३॥
अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४॥
चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥२

यह सोम बीज-वपन करने में समर्थ, मधुर रस से पूर्ण और इन्द्र के वज्र के समान विकरालकर्मा हैं। इनकी धाराऐं जल वृष्टि वाली, शब्दमती और फलों को प्राप्त कराने वाली हैं। यह धाराऐं पयस्विनी गौओं के समान गर्जन करती हैं ॥१॥ माता द्वारा प्रेरित बाज आकाश से उन प्राचीन, क्षरणशील मधुर रस से सम्पन्न सोमों को पृथिवी पर लाया था। वे सोम

तृतीय लोक को पृथक् करने वाले तथा मधुर दुग्धादि से मिश्रित होने वाले हैं ॥२॥ यह सोम हव्य सेवन करने वाले, रमणीय और सुन्दर हैं। मुझ गौओं से सम्पन्न स्तोता को यह सोम अन्न प्राप्त कराने के लिए मिलें ॥३॥ यह क्षरणशील उत्तरवेदी में अवस्थित, अनेकों द्वारा स्तुत और शत्रुओं के हननकर्त्ता हैं। वे हमारे शत्रुओं का संहार करें। यह सोम हमारी पयस्विनी गौओं की वृद्धि करें और औषधियों को गुण वाली करें ॥४॥ यह अहिंसनीय, रस वाले, सबके जनक सोम वरुण के समान महान् कर्मा हैं। आपत्ति काल में इन विचरणशील सोमों को निष्पन्न किया जाता है। यह सेचन-समर्थ सोम शब्द करते हुए कलश में गिरते हैं॥५॥ [२]

सूक्त ७८

(ऋषि—कविः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती)

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥
इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥
समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥३॥
गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥
एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥५॥

सोम के असार भाग छन्ने पर ही रह जाते हैं और शोधित रस भाग अपने स्थान को प्राप्त होते हैं। जलों को आच्छादित करते हुए यह सोम स्तुतियों की ओर शब्द करते हुए गमन करते हैं ॥१॥ हे सोम! ऋत्विजों द्वारा तुम इन्द्र के निमित्त प्रस्तुत किये जाते हो। हे मेधावान्! तुम जल

में मिलाये जाकर यजमानों द्वारा बढ़ाये जाते हो। तुम्हारे चरण के अनेक छिद्र हैं और हरे रङ्ग की तुम्हारी रश्मियाँ भी असंख्य ही हैं ॥२॥ अन्तरिक्ष की रश्मियाँ यज्ञ स्थान पर पात्रों में रखे सोमों को गिराती हैं। वे रश्मियाँ ही इस यज्ञ गृह को समृद्ध करने वाले सोम की वृद्धि करती हैं। इस सोम से स्तोतागण अक्षय सुख की याचना करते हैं ॥३॥ यह सोम सुवर्ण, गौ, अश्व, रथ आदि महान् ऐश्वर्यों को पराभूत करने वाले हैं। यह हर्षदाता, अरुण, रत्न युक्त और सुखदायक सोम पीने के लिए बनते हैं। ४॥ हे सोम! तुम हमारी इच्छित सब वस्तुओं को सत्य करते हो। तुम पास या दूर के शत्रुओं का वध करो। तुम हमारे मार्गों को भय-रहित करो ॥५॥ [३]

सूक्त ७६

(ऋषि-कविः। देवता-पवमानः सोमः। छन्द-जगती)

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दव प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सन्निषन्त नो धियः ॥१
प्रणो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥२
उता स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३
दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४
एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५।४

हरे रंग वाले यह सोम क्षरणशील हैं। यह हमारे होते हुए यज्ञ में लाये जावें। हमारे अन्न को नष्ट करने वाले शत्रु स्वयं ही नाश को प्राप्त हों। हमारे अनुष्ठान को देवगण स्वीकार करें ॥१॥ सोम के प्रभाव से हम पराक्रमी शत्रुओं को भी खदेड़ दें। हमारे पास शक्तिशाली सोम धन

के सहित आगमन करें। हम बलवानों के बल को भी नष्ट करने वाले होकर सदा धन पाते रहें ॥ ॥ हे सोम ! जैसे बंजर में पानी न होने से प्यास साथ रहती है, वैसे ही तुम अपने और हमारे शत्रुओं के पीछे लगकर उनका नाश करते हो। हे सोम, तुम चरणशील हो। तुम उन शत्रुओं को क्षरित करो ॥३॥ हे सोम ! द्युलोक में स्थित तुम्हारा परम अंश पृथिवी पर क्षरित हो गया, जिससे पर्वतों पर वृक्षों की उत्पत्ति हुई। हे सोम ! तुम्हें पाषाणों से कूट कर विद्वान् ऋत्विज जल में मिश्रित करते हैं ॥४॥ हे सोम ! अनुभवी ऋषि तुम्हारे उज्वल रस को निचोड़ते हैं। तुम अपने हर्ष प्रदायक, बलदाता और प्रिय लगने वाले रस को सींचो और हमारी निन्दा करने वाले शत्रुओं का नाश करो ॥५॥ [४]

सूक्त ८०

(ऋषि—वसुर्भारद्वाज । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचु ॥१
यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायु प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२
एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमंगलः ।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३
तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिप ।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ
आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४
तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिंधोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥५॥५

यह सोम यजमानों का देखने वाला है। इसकी क्षरित होने वाली धारा यज्ञ के द्वारा देवताओं को पूजती है। यह सोम स्तुतियों से प्रदीप्त होते

हैं। यज्ञ के सोम-सवन समुद्र के समान महिमामयी पृथिवी को व्याप्त करते हैं ॥१॥ हे सोम! तुम अन्न से सम्पन्न हो। अक्षीण स्तुतियाँ तुम्हारा स्तव करती हैं। तुम दीप्त होकर अपने श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त होते हो। तुम हवियुक्त यजमानों की आयु-वृद्धि करते हुए उनको यश से सम्पन्न करो। हे वर्षक सोम! तुम इन्द्र के लिए क्षरित होओ ॥२॥ यह अत्यन्त बलकारक रस से युक्त सोम सब प्राणियों को बढ़ाते और यजमानों को अन्न प्राप्त कराने के लिए इन्द्र के उदर में बैठते हैं। यह वर्षणशील, हरे रंग के सोम यज्ञ-वेदी पर क्षरित होते हुए खेल रहे हैं ॥३॥ हे सोम! तुम पाषाणों द्वारा कूटे जाकर मनुष्यों की दस अंगुलियों द्वारा निचोड़े जाते हो। तुम अत्यन्त मधुर और असंख्य धाराओं वाले को इन्द्र के लिए निष्पन्न किया जाता है। तुम देवताओं के लिए बहते हुए, हमारे लिए धन के जीतने वाले होओ ॥४॥ यह सोम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हैं। सुन्दर भुजा वाले पुरुष की दशों अँगुलियाँ, इसका शोधन करती हैं। हे सोम! तुम इन्द्र को हर्ष प्रदान करते हुए, समुद्र की लहरों के समान अन्य देवताओं को भी प्राप्त होते हो ॥५॥ [५]

सूक्त ८१

(ऋषि—वसुर्भारद्वाजः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥१
अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यददत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥२
आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भवा मघवा राधसो महः।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥३
आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंस उर्वन्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ।।५।६

निष्पन्न सोम की धाराएं इन्द्र के उदर में गमन करती हैं तब निष्पन्न सोम गव्य में मिश्रित होकर इन्द्र को हर्ष प्रदान करते और यजमान का अभीष्ट पूर्ण करते हैं ॥१॥ रथ को वहन करने वाला घोड़ा जैसे वेग से गमन करता है, वैसे ही सोम कलश में गमन करते हैं। यह सोम कामनाओं के वर्धक, उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता और देवभार्यों को प्रसन्न करने वाले हैं ॥२॥ हे सोम! तुम धन के स्वामी हो, हमको महान् धन प्रदान करो। हमको गौओं से युक्त धन दो। हे सोम! तुम अन्न के धारण करने वाले हो, मुझ सेवक के लिए कल्याणप्रद होओ। तुम जो धन हमें प्राप्त कराते हो, वह हमसे कभी प्रथक न हो ॥ ३ ॥ धारणशील सोम, मित्रावरुण, मरुद्गण, दानशील पूषा, त्वष्टा, अश्विनीकुमार, आदित्य, सरस्वती आदि सब देवता समान मति वाले होकर हमारे यज्ञगृह में आगमन करें ॥ ४ ॥ मनुष्यों को बढ़ाने वाले भग देवता, सबको व्याप्त करने वाली आकाश-पृथिवी, महिमामय अन्तरिक्ष, विधाता, अर्यमा विश्वेदेवा और अदिति यह सब हमारे यज्ञ में इस पवमान सोम के आश्रित हों ॥५॥ [६]

सूक्त ८२

(ऋषि—वसुर्भारद्वाजः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥१॥
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ।।२
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ।।३
जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।

अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४
यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५।७

यह वर्षणशील, सुंदर हरे रङ्ग का सोम निष्पन्न होता हुआ राजा के समान महिमावान् होकर जल में निचुड़ता हुआ शब्द करता है। शोधन किया जाता यह सोम, अपने स्थान की ओर जाने वाले श्येन के समान छन्ने की ओर गमन करता है। जल युक्त स्थान की ओर देखते हुए यह सोम क्षरित होते हैं ॥ १ ॥ हे सोम ! यज्ञ की कामना करने वाले होने से तुम पूजनीय छन्ने को प्राप्त होते हो। हे क्रांतकर्मा सोम ! धोए जाने पर तुम रण-प्रवृत्त वीर के समान गमन करते हो। तुम जल में मिलकर छन्ने की ओर जाते हो। हे सोम ! हमारे पापों का क्षय करते हुये हमें कल्याण दो ॥ २ ॥ मेघ के पुत्र, बड़े पत्तों वाले सोम यज्ञ स्थान में रहते हैं, मेधावी जनों की अँगुलियाँ इन्हें पाषाण से मिलाती हुईं दूध-जल आदि से मिश्रित करती हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम पृथिवी पर उत्पन्न होते हो। तुम मेरे स्तोत्र को सुनो। तुम इस यजमान को सुख प्रदान करो। तुम हमारे जीवन के लिये उत्पन्न होते हो। हे स्तुत्य सोम ! तुम हमारी स्तुतियों में रमण करो और हमारे निन्दक शत्रुओं से निरन्तर सतर्क रहो ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुमने जैसे पूर्व कालीन स्तोताओं को सौ और हजार संख्या वाला धन दिया था, वैसे ही अब भी हमारा उत्थान करते हुये गिरो। तुमसे यह जल कर्म प्रेरण के निमित्त मिश्रित होता है ॥ ५ ॥ [७]

सूक्त ८३

(ऋषिः—पवित्रः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥ २ ॥
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३॥
गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४॥
हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम्।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५॥[८]

हे सोम ! तुम स्तोत्रों के स्वामी हो। तुम्हारी दीप्ति सर्वत्र बढ़ती है। तुम, पीने वाले के सब अंगों में व्याप्त होकर उसे अपने वश में करते हो। व्रत हीन व्यक्ति तुम्हारे शोधक तेज को धारण करने में समर्थ नहीं होता। यज्ञ करने वाले मेधावी जन ही तुम्हारे तेज को धारण कर तेजस्वी होते हैं ॥ १ ॥ सोम का शोधक तेज शत्रुओं को संतप्त करता हुआ आकाश के ऊपर फैला है। इनकी दमकती हुई रश्मियाँ विभिन्न प्रकार से रहती हैं। सोम का पवित्र रस शीघ्र गमन करने वाला और यजमान का हर प्रकार रक्षक है। फिर वह देवताओं की ओर जाने वाली सुमति से स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ होता है ॥ २ ॥ सूर्य रूप से अवस्थित सोम मुख्य है, वह प्राणियों को जल के द्वारा अन्न प्राप्त कराते हैं और मेधावी सोम के द्वारा प्रेरित अग्नि जगत में निर्माण करने वाले होते हैं। सोम की प्रेरणा से ही देवताओं ने मनुष्यों के कल्याण के लिये औषधियों को गुणवाली बनाया ॥ ३ ॥ यह सोम देवताओं के मानस्य की रक्षा करते हैं। यह सोम आदित्य के स्थान को पुष्ट करते हैं। पशु स्वामी सोम हमारे शत्रुओं को बंधन में डालते हैं। इन सोमों के मधुर रस को पुण्य कर्म वाले व्यक्ति ही प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ यह सोम जल में मिश्रित होकर यज्ञ गृह की रक्षा करते हैं। हे सोम ! तुम राजा होकर रथारूढ़ होते और रणक्षेत्र में जाते हो। फिर अन्नों के जीतने वाले होते हो ॥ ५ ॥ [८]

सूक्त ८४

(ऋषि:—प्रजापतिर्वाच्यः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—जगती त्रिष्टुप्)

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥ १ ॥
आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति।
कृण्वन्त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥ २ ॥
आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम्।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥ ४ ॥
अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम्।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५॥ [८]

हे जलदाता सोम! तुम सूक्ष्मदर्शी और हर्षकारी हो। तुम इन्द्र, वरुण और वायु के लिये सिंचित होते हुए, हमको अक्षीण धन प्रदान करो और पृथिवी पर मुझे देवताओं का उपासक मानो ॥ १ ॥ सब भुवनों में व्याप्त सोम वहाँ की प्रजाओं के रक्षक होते हैं। यज्ञ को फल से पूर्ण करने वाले यह सोम, संसार को प्रकाशित करने वाले आदित्य जैसे उसी संसार के आश्रित रहते हैं, उसी प्रकार यज्ञ को राक्षसों से निर्मूल करके यज्ञ के ही आश्रित होते हैं ॥ २ ॥ रश्मियाँ इन सोमों की देवताओं के हर्ष के निमित्त औषधियों में स्थापित करती हैं। यह निष्पन्न होकर अपनी उज्ज्वल धारा के रूप में प्रवाहित होते हैं। यह देव-काम्य सोम शत्रुओं का पराभव करने वाले और इन्द्रादि सब देवताओं को शक्ति से युक्त करने वाले हैं ॥ ३ ॥ यह गमनशील सोम प्रातः सवन में किये गए स्तोत्र को प्रवृद्ध करते हुए सहस्र धाराओं सहित गिरते हैं। यह वायु के द्वारा प्रेरित होकर रस को वेग वाला करते हैं ॥ ४ ॥ स्तुत होने पर यह सोम सर्व प्रदायक होते हैं। इन्हें अपने दूध से

सींचने के लिए गौऐं खड़ी हो गई हैं। यह शत्रुओं के धन पर अधिकार करने वाले, अन्न-सम्पन्न और रस-रूप सोम निचोड़ने से प्रकट होते हैं॥५॥[१०]

सूक्त ८५

(ऋषिः—वेनो भार्गवः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१॥
अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूंरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥
अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥३॥
सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥
कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्यव्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षर ॥५॥
स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥ ६ ॥१०॥

हे सोम ! तुम्हारे रस का पान करके पाप करने वाले मनुष्य सुखी न हों। राक्षस और रोग दोनों ही तुम्हारे प्रताप से मिट जाँय। तुम भले प्रकार निष्पीडित होकर इन्द्र के पास जाकर अपना रस क्षरित करो ॥ १ ॥ हे ज्ञानी एवं पवमान सोम ! तुम देवताओं को प्रिय बनाने वाले हो। हम तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम हमको रणभूमि में भेजो और शत्रुओं को नष्ट करो। हे इन्द्र ! तुम भी यहाँ आगमन करो और हमारे शत्रुओं को मारो ॥ २ ॥ हे अहिंसित सोम ! तुम इन्द्र के अन्न होकर गिरते हो। यह सोम संसार के ईश्वर हैं। स्तोतागण इनका यश-गान करते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम महान्

हो। तुम्हारी धाराएं असंख्य हैं। तुम अद्भुत और सहस्र प्रकार के नेत्र वाले हो। तुम हमारे लिए खेत और जल पर अधिकार करते हुए छन्ने की ओर गमन करो। हे वर्षणशील सोम! हमारे मार्ग को चौड़ा करो। इन्द्र के द्वारा कामना किए गए इस सोम रूप मधु को हम सींचते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम! तुम कलश में स्थित हो। तुम गोदुग्ध से मिलाये जाने पर शब्द करते हो। फिर तुम छन्ने की ओर जाते हो। संस्कारित होने पर तुम अश्व के समान अभिलषणीय होकर इन्द्र के पेट को भले प्रकार सींचते हो ॥ ५ ॥ हे सोम! तुम इन्द्र तथा अन्य सब देवताओं के लिए गिरो। हे सुस्वादु सोम! तुम अहिंसनीय एवं मधुर रस से पूर्ण हो। मित्र, वायु वरुण और बृहस्पति के लिए तुम सिंचनीय होओ ॥ ६ ॥ [१०]

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७॥
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥
अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥९॥
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥१०॥
नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥११॥
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः
॥ १२ ॥ ११ ॥

अश्व के समान वेग वाले सोम को अध्वर्युओं की दशों अंगुलियाँ निष्पन्न करती हैं। फिर स्तोतागण स्तुतियों को प्रेरित करते हैं। सुन्दर

कीर्ति वाले इन्द्र में यह सोम क्षरित होते है ॥ ७ ॥ हे सोम ! सुन्दर रूप, बल, भूमि और घर हमको प्रदान करो । हमारे कामों से द्वेष करने वालों को सत्तावान् मत बनाओ । हम महान् धन पर विजय करने वाले हों ॥ ८ ॥ आकाश स्थित सोम ने नक्षत्र आदि को सुसज्जित किया । यह सोम छन्ने को पार करते हुए गिरते हैं । यह मनुष्यों को देखने वाले सोम शब्द करते हुए आकाश से अमृत रूप रस की वृष्टि करते हैं ॥ ६ ॥ मिष्टभाषी वेनों ने दुःख रहित स्थान यज्ञ में सोम को पृथक्-पृथक् निष्पन्न किया । उन्होंने जल में बढ़ने वाले सोम के रस को विस्तृत द्रोण-कलश में धार रूप से सिंचित किया । पहिले वह सोम छन्ना में सींचा गया ॥ १० ॥ चरणशील, सुन्दर पत्र वाले, आकाश में स्थित सोम की हम स्तुति करते हैं । यह सोम बालक के समान संस्कार करने योग्य है । इस हविरन्न में निहित, शब्दवान् और पक्षी के समान सोम से हमारी स्तुतियाँ संगति करती हैं ॥ ११ ॥ रश्मिवंत सोम आकाश में रहते हुए आदित्यों के सब रूपों को देखते हैं । सोमात्मक सूर्य अपने महान् तेज से दैदीप्यमान होते हैं । यह उज्वल सोम आकाश और पृथिवी को अपने तेज से पूर्ण करते हैं ॥ १२ ॥ [११]

सूक्त ८६ [पाँचवा अनुवाक]

(ऋषिः—अकृष्टा माषाः, सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजाः, अत्र ऋषिगणाः, अत्रिः, गृत्समदः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—जगती)

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजाइव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥१॥
प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥२॥
अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥३॥
प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।

प्रान्तऋ षयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥४॥
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५॥१२॥

हे सोम ! तुम्हारा रस अश्व-वत्स के समान वेगवान् होरहा है । तुम्हारा रस आकाश में उत्पन्न होता है । तुम्हारे सुंदर पत्तों से निचुड़ता हुआ, मधुर रस द्रोण-कलश में गमन करता है ॥ १ ॥ हे सोम ! जैसे अश्व को मार्जित करते हैं, वैसे ही तुम्हारा हर्ष प्रदायक रस संस्कृत होकर वेगवाला होता है । यह क्षरणशील मधुर और बढ़े हुए गुण वाले सोम बछड़े की ओर जाने वाली गौ के समान इन्द्र की ओर गमन कर रहे हैं ॥ २ ॥ हे सोम ! जैसे अश्व को रणभूमि में भेजते हैं, वैसे ही तुम गमन करो । तुम सब के जानने वाले हो, आकाश से मेघ के रचने वाले इंद्र की ओर गमन करो । यह वर्षणशील सोम इन्द्र के लिए ही छन्ने में जाकर शुद्ध होते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम्हारी दिव्य धाराऐं, दुग्ध से मिश्रित हुई द्रोणकलश में गिरती हैं । ऋषिगण तुम्हें निष्पन्न करते हैं और कलश में क्षरित करते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! हे स्वामिन् ! तुम्हारी रश्मियाँ देवताओं के शरीरों को प्रकाश देती हैं । तुम सर्व व्यापक और सर्वदृष्टा हो । तुम धारक रस को सींचते हो ॥ ५ ॥ [१२]

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥६॥
यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७॥
राजा समुद्रं नद्यो वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥८॥
दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।

दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१०॥१३॥

यह सोम दशापवित्र में शुद्ध होते हैं। इनकी दमकती रश्मियाँ सब ओर गमन करती हैं। यह सोम अपने आश्रय रूप कलश में विश्राम करते हैं ॥ ६ ॥ यज्ञ को सुशोभित करने वाले सोम पवित होते हुए देवताओं के स्थान को प्राप्त होते हैं। यह सोम असंख्य धाराओं से छन्ने को लाँघते हुए द्रोण-कलश में पहुँचते हैं ॥ ७ ॥ नदियों के समुद्र में मिलने के समान ही सोम जल में मिश्रित होते हैं। जल में रह कर दशा पवित्र पर पहुँचते और पृथिवी के नाभि रूप यज्ञ में निवास करते हैं और आकाश को धारण करते हैं ॥८॥ अपनी महिमा से ही यह सोम आकाश पृथिवी को धारण करते हैं और स्वर्ग के ऊँचे स्थान पर शब्द करते हैं। इन्द्र से मित्रता करने के लिए यह सोम छन्ने में छनते हुए द्रोण-कलश में विश्राम करते हैं ॥ ६ ॥ यह सोम देवताओं के पालक, यज्ञ के प्रकाशक और ऐश्वर्यवान् हैं। इनका रस देवताओं को अत्यंत प्रिय है। अपने उस रस को यह सींचते और दिव्य तथा पार्थिव धनों को स्तोताओं को प्रदान करते हैं। यह इन्द्र को बढ़ाने वाले, रस-रूप एवं अत्यंत हर्षकारी हैं ॥ १० ॥ [१३]

अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥११॥
अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२॥
अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३
द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४
सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥१५॥१४

यह हरे रंग के, सौ धाराओं वाले, गतिवान् सोम देवताओं से मित्रता करने को कलश में गिरते हुए शब्द करते हैं। यह असंख्य छिद्रों वाले छन्ने से छनते हुए सबके शुद्ध करने वाले होते हैं ॥११॥ उत्कृष्ट सोम माध्यमिकी वाक् से आगे चलते हैं। यह गतिमान जल से भी आगे चलते हैं। बल-प्राप्ति के लिए वह युद्ध को सहन करते हैं। किरणों में प्रविष्ट सोम सुन्दर आयुध वाले और ऋत्विजों द्वारा संस्कृत होने वाले हैं ॥१२॥ यह स्तुतियों से पूर्ण हुए सोम अपने रस के सहित पक्षी के समान वेग से छन्ने में पहुँचते हैं। हे इन्द्र! आकाश-पृथिवी के मध्य निष्पन्न सोम तुम्हारे कर्म से ही बहते हैं ॥१३॥ स्वर्ग के छूने वाले तेजोमय सोम अन्तरिक्ष को पूर्ण करने वाले हैं। यह जल से मिलकर नवीन स्वर्ग की उत्पत्ति करते और जल रूप से प्रवाहित होते हैं। वे जल को उत्पन्न करने वाले सनातन इन्द्र की सेवा करते हैं ॥१४॥ सोम ने ही इन्द्र के महान् शरीर को सब से पहिले पाया था। यह इन्द्र को अत्यन्त सुख देने वाले हैं। यह उत्तम वेदी पर अवस्थित होते हैं। इनके द्वारा तृप्ति को प्राप्त करते हुए इन्द्र रण-क्षेत्रों की ओर गमन करते हैं ॥१५॥ [१४]

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१६

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१९

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥२०॥१५

इन्द्र के उदर में प्रविष्ट होने वाले सोम उनके हृदय को कष्ट नहीं देते। यह सोम जलों से संगति करते हुए सैकड़ों छिद्र वाले छन्ने को लाँघते हैं और द्रोण-कलश को प्राप्त होते हैं ॥१६॥ हे सोम ! स्तुति के लिए तत्पर स्तोता सोम यज्ञ मण्डप में विचरण करते हैं। यह स्तोता सोम की स्तुति करते हैं और गौएँ इन्हें अपने दूध से सींचकर मधुर करती हैं ॥१७॥ हे सोम ! हमको अक्षुण्ण अन्न प्रदान करो। तुम्हारा वह अन्न आश्रय देने वाला, मधुर भाषी, सुन्दर सामर्थ्य वाला पुत्र प्राप्त कराता है ॥१८॥ यह सोम स्तोताओं के अभीष्टों की रक्षा करने वाले हैं। यह सूर्य को पुष्ट करते और जल उत्पन्न करते हैं। कलश में प्रविष्ट होने वाले यह सोम इन्द्र के हृदय में रमते हैं ॥१९॥ यह सोम विद्वानों और ऋत्विजों द्वारा नियमित तथा संस्कृत होकर कलश में जाते हुए शब्द करते हैं। यह यजमान के लिए जलोत्पादक सोम इन्द्र और वायु का सख्य-भाव प्राप्त करने के लिए मधुर रस सींचते हैं ॥२०॥　　　　[१४]

अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥२१
पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२
अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३॥
त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४
अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥२५॥१६

प्रातः सवन में यह सोम अत्यन्त सुसज्जित होते हैं। यमलीवरी जलों में बढ़ते हुए यह सोम लोकों के रचयिता होते हैं। यह हर्षकारी

सोम हृदय में प्रविष्ट होने के लिए उद्यत होते हैं । इक्कीस ऋत्विज इनका दोहन करते हैं ॥२१॥ कलश में निर्मित हुये सोम ! तुम देवताओं को सींचो । तुम उनके उदर में विश्राम करो । ऋत्विजों द्वारा होमे गए सोम इन्द्र के उदर में शब्द करते हैं । इन सोमों ने ही दिन को उत्पन्न करने वाले सूर्य को प्रकट किया है ॥२२॥ हे सोम ! तुम पाषाणों द्वारा कूटे जाकर छन्ने में छनते हुए इन्द्र के उदर की कामना करते हो । तुम मनुष्यों के यत्न से सर्व दर्शक होते हो । तुमने ही गौओं को ढक लेने वाले पर्वत को अंगिराओं के लिए खोला था ॥ २३ ॥ हे पवमान सोम ! यह विद्वान् स्तोता रक्षा की कामना से तुम्हारी स्तुतियाँ करते हैं । तुम आकाश में स्तुतियों से सुसज्जित बैठे थे तब श्येन तुम्हें यहाँ लाया था ॥२४॥ हे सोम ! तुम हरे रङ्ग वाले को सप्त गायत्री आदि छन्द, छन्ने पर गिराते हैं । महान् आयु वाले मेधावी जन तुम्हें अन्तरिक्ष के जलों में प्रेरित करते हैं ॥२५॥ १६]

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गा· कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति॥२६
असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः॥२७
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्द्रो प्रथमो धामधा असि ॥२८
त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९
त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजःप्रथमा अगृभ्णत त्तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे॥३०।१७

यज्ञ करने वाले यजमान के लिए यह सोम शत्रुओं को भगाने वाला मार्ग बनाते हुए कलश में गिरते हैं । यह सोम अश्व के समान उछलते

हुए रसमय रूप वाले होकर छन्ने को प्राप्त होते हैं ॥२६॥ सौ धाराओं वाले सोम की आश्रिता परस्पर साथ रहने वाली सूर्य रश्मियाँ इन्द्र के पास पहुँचती हैं। आकाश स्थित एवं रश्मियों से आच्छादित सोम को अँगुलियाँ संस्कृत करती हैं ॥२७॥ विश्व स्वामी सोम! सभी जीव तुम्हारे तेज से उत्पन्न होते हैं। तुम संसार का धारण भी करते हो, इसलिए यह जगत तुम्हारे आश्रित है ॥२८॥ आकाश और दिशाओं के धारणकर्त्ता सोम! तुम आकाश और पृथिवी के भी धारक हो। तुम संसार के जानने वाले हो, तुम्हारी रश्मियाँ सूर्य के द्वारा पुष्टि को प्राप्त होती हैं ॥२९॥ हे सोम! तुम छन्ने में शुद्ध किये जाते हो। विद्वान् ऋत्विज तुम्हें देवताओं के लिए ग्रहण करते हैं। संसार के सभी प्राणी तुम्हारी सेवा में उपस्थित होते हैं ॥३०॥ [१७]

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥३१॥
स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२॥
राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३॥
पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥३४॥
इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥३५॥[१८

हरे रङ्ग के, सेचक, जल में शब्दवान् यह सोम छन्ने में पहुँचते हैं। सोम की कामना करने वाले स्तोत्र और उनके स्तोता बालक के समान शब्द करने वाले सोम का यश-कीर्त्तन करते हैं ॥ ३१ ॥ तीनों सवनों द्वारा यज्ञ को विस्तीर्ण करने वाले सोम अपने को सूर्य रश्मियों से आच्छादित करते हैं। यह शोधित हुये सोम पात्र में गिरते हुए, सबके जानने वाले होते हुए सब प्राणियों

के स्वामी बनते हैं ॥ ३२ ॥ यह सोम स्वर्ग के और जलों के भी स्वामी हैं। यज्ञ-मार्ग में शब्द करते हुए वे गमन करते हैं। यह असंख्य धाराओं वाले सोम पात्रों में सींचे जाते हैं। यह संस्कारित सोम शब्द करने वाले हैं ॥३३॥ हे सोम ! तुम आदित्य के समान पूजनीय हो। तुम रस की वर्षा करने वाले हो। तुम अनेकों द्वारा निष्पन्न हुए हो। धन-लाभ के लिए पाषाणों द्वारा निष्पीडित होकर तुम रण-क्षेत्र में गमन करते हो ॥ ३४ ॥ हे सोम ! जैसे बाज अपने घोंसले में गमन करता है, वैसे ही तुम कलश में गमन करते हो। तुम अन्नवान् और बलवान् हो. दूर तक देखने वाले और आकाश को स्थिर करने वाले हो। तुम्हारा अत्यन्त हर्षकारी रस इन्द्र के लिए निष्पन्न हुआ है ॥ ३५ ॥ [१८]

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६॥
ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इंद्रो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३७॥
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥
गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रे तोधा इंदो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते॥३९॥
उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४०॥ १९

यह सोम जल के पिता, स्वर्ग में उत्पन्न, विद्वान्, मनुष्यों के कर्मों को देखने वाले सोम के समान हैं। सप्त नदियाँ बालक के पास माता के जाने के समान इनके पास गमन करती हैं॥३६॥हे सोम!तुम हरे वर्ण वाले,सबके स्वामी और सब लोकों में जाने वाले हो। तुम्हारे लिए मधुर घृत, दुग्ध और जल की अश्व वहन करें। मनुष्य तुम्हारी अनुज्ञा में रहें ॥ ३७ ॥ हे जल-वर्षक

सोम ! तुम विभिन्न गति वाले और सब मनुष्यों के देखने वाले हो। तुम हमें स्वर्ण, गौ आदि से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करो। हम धनों से सम्पन्न होकर संसार में पूर्ण आयु तक जीवित रहें ॥३८॥ हे सोम ! तुम जल धारक धन वर्षक, सुवर्ण आदि के प्राप्त कराने वाले और वीर्यवान् हो। हे सबके जानने वाले सोम ! मेधावी स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं। अतः तुम मधुर रस के सहित क्षरित होओ ॥ ३९ ॥ यह महिमावान् सोम जल में मिश्रित होकर कलश के आश्रित होते हैं। यह अपने छन्ना रूप रथ पर आरूढ़ होते हुए संग्राम करते हैं। अभिषव के समय यह स्तोत्र को चैतन्य करते हैं तथा हमारे निमित्त अन्न रूप ऐश्वर्य के विजेता होते हैं ॥ ४० ॥ [१९]

स मन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वा सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इंदविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१॥

सो अग्रे अह्ना हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥४५[२०

यह सोम प्रजा, दिवस रात्रि और सुन्दरता से पूर्ण करने वाली स्तुतियों का प्रेरण करते हैं। हे सोम ! इंद्र के द्वारा पान किये जाने पर तुम उनसे हमारे लिए अत्यन्त उपयुक्त अन्न और घर को पूर्ण करने वाले सुंदर ऐश्वर्य की याचना करो ॥४१॥ यह सोम स्तोताओं की प्रातःकालीन स्तुतियों द्वारा जाने जाते हैं। यह द्यावा पृथिवी के मध्य गमन करने वाले मनुष्यों और देवताओं द्वारा सराहे गए ऐश्वर्यों के प्रदाता सोम देवता और पृथिवी

के प्राणियों को कर्मों में प्रेरित करते हैं ॥४२॥ इस सोम के रस को ऋत्विगण गोदुग्ध में मिश्रित करते हैं और देवगण इस बलकारी पेय का आस्वादन करते हैं। यह सोम सेचक हैं। इनका रस ऊपर उठता है तब यह निम्नगामी होते हैं। पशु को जल में ले जाकर स्वच्छ करते हैं, वैसे ही जल में मिला कर सोम का शोधन किया जाता है ॥४३॥ ऋत्विजो! सोम की स्तुति करो। यह सोम रस-रूप अन्न को लाँघते हैं और सर्प द्वारा केंचुली छोड़ने के समान अभिषव द्वारा अपने शरीर को पृथक करते हैं। यह क्रीड़ा करने वाले अश्व के समान छन्ने से कलश में गमन करते हैं ॥४४॥ सुन्दर गुण वाले जल में शोधित सोम स्तुत होते हैं। यह हरे वर्ण वाले, जल-मिश्रित, दिनों के साधक, धन प्रापक और सुंदर दिखाई देने वाले हैं। यह अपने उज्वल छन्ने रूप रथ पर प्रवाहित होते हैं ॥ ४५ ॥ [२०]

अक्रान्त्स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥४६

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद् गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान् रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥२१

इन सोमों ने ही आकाश को धारण कर स्तम्भित किया। यह त्रिधातु वाले सोम निष्पन्न किये जाते हैं। यह सब लोकों में स्थित सोम ऋत्विजों द्वारा स्तुत होते हैं, तब उनके शब्द की सभी कामना करते हैं ॥४६॥ हे सोम! जब तुम्हारा शोधन किया जाता है तब तुम्हारी उज्वल धाराएँ छन्ने को पार करती हुई गमन करती हैं। जब तुम जल से मिश्रित, किये जाते हो तब तुम द्रोण-कलश में प्रतिष्ठित होते हो ॥४७॥ हे सोम! हमारे यज्ञ को सींचो। तुम हमारे स्तोत्र के ज्ञाता हो, अतः अपने प्रिय और मधुर रस को छन्ने पर क्षरित करो। हे सोम! हमारे शत्रु राक्षसों का वध करो। हम पुत्रवान् होते हुए सुन्दर स्तुतियों का

उच्चारण करेंगे और तुमसे सुन्दर धन माँगेंगे ॥४८॥

सूक्त ८७

(ऋषि—उशना । देवता—पवमान सोम । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥ १
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२
ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥३
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ४
एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५॥२

हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होकर द्रोण-कलश में प्रतिष्ठित होओ और यजमान को अन्न प्रदान करो। हे सोम ! तुम यहाँ शीघ्र आगमन करो। अश्व को स्नान कराने के समान अध्वर्युगण इस सोम को धो रहे हैं ॥१॥ यह सोम असुरों को नष्ट करने वाले हैं। यह पवमान सोम सुन्दर आयुधों से सम्पन्न, विघ्नों से रक्षा करने वाले, देवताओं के पालनकर्त्ता, आकाश के स्थिरकर्त्ता और पृथिवी के भी धारणकर्त्ता हैं ॥२॥ यह मनुष्यों को प्रकट करने वाले सोम मेधावी, अतीन्द्रिय द्रष्टा और आगे जाने वाले हैं। यह उशना ऋषि की गौओं के दूध और जल से मिलते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम वृष्टि प्रेरक हो। यह मधुर सोम रस तुम्हारे लिए ही छन्ने में निष्पन्न हो रहा है। वह शत संख्यक और और असंख्य धनों के देने वाले हैं। यह बल से युक्त, नित्य और यज्ञ में वास करने वाले हैं ॥४॥ सेनाओं के जीतने वाले घोड़े के समान अन्न

की कामना वाले सोम गव्य मिश्रित अन्न के सहित छन्ने से शोधित करके अविनाशी बल के निमित्त प्रस्तुत किये जाते हैं ॥ ५ ॥ [२२]

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥
एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ७ ॥
एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥
उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९॥२३॥

शोधनीय सोम बहुतों द्वारा बुलाए हुए हैं और यह उपभोग्य धनों के प्रदान करने वाले हैं। हे सोम ! तुम हमको अन्न और धन दो तथा रस रूप अन्न भी प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥ निष्पन्न सोम गतिमान अश्व के समान छन्ने की ओर जाते हैं। वे अपनी धारा रूप सींगों को तीक्ष्ण करते हुए गौ-भैंस के चाहने वाले वीरों के समान गमन करते हैं ॥ ७ ॥ जिन सोम-धाराओं ने पर्वत के छिपे हुए स्थान में पणियों की गौओं को पाया था, वह धाराएं ऊपर से क्षरित होकर पात्र में जाती हैं। हे इन्द्र ! आकाश में कड़कती हुई विद्यु के समान यह धारा तुम्हारे लिए ही गिरती हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम होकर चुराई गई गौओं को खोजते हो। तुम इन्द्र के साथ ही रथारूढ़ गमन करते हो। हे सोम ! तुम अन्नवान हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं हमको श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ९ ॥ [२३

सूक्त ८८

(ऋषि—उशनाः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—पङ्क्तिः, त्रिष्टुप्

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥
वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदाइव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥३॥
इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्ना हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४॥
अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥५॥
एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥६॥
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥७॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥८॥२४॥

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए ही संस्कृत होकर गिरते हैं। तुम जिन सोमों के सृष्टा हो, उन्हीं को अपनी सहायता के लिए स्वीकार करो। हे सोमपाये ! महान् मद प्राप्त करने के लिए इन सोमों का पान करो ॥ १ ॥ जैसे रथ असीमित भार ढोता है, वैसे ही यह महिमावान् सोम प्रचुर भार वहन करने वाले हैं। उन प्रचुर धन दाता सोम को रथ के समान ही जोड़ा जाता है। संग्राम की कामना वाले वीर इन सोमों को विजय के निमित्त रण-क्षेत्र में ले जाते हैं ॥ २ ॥ वायु के समान अपनी इच्छानुसार गमन करने वाले सोम वायु के नियुत् नामक वेगवान् अश्वों के चालक हैं। यह अश्विनीकुमारों के समान आहूत करते ही आगमन करते हैं। यह सूर्य के समान तेजस्वी सोम धनिक व्यक्ति के समान सब की प्रतिष्ठा के पात्र हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम भी इन्द्र के समान ही महान् कर्मा हो। तुम शत्रुओं के मारने वाले और

उनके पुरों के तोड़ने वाले हो। हे सोम ! तुम सब शत्रुओं के संहारक और दुष्टों के भी हनन करने वाले हो ॥ ४ ॥ वन में प्रकट अग्नि द्वारा बल प्रदर्शित करने के समान जल में उत्पन्न सोम अपने बल को प्रकट करते हैं। वह संग्राम-रत योद्धा के समान भयंकर शब्द करने वाले सोम अत्यंत गुण और माधुर्य से सम्पन्न रस प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥ जैसे नदियाँ निम्नगामिनी होकर समुद्र में जाती हैं, जैसे ऊपर से वृष्टि होकर पृथिवी पर जल जाता है, वैसे ही यह सोम छन्ने को लाँघ कर कलश में पहुँचते हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण के समान बलवान सोम ! तुम धरती पर गिरो। वायु के समान प्रवाहमान सोम तुम जल के समान प्रवाहित होकर सुन्दर मति प्रदान करो। शत्रु-सेना के जीतने वाले इन्द्र के समान तुम यजन करने योग्य हो ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम विघ्नों के शांत करने वाले हो। तुम महान् तेज वाले और गम्भीर हो। तुम अर्यमा के समान पूज्य और मित्र के समान पवित्र हो। मैं तुम्हारे कर्म को शीघ्र प्राप्त होता हूँ ॥ ८ ॥ [२१]

सूक्त ८९

(ऋषिः—उशनाः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—त्रिष्टुप्)

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः।
सहस्रधारो असदन्न्यस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥
राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥ २ ॥
सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥
मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम्।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥
चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य।

असत्त उन्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥२५॥

आकाश की वृष्टि के समान यज्ञों में सोम-रस का सिंचन होता है। आकाश में स्थित अनेक धाराओं वाले सोम हमारे पास विराजमान होते हैं ॥ १ ॥ सोम पयस्विनी गौओं के स्वामी हैं। ये दूध में मिश्रित हो रहे हैं। यह वाज के द्वारा आकाश से लाये गए हैं। इन सरल नौका में चढ़ने वाले सोमों का इनके रक्षक और अध्वर्यु आदि दोहन करते हैं ॥ २ ॥ यह सोम आकाश के स्वामी हैं। यह जलों के प्रेरक, शत्रुहन्ता और हरे वर्ण वाले हैं। इन सोमों को यजमान अपने वश में करते हैं। यह सोम रणक्षेत्र में मुख्य वीर और देवताओं में श्रेष्ठ होकर पणियों द्वारा अपहृत गौओं के मार्ग की जिज्ञासा करते हैं। इन सोमों की सहायता से ही इन्द्र जगत का पालन करते हैं ॥३॥ इन सोम की पीठ मधुर है। यह देखने में दर्शनीय,कर्म में भयंकर और गमनशील हैं। इन्हें अश्व के समान यज्ञ रूप रथ में योजित किया जाता है। दशों अँगुलियाँ इनका संस्कार करती हैं और अध्वर्युगण इन्हें प्रवृद्ध करते हैं ॥४॥ चार गौएँ सब के धारणकर्त्ता अंतरिक्ष में बैठी हैं, घृत प्रदान करने वाली यह गौएँ सोम की सेवा करती हैं। इस प्रकार की अन्य अनेक गौएँ अपने दूध से शोधन करने के लिए सोम-रस को सब ओर से व्याप्त करती हैं ॥५॥ सोम ने पृथिवी को स्थिर किया, आकाश को भी स्तंभित किया। समस्त प्राणी उनकी स्तुति करते और आश्रित रहते हैं। यह मधुर रस युक्त सोम इन्द्र के लिए निष्पन्न होने वाले हैं। यह सोम तुम्हारे निमित्त अश्वों से सम्पन्न हों ॥ ६ ॥ हे महिमावान् सोम ! तुम अत्यंत धनी हो। इन्द्रादि देवताओं के पीने के लिए क्षरित होओ। तुम्हारी कृपा प्राप्त होने पर हम श्रेष्ठ बल और ऐश्वर्य के स्वामी हों ॥ ७ ॥   [२५]

सूक्त ६०

(ऋषिः—वसिष्ठः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ।। १ ।।
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ।।२।।
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ।।३
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ।।४।।
मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सी न्द्रमिन्द्रो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रो मदाय ।।५।।
एषा राजेव क्रतुमाँ विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।६।२६

यह सोम अध्वर्युओं द्वारा प्रेरित होकर रथ के समान अन्न-वहन करने वाले हैं। यह आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हैं। यह इन्द्र को प्राप्त होकर अपने तेज को तीक्ष्ण करते और सब धनों को हाथ में लेकर हमें देते हैं ।।१।। अन्न देने वाले वर्षक सोम को तीनों सवनों में स्तोताओं की स्तुतियाँ तीक्ष्ण करती हैं। यह सोम वरुण के समान जलों को आच्छादन करने वाले हैं। यह स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं ।।२।। हे सोम ! तुम वीरों से सम्पन्न हो, स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हो; तुम्हारे आयुध तीक्ष्ण हैं। तुम समर्थ, संभक्ता, विजेता, अजेय और शत्रुओं के पराभवकर्त्ता हो ।।३।। हे सोम ! तुम स्तोताओं को भय-रहित करने के लिए अपने विस्तृत मार्ग द्वारा आकर आकाश-पृथिवी को सुसंगत करो और क्षरित होते हुए हमें महान् धन देने वाले होओ। तुम उषा, सूर्य और उनकी रश्मियों से मिलने के लिए शब्दवान होते हो ।।४।। हे पवमान सोम ! तुम मित्रावरुण, विष्णु, इन्द्र, मरुद्गण तथा अन्य सब देवताओं के लिए तृप्तिकर होते हुए उन्हें हर्ष प्रदान करो ।।५।। हे सोम ! तुम सब पापों को दूर

करके हमें अन्न प्रदान करो और अपनी मंगलमयी रक्षाओं के द्वारा हमारी रक्षा करो ॥६॥ [२६]

९१ सूक्त

(ऋषिः—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द— त्रिष्टुप्)

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥ १ ॥
वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२॥
वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३
रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम्॥४
स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥
एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ् नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६॥१

जैसे रणक्षेत्र से आकर घोड़े को अंगुलियों से धोते हैं, वैसे ही शब्द करने वाले सोम को यज्ञ स्थान में कर्म द्वारा निष्पन्न करते हैं। यह सोम देवताओं में श्रेष्ठ हैं और सभी स्तुतियों के स्वामी हैं। इन सोम को दश अंगुलियाँ छन्ने के ऊपर रखती हैं ॥१॥ यह देवताओं का साहचर्य प्राप्त सोम नहुष वंश वालों के द्वारा निष्पन्न होते और यज्ञ में गमन करते हैं। कर्म करने वालों के अभिषुत सोम जल और गव्य से मिश्रित होकर बारम्बार शुद्ध होते हुए यज्ञ को प्राप्त करते हैं ॥२॥ यह पवमान सोम कामनाओं के वर्षक, शब्दवान और सुन्दर कर्म वाले हैं। यह इन्द्र के निमित्त गव्य के पास गमन करते हैं। यह सोम स्तुतियों से सम्पन्न हैं। यह सूक्ष्म छिद्रों वाले छन्ने को लाँघकर द्रोण-कलश में गिरते हैं ॥३॥ हे

सोम ! तुम संस्कारित होकर अन्न लाने वाले बनो । असुरों के दृढ़ पुरों को तोड़ो । निकट या दूर से आकर आक्रमण करने वाले राक्षसों को और उनके प्रेरकों को भी अपने तीक्ष्ण आयुधों से नष्ट कर दो ॥४॥ हे सोम ! तुम सबके द्वारा स्तुत हो । मेरे अभिनव सूक्त को प्राचीन मार्ग के समान ग्रहणीय करो । तुम असीमित कर्मों वाले, असुरों को असह्य और शत्रुओं के हिंसक अपने महान् अंशों को इस यज्ञ स्थान में हमको प्राप्त कराओ ॥५॥ हे पवमान सोम ! हमको गवादि युक्त धन, अनेक सन्तान, जल और अन्नयुक्त स्वर्ग प्रदान करो । अन्तरिक्ष के नक्षत्रों को तेजस्वी बाओ । हमको दीर्घ आयु दो, जिससे हम सूर्य के चिरकाल तक दर्शन कर सकें ॥६॥

सूक्त ९२

(ऋषि—कश्यपः । देवता—पवमानः सोम. । छन्द—त्रिष्टुप्)

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥१॥
अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन् होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२॥
प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु जनान्यतते पंच धीरः ॥३॥
तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥४
तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥५
परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥६॥२

यह शोधनीय सोम हरे रंग के हैं । ऋत्विजों द्वारा छन्ने में शत्रु-वध के लिए प्रेरित रथ के समान प्रेरित किये जाते हैं । यह सोम अपने

आनन्दकारी अन्न से देवताओं के लिए सेवनीय होते हैं यह देवोपासक सोम इन्द्र के स्तोत्र को प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ यह सोम क्रान्तप्रज्ञ और मनुष्यों के देखने वाले हैं । जिस प्रकार स्तुति करने वाले के लिए होता देवताओं के पास जाता है, वैसे ही यह सोम जल में मिश्रित होकर छन्ने पर विस्तृत होते और यज्ञ में गमन करते हैं । सात विद्वान ऋषि सोम के पास गमन करते हैं और यह सोम चमस आदि में एकत्र होते हैं ॥२॥ यह सोम मार्गों के ज्ञाता, सुन्दर बुद्धि वाले देवताओं के निकटस्थ हैं । यह सब कार्मों में रमण योग्य, पाँच वर्णों के अनुवर्ती और द्रोण कलश में स्थित होने वाले हैं ॥३॥ हे क्षरणशील सोम ! यह विख्यात तैंतीस देवता तुम्हारे स्वर्ग स्थान में निवास करते हैं । दशों अँगुलियाँ तुम्हें ऊँचे उठे हुए छन्ने में शुद्ध करती हैं ॥४॥ जिस स्थान पर स्तोतागण एकत्र होकर स्तुति की इच्छा करते हैं, हम सोम के उसी स्थान को पावें । दिन के निमित्त प्रकाशित सूर्यात्मक सोम की ज्योति ने राजर्षि मनु की भले प्रकार रक्षा की थी । सबको नष्ट कर देने की कामना वाले असुर के लिए सोम ने अपने तेज को तीक्ष्ण किया था ॥ ५ ॥ देवाह्वाक ऋत्विज् जैसे यज्ञ गृह में पहुँचते हैं और जैसे सत्यकर्म वाला राजा रण क्षेत्र में गमन करता है, वैसे ही यह क्षरणशील सोम, भैंस के जल में रहने के समान, द्रोण कलश में निवास करते हैं ॥६॥

सूक्त ६३

(ऋषि—नोधा । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—त्रिष्टुप्)

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥
स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरन्धिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ॥४
नूनो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥२

भगिनी के समान एक साथ सींचने वाली दशों अंगुलियाँ सोम को संस्कृत करती हैं। देवताओं द्वारा इच्छा किए गए सोम को यह प्रेरित करती हैं। हरे रङ्ग के यह सोम दिशाओं की ओर गमन करते और कलश में स्थित होते हैं ॥१॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले, देवताओं की इच्छा करते हुए यह सोम माताओं द्वारा शिशु का पालन किये जाने के समान ही पाले जाते हैं। यह सोम दूध आदि से मिश्रित होकर अपने आश्रय-स्थान कलश को प्राप्त होते हैं ॥२॥ यह सोम गौओं के थनों को चूसते और धाराओं के रूप में गिरते हैं। जैसे धुले हुए वस्त्र से कोई पदार्थ ढका जाता है, वैसे ही चमस-स्थित सोम को गौएँ अपने उज्वल दूध से आच्छादित करती हैं ॥३॥ हे सोम ! तुम चरणशील हो। अपने चरण काल में ही हमको अभीष्ट अश्वादि से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो। यह सोम रथ-युक्त धनियों की इच्छा करने वाले हैं। इनकी सुन्दर बुद्धि हमको धन देने के लिए प्राप्त हो ॥४॥ हे सोम ! जल को आनन्ददायक करो। हमको अपत्ययुक्त धन प्रदान करो। स्तुति करने वालों की आयु-वृद्धि करो और हमारे यज्ञ में शीघ्र आगमन करो ॥५॥

सूक्त ९४

(ऋषिः—कण्वः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥१॥
द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।

दाय: पिन्वाना. स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ।।२

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय राय. पुरुभूषु नव्यः ।।३

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ।।४

इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुपहा तानि तुभ्यं पवमान वाधसे सोम शत्रून् ।।५।४

सूर्य के समान सोम को रश्मियों के उन्नत होने पर अश्व के समान सुसज्जित करते हैं। उस समय परस्पर स्पर्धा करने वाली अंगुलियाँ सोम को संस्कृत करती हैं। जैसे गौओं का पालक उनकी सेवा के लिए गोष्ठ में गमन करता है, वैसे ही जल में मिश्रित हुए सोम कलश में गमन करते हैं ।।१।। यह सोम जल के धारण करने वाले अन्तरिक्ष को अपने तेज से ढकते हैं। इनके लिए सब लोक विस्तारमय हों। दूध देने वाली गौओं के गोष्ठ में शब्द करने के समान यज्ञ की साधन रूपिणी स्तुतियाँ सोम की स्तुति करते हैं ।।२।। स्तोत्रों की ओर गमन करते हुए सोम वीर-पुरुषों के स्थान में घूमते हैं और देवताओं के धनों को यजमान को प्राप्त कराते हैं। प्राप्त धन की वृद्धि और समृद्धि के निमित्त सोम का स्तव किया जाता है ।।३।। यह सोम स्तोताओं को अन्न और दीर्घायु देते हैं। सम्पत्ति-दान के लिए यह अपनी किरणों से प्रकट होते हैं। सोम के प्रभाव से संग्राम में जय अवश्यम्भावी होती है। इनसे धन पाकर स्तुति करने वालों ने स्थिरता प्राप्त की थी ।।४।। हे सोम ! इस ज्योति को बढ़ाओ। हमको गौ-अश्व आदि पशु तथा अन्न और धन प्रदान करो। तुम इन्द्र को तृप्त करके सब राक्षसों का पराभव करने वाले हो। अतः हमारे इन शत्रुओं का भी संहार करो ।।५।।

सूक्त ९५

(ऋषि— प्रस्कण्वः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द— त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१॥

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२॥

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥३॥

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४०॥

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥५

यह हरे रंग के सोम निष्पीड़ित होने पर शब्द करते हैं और शुद्ध होकर कलश में जाते हैं। मनुष्यों द्वारा शोधे जाते हुए सोम दुग्धादि में मिलकर अपने यथार्थ रूप को पाते हैं। हे स्तोताओ! ऐसे इन सोम के लिए स्तुतियों का आविर्भाव करो ॥ १ ॥ मल्लाह नाव को चलाता है उसी प्रकार यह सोम यज्ञ में यथार्थ वचन रूप स्तुतियों का प्रेरण करते हैं। यह उज्वल सोम इन्द्रादि देवताओं के छिपे हुए शरीरों को श्रेष्ठ स्तोताओं के निमित्त आविर्भूत करते हैं ॥२॥ शीघ्र स्तोत्र करने वाले स्तोता जल की लहरों के समान मनस्विनी स्तुतियों को तरंगित करते हैं। तब वे सोम की कामना करने वाली तथा सोम का पूजन करने वाली स्तुतियाँ सोम को प्राप्त होती हैं ॥३॥ सोम के शोधनकर्त्ता ऋत्विज ऊँचे स्थान में स्थित उन काम्यवर्षी सोम का भैंस के समान दोहन करते हैं और इन इच्छा किये हुए सोम की मनस्विनी स्तुतियाँ सेवा करती हैं। यह सोम तीनों सवनों में रहने वाले और शत्रुओं के नाशक हैं। अन्तरिक्ष इन्हें धारण

करता है ॥४॥ हे सोम ! स्तोत्रों का प्रेरक जैसे होता कर्म के लिए प्रेरित करता है, वैसे ही तुम स्तोता को यशस्वी बनाने के लिए उसकी बुद्धि को धन देने के लिए प्रेरित करो। तुम्हारे इन्द्र के साथ होने पर हम स्तोता सुन्दर अपत्ययुक्त धनों को और सौभाग्य को प्राप्त करें ॥५॥

सूक्त ९६

(ऋषि—प्रतर्दनो दैवोदासि। देवता—पवमान: सोमः। छन्द—त्रिष्टुप)

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथाना गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ।।१॥
समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ।।२॥
स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ।।३।।
अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ।।४।।
सोम: पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ।।५।६

शत्रुओं की गौओं को प्राप्त करने की कामना करते हुए सोम सेनापति के समान रणक्षेत्र में अग्रगन्ता होते हैं। उस समय सोमपक्षीय सेना उत्साहित होती है। इन्द्र के आह्वान को मंगलकारी करते हुए सोम मित्र रूप यजमानों के निमित्त गव्यादि को ग्रहण कर इन्द्र को शीघ्र बुलाते हैं ॥१॥ हरे वर्ण वाले सोम को अंगुलियाँ निष्पन्न करती हैं। यह सोम रथ रूप छन्ने पर आरूढ होते हैं और उससे शुद्ध होकर सुन्दर स्तोत्र वाले स्तोता को प्राप्त होते हैं ॥२॥ हे सोम ! तुम इन्द्र के लिए सुखकर पेय हो। तुम हमारे इस देव-काम्य यज्ञ में इन्द्र के पीने के लिए ही क्षरतो। तुम जल के कारण रूप और आकाश-पृथिवी को भी सींचने वाले हो। तुम विस्तृत अन्तरिक्ष से आकर संस्कार को प्राप्त हुए हो।

हमको सुन्दर धन आदि दो ॥३॥ हे सोम ! हम पराजित न हों इसलिए तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो । मेरे सब मित्र स्तोता तुम्हारी रक्षा कामना करते हैं । हे सोम ! मैं भी तुम्हारी रक्षा माँगता हूँ ॥४॥ यह क्षरणशील सोम आकाश, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु को भी उत्पन्न करने वाले हो ॥५॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥
प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥
स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८॥
परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥
स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्यराजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥७

शब्दायमान सोम छन्ने को लाँघते हैं । यह सोम देवताओं की स्तुति करने वाले ऋत्विजों के ब्रह्मा, ज्ञानियों के ऋषि, कवियों के शब्द-प्रणेता, पक्षियों के स्वामी और वन्य पशुओं के प्रभु तथा आयुधों में श्रेष्ठ आयुध हैं ॥६॥ लहरों वाली नदी के समान यह क्षरणशील सोम स्तुति-वाक्यों को प्रेरित करते । गौओं को जानने वाले और अभीष्ट-वर्षक सोम छिपी हुई वस्तुओं को देखते हैं । यह सोम बलवानों को रोकने योग्य बलों के आश्रित रहते हैं । हे सोम ! तुम शत्रुओं के नाशक, असीम जल वाले और हर्षकारी हो । तुम शत्रुओं के बल को जीतो और गौओं को प्रेरित करते हुए अपनी किरणों को इन्द्र की सेवा में भेजो ॥ ८ ॥ इन रमणीय और हर्षप्रद सोम के पास देवगण गमन करते हैं । रथचक्र में जाने वाले बलवान अश्व के समान अनेक धाराओं वाले पवमान सोम

इन्द्र को आनन्दित करने के लिए द्रोण-कलश में गमन करते हैं ॥ ९ ॥ यह सोम धनों के स्वामी, शत्रुओं से रक्षा करने वाले और सब प्राणियों के अधिपति हैं । यह शुद्ध होकर यजमान को श्रेष्ठ कर्म-मार्ग का उपदेश करते हैं ॥१०॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधींरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥
यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥
पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३॥
वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥१४॥
एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥८

हे सोम ! कर्मों में चतुर हमारे पूर्व पुरुषों ने तुम्हारे सहयोग से ही यज्ञादि कर्म किये थे । तुम गतिमान अश्वों को शत्रु-हनन कर्म में प्रेरित करते हो । हे सोम ! तुम इन्द्ररूप से हमको धन प्रदान करो और असुरों को हमसे दूर करो ॥११॥ तुमने जैसे राजर्षि मनु के लिए अन्न धारण किया था, और शत्रुओं को मारा था । जैसे तुम उनको धन दान के लिए आए थे, वैसे ही हे सोम ! हमको भी धन प्रदान करने के लिए इन्द्र के उदर में प्रविष्ट होओ ॥१२॥ हे सोम ! तुम यथार्थ यज्ञकर्ता हो । तुम्हारा रस हर्ष प्रदायक है । तुम जल में मिलकर छन्ने से छनो । तुम इन्द्र के पीने के योग्य होकर द्रोण-कलश में स्थित होओ ॥१३॥ हे सोम ! तुम यज्ञकर्त्ता यजमानों को विभिन्न ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले हो । अन्न की कामना से तुम अनेक धाराओं सहित गिरते हो । तुम आकाश से वरसो और दुग्धादि से मिश्रित होकर द्रोण कलश के आश्रित होते हुए हमारी आयु की वृद्धि करो ॥१४॥

वेगवान् अश्व के समान यह सोम शत्रुओं को लाँघते हैं। स्तोत्रों द्वारा यह परिमार्जित होते हैं। ये गो दुग्ध के समान पवित्र और विस्तृत घर के समान आश्रय-स्थान हैं। चाबुक द्वारा नियंत्रित अश्व के समान यह स्तोत्रों से नियंत्रित होते हैं ॥ १५ ॥ [८]

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥
ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥
मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥२०॥ १ ॥

ऋत्विजों द्वारा संस्कृत तीक्ष्ण धारों वाले सोम अपने गूढ़ और तेजस्वी रूप को प्रकट करें। हे सोम ! हमको पशु और आयु प्रदान करो। तुम अश्व के समान-सर्वत्र गमनशील हो। हम अन्न की कामना वालों को अन्न प्रदान करो ॥ १६ ॥ सब के द्वारा कामना किये गए सोम को मरुद्गण बालक के समान संस्कृत करते हैं। वे वहनशील सोम को सहगणों से सजाते हैं। यह सोम स्तोत्रों के साथ शब्द करते हुए दशापवित्र के सूक्ष्म छिद्रों का अतिक्रम करते हैं ॥ १ ॥ आकाश में वास करने की इच्छा वाले सोम सर्वदृष्टा, स्तुत्य, वाक्य-विन्यासकर्त्ता ऋषियों के समान मनस्वी, सूर्य के संभक्त और पूजनीय हैं। यह यज्ञ में विराजमान और स्तुतियों से अलंकृत इन्द्र के प्रकट करने वाले हैं ॥ १८ ॥ अंतरिक्ष का सेवन करने वाले महिमावान् सोम आयुधों को धारण करते, जल को प्रेरित करते और पात्रों में अवस्थित होते हैं। यह प्रशंसनीय कर्म वाले सोम चन्द्रमा के चतुर्थ धाम का सेवन करते हैं

॥ ११ ॥ यह सोम पात्र में गमनशील, अभिषवण फलकों पर आश्रित, धन देने के लिए अश्व के समान वेगवान् और वृषभ के समान शब्द करने वाले हैं ॥ २० ॥   [९]

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्षं ।
क्रीलञ्चम्वो रा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१॥
प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२॥
अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रिया न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोम पुनान कलशेषु सत्ता ॥२३॥
आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीत पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४॥ १० ॥

हे सोम ! तुम ऋत्विजों द्वारा निष्पन्न होकर क्षरित होओ । तुम बारंबार शब्द करते हुए छन्ने को प्राप्त होओ । तुम्हारा हर्षप्रदायक रस इन्द्र को हर्षित करने वाला हो ॥ २१ ॥ शब्दवान सोम गायक श्रेष्ठ हैं । इनकी धाराओं को निर्मित किया जारहा है । यह गव्य युक्त होकर द्रोण कलश में क्षरित होरहे हैं । यह सोम स्तुतियों के समान गान करते हुए पात्रों को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ हे सोम ! तुम स्तुति करने वालों के द्वारा संस्कृत होने वाले और पात्रों में क्षरित होने वाले हो । तुम शत्रुओं का वध करते हुए आगमन करते हो । पक्षी के वृक्ष का आश्रय लेने के समान, शुद्ध सोम कलश का आश्रय लेते हैं ॥ २३ ॥ हे सोम ! जैसे माता अपने पुत्र के लिए दूध देती है, वैसे ही तुम्हारा सुन्दर धाराओं से युक्त तेज यजमानों के लिए धन का दोहन करता है । यह सोम हरे रंग के हैं और यज्ञ में लाए जाकर ऋत्विजों द्वारा वरण किये जाते हैं । देवताओं की कामना करने वाले यजमानों के यज्ञ में और वसतीवरी जलों में यह सोम बारंबार शब्द करते हैं ॥ २४ ॥ [१०]

सूक्त ९७

(ऋषिः—वसिष्ठः, इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठ, वृषगणो वासिष्ठः, मन्युर्वासिष्ठः,

उपमन्युर्वासिष्ठः, व्याघ्रपाद्वासिष्ठः, शक्तिर्वासिष्ठः, कर्णश्रुद्वासिष्ठः,
मृलीको वासिष्ठः; वसुक्रो वासिष्ठः, पराशरः शाक्त्यः, कुत्सः ।
देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्यैति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥
भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥
समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥ ४ ॥
इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ५ ॥११॥

यजमान के पशु सम्पन्न श्रेष्ठ यज्ञ मंडप में जैसे ऋत्विज् गमन करते हैं, वैसे ही निष्पन्न सोम शब्द करते हुए छन्ने की ओर जाते हैं। यह सोम सुवर्ण के द्वारा शुद्ध हुए अपने तरंग-युक्त सुमधुर रस को देवताओं के पास प्रेरित करते हैं ॥१॥ हे सोम ! तुम कल्याणकारी तेज के धारक, स्तोत्रों के प्रशंसक, चैतन्य और सब के देखने वाले हो। तुम इस यज्ञ मंडप में अभिषवण फलकों पर आश्रय लो ॥ २ ॥ यह सोम आनन्दप्रद, यशस्वी और पार्थिव हैं। यह छन्ने के द्वारा शुद्ध होते हैं। हे सोम ! तुम शुद्ध होकर शब्द करो और अपनी कल्याणकारिणी रक्षाओं द्वारा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥ हे स्तोताओं ! देवताओं की पूजा करते हुए उनकी सुन्दर स्तुति करो और अभीष्ट धन के लिए सोम को शुद्ध करो। यह सोम छन्ने में छनते और कलश में बैठते हैं ॥ ४ ॥ यज्ञ करने वालों के द्वारा प्रेरित सोम देवताओं से मित्रता करने के लिए कलश में गिरते और स्तुत होकर स्वर्ग में गमन करते हैं। यह अत्यंत

सुख, सौभाग्य और कल्याण के निमित्त इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥   [११]

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥
प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥
स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ १० ॥१२॥

हे सोम ! तुम स्तुतियाँ करने पर धन के निमित्त आगमन करो। तुम्हारा हर्ष प्रदायक रस संग्राम में सहायक होने के लिये इन्द्र के पास गमन करे। तुम हमारी रक्षा के लिए देवताओं के साथ एक ही रथ पर आरूढ़ होकर आगमन करो ॥ ६ ॥ उशना के समान स्तोत्र करने वाले ऋषि इस मंत्र के रचयिता हैं। वे इन्द्र की उत्पत्ति के ज्ञाता हैं। इन ऋषियों के मित्र पवित्रता कारक, अनेक कर्मों वाले सोम शब्द करते हुए पात्रों में गमन करते हैं ॥ ७ ॥ वृषगण नामक ऋषि शत्रुओं के बल से दूर कर शत्रु हिंसक सोम के लिए यज्ञ स्थान को प्राप्त हुए। यह पवमान सोम स्तुतियों के योग्य और दुर्धर्ष हैं। स्तोतागण इनके प्रति श्रेष्ठ वाद्यों के सहित स्तुतियों को गाते हैं ॥ ८ ॥ यह सोम बहु स्तुत, शीघ्रगन्ता, क्रीड़ाकुशल हैं। अन्य व्यक्ति इनकी समानता नहीं कर सकते। यह सोम अनेक प्रकार के तेजों से सम्पन्न हैं। अन्तरिक्षस्थ सोम दिन में हरे और रात्रि में शुभ्र प्रकाश वाले दिखाई देते हैं ॥ ९ ॥ असुरों के संहारक, पवमान, गमनशील, बली सोम इन्द्र के लिए बलकारी रस को प्रेरित करते हुए क्षरित होते हैं। यह बल के स्वामी सोम

वरणीय धनों के दाता और शत्रुओं का नाश करने वाले हैं ॥१०॥ [१२]

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥
अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन-रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥ १२ ॥
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥
रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ १४ ॥
एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥ १३

यह सोम पाषाणों द्वारा अभिषुत होकर अपनी हर्षप्रदायक धाराओं के द्वारा देवताओं को सींचते हैं। यह छन्ने के द्वारा क्षरित होते हैं। यह उज्वल सोम इन्द्र के आश्रय के निमित्त इन्द्र को हर्ष प्रदान करते हुए गिरते हैं ॥ ११ ॥ यह शोधित, क्रीड़ाशील, इन्द्रादि देवताओं के पूजक और प्रिय-कर्मा सोम जब क्षरित होते हैं तब दश अँगुलियाँ उन्हें छन्ने पर रखती हैं ॥ १२ ॥ वृषभ के समान शब्द करते हुए सोम आकाश-पृथिवी को व्याप्त करते हैं। रणक्षेत्र में भी सोम का शब्द इन्द्र के समान ही सुनाई पड़ता है। इनके उच्च स्वर के कारण सभी इनको जान लेते हैं ॥ १३ ॥ हे सोम ! तुम मधुर रस वाले, शब्दवान् और दूध से मिलने वाले हो । हे पवमान सोम ! तुम जल से सींचे जाकर शुद्ध होते हो और जब तुम्हारी धाराएं बढ़ती हैं तब तुम इन्द्र के प्रति गमन करते हो ॥ १४ ॥ हे सोम ! जल को रोकने वाले मेघ को अपने तीक्ष्ण आयुधों से खोलकर नीचे गिरने वाला करते हो। तुम इन्द्र के हर्ष के लिए क्षरित होओ । तुम हमारी गौओं के दूध की कामना वाले हो अतः शीघ्र क्षरित होओ ॥ १५ ॥ [१३]

जुष्टवी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।

घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥
वृष्टि नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥
ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥ १८ ॥
जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥ १९ ॥
अरश्मानो येऽरश्मा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ २० ॥१४

हे सोम ! तुम स्तुतियों से हर्षित होकर हमारे यज्ञ मार्ग को सुगम करते हुए द्रोण-कलश में गिरो। तुम अपनी धाराओं सहित छन्ने पर जाते हुए, दुष्ट शत्रुओं का तीक्ष्ण आयुध से हनन करो ॥ १६ ॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त सुख देने वाली, गमन शीला, आकाश में उत्पन्न, दान वाली वृष्टि करो और पृथिवी पर चलने वाले उसके पुत्र के समान वायु की खोज करते हुए आगमन करो ॥ १७ ॥ हे सोम ! जैसे गाँठ को खोलकर अलग करते हैं, वैसे ही मुझे पापों से मुक्त करो। तुम मुझे श्रेष्ठ बल वाला मार्ग बताओ। तुम अश्व के समान शब्द करने वाले गृह से युक्त और शत्रु हन्ता हो। अतः मेरे पास आगमन करो ॥ १८ ॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त हर्ष उत्पन्न करने वाले हो। तुम देवताओं की कामना वाले यज्ञ में धाराओं सहित आगमन करो। सुन्दर गन्ध, रूप गुण वाले होकर मनुष्यों के कर्म क्षेत्र में विचरण करते हुए प्रेरणा दो ॥ १९ ॥ जैसे छूटे हुए अश्व को रथ में बाँधकर शीघ्रता से गन्तव्य स्थान को जाते हैं, वैसे ही यज्ञ में संस्कृत सोम द्रोण-कलश की ओर शीघ्रता से गमन करते हैं। हे देवताओ ! सोम का पान करने के लिए उसका सामीप्य प्राप्त करो ॥ २० ॥ [१४]

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥ २१ ॥

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ २२ ॥
प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद् वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥ २३ ॥
पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥
अर्वां इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥ १५

हे सोम ! आकाश से हमारे यज्ञ में अपने रस की वर्षा करो । तुम हमको कामना के योग्य, समृद्ध और अपत्ययुक्त श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥२१॥ अन्तःकरण से जैसे ही इच्छित वचन निकलता है, वैसे ही यज्ञ के समय अत्यन्त चमत्कृत द्रव्य लाया जाता है। इस सोम रूप द्रव्य के प्रति गो-दुग्ध शीघ्र ही गमन करता है तब सोम कलश में आश्रित होते हैं । यह सोम सब के प्रिय और स्वामी के समान पूज्य हैं ॥ २२ ॥ दानियों के अभीष्टों के पालक, आकाश में उत्पन्न, सुन्दर बुद्धि वाले सोम अपने रस को इन्द्र के लिए क्षरित करते हैं । दशों अँगुलियाँ यथेष्ट सोमों को अभिषुत करती हैं । यह सोम सज्जन पुरुषों में बल धारण करते हैं ॥ २३ ॥ धनों के स्वामी, मनुष्य-द्रष्टा, निष्पन्न सोम देवताओं और मनुष्यों के हितैषी जलों के धारण-कर्त्ता हैं ॥ २४ ॥ हे सोम ! अश्व के संग्राम में गमन करने के समान तुम यजमानों के अन्न-लाभ के निमित्त इन्द्र और वायु के पान करने के लिए गमन करो । तुम हमको विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करो । हे संस्कृत सोम ! तुम हमारे लिए धन प्राप्त कराने वाले होओ ॥ २५ ॥ [१५]

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥२६॥
एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥ २८ ॥
शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २९ ॥
दिवो न सर्गा असस्रग्रमह्ना राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३०॥१९

सुन्दर बुद्धि वाले यह सोम देवताओं को तृप्त करने वाले यज्ञ सम्पन्न कर्त्ता, सब के लिए ग्रहणीय, होताओं के समान इन्द्रादि के स्तोता और अत्यन्त शक्तिशाली हैं । यह हमें अन्नयुक्त घर दें ॥ २६ ॥ हे सोम ! तुम स्तुत्य हो। देवता तुम्हारा पान करते हैं। इस देव-काम्य यज्ञ में देवताओं के पान के लिए ही क्षरित होओ। हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित होकर शत्रुओं को पराभूत करेंगे । संस्कारित होकर तुम इस आकाश-पृथिवी को हमारे लिए सुन्दर आश्रय वाली करो ॥ २७ ॥ हे सोम ! तुम शत्रुओं के लिए भयानक, मन से भी अधिक वेगवान् और ऋत्विजों द्वारा निपीड़ित एवं अश्व के समान शब्द करने वाले हो । तुम हमको सरल मार्ग बताकर कर्मों में लगाओ ॥ २८ ॥ हे सोम ! तुम देवताओं के निमित्त जन्म लेते हो। तुम्हें शोधन करने वाले ऋत्विज् तुम्हारी सैकड़ों धाराओं को शुद्ध करते हैं। हे सोम ! तुम अपने महान् धनों के आगे आगे चलते हो। आकाश में छिपे धनों को तुम हमारी ओर प्रेरित करो ॥ २९ ॥ सोम की धाराएँ भी सूर्य की रश्मियों के समान ही निर्मित की जाती हैं। जैसे कर्मवान् पुत्र पिता का पराभव नहीं करता, वैसे ही तुम इन प्राणियों को पराभूत मत करो, क्योंकि तुम इनके मित्र और स्वामी भी हो ॥३०॥ [१९]

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ३१ ॥
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥३२॥

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३॥
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३४॥
सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५॥१७

हे सोम ! जब तुम छन्ने को लाँघकर गमन करते हो, तब तुम्हारी धाराएं मधुर होती हैं। तुम गो दुग्ध के प्रति चरित होते और अपने पूजनीय तेज से आकाश को पूर्ण करते हो ॥ ३१ ॥ यह सोम यज्ञ-मार्ग पर गमन करते हुए बारम्बार शब्दायमान होते हैं। हे सोम ! तुम उज्ज्वल हो और विशिष्ट शोभा को प्राप्त हो रहे हो । तुम स्तुति करने वाले की मति को शब्दोच्चारण के लिए प्रेरित करते हुए इन्द्र के लिए गिरते हो ॥ ३२ ॥ हे सोम ! तुम इस देव-यज्ञ में अपनी धाराओं को चरित करते हुए कलश की ओर गमन करो। तुम आकाश में उत्पन्न हुए हो। तुम अपने शब्द के द्वारा सूर्य के तेज को प्राप्त होओ ॥ ३३ ॥ तीनों वेदों का स्तोता यजमान यज्ञ धारण करने वाला है और वह सोम की कल्याणकारिणी स्तुतियाँ करता है। सोम को अपने दूध में मिश्रित करने के लिए गौएं सोम के समीप गमन करती हैं ॥ ३४ ॥ विद्वान् स्तोता स्तुतियों से सोम का पूजन करते हैं। हर्षदात्री गौएं सोम की कामना करती हुई सोम को गोरस से सींचती हैं। वह सोम ऋत्विजों द्वारा पुष्ट किये जाते हैं । त्रिष्टुप् छन्दात्मक मंत्र भी इन सोमों से संयुक्त होते हैं ॥ ३५ ॥ [१७]

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३६ ॥
आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥
स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।

प्रिया चित्रस्य प्रियसास ऊती स तू धन कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥
स वर्धिता वर्धन. पूयमान. सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना न. पूर्वे पितर. पदज्ञा. स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९॥
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥४०॥१८

हे सोम ! शब्द करते हुए तुम पात्रों में सींचे जाकर कल्याण करने वाली रश्मियों के द्वारा हमारे स्तोत्रों को बढ़ाओ और महान् शब्द करते हुए इन्द्र के उदर में विश्राम लो । हे सोम ! हमारी स्तुतियों को सशक्त करो ॥ ३६ ॥ कल्याण हस्त ऋत्विज् इन परस्पर सुसंगत सोम का छनने से स्पर्श कराते हैं । यह जागरण शील सोम शुद्ध होकर चमसों को प्राप्त होते हैं ॥३७॥ आकाश पृथिवी को अपनी महिमा द्वारा व्याप्त करने वाले निष्पन्न सोम इन्द्र के पास गमन करते हैं । यह सोम अन्धकार का भी नाश करते हैं । इनकी मधुर धारा हमारा पालन करने वाली है । यह सोम हमको शीघ्र धन प्रदान करें ॥ ३८ ॥ यह सोम अभीष्ट वर्षक, देवों के बढ़ाने वाले, प्रवृद्ध और छनने में निष्पन्न हुए हैं । यह अपने तेज से हमारा पालन करें । सोम पीकर पणियों द्वारा चुराई हुई गौओं के मार्ग को जानते हुए हमारे पूर्वज अन्धेरे से ढके पर्वत को सोम के तेज से देखते हुए गौओं को प्राप्त कर सके ॥ ३९ ॥ यह सोम जल की वृष्टि करने वाले, लोकों के लिए जल धारण करने वाले अन्तरिक्ष को प्रजाओं को प्रकट करते हुए १ ब का अतिक्रमण करते हैं । कामनाओं के वर्षक यह सोम ऊँचे उठे हुए छनने पर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　[१८]

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमान ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥४२॥
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृध्रश्च ।

अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३॥
मध्वः सूद पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४॥
सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५॥ १८

जल के द्वारा उत्पन्न सोम देवताओं के आश्रित हुए, इन्होंने इन्द्र के लिए बल धारण किया और सूर्य को तेज प्रदान किया। इन सोम ने अनेकों प्रशंसनीय कर्म किये हैं ॥ ४१ ॥ हे सोम ! तुम शुद्ध होकर मित्रावरुण के लिए तृप्ति के साधन होते हो और मरुद्गण के बल को तथा इन्द्र के हर्ष को बढ़ाते हो। हे सोम ! तुम आकाश-पृथिवी को पुष्ट करो, हमारे धन और अन्न के लिए वायु को हर्षयुक्त करो और हमको धन प्रदान करो ॥ ४२ ॥ हे सोम ! तुम विघ्नों के नष्ट करने वाले हो । तुम हिंसाकारी असुरों को भी उनके कर्मों से रोकने में समर्थ हो। तुम अपने क्षरणशील रस को दूध से मिश्रित करते हुए पात्रगत होते हो। हे इन्द्र के सखा रूप सोम ! तुम हमारे भी सखा होओ ॥ ४३ ॥ हे सोम ! तुम अपने मधुमय कोष की वृष्टि करो। हमको काम्य अन्न और सुन्दर अपत्य प्रदान करो। शुद्ध होने पर तुम इन्द्र के लिए आनन्द देने वाले धनो और हमारे लिए अन्तरिक्ष के धनों को प्राप्त कराओ ॥ ४४ ॥ जैसे प्रवाहित नदी निम्नगामिनी होती है, उसी प्रकार सोम नीचे होकर कलश में गिरते हैं । जैसे वेगवान् घोड़ा लक्ष्य पर जाता है, वैसे ही निष्पन्न सोम गमन करता है । जल से मिश्रित होकर यह कलश में प्रविष्ट होता है ॥ ४५ ॥ [१८]

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥ ४६ ॥
एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥
नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।

अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८॥
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ ५० ॥ २०

हे सोम की कामना वाले इन्द्र ! वेग वाले श्रेष्ठ सोम तुम्हारे लिए चमसों में गिरते हैं । यह सब के देखने वाले, बलवान् सोम देवताओं की कामना करने वाले यजमानों की कामना पूर्ण करने में समर्थ किये गए हैं ॥ ४६ ॥ रस रूप धार से क्षरित होने वाले सोम शीत, ताप वर्षा के शमन-कर्त्ता यज्ञ को बनाते हैं । यही सोम जल में अवस्थान करते हुए स्तोत्रोच्चारक होता के समान शब्द करते हुए यज्ञ-स्थान में गमन करते हैं और यही अपने तेज से सब के धारक आकाश-पृथिवी को व्याप्त करते हैं ॥ ४७ ॥ हे कामना के योग्य सोम ! तुम हमारे यज्ञ में आकर वसतीवरी जलों में गिरो । तुम सब को प्रेरणा देने वाले, रथी, यात्रिक मधुर रस से पूर्ण एवं सुस्वादु हो। देवताओं के समान सत्य स्तुतियों से भी सम्पन्न हो ॥ ४८ ॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर वायु, मित्र और वरुण के समीप उनके पीने के लिए गमन करो । वेगवान् रथ पर आरूढ होने वाले सुकर्मा अश्विनीकुमारों तथा वज्रहस्त और कामनाओं के वर्षक इन्द्र के पास भी गमन करो ॥ ४९ ॥ हे सोम ! सुन्दर वस्त्रालंकारों सहित आगमन करो । निष्पन्न होकर हमारी प्रतिष्ठा के लिए स्वर्ण प्रदान करो । तुम हमको रथ के सहित अश्व दो और मधुर दुग्ध-दात्री सद्य प्रसूता सुन्दर गौ भी प्रदान करो ॥ ५० ॥ [२०]

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।

षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ ५३ ॥
महीमे अस्य वृषनाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ५४ ॥
सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ॥५५॥ २१

हे सोम ! तुम छनने से शुद्ध होकर हमको दिव्य और पार्थिव धन प्रदान करो । जमदग्नि के समान हमको उपभोग्य धन दो तथा धनोपार्जन के योग्य कर्म-बल भी हमें प्रदान करो ॥ ५१ ॥ हे सोम ! यजमानों के वसतीवरी जलों को प्राप्त होओ । अपनी निष्पन्न धारा से सब धनों की वर्षा करो । तुम्हारे पास वायु के समान वेग वाले सूर्य और इन्द्र भी गमन करते हैं, वे तुम्हारे द्वारा तृप्त होकर हमको पुत्र प्रदायक हों । हे सोम ! तुम भी मुझे सुन्दर कर्म वाला पुत्र प्राप्त कराओ ॥ ५२ ॥ हे सोम ! तुम सबके आश्रय-योग्य हो । तुम हमारे इस यज्ञ में अपनी धाराओं सहित बरसो । वृक्ष से फल पाने की इच्छा वाला पुरुष वृक्ष को कँपा कर फल प्राप्त करता है, उसी प्रकार सोम ने साठ सहस्र धनों को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए हमें प्रदान किया ॥ ५३ ॥ सोम के यह दो कर्म-वाणवृष्टि और शत्रुओं का पतन करना बहुत आनंद देने वाले हैं । घोड़ों के द्वारा युद्ध और द्वन्द्व युद्ध इन दोनों के द्वारा सोम ने शत्रुओं को मारा और उन्हें भगा दिया । हे सोम ! अयाज्ञिकों को और सब के प्रकार के शत्रुओं को यहाँ से भगाओ ॥ ५४ ॥ हे सोम ! तुम शुद्ध होकर दशापवित्र को प्राप्त होते हो । अग्नि, वायु और सूर्य इन तीनों ज्योतियों को तुम पाते हो । तुम दिये जाने योग्य धनों को देने वाले सब धनिकों से भी श्रेष्ठ धनी हो ॥ ५५ ॥ [२१]

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥५६॥
इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७॥

त्वया वय पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धु पृथिवी उत द्यौः
॥ ५८ ॥ २२ ॥

यह सोम सब संसार के स्वामी, विद्वान् और सब के जानने वाले हैं। यह अपने रसों को यज्ञ की ओर प्रेरित करते हुए छन्ने से निकलते हैं ॥२६॥ धन की कामना वाले स्तोता जैसे शब्द करते हैं, उसी प्रकार कर्मों के ज्ञाता ऋत्विज् दशों अँगुलियों द्वारा शब्दायमान सोम को शुद्ध करते हुए जल में मिलाते हैं। देवगण सोम की धारा के पास शब्द करते हुए उसके माधुर्य रूप रस का आस्वादन करते हैं ॥ २७ ॥ हे सोम ! छन्ने में शोधित हुए तुम हमको संग्राम में अनेक कर्म करने वाले बनाओ। पृथिवी, आकाश, समुद्र, मित्र, वरुण और अदिति आदि सब हमको धनयुक्त प्रतिष्ठा दें ॥ २८ ॥
[२२]

सूक्त ९८

(ऋषि.—अम्बरीष ऋजिश्वा च । देवता—पवमान सोम ।
छन्द —अनुष्टुप् बृहती)

अभि-नो वाजसातम रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्न विभ्वासहम् ॥१॥
परि ष्य सुवानो अव्यय रथे न वर्माव्यत ।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षा ॥२॥
परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युत ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययु ॥३॥
स हि त्व देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्दो सहस्रिण रयि शतात्मान विवाससि ॥४॥
वय ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्व पुरुस्पृह ।
नि नेदिष्ठतमा इष स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५॥

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥६॥ २३ ॥

हे सोम ! तुम विभिन्न पुष्टियों से सम्पन्न, बहुतों द्वारा कामना किये जाने वाला, यश से सम्पन्न, अत्यंत पराक्रमी को भी पछाड़ने वाला बलशाली पुत्र प्रदान करो ॥ १ ॥ जैसे रथारूढ़ वीर कवच धारण करता है, वैसे ही छन्ने पर क्षरित होने वाला सोम दूध से आच्छादित होता है। काठ के पात्र से चलते हुए सोम धारा रूप में गिरते हैं ॥ २ ॥ संस्कारित सोम देवताओं की प्रेरणा से हर्ष के निमित्त छन्ने पर गिरते हैं। सुन्दर तेज के सहित सोम दुग्धादि की कामना करते हुए धारा के रूप में गमन करने वाले होते हुए अन्तरिक्ष में पहुँचते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुमने अनेक उपासकों और हविर्दाता यजमानों को धन प्रदान किया है और मुझे भी तुम बहु संख्यक पुत्रादि से युक्त सुन्दर धन देते हो ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम हमारे हो। तुम शत्रु का नाश करने में समर्थ हो। अनेकों द्वारा कामना किये गए और तुम्हारे द्वारा दिये गए श्रेष्ठ धन और अन्न हमारे पास हों। हे ऐश्वर्य रूप सोम ! हम कल्याण से सुसंगति करें ॥ ५ ॥ जिन सोमों को कल्याणकारिणी भगिनी रूपा दश अँगुलियाँ पाषाणों से अभिषुत करतीं और सुन्दर धाराओं वाले उस सोम को वसतीवरी में मिलाती हुई सेवा करती हैं, वह सोम यजमान द्वारा निष्पन्न किये जाते हैं ॥ ६ ॥　　[२३]

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥
अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्ण हर्यतः ॥ ८ ॥
स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥
ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११॥
तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥ २४ ॥

सब के द्वारा कामना किये गए सोम दशापवित्र द्वारा शोधित होते हैं। यह सोम-अपने हर्षयुक्त और हृष्टिमद रस के सहित सब देवताओं की ओर गमन करते हैं ॥ ७ ॥ हे स्तोताओ ! तुम बल के साधन रूप सोम-रस को पीकर रक्षित होओ, क्योंकि सब के द्वारा कामना किये गए यह सोम स्तोताओं को यथेष्ट धन प्रदान करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥ उच्च शब्द से गुंजारित यज्ञ में ऋत्विजों ने सोम को निष्पीडित किया। हे मनुजा द्यावा पृथिवी ! पर्वत पर निवास करने वाले सोम ने ही तुम दोनों को पूर्ण किया है ॥ ९ ॥ हे सोम ! तुम वृत्र-हन्ता इन्द्र के पीने के लिए कलशों में सींचे जाते हो और देवताओं को हवि देने की इच्छा वाले तथा ऋत्विजों दक्षिणा देने वाले यजमान तुम्हें यथेष्ट फल के लिए सींचते हैं ॥ १० ॥ नित्य प्रति प्रातः सवन में यह पुरातन कालीन सोम छन्ने पर गिरते हैं। उन प्रातः समय अभिषुत होने वाले सोम को देखते ही दुरश्चित् नामक दस्यु गल गये अथवा कहीं जाकर छिप गये ॥ ११ ॥ हे मित्रो ! इस सुन्दर गन्ध वाले, अत्यंत हृष्टिमद सोम का हम तुम पान करें और उस बलकारी सोम की शरण को प्राप्त हों ॥ १२ ॥ [२४]

सूक्त ६६

(ऋषि-रेभसूनू काश्यपौ । देवता-पवमानः सोमः । छन्द:—बृहती,अनुष्टुप्)

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रा वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥१॥
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥४॥

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्ताय आ शासते मनीषिणः ॥५।२५

शत्रुओं के धर्षक, सब के द्वारा कामना किये गए सोम के निमित्त बल प्रकट करने वाले धनुष पर प्रत्यंचा को चढ़ाते हैं। पूजा की इच्छा वाले ऋत्विज् विद्वान् देवताओं के सामने श्वेत वर्ण वाले छन्ने को विस्तृत करते हैं ॥१॥ यजमान की कर्मों में लगी हुई अँगुलियाँ सोम को कलश में गमन करने की प्रेरणा करती हैं तब यह सोम यज्ञों में पहुँचते हैं। यह सोम जल से सुशोभित होकर अन्नों की ओर गमन करने वाले होते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र द्वारा पान किये जाने वाले रस को हम अलंकृत करते हैं। गमनशील स्तोता पूर्वकाल में और अब भी यज्ञ में सोम-रस का पान करते हैं ॥ ३ ॥ प्राचीन स्तोत्रों का उच्चारण करने वाले स्तोता उन निष्पन्न सोमों की स्तुति करते हैं। अँगुलियाँ भी देवताओं को सोमरूप हविर्याँ प्रदानकारती हैं ॥४॥ सबको धारण करने वाले सोम को छन्ने पर शुद्ध करते हैं। उस जल-सिक्त सोम की दूत के समान ही स्तोतागण स्तुति करते हैं ॥५॥

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥७॥

सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥८।२६

अत्यन्त हर्ष प्रदायक सोम शुद्ध होकर चमसों पर बैठते और रस देते हैं। अभिषुत सोम हमारे कर्मों के ईश्वर हैं ॥६॥ देवताओं के लिए निष्पन्न होने वाले उज्वल सोम को ऋत्विज शुद्ध करते हैं। जब वे जल में स्नान करते हैं तब प्रजाओं को धन देने वाले माने जाते हैं ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम सर्वत्र बढ़ते हुए और शुद्ध होकर छन्ने पर लाये जाते हो। तुम अत्यन्त हर्ष प्रदायक होकर इन्द्र के निमित्त चमसों पर प्रतिष्ठित होते हो ॥ ८ ॥

सूक्त १००

(ऋषि—रेभसूनू काश्यपौ। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—अनुष्टुप्)

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१॥
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२॥
त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३॥
परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति।
रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसि ॥४॥
क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५॥२७

नवोढ़ा गौएं जैसे अपने बछड़े को चाटती हैं, उसी प्रकार इन्द्र के प्रिय और सबके द्वारा इच्छित सोम से जल मिलता है ॥१॥ हे सोम ! तुम तेजस्वी हो। दिव्य और पार्थिव धनों को हमें प्राप्त कराओ। यजमान के गृह में निवास करते हुए तुम उसके समस्त धनों का पालन करते हो ॥२॥ हे सोम ! मेघ जैसे जल-वृष्टि को प्रेरित करता है, वैसे ही तुम अपनी धारा का प्रेरण करो। तुम दिव्य और पार्थिव धनों को देने वाले हो ॥ ३ ॥

संग्राम में जैसे शत्रु को जीतने वाले वीर पुरुष का अश्व स्वच्छन्द दौड़ता है, वैसे ही हे सोम ! तुम्हारी वेगवती धाराएं छन्ने पर दौड़ती हैं ॥४॥ हे सोम ! तुम इन्द्र, मित्र और वरुण के लिए निष्पन्न हुए हो। तुम हमारे लिए ज्ञान और बल देने वाले होते हुए प्रवाहित होओ ॥५॥

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥
त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥७॥
पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८॥
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना । ९।२८

हे सोम ! तुम निष्पीड़ित होकर अन्नदान के लिए अपनी उज्वल धाराओं सहित क्षरित होओ। तुम इन्द्र, विष्णु और अन्य देवताओं के लिए मधुर हर्ष प्रदायक होओ ॥६॥ हे सोम ! गौओं द्वारा बछड़ों को चाटने के समान, हवि वाले यज्ञ में जल तुम्हें चाटता है ॥७॥ हे सोम ! तुम अपनी विविध रश्मियों के सहित अंतरिक्ष में गमन करते हो। तुम यजमान के घर में रह कर सब अन्धकारों को मिटाते हो ॥८॥ हे सोम ! तुम महान् कर्मा हो। तुम अपनी महिमा से कवच रूप होकर आकाश-पृथिवी के धारण करने वाले होते हो ॥९॥

सूक्त १०१

(ऋषिः—अन्धीगुः, श्यावाश्वि, ययातिर्नाहुषः, नहुषो मानवः, मनुःसांवरणः, प्रजापतिः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—अनुष्टुप्, गायत्री)

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टनसखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२

तं दुरोषमभी नरः सोम विश्वाच्या धिया । यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः । ३
सासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिन. ।
पवित्रवतो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५।१

हे मित्रो ! आगे स्थित भक्षण के योग्य सोम के पवित्र और हर्ष प्रदायक रस के लिए लम्बी जीभ वाले प्राणी को यहाँ से दूर भगाओ ॥ १ ॥ वेगवान् अश्व के समान यह सोम अपनी पापनाशिनी धारा के सहित सब ओर गमन करते हैं ॥२॥ अपनी सब कामनाओं को फलवती देखने के उद्देश्य से इस कामना योग्य सोम को ऋत्विग्गण निष्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥ यह हर्षकारी और निष्पन्न सोम छन्ने से छनते हुए इन्द्र के लिए पात्रों में जाते हैं। हे सोम ! तुम्हारा हर्षकारी रस इन्द्र आदि देवताओं के पास गमन करे ॥४॥ इन्द्र के लिए सोम क्षरित होते हैं। यह सोम शब्द करने वाले, अपने बल से ही जगत के स्वामी और स्तोत्रों के रक्षक हैं। यह अतिथियों द्वारा पूजे जाने की इच्छा करते हैं ॥५॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥७॥
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥८॥
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥९॥
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१०।२

यह सोम अनेक धाराओं के रूप में क्षरित होते हैं। यह स्तोत्र-प्रेरक; धन के स्वामी और इन्द्र के सखा सोमरस को सींचते हैं ॥६॥ यह सोम पुष्टिकर, काम्य और धन के कारण रूप हैं। यह शुद्ध होकर क्षरित होते और अपने तेज से आकाश पृथिवी को प्रकाश देते हैं ॥ ७ ॥ शुद्ध सोम पुष्टि के मार्ग पर जा रहे हैं और गौएं उनके प्रति प्रिय शब्द कर रही हैं ॥८॥ हे सोम ! तुम्हारा रस ओज और चमत्कारिक गुणों से युक्त है। वह पाँचों वर्णों को प्राप्त होने वाला है। उस रस के द्वारा हम धन पावें। तुम अपने रस को क्षरित करो ॥९॥ यह सोम देवताओं के मित्र, पाप रहित, सुन्दर, सर्वज्ञ हैं। अभिषुत होने वाले यह हमारे लिए ही आये हैं ॥१०

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥११॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२॥

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१३॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥१४॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥१५॥

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६।३

यह सोम भारी पाषाणों द्वारा निष्पन्न होकर शब्द करते और धन-प्रापक बनते हैं ॥११॥ यह सोम छन्ने में शुद्ध होकर दही में मिलकर गमनशील जल मे युक्त होकर उज्वल पात्रों में बैठते हैं ॥१२॥ निष्पन्न

होते हुए सोम का शब्द कर्मों में विघ्न उपस्थित करने वाले कुत्ते को नष्ट करें। हे स्तोताओ! जैसे भृगुवंशी ऋषियों ने मख नामक पुरुष को प्राचीन-काल में मारा था, वैसे ही तुम उस दुष्ट स्वान को हिंसित करो ॥ १३ ॥ माता पिता की रक्षाओं से अरक्षित पुत्र जैसे उनके हाथों में आ पड़ता है, वैसे ही यह सोम छन्ने में गिर पड़ते हैं और फिर कलश में जाते हैं ॥ १४ ॥ ये बल को सिद्ध करने वाले सोम सशक्त हैं। यह अपने तेज से आकाश-पृथिवी को ढकते हैं। जैसे यजमान के घर में ब्रह्मा जाता है, वैसे ही हरे रंग वाले सोम अपने आश्रयभूत कलश में जाते हैं ॥ १५ ॥ यह छन्ने से कलश को प्राप्त होते हैं। काम-नाओं के वर्षक, हरे रंग के यह सोम शब्द करते हुए इन्द्र के पवित्र स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ [३]

सूक्त १०२

(ऋषि—त्रित। देवता—पवमान सोम। छन्द—उष्णिक्)

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥
उप त्रितस्य पाष्यो रभक्त यद् गुहापदम्।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम्।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥
जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥
अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥ ४

यज्ञ करने वाले, जल के पुत्र सोम अपने यज्ञ धारण करने वाले रस से हव्य को व्याप्त करते हैं। यह सोम आकाश पृथिवी के मध्य, अन्तरिक्ष में निवास करते हैं ॥ १ ॥ यह सोम त्रित के यज्ञ में अभिषव को प्राप्त हुए। इन सोम की गायत्री आदि छन्दों के द्वारा ऋत्विगगण स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

हे सोम ! तुम त्रित के तीनों यज्ञ सवनों में प्रेरित होओ । मेधावी स्तोता इन्द्र को मिलाने वाली स्तुति करता है । अतः साम-गान के होने पर इन्द्र को यहाँ लाओ ॥ ३ ॥ यह सोम कर्म के धारण करने वाले हैं । यजमानों को ऐश्वर्यवान् बनाने के लिए सात छन्द इनकी प्रशंसा करते हैं । यह सोम धर्मों के जानने वाले हैं ॥ ४ ॥ सभी देवता समान मति वाले होकर सोम-कर्म की कामना करते हैं । यह देवता हर्षदाता सोम का सेवन करते हैं ॥५॥ [४]

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् ।

कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा ।

तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः ।

हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥ ५

यज्ञ के बढ़ाने वाले वसतीवरी जल ने यज्ञ स्थान में सोम को दर्शन के लिए प्रकट किया । यह सोम बहुतों द्वारा चाहने योग्य, पूजनीय और सब को कल्याण प्रदान करने वाले हैं ॥ ६ ॥ यज्ञकर्त्ता ऋत्विज् आदि सोम को जल में मिश्रित करते हैं । समान मन वाली; सत्य रूप एवम् महिमा-मयी द्यावापृथिवी के पास सोम स्वयं आते हैं ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम अपने तेज से आकाश के अन्धकार को मिटाओ । तुम अहिंसित यज्ञ स्थान में अपने सत्य के धारण करने वाले श्रेष्ठ रस को सींचते हो ॥ ८ ॥ [५]

सूक्त १०३

(ऋषि—द्वित आप्त्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—उष्णिक्)

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् ।

भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।

त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति ।

अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत । ३ ॥
परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः ।
सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥
परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् ।
पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥
परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥ ६

हे मित्र ! तुम इस निष्पन्न और कर्म विधायक सोम के लिए श्रेष्ठ और प्रसन्न करने वाली स्तुतियाँ करो ॥ १ ॥ यह हरे रंग के सोम गोदुग्ध से मिलकर छन्ने में गमन करते हैं । निष्पन्न होकर यह अपने लिए तीन स्थानों के आश्रित करते हैं ॥ २ ॥ यह सोम जब अपने रस को छन्ने से क्षरित करते हैं, तब सातों छंद सोम का स्तोत्र करते हैं ॥ ३ ॥ यह स्तुतियों को बढ़ाने वाले हरे रंग के शुद्ध सोम छन्ने पर जाते हैं और निष्पीड़ित होने पर सब देवता सोम के पास गमन करते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम रथारूढ़ होकर इन्द्र के समान ही देव सेना में पहुँचो । यह सोम ऋत्विजों द्वारा निष्पादित होने पर स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥ घोड़े के समान युद्ध की इच्छा करते हुए यह सोम पात्रों में स्थित अपने तेज के सहित सब ओर गमन करते हैं ॥ ६ ॥ [६]

सूक्त १०४

(ऋषि—पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—उष्णिक्)

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।

यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥ ३ ॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।

गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।

सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

सनेमि कृध्य स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् ।

अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥ ७

ऋत्विजो ! इस निष्पीड़ित हुए सोम का यश-गान करो। इसे यज्ञ के हव्यादि पदार्थों से, माता पिता द्वारा शिशु को अलंकृत करने के समान ही सजाओ ॥ १ ॥ ऋत्विजो ! इन गृह-साधक, हर्षकारक, देव-पालक और बली सोम को, बछड़े को गौ से मिलाने के समान ही जल से मिश्रित करो ॥ २ ॥ इस बलदाता सोम को शुद्ध करो। मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं के पीने के लिए यह सोम मधुर और कल्याणकारी हुए हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम धन देने वाले हो। हमारी वाणी तुम्हारी स्तुति करती है। तुम्हारे रस से हम इस गोदुग्ध को आच्छादित करते हैं ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम तेजस्वी रूप वाले और आनन्द के अधिपति हो। तुम मित्र के समान यथार्थ मार्ग बताने वाले हो ॥ ५ ॥ हे सोम ! तुम हमारे मित्र होओ। मायावी और दुष्ट राक्षसों को मारते हुए हमारे पापों को भी दूर करो ॥ ६ ॥ [७]

सूक्त १०५

(ऋषि—पर्वतनारदौ । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—उष्णिक्)

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥

सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।

देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।

अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुत: सुदक्ष धन्व ।

शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।

सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् ।

साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥ ८

हे ऋत्विजो ! देवताओं के हर्ष के निमित्त सोम का स्तव करो। जैसे माता-पिता अपने बालक को सुसज्जित करते हैं, वैसे ही गव्यादि से सोम को सजाया जाता है ॥ १ ॥ यह सोम स्तुतियों से सजाये जाकर हर्षकारी और सेना की रक्षा करने वाले हैं। जैसे गौ से बछड़े को मिलाते हैं, वैसे ही सोम को जल से मिलाते हैं ॥ २ ॥ बल के साधक सोम देवताओं के हर्षार्थ अत्यन्त मधुर और वेग वाले होते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम श्रेष्ठ बल से सम्पन्न हो। निष्पन्न होकर यज्ञ को सम्पन्न कराने वाला गवादि युक्त धन प्राप्त कराओ। मैं तुम्हारे रस को दुग्धादि से मिश्रित करता हूँ ॥४॥ हे सोम ! तुम हरित वर्ण के हो। तुम्हें ऋत्विगण धर्म में वर्जित करते हैं। हे पशुओं के अधीश्वर दीप्त सोम ! तुम हमारे लिए प्रकाशित किरणों से युक्त हो ॥५॥ हे सोम ! प्राचीन ऋषियों के समान हो तुम हमारे भी सखा होओ। देवताओं के विद्वेषी एवं भक्षक राक्षसों को हमसे दूर भगाओ। तुम हमारे कार्यों में विघ्न डालने वाले शत्रुओं को ललकारो। भीतरी और प्रत्यक्ष मायाओं वाले असुरों को यहाँ से दूर भगाओ ॥ ६ ॥

सूक्त १०६

(ऋषि:—अग्निश्चाक्षुषः, चक्षुर्मानवः, मनुराप्सवः। देवता—पवमानःसोमः। छन्दः—उष्णिक् ।) [८]

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय वृषणं मद पवस्व विश्वदर्शनः ।
सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः॥५॥ ६

यह सोम सबके जानने वाले, पात्रों में गिरने वाले, शुद्ध होने वाले और कामनाओं के वर्षक हैं। ऐसे गुण वाले सोम इन्द्र की ओर गमन करें ॥ १ ॥ यह सोम संसार के सब प्राणियों के समान ही इन्द्र को जानते हैं और इन्द्र के लिए ही चरित होते हैं ॥ २ ॥ सोम के हर्ष से उत्साहित होकर इन्द्र सबके द्वारा कामना किए गए धनुष को धारण करते हैं। यह इन्द्र अन्तरिक्ष में अहि को जीतने वाले हैं। यह अपने वर्षणशील वज्र को धारण करते हैं ॥ ३ ॥ हे चैतन्य सोम ! तुम इन्द्र के लिए पात्रों में गिरो। हे सर्वज्ञ और पवमान सोम ! तुम शत्रु से बचाने वाले बल के सहित यहाँ आगमन करो॥४॥ हे सर्वदर्शन सोम ! तुम अपने वृष्टि के कारण रूप मद के सहित इन्द्र के लिए चरित होओ। तुम यजमानों के लिए श्रेष्ठ मार्ग बनाने वाले हो ॥ ५ ॥ [६]

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः ।
सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥१०

हे सोम ! तुम देवताओं के आने पर शब्द करते हो । तुम अपने मधुर रस के सहित कलश को प्राप्त होते हुए हमारे लिए सरल मार्ग के दिखाने वाले होओ ॥ ६ ॥ हे सोम ! तुम देवताओं के सेवन के लिए अपनी बलवती और मधुर धाराओं के रूप में क्षरित होओ । तुम अपने अत्यन्त हर्षकारी रस के सहित कलश में प्रतिष्ठित होओ ॥ ७ ॥ हे सोम ! इन्द्रादि देवता अमृतत्व की प्राप्ति के लिए तुम्हारा पान करते हैं । जल से मिश्रित और प्रवाहित तुम्हारा रस इन्द्र की वृद्धि का कारण होता है ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम पृथिवी पर जल वृष्टि करने में समर्थ हो । निष्पन्न होने पर तुम हमारे लिए ऐश्वर्य लाने वाले होओ ॥ ९ ॥ यह सोम स्तोत्र के आगे शब्द करते हुए छन्ने के द्वारा क्षरित होते हैं ॥ १० ॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
[१०]
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥
असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥
पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥
अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥ ११

यह सोम जल में क्रीड़ा करते हुए छन्ने का अतिक्रमण करते हैं । स्तोता इन्हें अपनी स्तुतियों से बढ़ाते हैं । स्तोत्र स्वयं ही इन प्रशंसनीय सोम की स्तुति करते हैं ॥ ११ ॥ घोड़े को जैसे युद्ध के लिए सजाते हैं, वैसे अन्न की कामना वाले सोम को ही कलश में अलंकृत करते हैं । ...

सोम शब्द करते हुए पात्रों में क्षरित होते हैं ॥ १२ ॥ यह हरे रंग के सोम सरल गति से वाधक छन्ने को पार करते हैं। यह सोम, स्तुति करने वाले को अश्वादि से सम्पन्न कीर्ति प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥ हे सोम ! तुम देवताओं की कामना करते हुए धारा रूप से गिरो। तुम्हारी धाराएं हर्ष प्रदायक होती हैं। यह सोम शब्द करते हुए छन्ने के चारों ओर जाते हैं ॥१४॥[११]

सूक्त १०७

(ऋषि:—सप्तर्षयः। देवता—पवमानःसोमः। छन्द:—बृहती,गायत्री पंक्ति)

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥
परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥ १२

देवताओं के लिए श्रेष्ठ हव्य सोम ! मनुष्यों के हित करने वाले हैं कर अन्तरिक्ष में गमन करते हैं। ऋत्विजों ने उन्हें पाषाणों द्वारा शोधित किया। हे ऋत्विजो ! उन सोमों को शुद्ध करते हुए तुम जल से सिंचित करो ॥१॥ हे सोम ! तुम छन्ने के द्वारा गिरो। हम तुम्हें संस्कृत करते हुए दुग्धादि तथा सत्तू से युक्त करते हुए तुम्हारे गुणयुक्त होने की कामना करते हैं ॥२॥ हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर देवताओं को तृप्त करने वाले और सब के दर्शन के निमित्त अपने तेज के सहित क्षरित होते हो ॥३॥ सोम ! तुम संस्कृत होकर रमणीवरी जल से युक्त किये जाते हो। फिर धारा रूप से क्षरित होकर यज्ञ-स्थान में सुशोभित होते हो। हे सोम !

रश्मियों और दीप्तियुक्त होते हो ॥४॥ यह प्रसन्नताप्रद सोम गो दुग्ध का दोहन करने वाले हैं। यह निष्पन्न होने के लिए ऋत्विजों द्वारा ग्रहण किए हुए तथा यज्ञ के स्तम्भ रूप हैं। यह यजमान को अन्न प्रदान करने के लिए गमन करते हैं ॥५॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥
सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥
सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ८ ॥
अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥
आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥ १३

हे सोम ! तुम शुद्ध होकर छन्ने पर गिरते हो। तुम विद्वान् और पितरों के भी अग्रगन्ता हो। तुम हमारे यज्ञ को मधुर रस से सींचो ॥६॥ यह सोम सब को मार्ग दिखाने वाले, कामनाओं की वर्षा करने वाले, सूक्ष्म दर्शक और पवमान हैं। हे सोम ! तुम देवताओं की अत्यन्त कामना करते हो और सूर्य को प्रकाशमान करते हो ॥७॥ यह सोम ऋत्विजों के द्वारा निष्पन्न होकर दशा पवित्र में पहुँचते हैं। यह अपनी हरे रंग की धाराओं सहित कलश में गमन करते हैं ॥८॥ नीचे रखे कलश में यह गोदुग्ध से मिलते हुए गिरते हैं। यह दुग्धादि के सहित प्रवाहमान सोम जल के समुद्र में जाने के समान अपने रस सहित द्रोण कलश में गमन करते हैं। यह सोम देवताओं के लिए शोधित किए जाते हैं ॥९॥ जैसे मनुष्य अपने घर में बैठता है, वैसे ही यह सोम कलश में बैठते हैं। पाषाणों द्वारा निर्मित होकर यह छन्ने से निकलते हुए कलश में स्थित होते हैं ॥१०॥

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११॥
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥
आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३॥
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४॥
तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५॥१४

अन्न की कामना वाले यह सोम सूक्ष्म छिद्रों वाले छन्ने से गिरते हैं। ऋत्विजों द्वारा शोधित किये जाने पर यह सोम विजयकांक्षी घोड़े को सजाये जाने के समान ही अलंकृत किये जाते हैं ॥११॥ हे सोम ! जैसे जल से समुद्र पूर्ण होता है, वैसे ही देवताओं के पीने के निमित्त तुम भी जल से पूर्ण किये जाते हो । तुम अपने मधुर रस के सहित द्रोण कलश को प्राप्त होते हो ॥१२॥ यह सोम पुत्र के समान संस्कारित किये जाने के योग्य हैं। यह श्वेत छन्ने को आच्छादित करते हैं । जैसे वीर पुरुष अपने रथ को रणभूमि में प्रेरित करते हैं, वैसे दशों अँगुलियाँ इन्हें जल में प्रेरित करती हैं ॥१३॥ अपने रस को यह सोम सब ओर प्रवाहित करते हैं ॥ १४ ॥ सत्यरूप यह सोम मित्रावरुण के पालनार्थ गमन करते हैं । यह शुद्ध होकर कलश में जाते हैं ॥१५॥१४

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६॥
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१७॥
पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसान: परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८॥
तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीरति तां इहि ॥१९॥
उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुनाइव पप्तिम ॥२०॥१५

यह सोम सूक्ष्मदर्शी, दिव्य और स्पृहणीय हैं तथा इन्द्र के लिए क्षरित होने वाले हैं ॥१६॥ यह अनेक धाराओं वाले सोम छन्ने से पार होते हैं। इन हर्षकारी सोम को ऋत्विग्गण शोधन करते हैं। यह सोम इन्द्र को सींचने वाले हैं ॥१७॥ यह सोम स्तुतियों के प्रकट करने वाले, शोधनीय, क्रान्तकर्मा और इन्द्रादि देवताओं के पास गमन करने वाले हैं। जल में मिश्रित और काष्ठपात्रों में स्थित सोम दुग्धादि से मिश्रित किये जाते हैं ॥१८॥ हे सोम ! मैं तुम्हारी प्रार्थना में लगा हूं। मै तुम्हारा मित्र हूँ। मेरे मार्ग में राक्षस विघ्न उपस्थित करते हैं, तुम उनका संहार करो ॥१९॥ हे सोम ! मैं तुम्हारे साख्य भाव की दिन-रात कामना करता रहता हूँ। हम तुम्हें सूर्य रूप से देखने की इच्छा किया करते हैं, जैसे चिड़ियायें सूर्य को लांघने की चेष्टा करते हैं, ॥२०॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१॥
मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२॥
पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥२३॥
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां वि प्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्र हिन्वन्ति धीतिभि॥२४॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥ २५ ॥
अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥२६॥१६

हे सोम ! तुम अन्तरिक्ष में शब्द करते हो। तुम अपने स्तोता मित्रों को बहुतों के लिए लाभकारक धन, पीले रंग का (सुवर्ण) धन प्रदान करो ॥२१॥ हे सोम ! तुम शुद्ध जल से मिलते हुए कलश में शब्द करते हो और दुग्ध से मिश्रित होते हुए अभिषवण स्थान को प्राप्त होते हो ॥२२॥ हे सोम ! तुम देवताओं के लिए हर्षकारी होकर क्षरते हो और सब स्तोताओं को देखते हुए अन्न प्राप्ति के लिए गिरते हो ॥ २३ ॥ हे सोम ! तुम दिव्य और पार्थिव पदार्थों के लाभ के निमित्त सिंचित होओ। तुम्हें मेधावी जन अपनी अँगुलियों और स्तुतियों के द्वारा प्रेरित करते हैं ॥२४॥ यह सोम गमनशील, मरुद्गण से सम्पन्न हैं। यह अन्न और स्तुतियों को देखते हुए मधुर धारा सहित छन्ने से छनते हुए संस्कृत होते हैं ॥२५॥ अभिषव करने वालों के द्वारा जल में मिलाए जाकर यह सोम कलश में गमन करते हैं। वह दुग्धादि को अपने रूप में मिलाकर स्तुति की कामना करने वाले होते हैं ॥२६॥ [१६]

सूक्त १०८

(ऋषिः—गौरिवीतिः, शक्तिः, ऋजिश्वा, ऊर्ध्वसद्मा, कृतयशाः, ऋणञ्चयः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—उष्णिक् बृहती, पंक्ति, गायत्री)

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥
त्वं ह्यङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयः ॥३॥

येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४॥
एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
कीळन्नूर्मिरपामिव ॥५।१७

हे सोम ! तुम अत्यन्त महान् और पुष्टदाता हो। इन्द्र के लिए हर्षप्रदायक और मधुर होकर गिरो ॥ १ ॥ हे कामनाओं के वर्षक सोम ! तुम्हारा पान करके इन्द्र श्रेष्ठ ज्ञानी होते और शत्रुओं के अन्न को उसी भाँति अतिक्रमण करते हुए त्यागते हैं, जिस भाँति युद्ध में जाने वाला अश्व शत्रु-सेनाओं का अतिक्रमण करता है ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम देवताओं को अमरत्व प्राप्त कराने वाले हो । तुम रूके प्रति शीघ्र शब्द करते हो ॥ ३ ॥ यज्ञानुष्ठान करने वाले अङ्गिराओं ने सोम के द्वारा जिन अपहृत गौओं के मार्ग का उद्-घाटन किया था मेधावी जनों ने उन गौओं को सोम के द्वारा ही पाया था । इन्द्रादि को सुख पहुँचाने वाले यज्ञ में जिन सोमों के द्वारा यजमानों ने कल्याणकारी अन्न को पाया था, वे सोम देवगण की अमरत्व प्राप्ति के लिए शब्द करते हैं ॥ ४ ॥ अतीव हर्षप्रदायक क्रीड़ाकारी सोम अपने धारा रूप से छन्ने में क्षरित होते हैं ॥ ५ ॥ [१०]

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥
सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः ।
वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥ १० ॥ १८

अन्तरिक्ष में स्थित मेघ से जिन सोम ने वृष्टि को प्रेरित किया था, वे सोम गौओं और घोड़ों को भी प्रेरित करते हैं। हे सोम तुम शत्रुओं का मर्दन करने वाले हो अतः दुष्ट राक्षसों का वध करो ॥ ६ ॥ हे ऋत्विजो ! सोम अन्तरिक्ष के जल का प्रेरण करने वाले और अश्व के समान वेगवान् हैं। तुम इन्हें निष्पन्न करते हुए स्तुति करो ॥ ७ ॥ जल के बढ़ाने वाले, कामनाओं की वृष्टि करने वाले यह सोम देवताओं को अत्यन्त प्रिय हैं। इन्हें अनेक धाराओं सहित सींचो । जल से उत्पन्न होने वाले यह सोम स्तुतियों के योग्य, दिव्य और जलों से ही प्रवृद्ध होने वाले हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम स्तुत्य हो, तुम हमको दिव्य अन्न प्रदान करो। देवताओं की कामना करने वाले होकर वृष्टि के लिए मेघ को विदीर्ण करो ॥९॥ हे सोम ! जैसे राजा अपनी प्रजा का वहन करता है वैसे ही अभिषुत होने पर तुम सब प्राणियों के वाहक होते हो । गौ की इच्छा करने वाले यजमान के यज्ञादि कर्मों को सम्पन्न करो और आकाश के जलों की वृष्टि करो ॥१०॥ [१८]

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥
वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥ १२ ॥
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥
यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ १४ ॥
इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः ।
पवस्व मधुमत्तमः ॥ १५ ॥
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥ १६ ॥ १९

देवताओं की कामना करने वाले ऋत्विज् इस बहुत-सी धाराओं वाले, धनों के धारणकर्त्ता और अभीष्टवर्षी सोम का दोहन करते हैं ॥ ११ ॥ जो मेधावीजन सोम को स्तुति करते हुए उसे दुग्धादि से मिश्रित करते हैं, उनके द्वारा ही कामनाओं के वर्द्धक, अमृतत्व से युक्त अन्धकार नाशक और शब्दवान् सोम को जाना जाता है। यज्ञ के तीनों सवनों में सब कर्म सोम के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥ अपत्ययुक्त सुन्दर घरों, गौओं अन्नों तथा अन्य सब धनों के प्राप्त कराने वाले सोम ऋत्विजों के द्वारा शोधे जाते हैं ॥ १३ ॥ जिन सोमों का इन्द्र, मरुद्‌गण, अर्यमा और भग देवता पान करते हैं और जिन सोमों के द्वारा मित्र, वरुण और इन्द्र को हम अपने समक्ष बुलाते हैं, वही सोम निष्पन्न किये जाते हैं ॥१४॥ हे अत्यन्त मधुर और हर्षकारी सोम ! तुम ऋत्विजों द्वारा योजित होकर इन्द्र के पानार्थ प्रवाहित होओ ॥ १५ ॥ हे सोम ! नदियाँ जैसे समुद्र में जाती हैं, वैसे ही तुम कलश में गमन करो। तुम मित्र, वरुण और वायु के लिए और इन्द्र के हृदय को प्रसन्न करने के लिए श्रेष्ठ रस से सम्पन्न बनो ॥ १६ ॥ [१६]

सूक्त १०६

(ऋषि—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—गायत्री)

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय। १ ॥
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ २ ॥
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ४ ॥
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥ ५ ॥
दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ६ ॥
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥
नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥
इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१०॥ २०

हे सोम ! तुम आस्वाद के योग्य हो । इन्द्र, मित्र, पूषा और भग देवताओं के लिए सिंचित होओ ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम्हारे रस युक्त और बल के निमित्त निष्पन्न भाग को इन्द्र और सब देवता पीवें ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम उज्वल और दिव्य हो । तुम्हें देवता पीते हैं । तुम श्रेष्ठ निवास-प्रद होते हुए क्षरित होओ ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम सब का पालन करने वाले और अपने महान् रस के प्रवाहित करने वाले हो । देवताओं के शरीरों को देखते हुए कलश में गिरो ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम देवताओं के निमित्त क्षरित होओ । अपने तेज से आकाश-पृथिवी और सब प्राणियों के सुख देने वाले होओ ॥ ५ ॥ हे सोम ! तुम आकाश के धारण करने वाले हो । सत्य के आश्रय रूप इस यज्ञ में पीने योग्य होते हुए अपने बल के सहित क्षरित होओ ॥ ६ ॥ हे प्राचीन सोम ! तुम अत्यन्त यशस्वी । छन्ने से निकल कर सुन्दर धाराओं वाले होते हुए प्रवाहित होओ ॥ ७ ॥ यह सोम सब के जानने वाले, छन्ने से छने हुए हैं । यह हमको समस्त धन प्रदान करें ॥ ८ ॥ सोम देवताओं की वृद्धि करने वाले हैं । यह हमको अपत्ययुक्त सभी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ ९ ॥ हे सोम ! जैसे अश्वों को जल से स्वच्छ करते हैं, वैसे ही तुम्हें धोते हैं । तुम हमारे ज्ञान, बल और धन के निमित्त गिरो ॥१०॥ [२०]

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोम देवेभ्य इन्दुम् ॥ १२ ॥

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥ १४ ॥

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥ १५ ॥

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६॥

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ १७ ॥

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ १८ ॥

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥ १९ ॥

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥ २० ॥

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥
इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥ २२ ॥ २१

हे सोम ! शक्ति के लिए तुम्हारे रस को अभिषवकारी शुद्ध करते हैं और महान् अन्न पाते हैं ॥ ११ ॥ हरे वर्ण के यह सोम जलसे उत्पन्न होते हैं, ऋत्विगगण इन्हें देवताओं के लिए संस्कृत करते हैं ॥ १२ ॥ जल के आश्रय-स्थान अंतरिक्ष में यह सोम कामना योग्य धन के लिए बरसते हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र के लिए यह सोम कल्याणकारी होते हैं। इनके द्वारा धारण किये गए शरीर से ही इन्द्र ने सब पापी असुरों को नष्ट कर डाला ॥ १४ ॥ ऋत्विजों के द्वारा निष्पीडित एवं स्वच्छ सोम गोदूध में मिलाये जाते हैं, तब इन्हें सब देवता पीते हैं ॥ १५ ॥ अनेकों धारा वाले यह शोधित सोम छन्ने से चारों ओर क्षरित होते हैं ॥ १६ ॥ जल से संस्कारित और गौ दुग्धादि से मिश्रित सोम सब ओर टपकते हैं ॥१७॥ हे ऋत्विजों द्वारा अभिषुत सोम ! तुम छन्ने के द्वारा कलश को प्राप्त होते हो ॥१८॥ छन्ने को लांघ कर यह बलवान् और अनेक धाराओं वाले सोम इन्द्र के निमित्त ही छाने जाते हैं ॥ १९ ॥ इन्द्र यजमानों की पुष्टि करने वाले हैं। ऋत्विज् इनके हर्ष के लिए सोम को मधुर रस से मिश्रित करते हैं ॥ २० ॥ हे सोम ! तुम हरे वर्ण के हो। देवताओं के पीने के लिए ऋत्विगगण तुम्हें शोधते हैं ॥ २१ ॥ सोम का रस इन्द्र के निमित्त निष्पन्न किया जाता है। फिर जल मिश्रित करते हुए उसे हिलाते हैं ॥ २२ ॥   [२१]

सूक्त ११०

(ऋषि—त्र्यरुणत्रसदस्यू । देवता—पवमानःसोमः । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥१॥
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२॥
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।

गोजोरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥३॥

अजोजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४॥

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूपत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥ २२

हे सोम ! तुम सहनशील हो । तुम अन्न-प्राप्ति के निमित्त रण-क्षेत्र में जाओ । तुम हमारे ऋणों की भी पूर्ति करते हो और शत्रु-नाश के लिए गमन करते हो ॥ १ ॥ हे निष्पन्न सोम ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम स्वराष्ट्र की रक्षा के लिए शत्रुओं की ओर गमन करते हो ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम धन प्रदान करते हो । तुमने जल के आश्रय-स्थान अंतरिक्ष में अपने बल से सूर्य को प्रकाशित किया है । तुम अत्यन्त वेग वाले और अनेक प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न हो ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम अविनाशी हो । तुमने मङ्गल करने वाले, जल-धारक अंतरिक्ष में सूर्य को प्रकाशित किया है । तुम रण-क्षेत्र की ओर सदा गमन करते रहते हो ॥ ४ ॥ हे सोम ! जल के लिए जैसे गहन जल से पूर्ण जलाशय बनाया जाता है, वैसे ही तुम अपने स्तोता मित्रों को अन्न-दान करते हो ॥ ५ ॥ सबको प्रेरणा देने वाले आदित्य ने अभी पूर्ण रूप से अंधकार का नाश भी नहीं किया, तभी स्वर्ग में उत्पन्न वसुरुच् नामक पुरुषों ने बन्धु रूप सोम की स्तुति की ॥ ६ ॥ [२२]

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।

यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥
सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥
एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥
स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२॥२३

हे सोम ! कुश-छेदन करने वाले यजमानों ने महान्, बल और अन्न के निमित्त अपनी बुद्धि को तुम्हारी आश्रित किया। तुम हमको भी युद्ध-कुशल बनाओ ॥ ७ ॥ स्वर्ग-निवासी देवताओं के पान योग्य सोम का आकाश से दोहन करते हैं और उस अभिषुत सोम की स्तोतागण श्रेष्ठ स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम अपने बल से ही आकाश पृथिवी और समस्त प्राणियों का शासन करते हो ॥ ९ ॥ अतीव सामर्थ्य वाले पवमान सोम छन्ने पर बालक के समान क्रीड़ा करते हुए गिरते हैं ॥ १० ॥ यह सोम आयु के देने वाले, रस की धाराओं से सम्पन्न,माधुर्यमय. अन्न प्रदान करने वाले और धन प्राप्त कराने वाले हैं। यह प्रवाहित होते हैं ॥ ११ ॥ संग्राम की कामना वाले शत्रुओं को यह पराभूत करते और दुर्धर्ष असुरों का वध करते हैं। हे सोम ! तुम सुन्दर आयुध वाले होकर शत्रु-नाशक गुणों के सहित प्रवाहित होओ ॥ १२ ॥ [२३]

सूक्त १११

(ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः । देवता—पवमानःसोम । छन्द—अष्टिः)

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति
स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥

त्वं त्यपणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व
आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥
पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते
दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥ २४

सूर्य जैसे अपनी रश्मियों से जगत के अन्धकार को दूर करते हैं, वैसे ही यह संस्कारित सोम सब असुरों को मिटाते हैं। इनका हरित वर्ण बड़ा सुन्दर लगता है। इनकी उज्वल धारायें दमकती हैं। यह तेजस्वी एवं सप्त छन्द वाले सोम अन्तरिक्ष के सब नक्षत्रों को दबाते हैं ॥१॥ हे सोम! तुम यज्ञ के धारणकर्त्ता जल के सहित भले प्रकार संस्कृत होते हो। तुमने पणियों द्वारा चुराई गौओं को पाया था। सामवेद की ध्वनि जैसे दूर से ही सुनाई पड़ती है, वैसे ही तुम्हारा शब्द दूर से ही सुनाई पड़ता है। यह सुन्दर सोम स्तुतियों से प्रवृद्ध होकर स्तोताओं को अन्न देते हैं और कर्म करने वाले यजमान सोम के शब्द से आनन्द की अनुभूति करते हैं ॥२॥ सब के जानने वाले सोम पूर्व दिशा में जाकर सूर्य-रश्मियों से मिलते हैं। स्तोताओं के स्तोत्र इन्द्र के पास जाकर उनमें विजय का उत्साह भरते हैं। जब इन्द्र के पास वज्र पहुँचता है और रणभूमि को प्राप्त हुए इन्द्र और सोम शत्रुओं को परास्त करते हैं तब स्तोतागण उनकी स्तुति करते हैं ॥३॥ [२६]

११२ सूक्त

(ऋषि—शिशुः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—पंक्ति)

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।

तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥
जरतीभिरोषधीभि पर्णेभि :शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गाइव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥
अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥४.२५

हमारे कर्म विभिन्न प्रकार के हैं । बढ़ई काष्ठ के कार्य की कामना करता है, ब्राह्मण सोम का अभिषवण करने वाले यजमान की कामना करता है और वैद्य रोग की कामना करता है । उसी प्रकार मैं सोम की कामना करता हूँ । हे सोम ! तुम इन्द्र को सींचो ॥१॥ उज्वल शिलाओं, पुराने काष्ठों और पक्षियों के पंखों से बाणों को बनाया जाता है ! अपने बाणों के विक्रय करने के लिए शिल्पकार धनी पुरुषों को ढूँढता है । वैसे ही मैं सोम की वृष्टि को ढूँढता हूँ । हे सोम ! तुम इन्द्र को सींचो ॥२॥ मैं स्तोता हूँ, पुत्र वैद्य है और कन्या जौ पीसनेका कार्य करती है । हम सब पृथक्-पृथक् कार्य करते हैं । गौएं जैसे गोष्ठ में घूमती हैं, वैसे ही धन-कामना करते हुए हम भी हे सोम ! तुम्हारी परिचर्या करते हैं । हे सोम ! तुम इन्द्र को सींचो ॥३॥ जैसे अश्व सुन्दर, कल्याणकारी और सरलता से चलने योग्य रथ को चाहता है, जैसे सभा सचिव व्यंगात्मक बात की इच्छा करते हैं, वैसे ही मैं सोम की इच्छा करता हूँ । हे सोम ! तुम अपने रस से इनको सींचो ॥४॥ [२५]

११३ सूक्त

(ऋषिः—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—पंक्तिः)

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२
पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३
ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥४
सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥५। २६

महान् बली और वीर्यवान् होने के लिए इन्द्र शर्यणावत् तड़ाग वाले सोमों का पान करें। हे सोम ! तुम इन्द्र के लिए अपने मधुर रस से सींचो ॥१॥ कामनाओं के वर्षक और दिशाओं के अधिपति के समान तुम आर्जीक देश से आगमन करो । तुम्हें पवित्र स्तोत्रों और श्रद्धा युक्त श्रेष्ठ कर्मों से निष्पन्न किया जाता है । हे सोम ! तुम अपने मधुर रस से इन्द्र को सींचो ॥२॥ सूर्य की पुत्री, अन्तरिक्ष के जल में बढ़े हुए इस सोम को स्वर्ग से यहाँ लाई । गन्धर्वों ने सोम को ग्रहण कर उसे रस से पूर्ण किया । हे सोम ! तुम अपने मधुर रस से इन्द्र को सींचो ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम्हारे कर्म यथार्थ हैं । तुम यज्ञ के स्वामी और अमृत रूप हो । तुम श्रद्धा सहित श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले यजमान की प्रेरणा से सोम को अपने मधुर रस से सींचो ॥४॥ पवमान और महाबली सोम की धाराएं गिर रही हैं और उनका मधुर रस प्रवाहित हो रहा है । हे सोम ! ऋत्विज् द्वारा संस्कृत होकर इन्द्र को सींचो ॥५॥ [२६]

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥६
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥८
यत्रानुकाम चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिव ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९
यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१०
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥७

हे सोम ! जहाँ सप्त छन्दों में निर्मित स्तोत्र कहे जाते हों, जहाँ पाषाणों से तुम्हारा अभिषव किया जाता हो और जहाँ सोमाभिषव से प्रसन्न देवताओं का स्तोता पूजा जाता हो वहाँ तुम अपने श्रेष्ठ रस की वर्षा करो ॥६॥ हे सोम ! तुम इन्द्र के लिए क्षरित होते हुए मुझे अखण्ड प्रकाश वाले अविनाशी स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराओ ॥७॥ हे सोम ! जहाँ मन्दाकिनी आदि नदियाँ प्रवाहित हों, जहाँ वैवस्वत राज्य करते हों और जिसे स्वर्ग का द्वार कहते हैं, मुझे उसी स्थान पर रखो और इन्द्र के लिए क्षरित होओ ॥८॥ सूर्य की अभिलषणीय रश्मियाँ जिस ऊर्ध्वलोक में हैं, जहाँ के निवासी ज्योतिपुंज के समान तेजस्वी हैं, उसी लोक में हे सोम ! मुझे स्थायी निवास दो और अपने मधुर रस को इन्द्र के लिए सींचो ॥९॥ जिस लोक में सब कर्मों के आश्रयभूत आदित्य रहते हैं, जहाँ स्वधासहित दिया गया हव्य और तृप्ति है, जहाँ इन्द्रादि सभी अभिलषणीय देवता निवास करते हैं, उसी लोक में हे सोम ! तुम मुझे अविनाशी पद दो और अपने मधुर रस को इन्द्र पर सींचो ॥१०॥ हे सोम ! आनन्द, आमोद और स्नेह जिस लोक में वर्तमान रहता है और जहाँ सभी कामनायें इच्छा होते ही पूर्ण होजाती हैं, उसी अमरलोक में मुझे निवास दो। हे सोम ! तुम इन्द्र के लिये क्षरित होकर उन्हें तृप्त करो ॥११॥

सूक्त ११४

(ऋषि—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—पंक्ति)

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति सोमाविषन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥
सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥३॥
यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो
परि स्रव ॥ ४ ॥ २८

जो मेधावी स्तोता सोम के तेज का अनुगामी होता है, वह आयुष्मान् पुरुष पुत्रवान् और मंगलमय कहलाता है। तथा जो व्यक्ति सोम की मनोनुकूल अभिषव आदि सेवा करता है, उसे भी ऐसा ही कहते हैं। हे सोम ! तुम क्षरित होकर इन्द्र को तृप्त करो ॥ १ ॥ ऋषियों और मंत्रदृष्टाओं ने स्तोत्र रूप वाक्यों को बनाया है, उन ऋषियों के अनुगत होकर स्तोत्रों को बढ़ाओ और स्वामी रूप सोम को नमस्कार करो। यह सोम वनस्पतियों की रक्षा करने वाले हैं। हे सोम ! तुम क्षरित होकर वज्रधारी इन्द्र को तृप्त करो ॥२॥ सूर्य को आश्रय देने वाली सात दिशाओं, सप्त होताओं और सात आदित्यों के सहित हे सोम ! तुम हमारे रक्षक होओ और इन्द्र के लिए क्षरित होकर उन्हें तृप्त करो ॥ ३ ॥ हे सोम ! हवन योग्य जिस हवि का तुम्हारे निमित्त पाक किया गया है, उसके द्वारा हमारा पालन करो। शत्रु हमारे वस्त्रों को न छीनें और हमको हिंसित भी न करें। तुम इन्द्र के लिए क्षरित होकर उन्हें तृप्त करो ॥ ४ ॥ [२८]

इति नवम मण्डल समाप्तम्

अथ दशम मण्डलम्
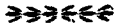
सूक्त १ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—त्रित. । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्यान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १ ॥
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ २ ॥
विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्त स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ ३ ॥
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥ ४ ॥
होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥ ५ ॥
स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥ ६ ॥
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥ ७ ॥ २८

अन्धकार से निकलते हुए अग्नि आह्वानीय रूप में अपने तेज से आते और उषाकाल में ज्वाला रूप में प्रकट होते हैं। कर्म के निमित्त श्रेष्ठ ज्वालाओं से प्रज्वलित हुए अग्नि अपने तेज के द्वारा ही यज्ञों को सम्पन्न करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम अरणियों से मथकर प्रदीप्त किये जाते हो । तुम औषधियों में स्थित, आकाश-पृथिवी के गर्भरूप, अद्भुत वर्ण वाले और मंगलमय हो । तुम अपने तेज से कृष्णवर्ण के असुरों को पराभूत करने वाले और औषधियों

के पुत्र रूप हो। तुम शब्द करते हुए काष्ठ रूप वनस्पतियों से उत्पन्न होते हो ॥ २ ॥ सुक्र त्रित ऋषि को यह मेधावी और व्यापक अग्नि हर प्रकार रक्षित करें। यह अग्नि उत्कृष्ट और महान् हैं। यज्ञकर्त्ता यजमान इनके जल की याचना करते हुए पूजते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! अन्न-प्राप्ति के लिए तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम विश्व के धारणकर्त्ता, वनस्पतियों और अन्नों के उत्पादक और सूखे हुए काष्ठ रूप वनस्पतियों की ओर गमन करने वाले हो। तुम ही हमारे यज्ञ कर्मों के सम्पन्न करने वाले हो ॥ ४ ॥ यज्ञों के ध्वजा रूप, उज्वल, देवताओं के आह्वानकर्त्ता और स्वामी, यजमानों के लिए पूजनीय, इन्द्र के पास गमन करने वाले अग्नि की सुन्दर कीर्ति वाला ऐश्वर्य पाने के निमित्त हम यज्ञकर्त्ता स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम पृथिवी की नाभि पर सुवर्ण के समान दमकता हुआ तेज धारण करते हुए प्रकट होते हो। तुम आह्वानीय स्थान में प्रतिष्ठित होकर अपने तेज से सुशोभित होते हुए हमारे यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं का पूजन करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! पुत्र जैसे माता-पिता की सेवा करता हुआ उन्हें सुख देता है, वैसे ही तुम आकाश-पृथिवी को विस्तृत करते हुए उन्हें पूर्ण करते हो। तुम हम कामना वाले उपासकों के प्रति आगमन करो और इस यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं को भी ले आओ ॥ ७ ॥ [२६]

सूक्त २

(ऋषि—त्रित. । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः ॥ १ ॥
वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ २ ॥
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥ ३ ॥
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥ ४ ॥
यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥ ५ ॥
विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥ ६ ॥
यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥ ७ ॥ ३०

देव यज्ञों के समयों के ज्ञाता और स्वामी अग्निदेव ! तुम स्तुतियों की कामना वाले देवताओं को पूजते हुए उन्हें प्रसन्न करो। हे होताओं में सर्व श्रेष्ठ अग्ने ! तुम देव पुरोहितों के सहित पूजन करो॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम सत्य रूप एवं सत्य प्रतिज्ञ हो। होता, पोता, विद्वान् एवं ऐश्वर्यों के देने वाले हो। तुम तेजस्वी और प्रवृद्ध हो। देवताओं को हवि प्रदान करते हुए उन्हें पूजो ॥ २ ॥ हम देवताओं के श्रेष्ठ मार्ग पर चलें। हमारे सब कर्म भले प्रकार सम्पन्न हों। मनुष्यों के यज्ञों का सम्पादन करने वाले अग्नि यज्ञों का समय निश्चित करते हुए, देवताओं का भले प्रकार पूजन करने वाले हों ॥ ३ ॥ हे देवगण ! हम ज्ञान-शून्य पुरुषों ने तुम्हारे कर्मों को जानते हुए भी अब छोड़ दिया है। अतः यज्ञ के योग्य समयों से हम अग्नि को योजित करते हैं। वे सब के ज्ञाता अग्निदेव हमारे सभी श्रेष्ठ कर्मों के पूरक हों ॥ ४ ॥ हम मनुष्यों का यज्ञ ज्ञान शून्य मन हमें दुर्बल बनाता है, हम जिस कर्म को नहीं जानते, उसे अग्नि जानते हैं। अतः यज्ञों का सम्पादन करने वाले अग्नि हमारे निमित्त देवताओं का यज्ञ करने वाले हों ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम ब्रह्मा के द्वारा यज्ञों के ध्वज रूप में उत्पन्न हुए हो। तुम मुझे दास आदि से सम्पन्न भूमि और ऐश्वर्य प्रदान करो और स्तुतियों से युक्त श्रेष्ठ हविरन्न देवताओं को प्रदान करो॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम तीनों लोकों में प्रकट होते हो। तुम्हें सुन्दर जन्म वाले प्रजापति ने जन्म दिया है। तुम समिधाओं से चैतन्य होने वाले और पितृयान मार्ग

के ज्ञाता हो । तुम अपने ही तेज से सुशोभित हुए बैठते हो ॥ ७ ॥ [१०]

सूक्त ३

(ऋषि—त्रितः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥
अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥ ४ ॥
स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥ ५ ॥
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥ ६ ॥
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७॥३१

हे सर्वाधीश्वर अग्ने ! तुम हवियों को देवताओं के पास पहुँचाते हो । यजमानों के धनों को बढ़ाने वाले होते हुए तुम शत्रुओं को भयंकर, प्रदीप्त और सब के लिए दर्शनीय होते हो । यह अपने तेज से अन्धकार को दूर करते हुए एवं विभावान् होते हुए सब के ज्ञाता बनते हैं ॥ १ ॥ यह अग्नि पिता-रूप सूर्य से प्रकट होने वाली उषाओं को बढ़ाते हुए अपने तेज से रात्रि को दबाते हैं । आकाश को स्तम्भित करने वाले अपने तेज से यह अग्नि सूर्य के प्रकाश को स्थित कर सुशोभित होते हैं ॥ २ ॥ यह उषा के द्वारा सेवा करने योग्य एवम् मंगल रूप अग्नि अपनी बहिन उषा के समीप

गमन करते हुए अपने उज्ज्वल तेज रात्रि के काले अंधकार को मिटाते हैं। यह शत्रु नाशक अग्नि अपने श्रेष्ठ ज्ञान, उज्ज्वल वर्ण और सुवर्ण के समान देदीप्यमान तेज के सहित प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि की दीप्तिमती और गमन करती हुई रश्मियाँ स्तोताओं के लिए बाधक नहीं होती। यह स्तुतियों की पात्र, सुखकारिणी, मंगलमयी रश्मियाँ सुन्दर दर्शन वाली और अंधकार की नाशिनी हैं। यह कामनाओं की वर्षा करने वाली, तीक्ष्ण तेज वाली और देवताओं को तृप्त करने वाली के रूप में विख्यात हैं ॥ ४ ॥ यह सुन्दर दीप्तिवाली, शब्दमती, महती रश्मियाँ शब्द करती हुई गमन करती हैं। अग्नि अत्यंत विस्तार वाले, महान् तेजस्वी, प्रवृद्ध और क्रीडामय हैं। आकाश भी इनके तेज से दमकता है ॥ ५ ॥ यह प्रकाशमान लपटों वाले अग्नि देवताओं की ओर गमन करते हैं। इनकी वायु से सुसंगत और शोषक किरणें शब्द करती हैं। गमनशील, व्यापक, पुरातन, उज्ज्वल वर्ण वाले एवं देवताओं में प्रमुख अग्नि अपने ही तेज से प्रकाशित होते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! महान् देवताओं को हमारे यज्ञ स्थान में लाओ और तुम भी हमारे यज्ञ में विराजमान होओ। तुम आकाश-पृथिवी के मध्य सूर्य के रूप में प्रकाशित होते हो। हे अग्ने! स्तोतागण तुम्हें सरलता से प्राप्त करते हैं। तुम वेगवान् और शब्द करने वाले हो। अपने अश्वों के सहित हमारे इस यज्ञ में आओ ॥ ७ ॥   [३१]

सूक्त ४

(ऋषि.—त्रित:। देवता—अग्नि:। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१॥
यं त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महांश्चरसि रोचनेन ॥२॥
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३॥

सूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥४॥
कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५॥
तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् ॥७॥३२॥

हे अग्ने ! मैं तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्रों का पाठ करता और हवि-प्रदान करता हूँ । हे सर्वपूज्य अग्ने ! हमारे द्वारा किये जाने वाले देवताओं के सभी आह्वानों में तुम आते हो । तुम सब जगत के ईश्वर और प्राचीन हो । यज्ञ की कामना वाले पुरुषों को तुम धन दान द्वारा सुखी करते हो । हे सर्व ऐश्वर्य के दाता अग्ने ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ हवि देता हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं और मनुष्यों के भी दूत हो । तुम आकाश पृथिवी के मध्य हवि-वहन करते हुए अंतरिक्ष में जाते हो । जैसे शीत से व्याकुल गौएं गोष्ठ में जाती हैं, वैसे ही यजमान तुम्हारे आश्रय में जाते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हें माता रूप पृथिवी जयशील पुत्र के समान पुष्ट करती हुई तुमसे मिलने की इच्छा करती हैं । तुम अंतरिक्ष के विस्तृत मार्ग से यज्ञ में गमन करते हो । जैसे गौएं गोष्ठ में जाने को तत्पर होती हैं, वैसे ही तुम यज्ञ करने वालों से हवि ग्रहण करते हुए देवताओं के समीप जाने की इच्छा करते हो । क्योंकि तुम यज्ञादि शुभ कर्मों की अभिलाषा करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हम बुद्धिहीन मनुष्य तुम्हारी महिमा को नहीं जानते, हे मेधावी और चैतन्य रूप ! तुम ही अपनी विशिष्ट महिमा के ज्ञाता हो । तुम वनस्पतियों के निकटस्थ हो और अपनी जीभ से उनको खा डालते हो । तुम ही प्रजाओं के स्वामी होते हुए आहुतियों का सेवन करते हो ॥ ४ ॥ नवोत्पन्न अग्नि जीर्ण वनस्पतियों के द्वारा प्रकट होते हैं । यह धूम्र रूप ध्वज वाले, उज्ज्वल, पावन-

कर्त्ता और जंगल में रहने वाले हैं। यह बिना स्नान ही पवित्र हैं। जैसे प्यासा बैल जलाशय की ओर जाता है, वैसे ही यह वन के जल की ओर गमन करते हैं। इन्हीं अग्नि को, सब कर्मवान् मनुष्य समान मन वाले होकर प्रज्वलित करते हैं ॥ ५ ॥ जैसे वन में विचरण करने वाले दो दस्यु किसी यात्री को रस्सी से बाँधकर खींचते हैं, वैसे दश अँगुलियों वाले हमारे दोनों हाथ यज्ञ की समिधाओं के द्वारा अग्नि का मंथन करते हैं। हे अग्ने! मैं तुम्हारा अभिनव स्तोत्र करता हूँ। जैसे रथ की घोड़ों मे जोड़ा जाता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र को जान कर अपने तेज को हमारे यज्ञ में जोड़ो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! हमारे द्वारा दी गई हवियाँ और नमस्कार युक्त स्तुतियाँ तुम्हें बढ़ाती हुई, स्वयं भी बढ़ें। तुम हमारे शरीरों की सावधानी से रक्षा करने वाले होओ। हे अग्ने! हमारे पुत्र पौत्रादि सब जनों की रक्षा करो ॥ ७ ॥
[३२]

सूक्त ५

(ऋषि:—त्रित: । देवता—अग्नि: । छन्द:—त्रिष्टुप्)

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१॥
समानं नीळं वृषणो वसानाः संजग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२॥
ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३॥
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥४॥
सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५॥
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७॥३३॥

यह अग्नि देवता समुद्र के समान विशाल आश्रय वाले एवं धनों के धारणकर्त्ता हैं। यह विभिन्न प्रकार से उत्पन्न होने वाले तथा विभिन्न रूप वाले हैं। यह हमारी हृदयस्थ कामनाओं के ज्ञाता और अंतरिक्ष का सामीप्य प्राप्त कर मेघ का प्रेरण करते हैं। इनकी समानता कोई नहीं कर सकता। हे अग्ने! मेघ में स्थित विद्युत रूप से तुम गमन करो ॥ १ ॥ आहुतियाँ देने वाले यजमान अग्नि के निमित्त स्तोत्र करते हुए घोड़ियों से सम्पन्न हुए। यह अग्नि जल के आश्रय रूप हैं। विद्वज्जन इनकी सेवा करते हुए और इनके प्रमुख नामों का उच्चारण करते हुए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ सत्य रूप वाले और कर्मवान् आकाश पृथिवी, समयानुसार माता पिता द्वारा पुत्र को उत्पन्न करने के समान, इन्हें प्रकट करते हैं। यही आकाश पृथिवी अग्नि का पालन करते हैं और हम इन सब स्थावर जंगम प्राणियों के नाभि के समान मेधावी अग्नि को बढ़ाने वाले वैश्वानर अग्नि की शरण को प्राप्त हुए उन्हीं की उपासना करते हैं ॥ ३ ॥ सब संसार को व्याप्त करने वाले आकाश-पृथिवी ने अग्नि, विद्युत और सूर्य रूप से तीनों लोकों में विद्यमान अग्नि को घृत, मधु और पुरोडाशादि से प्रवृद्ध किया। कामनाओं को चाहने वाले तथा यज्ञोंके संपादन-कर्त्ता यजमान बल प्राप्ति के लिए भी, प्रकट हुए अग्नि देवता की परिचर्या करते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि सबके जानने वाले और स्तुत्य हैं। इन्होंने भगिनी रूपिणी अपनी सात ज्वालाओं को, यज्ञ के द्वारा सब पदार्थों को सरलता से देखने के लिए उन्नत किया। इन ज्वालाओं को प्राचीन कालीन अग्नि ने आकाश-पृथिवी के मध्य प्रतिष्ठित किया था। यजमान इन अग्नि की सदा कामना किया करते हैं। इन्हीं अग्नि ने वर्षा-रूप धन दिया ॥ ५ ॥ मेधावी-जनों ने सात जघन्य पापों को मर्यादित किया है। इन सात कृत्यों में से एक का भी आचरण करने वाला पापी बताया गया है। इन सब पापों से अग्नि ही रक्षा कर सकते हैं। यह अग्नि आदित्य की रश्मियों में, जल में और निकटस्थ मनुष्यों के घरों में निवास करते हैं ॥ ६ ॥ सृष्टि के पूर्व यह अग्नि

अव्यक्त थे। अब, सृष्टि रचना के पश्चात् व्यक्त होगए। अतः वे हमसे पूर्व-जन्मा हैं। वे परम धाम के आश्रित, सूर्य मंडल में अवस्थित और यज्ञ स्थान में पहिले से ही निवास करने वाले हैं। वे स्वयं ही वृषभ और स्वयं ही गौ हैं, अर्थात् उनका कोई लिंग भेद नहीं है ॥ ७ ॥ [१३]

सूक्त ६

(ऋषिः—त्रितः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् ; पंक्तिः)

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१॥
यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥
ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कम्नाति शूषैः ॥३॥
शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४॥
तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५॥
सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६॥
अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७॥ १

जिन अग्नि की रक्षाओं के द्वारा यज्ञ के अवसर पर स्तोता रक्षित होता है, जो अग्नि सूर्य रश्मियों के रूप में महान् तेज के सहित सर्वत्र जाते हैं, यह अग्नि वही हैं ॥ १ ॥ इन सब से सम्पन्न अग्नि की हिंसा कोई नहीं कर सकता। क्योंकि यह अग्नि देवताओं के तेज से अत्यन्त तेजस्वी हो गए

हैं। यह अपने सखा रूप यजमान के हित का कार्य करने के लिए अपने अश्व के द्वारा यजमान के पास पहुँचते हैं ॥ २ ॥ सर्वत्र गमनशील अग्नि यज्ञ के भी स्वामी हैं। यह उषा के उत्पन्न होते ही यजमानों के स्वामी होते हैं। इनकी इच्छा के अनुसार ही यजमान अग्नि में हव्य देते हैं, अतः शत्रु का बल उन यजमानों को हिंसित नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ स्तुतियों द्वारा स्तुत और अपने बल से प्रवृद्ध अग्नि शीघ्र ही देवताओं के पास गमन करते हैं। यह अग्नि देवताओं के आह्वान करने वाले, स्तुत्य और देवताओं द्वारा ही नियुक्त हैं ॥ ४ ॥ हे ऋत्विजो ! जो अग्नि सब भोग्य वस्तुओं के देने वाले हैं, उनकी इन्द्र के समान स्तुति करते हुए हमारे सामने प्रकट करो और उनको हवि दो। वे देवताओं का आह्वान करने वाले और मेधावी हैं। स्तोतागण स्तुतियों के द्वारा उनका पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जैसे शीघ्र गमन करने वाले अश्व युद्ध की ओर जाते हैं, वैसे ही संसार के सब धन तुम्हारी ओर गमन करते हैं। हे अग्ने ! तुम इन्द्र के रक्षा साधनों को हमें प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही महान् होगए और प्रतिष्ठित होते ही आहुति के पात्र हुए। तुम्हें देखते ही देवगण तुम्हारी ओर गए और तुम्हारे प्रज्वलित होते ही यजमानों ने तुम्हें हव्य प्रदान किया। हे रक्षक अग्ने ! तुम्हारी रक्षाओं में रक्षित ऋत्विज वृद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥ [1]

सूक्त ७

(ऋषि—त्रितः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥१॥
इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥
अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥३॥

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥४॥
द्युभिर्हित मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥५॥
स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्कि ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥६॥
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् ॥७॥ २

हे अग्ने ! तुम दिव्य हो, तुम दर्शन के योग्य और यज्ञ करने वाले हो। तुम हमको दिव्य और पार्थिव अन्न प्रदान करो और विभिन्न दृढ़ रक्षा साधनों द्वारा हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुमने गौओं और अश्वों से युक्त धन हमको प्रदान किया है, इसीलिए तुम स्तुत्य हो। हमने यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही उच्चारित किया है। तुम जब मनुष्य को उपभोग्य धन देते हो तब तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम अपने तेज से विश्व को व्याप्त करते और सुन्दर कर्मों की वृद्धि के लिये प्रकट होते हुए हमें धन प्रदान करो ॥ २ ॥ जैसे आकाश में विद्यमान, पूजनीय एवं प्रकाशित सूर्य की कामना की जाती है, वैसे ही मैं उन अग्नि को अपना पिता, भ्राता और मित्र मानता हुआ उनके मुख की सेवा करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम नित्य होता और देवताओं के आह्वानकर्त्ता हो, अतः यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही प्रकट हुए हैं। तुम अपने जिस सेवक का पालन करते हो, वह मैं तुम्हारे सम्पर्क में रह कर यज्ञ करने वाला होऊँ। तुम्हें हवि प्राप्त हो सके, इसलिये तुम्हारे द्वारा मुझे अश्वादि से युक्त धन प्राप्त हो ॥ ४ ॥ देवताओं का आह्वान करने के लिये मनुष्यों ने अग्नि को प्रदीप्त किया है तथा मित्र के समान संगति के योग्य यह अग्नि यजमानों की भुजाओं द्वारा उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम दिव्य हो, अतः दिव्य लोक वासी देवताओं के लिये

यज्ञ करो। जो मनुष्य तुम्हारी महिमा को नहीं जानते वे क्या कर सकेंगे ? हे सुन्दर जन्म वाले ! तुम समय-समय पर यज्ञ करते रहे हो, अतः अब भी करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकट और अप्रकट भयों से हमारी रक्षा करो। तुम शोभन एवं पूजनीय हो, हमारे लिये अन्न के उत्पादन कर्त्ता और देने वाले बनो। हे अग्ने ! हमारे शरीर को रक्षा करते हुए हमको अन्न से सम्पन्न करो ॥ ७ ॥ [२]

सूक्त ८

(ऋषिः—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । देवता—अग्निः ; इन्द्र । छन्दः—त्रिष्टुप्)

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥१॥
मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥२॥
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥३॥
उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे स्वायै ॥४॥
भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥ ३

देवाह्वाक अग्नि वृषभ के समान शब्द करने वाले हैं। जल के आश्रय स्थान अंतरिक्ष में वास करने वाले विद्युत रूप अग्नि अपनी महिमा से ही बढ़ते हैं। अपने समीपस्थ स्थान को व्याप्त करने वाले अग्नि अपनी धूम रूप महती पताका को धारण करते हुए आकाश पृथिवी में विचरण करते हैं ॥१॥ महान् तेज वाले और कामनाओं की वर्षा करने में समर्थ अग्नि आकाश-पृथिवी के मध्य सुख से रहते हैं। यह शब्द करने वाले अग्नि रात्रि और उषा के गर्भ से उत्पन्न होते हुए यज्ञों में श्रेष्ठ कर्म करते हैं और आह्वानीय

आदि स्थानों को प्राप्त करते हुए देवताओं में श्रेष्ठ होकर गमन करते हैं ॥२॥ जिन सुन्दर बल वाले, अग्नि के तेज को यज्ञ में धारण करते हैं, वह अग्नि अपने माता-पिता रूप पृथिवी आकाश पर अपने रूप को बढ़ाते हैं। यह अग्नि यज्ञ स्थान को व्याप्त करने वाले, हव्यादि अन्नों से सम्पन्न और सुन्दर ज्योति वाले हैं। हे अग्ने! मेधावीजन तुम्हारी परिचर्या करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम परस्पर सुसंगत, दिन रात्रि की शोभा को बढ़ाने वाले हो और उषाकाल से पहिले हो आगमन करते हो। तुम अपने तेज से सूर्य को प्रकट करते हुए और सात स्थानों को प्राप्त होते हुए यज्ञ करते हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने! तुम यज्ञ रक्षक, चक्षु रक्षक, चक्षु के समान दर्शन शक्ति से सम्पन्न करने वाले हो। जब तुम आदित्य होकर यज्ञ की ओर गमन करते हो तब तुम ही रक्षा करते हो। हे जल के पौत्र अग्ने! जब तुम यजमान के हव्य को स्वीकार करते हो, तब उसके दूत बन जाते हो ॥ ५ ॥ [३]

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६॥
अस्य त्रित क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवै: परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७॥
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥८
भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥९॥४

हे अग्ने! तुम जब अंतरिक्ष में सुख देने वाले अश्वों से सम्पन्न वायु से संगति करते हो, तब तुम कर्म और जल के स्वामी हो जाते हो। जो सूर्य सबके भजनीय और आकाश में सर्व श्रेष्ठ हैं, तुम उनके धारण करने वाले हो। तुम्हारी ज्वालाएँ यज्ञ में दी जाने वाली हवियों का वहन करती हैं ॥ ६ ॥ त्रित ऋषि ने यज्ञ सम्पन्न होने पर यज्ञ पिता से अपनी रक्षा के लिये याचना की। तब उन त्रित ऋषि ने माता पिता की श्रेष्ठ स्तुतियों

उच्चारित की थीं और उन्हें प्रसन्न करके युद्ध में रक्षा का साधन रूप अस्त्र प्राप्त किया था ॥ ७ ॥ इन्द्र की प्रेरणा से त्रित ऋषि ने अपने पिता से आयुध प्राप्त करके संग्राम किया । तब इन्होंने सात रश्मियों वाले त्रिशिरा का संहार किया और त्वष्टा के पुत्र की गौओं को भी ले लिया ॥ ८ ॥ इन्द्र सज्जनों के स्वामी हैं । उन्होंने अत्यन्त तेज वाले और अहङ्कारी त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को चीर डाला और उसकी गौओं को बुलाते हुए उसके तीनों मस्तकों को छिन्न कर दिया ॥ ६ ॥ [४]

सूक्त ६

(ऋषि—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः । देवता—आपः छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२
तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः॥३
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥५
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥६
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥७॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥८॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥६॥५

हे जल ! तुम सुख के भंडार हो । हमको मेधावी बनाओ और अन्न प्रदान करो ॥१॥ हे जल ! माताएं जैसे बालकों को दूध देती हैं उसी प्रकार तुम अपना रस रूप सुख प्रदान करो ॥२॥ हे जल ! तुम जिस पाप को दूर करने के निमित्त हमारा पालन करते हो, हम उसी पाप

को नष्ट करने की कामना से तुम्हें अपने सिर पर डालते हैं। तुम हमारे वंश को बढ़ाओ ॥३॥ दिव्य गुण वाले जल पीने के योग्य हुए, अब वे हमारे यज्ञ को कल्याणकारी बनावें। वे जल अप्रकट रोगों को उत्पन्न न होने दें और प्रकट रोगों को शान्त करें। सुन्दर गुण वाले यह जल आकाश से बरसें ॥४॥ जल ही मनुष्यों के आश्रयदाता और काम्य पदार्थों के स्वामी हैं। उन जलों से हम औषधियों की गुणवती करने की याचना करते हैं ॥५॥

सोम का कथन है कि इन्हीं जलों में अग्नि का निवास है और औषधियाँ भी इनकी आश्रिता हैं ॥६॥ हे जल हमारी देह-रक्षक औषधियों को बढ़ाओ, जिससे हम दीर्घकाल तक सूर्य के दर्शन करने वाले हों ॥७॥ हे जल! मेरे द्वारा जो हिंसा आदि दुष्कर्म हुए हैं अथवा मिथ्या भाषण आदि का जो पाप मेरे द्वारा होगया है, तुम उन पापों से मेरी रक्षा करो ॥८॥ मैंने आज जल का आश्रय लिया है। हे अग्ने! तुम भी जल से पूर्ण होकर मुझे तेज प्रदान करो ॥९॥ [२]

सूक्त १०

(ऋषि—यमी वैवस्वती, यमो वैवस्वतः। देवता—यमो वैवस्वतः, यमी वैवस्वती। छन्द—त्रिष्टुप्)

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३
न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५।६

हे यम ! मैं इस विशाल समुद्र के मध्य तुमसे मिलने की इच्छा करती हूँ। तुम माता की कोख से ही मेरे जन्म के साथी हो ॥१॥ हे यमी ! तुम मेरी सहोदरा हो। हमारा अभीष्ट यह नहीं है। प्रजापति के स्वर्गलोक के रक्षक देवगण सब देखते हुए विचरण करते हैं ॥२॥ हे यम ! देवताओं को अपना इच्छित करने की सामर्थ्य प्राप्त है। अतः तुम मेरी इच्छा के अनुसार वर्तो ॥३॥ हे यमी ! हम सत्यभाषी हैं, कभी मिथ्या नहीं बोलते। सूर्यलोक के निवासी जलधारक आदित्य और वहीं वास करने वाली योषा हमारे पिता-माता हैं ॥४॥ हे यम ! सबके आत्मारूप प्रजापति ने हमें जन्म से ही साथी बनाया है। आकाश-पृथिवी भी हमारे इस जन्म-सम्बन्ध को जानते हैं। अतः प्रजापति के कर्म को कोई अन्यथा करने में समर्थ नहीं है ॥५॥ [६]

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥
यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥८॥
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९॥
आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥७

हे यम ! प्रथम दिन के आचरण का जानने वाला कौन है उसे किसने देखा है ? मित्रावरुण के महान् धाम के बारे में तुम क्या कहना चाहते हो ? ॥ ६ ॥ हे यम ! जैसे रथ के दोनों चक्र एक कार्य में प्रयुक्त होते हैं, वैसे ही हम समान मति वाले होकर समान कार्य को करें ॥ ७ ॥ हे यमी ! देवताओं के दूत सदा चैतन्य रहते हैं, इनके लिए दिन रात्रि की कोई

धाया नहीं है। अतः तुम मेरे पास से दूर होओ ॥८॥ दिन रात्रि में यम के यज्ञ भाग को यजमान प्रदान करें। सूर्य का तेज यम के लिए तेजस्वी बनावे। परस्पर सुसंगत आकाश पृथिवी यम के बांधव हैं। यम की बहिन यमी भाई से दूर चली जाय ॥६॥ हे यमी! मेरे पास से अन्यत्र गमन करो ॥१०॥ [७]

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे तद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥११॥
न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत् ॥१२
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३
अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१४।८

हे यम! जिस भाई के रहते बहिन अनाथा रहे, वह कैसा भाई है? और वह बहिन भी कैसी है, जिसके रहते भाई का दुःख दूर न हो ॥११॥ हे यमी! मैं तुम्हारे स्पर्श से भी दूर रहना चाहता हूँ अतः तुम मेरे पास से दूर होओ ॥१२॥ हे यम! तुम दुर्बुद्धि वाले हो। मैं तुम्हारे मन को समझ नहीं पाती। तुम मुझे दूर भगाना चाहते हो ॥१३॥ हे यमी! तुम मेरे पास से चली जाओ। इसी में तुम्हारा कल्याण है ॥१४॥ [८]

सूक्त ११

(ऋषि—हविर्धान आङ्गिः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्,)

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियां ऋतून् ॥१
रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः

प्रथमो वि वोचति ॥२

सो चित्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनम् ॥३॥
अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥४॥
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥५।८

अग्नि कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। यह यजमान के कर्म द्वारा आकाश से जलों का दोहन करते हैं। सूर्यात्मक अग्नि सब जगत के ज्ञाता हैं और यज्ञ में उत्पन्न हुए अग्नि यज्ञ के अनुकूल ऋतुओं को पूजते हैं ॥१॥ अग्नि का गुण-गान करने वाली गन्धर्व-पत्नी और जल से शोधित हवियों ने अग्नि की पूर्ण किया। यह अहिंसित अग्नि हमें यज्ञ-कर्म में प्रेरित करें। सब यजमानों में प्रमुख हमारे ज्येष्ठ भ्राता और मैं उन अग्नि की स्तुति करते हैं॥२॥ उषा सुन्दर कीर्ति वाली, उपासना के योग्य और सुन्दर शब्द वाली है। वह सूर्य से पूर्व प्रकट होती है और सब यज्ञ-कर्म के लिए अग्नि को प्रकट किया जाता है। देवताओं को बुलाने वाले अग्नि यज्ञ की कामना वाले यजमानों पर प्रसन्न होते हैं॥३॥ श्येन पक्षी अग्नि की प्रेरणा से उस महान सोम को लाया। जब स्तोतागण इन दर्शनीय और देवताओं को बुलाने वाले अग्नि की स्तुति करते हैं, तब यज्ञ-कर्म का आरम्भ होता है ॥४॥ हे अग्ने! तुम तृण के समान सुकोमल हो और स्तुति करने वालों के स्तोत्र से प्रसन्न होकर तुम हव्य को ग्रहण करते हो। हे देवताओं के साथ गमन करने वाले अग्निदेव! तुम इस हवन से हमारे यज्ञ को पूर्ण करो ॥५॥ [८]

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतोहृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमां अमवान्भूषति द्यून् ॥७॥
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥८
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥१०

हे अग्ने ! जैसे नक्षत्र आदि को फीका करने वाले सूर्य अपने प्रकाश को पृथिवी और आकाश की ओर भेजते हैं, वैसे ही तुम अपने माता पिता रूप पृथिवी आकाश की ओर अपनी ज्वाला को प्रेरित करो। यज्ञ-भाग की कामना करने वाले देवताओं की तृप्ति के लिए यजमान मन से यज्ञ-कर्म करने को उत्सुक हैं। अग्नि देवता स्तुतियों को सम्पन्न करना चाहते हैं और ऋत्विज् प्रधान ब्रह्मा कर्म को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिए स्तोत्र-वृद्धि करते हैं ॥६॥ हे अग्ने ! तुम स्वभाव से ही कृपा करने वाले हो। यजमान स्तुतियों और हवियों से तुम्हारी सेवा करता है। वह यजमान दानशील होता हुआ प्रसिद्धि प्राप्त करता है। वह बल और दीप्ति से सम्पन्न होता हुआ, अश्वादि धन पाकर सुखी रहता है ॥७॥ हे अग्ने ! जब हम यज्ञ-योग्य देवताओं के लिए बहुत सी स्तुतियाँ करें, तब तुम हमको उपभोग्य धन दो। तुम हमारी हवियों को ग्रहण करो, जिससे हम धन-प्राप्त कर सकें ॥८॥ हे अग्ने ! इस समस्त देवताओं वाले यज्ञ में निवास करते हुए तुम हमारे स्तोत्र को सुनो और अपने अमृत-वर्षक रथ को जोड़ो। तुम अपने माता-पिता रूप आकाश पृथिवी को हमारे लिए आश्रय देने वाले बनाओ और हमारे यज्ञ-मण्डप में देवताओं के पास ही विराजमान होओ ॥९॥   [१०]

सूक्त १२

(ऋषि—हविर्धान आङ्गि: । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ १ ॥
देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२॥
स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३॥
अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावो ऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥
किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति
॥ ५ ॥ ११

सर्वश्रेष्ठ द्यावापृथिवी यज्ञानुष्ठान में सर्वप्रथम अग्नि देवता को आहूत करें। वह अग्नि भी मनुष्यों को प्रेरित करते हुए अपनी ज्वालाओं के सहित यज्ञ में विराजमान होकर देवताओं का आह्वान करें ॥ १ ॥ दिव्य रूप वाले अग्नि इन्द्रादि देवताओं के पास जाकर अन्न लावें। यह अग्नि यजमानों के यज्ञ को पूर्ण करने वाले, सब के जानने वाले, समिधा द्वारा ऊपर को उठते हुए, धूम रूप ध्वज वाले और देवताओं के बुलाने वाले हैं ॥ २ ॥ अग्नि देवता जिस जल को उत्पन्न करते हैं उसी के द्वारा पृथिवी का पोषण करते हैं। हे अग्ने ! तुम्हारी उज्वल ज्वालाऐं स्वर्ग से वर्षा रूप जल को दुहती हैं तब सभी देवता तुम्हारे जल-दान की स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमारे यज्ञ-कर्म की वृद्धि करो। हे आकाश-पृथिवी, तुम वृष्टि-जल को सींचने वाले हो। मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ, तुम उसे सुनो। यज्ञ के अवसर पर जब स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं तब तुम जल की वृष्टि

करते हुए हमारी अपवित्रता को दूर भगाओ ॥ ४ ॥ क्या हमने अग्नि का विधि पूर्वक पूजन किया है और उन्होंने हमारी स्तुति और हवि को स्वीकार कर लिया है ? इसे कौन जानता है ? जैसे बुलाए जाने पर मित्र आता है, वैसे ही आह्वान करने पर अग्नि भी आते हैं। हमारी यह स्तुति और हमारा यह हव्य देवताओं की ओर गमन करें ॥ ५ ॥ [११]

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥
यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य क्तून्परि द्योतनि चरतो अजस्रा ॥ ७ ॥
यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ८ ॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ ९ ॥ १२

सूर्य द्वारा प्रेरित अमृत के समान गुण वाला जल पृथिवी पर विभिन्न रूप से रहता है। वह सूर्य यम को दोष मुक्त करते हैं। हे अग्ने ! क्षमा करने वाले सूर्य को तुम पुष्ट करो ॥ ६ ॥ यजमान के यज्ञ की वेदी में अपने को प्रतिष्ठित करने वाले देवता अग्नि का सामीप्य प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं। देवताओं ने सूर्य में तेज और चन्द्रमा में शीतलता स्थापित की। अग्नि और देवताओं द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए यह सूर्य और चन्द्रमा विशिष्ट महिमा को प्राप्त किये हुए हैं ॥ ७ ॥ देवता जिन अग्नि की निकटता से अपने कार्य को सम्पन्न करते हैं, हम उनके यथार्थ रूप को नहीं जानते। मित्र देवता, सूर्य और अदिति पावक नाम वाले अग्नि से हमको निष्पाप बतावें ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! अमृत रूप जल की वृष्टि करने वाले अपने रथ को जोड़ो और सब देवताओं से सम्पन्न हमारे यज्ञ में निवास करते हुए हमारी स्तुतियों को सुनो। अपने माता पिता रूप आकाश पृथिवी को हमें प्राप्त कराओ और तुम देवताओं के पास ही इस यज्ञ में विराजमान होओ ॥ ९ ॥ [१२]

सूक्त १३

(ऋषि—विवस्वानादित्यः । देवता—हविर्धाने । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१॥
यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२॥
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥ ३ ॥
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥ ४ ॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥ ५ ॥ १३

हे शकटद्वय ! प्राचीन स्तुतियों के द्वारा सोमादि को तुम पर रखकर मैं तुम्हें ले चलता हूँ । मेरी स्तुतियाँ हवियों के समान ही देवताओं के पास पहुँचें । जो देवता अपने आश्रय स्थान स्वर्ग में निवास करते हैं, वे मेरी स्तुति को सुनें ॥ १ ॥ हे शकटद्वय ! जब तुम युग्म,सजन्मा के समान गमन करते हो तब देवताओं का पूजन करने वाले पुरुष तुम्हारे ऊपर प्रचुर पूजन सामग्री लादते हैं । तुम हमारे सोम के लिए सुन्दर स्थान पाने के लिए अपने स्थान पर पहुँचो ॥ २ ॥ मैं यज्ञ के पाँचों उपकरणों को यथा स्थान रखता हुआ चार छन्दों का विधि पूर्वक प्रयोग करता हूँ । यज्ञ-वेदी पर सोम को शुद्ध करता हुआ मैं परमात्मा के ॐ नाम का उच्चारण करता हुआ अपने कर्म को सम्पन्न करता हूँ ॥ ३ ॥ कौन-सा देवता मृत्यु के आश्रय में जाय ? कौन-सा मनुष्य अमर हो ? यज्ञ करने वाले पुरुष मन्त्र से संस्कृत यज्ञ को करते हैं इसलिए यम उनकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ पुत्र के समान ऋत्विज् पिता के समान सोम के लिए सात छन्दों का उच्चारण करते हुए स्तुति

करते हैं। यह दोनों मकट, देवता और मनुष्य दोनों को ही तेज प्राप्त करावे तथा उन्हें पुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥ [१३]

सूक्त १४

(ऋषि—यमः । देवता—यम., लिङ्गोक्ता', पितरो वा श्वानौ. । छन्द–त्रिष्टुप् अनुष्टुप, बृहती)

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥ २ ॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥ ३ ॥
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥ ४ ॥
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ ५ ॥ १४

हे उपासक ! तुम पितरेश्वर यम की सेवा करो। उन्हें हव्यादि से तृप्त करो। श्रेष्ठ कर्म करने वालों को यम सुख-सम्पन्न लोक प्राप्त कराते हैं। वे उनके मार्ग को सरल करते हैं। क्योंकि सब प्राणी उन्हीं के पास पहुँचते हैं ॥ १ ॥ यम के मार्ग को कोई न रुक सका। जिस मार्ग से हमारे पूर्वज गए हैं, उसी मार्ग से जाते हुए सब प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही लक्ष्य पर पहुँचेंगे। ये सर्वश्रेष्ठ यम हमारे अच्छे और बुरे सब कर्मों के जानने वाले हैं ॥२॥ सारथि स्वामी इन्द्र कव्ययुक्त पितरों की सहायता से प्रवृद्ध होते हैं। बृहस्पति ऋक्व नामक पितरों की और यम अङ्गिरा नामक पितरों की सहायता से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। जो देवताओं की वृद्धि करने वाले होते हैं अथवा जिसे देवता बढ़ाते हैं, वे हर प्रकार बढ़ते हैं। इनमें से कोई

स्वाहा से और कोई स्वधा से हर्ष को प्राप्त होते हैं ॥३॥ हे यम ! तुम इस विस्तृत यज्ञ में अंगिरा नामक पितरों के साथ आओ। ऋत्विकों का आह्वान तुम्हें आकर्षित करे। तुम इस हवि से तृप्त होकर यजमान को सुखी करो ॥४॥ हे यम ! विभिन्न रूप वाले यज्ञकर्त्ता अंगिराओं के साथ आओ और हमारे यज्ञ में यजमान को सुख दो। मैं तुम्हारे पिता आदित्य का आह्वान करता हूँ, वे हमारे कुशों पर बैठकर यजमान को सुखी करें ॥५॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ८ ॥
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥६॥
अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०।१५

सोम के पात्र अंगिरा, अथर्वा और भृगु नामक पितरों ने यहाँ आगमन किया। हम उन पितरों की कृपा-पूर्ण दृष्टि में रहें और उनकी प्रसन्न करते हुए मङ्गलमय मार्ग पर चलें ॥६॥ हे पितः, जिस प्राचीन मार्ग से हमारे पूर्व पुरुष आ गए हैं, तुम भी उसी मार्ग से गमन करो और वहां स्वधा से प्रसन्न हुए राजा यम और वरुण देवता के दर्शन करो ॥७॥ हे पितः, श्रेष्ठ लोक स्वर्ग में अपने उत्तम कर्मों के फल को प्राप्त करते हुए अपने पितरों से संगति करो। पाप को त्याग कर तेजस्वी शरीर अर्पण करते हुए अस्त नामक ग्रह में प्रतिष्ठित होओ ॥८॥ हे श्मशान के पिशाचो ! यह स्थान पितरों ने इस मृत यजमान के लिए निश्चित किया है, अतः तुम

यहाँ से दूर चले जाओ। राजा यम ने यह स्थान मृतक के लिए निश्चित किया है तथा यह जल, दिवस और रात्रि के द्वारा सुसज्जित है ॥६॥ हे पित:, मनुष्यों द्वारा प्रशंसा करने योग्य, दिव्य मार्ग में रक्षा करने वाले तथा चार नेत्र और अद्भुत वर्ण वाले जो दो कुत्ते हैं, तुम उनके पास से शीघ्र निकल जाओ। यम के साथ रहने वाले पितरों के पास श्रेष्ठ मार्ग से पहुँचो ॥१०॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः ॥१३॥
यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥
त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६।१६

हे राजा यम! इस मृत व्यक्ति को कल्याण का भागी बनाते हुए अपने गृह-रक्षक तथा चार नेत्र वाले कुत्तों से इसकी रक्षा करो ॥११॥ यम के यह दोनों दूत लम्बी नाक और महान् बल वाले हैं। यह दूसरों के प्राण लेकर ही सन्तुष्ट होते हैं। वे दोनों हमको सूर्य का दर्शन करते रहने के लिए प्राणदान करें ॥१२॥ हे ऋत्विजो! यम के लिए हव्य अर्पित करो। इनके लिए सोम अर्पित करो। अग्नि देवता जिस यज्ञ के दूत हैं, वह विभिन्न पदार्थों वाला यज्ञ यम की ओर गमन करता है ॥ १३ ॥ हे

ऋत्विजो ! यम के लिए घृत से पूरा हव्य अर्पित करते हुए उनकी सेवा करो। वे यम हमारे लिए दीर्घ काल तक जीवित रखने वाली आयु प्रदान करें ॥१४॥ हे ऋत्विजो ! पूर्व काल में जिन ऋत्विजों ने सुन्दर मार्ग बनाया था, उनको हम नमस्कार करते हैं। तुम इन यमराज के निमित्त मधुर हव्य प्रदान करो ॥१५॥ राजा यम त्रिकद्रुक यज्ञ के योग्य हैं। वे छः स्थानों में रहने वाले यम सम्पूर्ण जगत में घूमते हैं। उन यमराज की त्रिष्टुप् ; गायत्री छन्दों से स्तुति करते हैं ॥१६॥

सूक्त १५

(ऋषि:—शंखो यामायनः । देवता—पितरः । छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२
आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठा ॥३॥
बर्हिषदः पितर ऊत्य र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४॥
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥१७

हमारी रक्षा के निमित्त अहिंसक होकर यज्ञ में आने वाले पितर हमारे रक्षक हों। उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी वाले सब पितर हम पर कृपा करते हुए इस यज्ञ में हमारी हवियों को स्वीकार करें ॥१॥ पूर्व-काल में या उसके पश्चात मरने वाले पितर अथवा जो पृथिवी पर आ गये हैं, या जिन्होंने भाग्यवानों के मध्य जन्म ले लिया है, उन सब पितरों को नमस्कार है ॥२॥ मैंने इस यज्ञ को सम्पन्न करने का उपाय

जान लिया है। कुशों पर विराजमान होकर हव्ययुक्त सोम का ग्रहण करने वाले पितर यहाँ आये हैं। अपने भले प्रकार परिचित पितरों को भी मैंने यहाँ पाया है ॥३॥ हे पितरो! तुम कुशों पर बैठने वाले हो। तुम्हारे उपभोग के लिए जो पदार्थ प्रस्तुत हैं उन्हें ग्रहण करते हुए हमको शरण प्राप्त कराओ। हमको कल्याण का भागी बनाते हुए, हमारे सब पापों को दूर करदो। इस समय यहाँ पधार कर सब अमंगलों से हमारी रक्षा करो ॥४॥ यह सभी श्रेष्ठ कुशों पर स्थित हैं। सोमरस के साथ इनका सेवन करने के लिए पितरों को आह्वान किया गया है। वे पितर यहाँ आकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए हमारी स्तुतियाँ स्वीकार करें और हमारे रक्षक हों ॥५॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्व ।
मा हिंसिष्ट पितर केन चिन्नो यद्व आग पुरुषता कराम ॥६॥
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्व प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥
येन पूर्वं पितर सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठा ।
तेभिर्यम संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भि प्रतिकाममत्तु ॥८॥
ये तातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैं ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यै कव्यै पितृभिर्घर्मसद्भि ॥९॥
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवै सरथं दधाना ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दै परै पूर्वै पितृभिर्घर्मसद्भि ॥१०॥१८

हे पितरो! हम अल्पज्ञ हैं, अत हमसे अपराध होना असम्भव नहीं है। हमारे किसी अपराध पर हमको हिंसित न करना, दक्षिण की ओर घुटने टेक कर बैठे हुए तुम हमारे इस यज्ञ की प्रशंसा करो ॥६॥ हे पितरो! लाल शिखा के समीप स्थित इन दानशील यजमानों को धन प्रदान करो। इनके पितरों को इस यज्ञ के लिए प्रेरित करो ॥७॥ सोम पीने योग्य जिन पितरों ने विधि पूर्वक सोम पिया था, वे भी हव्य की

कामना करते हैं । उन पितरों के साथ प्रसन्न होते हुए यमराज हव्य सेवन कर तृप्त होते हैं ॥८॥ हे अग्ने ! अनेक ऋचाओं की रचना करने वाले और यज्ञ के विधान को जानने वाले जो पितर अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा देवत्व को प्राप्त हो चुके हैं, वे यदि भूखे प्यासे हों तो हमारे पास आगमन करें । वे यज्ञ में बैठने वाले पितर हमारी श्रेष्ठ हवि से सन्तुष्ट हों ॥९॥ हे अग्ने ! जो सज्जन स्वभाव वाले पितर देवताओं के साथ आकर हव्य सेवन करते हैं, उन देवताओं की उपासना करने वाले, अनुष्ठानों के कर्ता, प्राचीन और नवीन तथा इन्द्र के साथ ही रथ पर आरूढ़ होने वाले पितरों के साथ तुम भी यहाँ आगमन करो ॥१०॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११
त्वमग्न ईळितो जातवेदो वाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२
ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥१६

हे पितरो ! सब यहाँ आकर पृथक-पृथक आसनों पर विराजमान होओ और कुशों पर रखे संस्कृत हव्य का सेवन करो । इसके पश्चात हमें पुत्र-पौत्रादि तथा पशुओं से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ॥११॥ हे अग्ने ! तुम सबके जानने वाले हो । तुमने हमारे हव्य को सुगन्धित करके पितरों को प्रदान किया है । हमारे वे पितर स्वधायुक्त हवि को ग्रहण करें और तुम भी हमारे इस श्रद्धा से समर्पित हव्य का सेवन करो, क्योंकि हमने तुम्हारी ही स्तुति की है ॥१२॥ हे सर्वज्ञ अग्ने ! यहाँ उपस्थित या अनुपस्थित, हमारे परिचित या अपरिचित जितने भी पितर हैं तुम उन सब

को जानते हो। हे पितरो ! इस स्वाधयुक्त यज्ञ से तृप्ति को प्राप्त होओ ॥१३॥ हे अग्ने ! जिन पितरों का अग्नि संस्कार हुआ अथवा जिनका दाह संस्कार नहीं हुआ, स्वर्गलोक में वे सब स्वधा से तृप्त रहते हैं। तुम उनसे सुसंगत होकर उनके शरीर को देवत्व की प्राप्ति कराओ ॥१४॥

सूक्त १६

(ऋषि–दमनो यामायनः। देवता—अग्निः। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥१॥
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥२॥
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३॥
अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥४॥
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५॥२०

हे अग्ने ! इस मृत पुरुष को कष्ट मत देना इसके देह को छिन्न-भिन्न मत करना। जब तुम्हारी ज्वालाएं इसके देह को भस्म करने लगें तभी इसे पितरों के पास पहुँचा देना ॥१॥ हे अग्ने ! इस मृतक को जब तुम दग्ध करने लगो तभी इसे पितरों को सौंप देना। जब यह पुनः प्राणवान् होगा तब यह देवाश्रय में रहेगा ॥२॥ हे मृत पुरुष ! तेरा श्वास वायु में मिले, तेरा नेत्र सूर्य से संगति करे, अपने पुण्य कर्मों के फल को प्राप्त करने के लिए स्वर्ग, पृथिवी अथवा जल में निवास कर। तेरे शरीर के अंश वनस्पतियों में व्याप्त हों ॥३॥ हे अग्ने ! इस देहधारी की देह में जो अजन्मा है, उसे

अपने ताप से तपाओ। तुम अपनी कल्याणमयी विभूतियों के द्वारा इसे पुण्य-लोक की प्राप्ति कराओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ में समर्पित हव्य का सेवन करने वाले अपने रूप को पितरों के पास प्रेरित करो। इसका अवशिष्ट आयु प्राणवान हो। हे अग्ने ! यह मृत व्यक्ति पुनर्जीवन को प्राप्त हो ॥५॥

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥६
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥७
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥८॥
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९
यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१०॥२१

हे मृतक ! तुम्हारे देह के जिस अवयव को कौए ने पीड़ित किया है या चींटी अथवा साँप ने काट लिया है, उस अवयव को अग्निदेवता पीड़ा रहित करें और जो सोम तुम्हारे देह में रम गया है वह भी उसे दोष-रहित करें ॥६॥ हे मृतक ! तुम अपने मेद और मांस से परिपूर्ण होओ और अग्नि-शिखा रूप कवच को धारण करो। तुम्हारे द्वारा इस प्रकार करने पर तुम्हें दग्ध करने को प्रस्तुत हुए अग्नि देवता तुम्हारे सम्पूर्ण अंश को नहीं जलावेंगे ॥७॥ हे अग्ने ! यह चमस सोम पीने के अभ्यासी देवताओं को आनन्द देने वाला है, तुम इसे हिंसित मत करना। इस देवताओं को पान कराने वाले चमस को देखकर ही देवता हर्षित हो उठते हैं ॥८॥ मांस भक्षक अग्नि, जिनके स्वामी यम हैं, उन्हीं का सामीप्य प्राप्त

करें। जो अग्नि यहाँ हैं, वेही हमारी हवियों को देवताओं के पास पहुँचावें ॥६॥ जो मांसभोजी चिता में वास करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे पास से दूर करता हूँ। इनसे भिन्न मेधावी अग्नि को मैं पितरों को यज्ञ प्राप्त कराने के निमित्त स्वीकार करता हूँ। वे हमारे यज्ञ को स्वर्ग में पहुँचावें ॥१०॥

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥
उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥१२
यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या सु सं गम इमं स्वग्निं हर्षय ॥१४।२२

[———] यज्ञ वर्द्धक और श्राद्ध द्रव्यों के वाहक जो अग्नि हैं, वही देवता और पितरों का आह्वान करते हैं तथा हव्यादि को उनके पास पहुँचाते हैं ॥११॥ हे अग्ने! तुम्हें विधिपूर्वक स्थापित करता हुआ मैं विधिपूर्वक ही प्रदीप्त करता हूँ। तुम यज्ञ की कामना वाले देवताओं और पितरों के पास हव्य पहुँचाते हो ॥१२॥ हे अग्ने! जिसे तुमने दग्ध किया है, उसे शान्त करो। यहाँ शाखाओं वाली घास और जल उत्पन्न हो ॥१३॥ हे शीतल वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, तुम शीतलता धारण करो! तुम आनन्दमयी औषधियों से सम्पन्न स्वयं भी मंगलमयी हो। अग्नि को तृप्त करती हुई, मेंढकी को इच्छानुकूल वृष्टि को प्राप्त कराओ ॥१४॥

सूक्त १७ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—देवश्रवा यामायनः । देवता—सरण्यू, पूषा, सरस्वती, आपः, सोमः छन्द—बृहती, अनुष्टुप्)

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महोजाया विवस्वतो ननाश ॥१
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३॥
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु॥४
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५।२३

त्वष्टा देवता अपनी पुत्री सरण्यू का विवाह कर रहे हैं । इसमें सम्मिलित होने को विश्व के सब प्राणी आये । जब यम की माता सरण्यू का पाणिग्रहण हुआ, तब सूर्य की पत्नी कहीं छिप गई ॥ १ ॥ सरण्यू मनुष्यों के पास छिपाई गई और उसके समान रूप वाली स्त्री की रचना करके सूर्य को दी गई । तब अश्व के रूप वाली सरण्यू ने अश्विद्वय को धारण कर जुड़वाँ सन्तान उत्पन्न की ॥२॥ हे मेधावी पुरुष संसार के पालनकर्त्ता पूषादेव तुम्हें श्रेष्ठलोक प्राप्त करावें और अग्नि देवता तुम्हें धनदाता देवताओं के पास पहुँचावें ॥ ३ ॥ तुम्हारे इच्छित स्थान के प्राप्त कराने वाले पूषा सम्पूर्ण विश्व के प्राणरूप हैं, वे तुम्हारे प्राण की रक्षा करें । सविता देवता तुम्हें पुण्यवानों के लोकों में पहुंचावें ॥४॥ कल्याण के देने वाले पूषा सब दिशाओं के ज्ञाता हैं । वे हमें भय रहित मार्ग से लेजायें । उन तेजस्वी पूषादेव के साथ सब योद्धा हैं अतः वे हमारे सुपरिचित देवता हमारे अभिमुख होने की कृपा करें ॥५॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥७॥
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥८॥
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९॥
आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०॥२४॥

पूषादेव ने आकाश-पृथिवी के मध्य स्थित उत्कृष्ट मार्ग में दर्शन दिया है। अपने से सुसंगत होने वाली एवं परस्पर मिली हुई आकाश पृथिवी को वे विशेष रूप से पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥ देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले यजमान सरस्वती का आह्वान एवं पूजन करते हैं। जब देवताओं वाला विस्तृत यज्ञ आरम्भ हुआ, तभी श्रेष्ठ कर्म करने वालों ने सरस्वती को आहूत किया। वे सरस्वती देवी इस दानशील यजमान की कामना को पूर्ण करें ॥ ७ ॥ हे सरस्वते! तुम पितरों के साथ एक रथ पर चढ़ कर आगमन करो और प्रसन्नता पूर्वक हव्यादि का उपभोग करो। हमारे यज्ञ में आकर आरोग्य और अन्न प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे सरस्वते! यज्ञ स्थान के दक्षिण ओर बैठे हुए पितर तुम्हारा आह्वान करते हैं। इस यज्ञ करने वाले यजमान के लिए तुम दिव्य धन और श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न करो ॥ ९ ॥ माता के समान पोषक जल हमें पवित्र करें। घृत रूपी जल हमारे मल का शोधन करें। जल देवता हमारे पापों को बहा लें। जल के द्वारा पवित्र हुए हम अस्वच्छ न रहें ॥१०॥ [२६]

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम्॥१२॥
यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुरवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३॥
पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥१४॥ २५ ॥

इस यज्ञ स्थान पर श्रेष्ठ रस वाले उज्वल सोम क्षरित होते हैं। सात यज्ञकर्त्ता उन्हीं रस रूप सोम की आहुति देते हैं ॥ ११ ॥ हे सोम ! अभिषवण फलक के समीप गिरने वाले तुम्हारे अंश को, छन्ने पर आरूढ़ हुए तुम्हारे अवयवों को अथवा गिरते हुए तुम्हारे रस को नमस्कार करते हुए हम यज्ञ करते हैं ॥ १२ ॥ हे सोम ! स्रुक नामक पात्र के नीचे गिरते हुए तुम्हारे अंश को अथवा बाहर होने वाले तुम्हारे रस को बृहस्पति प्राप्त करें, जिससे हम धन पा सकेंगे ॥ १३ ॥ जैसे वनस्पति दूध के समान तरल रस से सम्पन्न हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ दूध के समान मधुर रस वाली वाणी से युक्त हैं। इन सब पदार्थों के द्वारा हमको संस्कृत बनाओ ॥ १४ ॥ [२५]

सूक्त १८

(ऋषिः—सङ्कुसुको यामायनः । देवता—मृत्युः, धाता, त्वष्टा पितृमेधः, पितृमेधः प्रजापतिर्वा । छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्)

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥
मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥३॥

इम जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥४॥
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥५॥ २६ ॥

हे मृत्यु, तुम देवयान मार्ग से भिन्न मार्ग के द्वारा गमन करो। मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि तुम हमारे पुत्र, पौत्रादि वीरों को हिंसित न करना। तुम चक्षु से युक्त हो और सबके जानने वाले हो ॥ १ ॥ हे मृतक के कुटुम्बियो ! तुम पितृ-यान मार्ग को त्यागो। इससे तुम दीर्घजीवी होगे। हे यज्ञ करने वालो ! तुम पुत्र-पौत्रादि संतान और गवादि पशुओं वाले होकर सुख पाओ और पूर्व जन्म के अथवा इस जन्म के पापों से मुक्त होओ ॥ २ ॥ हमारा यह पितृमेध यज्ञ कल्याण करने वाला हो। मृतक के पास से जीवित मनुष्य लौट आवें। हम हर प्रकार की क्रीड़ाओं के लिए सामर्थ्य प्राप्त करें और दीर्घजीवी हों ॥ ३ ॥ पुत्र पौत्रादि को मरण मार्ग से रक्षित करने के लिए मृत्यु को रोकने के लिए मैं प्रस्तर विधान करता हूँ। यह सब इस पाषाण खंड के द्वारा शतायुष्य हों ॥ ४ ॥ जैसे दिन जाते और आते हैं, वैसे ही ऋतु भी जाती और आती हैं। जैसे पूर्वजन्मा पुरुषों के रहते पुत्र आदि नहीं मरते वैसे ही हे विधाता ! हमारी आयु को अकाल में ही क्षीण न होने दो ॥ ५ ॥   [२६]

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥६॥
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥७॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥८॥
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥९॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात ॥१०।२७।

हे मृतक के पुत्रादि संबंधियो ! तुम अपनी आयु में स्थित रहते हुए वृद्धि को प्राप्त होओ । बड़े के पश्चात् छोटे भ्राता के क्रम से कार्यों में लगो । हे त्वष्टादेव ! तुम श्रेष्ठ जन्म वाले हो तुम इन मनुष्यों की दीर्घायु करो ॥३॥ यह सुन्दर पति वाली सधवा नारियाँ घृत युक्त काजल लगाती हुई अपने गृह को प्राप्त हों । यह नारियाँ आसुओं को त्याग कर, मनोविकार को दूर करती हुई सुन्दर ऐश्वर्य वाली होकर सब से आगे चलती हुई अपने घरों को प्राप्त हों ॥ ७ ॥ हे मृतक की पत्नी, तुम्हारा यह पति मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, अब तुम इसके पास व्यर्थ बैठी हो । अपने पुत्रादि और घर का विचार करती हुई उठो । तुम इस पति के साथ गर्भ धारण आदि स्त्री कर्तव्य को पूर्ण कर चुकी हो और तुम इसके प्राण के चले जाने की बात भी जानती हो, अतः घर को लौटो ॥ ८ ॥ मृतक के हाथ से धनुष को ग्रहण करता हुआ मैं अपने सन्तान आदि की रक्षा, तेज और बल के लिए कहता हूँ । हम वीर सन्तानों से सम्पन्न हों और अपने अहंकारी वैरियों को पराजित करने वाले हों । हे मृतक ! तुम यहाँ ही रहो ॥ ९ ॥ हे मृतक ! यह पृथिवी तुम्हारे लिए माता के समान है, अतः तुम इसी सुख देने वाली, महिमावती पृथिवी के अंक में पहुँचो । यह तुम्हारे लिए कोमल स्पर्श वाली बने । तुमने जो यज्ञादि उत्तम कर्म किये हैं, उनके फल रूप यह पृथिवी तुम्हारी हर प्रकार से रक्षा करे ॥ १० ॥ [२७]

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥११॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।

एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३॥
प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥२८॥

हे पृथिवी ! मृतक को संताप से बचाने के लिए ऊँचा करो । तुम इसकी परिचर्या करने वाली बनो । जैसे माता अपने पुत्र को ढकती है, वैसे ही इस कंकाल रूप मृतक को तुम अपने तेज से ढक दो ॥ ११ ॥ पृथिवी स्तूप के आकार में होकर इस मृतक के ऊपर आच्छादन करे । वह अपने हजारों धूलिकणों को इस पर डाल दें । यह पृथिवी घृत से सम्पन्न घर के समान इसको आश्रय देने वाली होकर इसे सुख दे ॥ १२ ॥ हे कंकाल ! पृथिवी को उत्तम्भित करके तुम्हारे ऊपर रखता हूँ और तुम्हारे ऊपर लोष्ट रखता हूँ जिससे मिट्टी आदि के कण तुम्हें क्लेश न पहुँचावें । यह खूँटी पितरगण धारण करें और पितरों के स्वामी यम तुम्हें यहाँ निवास दें ॥ १३ ॥ हे प्रजापते ! बाण के मूल में जैसे पंख लगाए जाते हैं, वैसे ही मुझ संकुसुक ऋषि को सब देवताओं ने संवत्सर रूप दिवस में प्रतिष्ठित किया है । जैसे लगाम से घोड़े को नियंत्रित रखते हैं, वैसे ही तुम मेरी स्तुति को नियंत्रित रखो ॥ १४ ॥   [२८]

॥ षष्ठ अध्याय समाप्त ॥

सूक्त १९

(ऋषिः—मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः । देवता—आपो गावो वा, अग्नीषोमौ । छन्दः—अनुष्टुप्, गायत्री)

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयत रयिम् ॥१॥
पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥२॥
पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।

इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ।।३।।
यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ।।४।।
य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ।।५।।
आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ।।६।।
परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवा. के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ।।७।।
आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ।।८।। १ ।।

हे गौओ ! तुम हमको छोड़ कर अन्य किसी के पास मत जाओ । तुम अन्न-धन से सम्पन्न हो अतः दूध प्रदान द्वारा हमारी सेवा करो । हे अग्ने ! तुम बारम्बार धन प्रदान करने वाले हो, अतः तुम और सोम हमको धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे यजमान ! इन गौओं को बारम्बार हमारे अभिमुख करो । फिर इन पर अधिकार करो । इन्द्र इन गौओं को तुम्हारे यहाँ रहने वाली करें और अग्नि देवता इन्हें दूध देने वाली बनावें ॥ २ ॥ मेरे वश में रहने वाली यह गौऐं बारंबार मेरे अभिमुख हों । हे अग्ने ! तुम इन्हें मेरे पास रहने वाली करो । यह यहाँ रहती हुई पुष्टि को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ मैं गौओं से सम्पन्न गोष्ठ की स्तुति करता हूँ । गौओं के घर लौट कर आने और सबके एकत्रित होने की कामना करता हूँ । वे गौऐं चरने जाँय और लौट कर घर आवें । गौओं के चराने वाले ग्वाले की भी स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥ गौओं के चराने वाला जो ग्वाला गौओं को ढूँढ़ कर घर पर ले आता है, वह गौओं को चरा कर सकुशल घर को लौट आवे ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारा पक्ष लो । हमें गौऐं प्रदान करते हुए उन्हें हमारी ओर प्रेरित करो ।

यह गौएं दीर्घ आयु वाली हों और हम इनके दूध का उपभोग करें ॥ ६ ॥ हे यज्ञ के पात्र देवताओ ! मैं घृत, अन्न और दुग्धादि से युक्त हव्य तुम्हें अर्पित करता हूँ। तुम मुझे गवादि धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे गौओं के चराने वाले पुरुष ! इन गौओं को मेरे पास लाओ,इन गौओं को यहाँ लौटा लाओ। हे गौओ ! तुम भी इधर लौट आओ। मैं कहाँ से लौटा लाऊँ ? हम कहाँ से लौटें। सब दिशाओं से गौओं को लौटा लाओ। हे गौओ ! तुम भी सब दिशाओं से लौट कर यहाँ आओ ॥ ८ ॥ [१]

सूक्त २०

(ऋषिः—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र । देवता—अग्निः। छन्दः—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री)

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ १ ॥
अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्व रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥ २ ॥
यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ॥३॥
अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् ।
कविरभ्रं दीद्यानः ॥ ४ ॥
जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे । मिन्वन्त्सद्म पुर एति ॥५॥
स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥ ६ ॥ २ ॥

हे अग्ने ! हमारे मन को सुन्दर करो ॥ १ ॥ मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। वह अग्नि हवि-ग्राहक देवताओं में कनिष्ठ, तरुणतम, दुर्धर्ष और सब के सखा हैं। यह दुग्ध देने वाले गौ के थन के आश्रित रह कर प्राणवान् होते हैं ॥ २ ॥ यह अग्नि यज्ञ के आश्रय रूप एवं ज्वालामय हैं। मेधावी जन इन्हें स्तुतियों से बढ़ाते हैं और अग्नि भी स्तुति करने वालों की कामना पूर्ण करते हैं ॥ ३ ॥ यजमानों के आश्रय के योग्य अग्नि दीप्त होकर जब

अपनी ज्वालाओं को उन्नत करते हैं, तब वे आकाश और मेघ को भी व्याप्त करते हैं ॥ ४ ॥ अग्निदेव अनेक ज्वालाओं वाले होकर यजमान के यज्ञ में हवि सेवन करते हुए उन्नत होते हैं और उत्तरवेदी को पार करते हुए अभिमुख होते हैं ॥ ५ ॥ अग्नि ही यज्ञ हैं, वही पुरोडाशादि हैं। यह देवताओं का आह्वान करने वाले और सबके पालक हैं ॥ ६ ॥ [२]

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥७॥

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः ।
अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥ ८ ॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥ ९ ॥

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०।३।

जो अग्नि-देवता पाषाणों के घर्षण से उत्पन्न होने के कारण पाषाण-पुत्र कहाते हैं, जो यज्ञ को धारण करके देवताओं का आह्वान करते हैं, मैं उन अग्नि की श्रेष्ठ ऐश्वर्यमय सुख की प्राप्ति के लिए पूजा करता हूँ ॥ ७ ॥ हमारे जो पुत्र-पौत्रादि पुरोडाश आदि से अग्नि को प्रवृद्ध करते हैं, वे उपभोग्य पशु आदि वाले धन में प्रतिष्ठित होंगे ॥ ८ ॥ कृष्ण वर्ण और शुभ्र-वर्ण वाला जो रथ अग्नि के गमन के लिए है वह लोहित वर्ण मिश्रित, सरलता से गमनशील और श्रेष्ठ यश वाला है। विधाता ने उसे स्वर्ण के समान दैदीप्यमान वर्ण देते हुए रचा है ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम वनस्पतियों के भी पुत्र कहाते हो, क्योंकि समिधाओं द्वारा तुम्हारी उत्पत्ति है। तुम अविनाशी ऐश्वर्य के स्वामी हो। यह स्तोत्र श्रेष्ठ ज्ञान की कामना वाले विमद ऋषि ने रचे हैं। अतः इन स्तुतियों को स्वीकार करते हुए तुम मुझ विमद को सुन्दर निवास, श्रेष्ठ बल और पालन के योग्य अन्न आदि प्रदान करो ॥ १० ॥ [३]

सूक्त २१

(ऋषिः—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः । देवता—अग्निः । छन्दः—पङ्क्तिः ।)

आग्नि न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥
त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२॥
त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे॥३॥
यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४॥
अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥४॥

हम अपने स्वरचित स्तोत्र से देवताओं का आह्वान करने वाले अग्नि को अपने यज्ञ में वरण करते हैं। हे अग्ने! तुम अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं को विमद के यज्ञ में प्रदीप्त करो ॥ १ ॥ हे अग्ने! तुम्हें धन से सम्पन्न यजमान प्रतिष्ठित करते हैं। सरल गति वाली क्षरणशील हवि तुम्हारी ओर गमन करती है, क्योंकि तुम अत्यंत महिमा वाले हो ॥ २ ॥ हे अग्ने! यज्ञ का सम्पादन करने वाले ऋत्विज् जैसे जल पृथिवी को सींचता है, वैसे ही हवन पात्रों द्वारा तुम्हें सींचते हैं। तुम ज्वाला रूपी कृष्णादि वर्ण वाली आभा वाले होकर देवताओं को हर्ष देने वाले होते हो, क्योंकि तुम महान् हो ॥३॥ हे अग्ने! तुम बलवान् और अविनाशी हो। तुम जिस ऐश्वर्य को श्रेष्ठ मानते हो, उस अन्नादि युक्त अद्भुत ऐश्वर्य को हमारे लिए लाओ। हे महान् अग्ने! सब देवताओं को अपने उस धन से तृप्त कराने वाले होओ ॥ ४ ॥ इन अग्नि को अथर्वा ऋषि ने प्रकट किया था। यह अग्नि सब प्रकार के स्तोत्रों के ज्ञाता

हैं। हे अग्ने ! देवताओं का आह्वान करने के लिए तुम यजमान के लिए दौत्य कर्म करते हो। हे महान् अग्ने ! यजमान तुम्हारी कामना करते हैं ॥ ५ ॥ [५]

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७॥
अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८॥५

हे अग्ने ! तुम महान् हो, क्योंकि हवि देने वाले विमद को सब प्रकार का धन प्रदान करते हो। यज्ञ का आरम्भ होने पर ऋत्विज और यजमान सब तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम महान् हो । तुम्हारे व्यापक तेज से प्रभावित हुए यजमान अपने यज्ञ में विधिपूर्वक तुम्हारी स्थापना करते हैं । तुम आहुतियों के योग्य मुख वाले और प्रकाश से पूर्ण हो ॥७॥ हे महान् अग्ने ! तुम अपने महिमायुक्त तेज के द्वारा ही विख्यात हो। युद्ध-काल में तुम अहंकारी बैल के समान शब्द करने वाले होते हो। तुम औषधियों में बीज डालते हो और सोम आदि का मद प्राप्त होने पर प्रवृद्ध होजाते हो ॥८॥ [५]

सूक्त २२

(ऋषि—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुकः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१॥
इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।२

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तू तुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३॥
युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४
त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥५॥६

आज इन्द्र कहाँ हैं ? वे किस व्यक्ति को मित्र मान कर रमे हैं ? किस ऋषि के आश्रम में अथवा कौन-सी गुफा में उनकी ही स्तुति कर रहे हैं क्योंकि वे वज्रधारी इन्द्र स्तुतियों के योग्य हैं। वे स्तोता के मित्र होने वाले इन्द्र स्तुति करने वाले की विशेष प्रकार से प्रशंसा करते हैं ॥२॥ बल के स्वामी इन्द्र स्तुति करने वालों को महान् ऐश्वर्य देने वाले हैं। वे अनन्त बल वाले, शत्रुओं के धर्षक और वज्र के धारणकर्त्ता हैं। वे इन्द्र पिता द्वारा पुत्र की रक्षा करने के समान ही हमारी रक्षा करने वाले हों ॥३। हे वज्रिन् ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो और वायु की गति वाले अपने अश्वों को सरल मार्ग पर चलाने वाले हो। तुम उन घोड़ों को रथ में योजित कर रण क्षेत्र में सदा स्तुत होते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने सरलगामी, वायु के वेग के समान, रथ में योजित अश्वों को चलाते हुए हमारे सामने आते हो। तुम्हारे इन अश्वों को अन्य कोई देवता नहीं चला सकता। और इन अत्यन्त बलवान् अश्वों के बल को भी कोई नहीं जानता ॥५॥ [६]

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥६
आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

त्वं तस्या मिन्नहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥८
त्वं न इन्द्र शूर शरैरुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥६
त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नृन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१०॥७

हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारे अपने धाम को लौटने के समय उशना ने तुमसे बातें कीं । तुम इतनी दूर से हमारे यहां क्यों आए हो ? तुम आकाश से पृथिवी लोक में स्थित मेरे घर पर केवल अपनी कृपा के लिए ही पधारे हो ॥६॥ हे इन्द्र ! हमने यह यज्ञ सामग्री संजोई है । तुम अपने तृप्त होने तक इसका सेवन करो । हम भी तुमसे अन्न की याचना करते हैं । हमारा वह अन्न नष्ट न हो । जिस वज्र से राक्षस नष्ट हो सकें, वह वज्र भी हमें प्रदान करो ॥७॥ हमारे सब ओर यज्ञ विमुख राक्षस रहते हैं । वे वेदोक्त कर्मों को नहीं मानते । अतः हे शत्रुओं का नाश करने वाले इन्द्र ! इन असुरों को नष्ट कर डालो ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा पाकर हम शत्रुओं को मारने में समर्थ हों । तुम मरुद्गण के सहित हमारी रक्षा करो । जैसे सेवक अपने स्वामी को लपेटते हैं, वैसे तुम्हारे प्रदत्त धन स्तुति करने वालों को लपेटते हैं ॥९॥ हे वज्रिन् ! मरुद्गण प्रसिद्ध हैं, तुम जब स्तोताओं के श्रेष्ठ स्तोत्रों को श्रवण करते हो, तब उन मरुद्गण को वृत्र का नाश करने की प्रेरणा देते हो ॥१०॥ [७]

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२॥
अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३॥

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥८

हे वज्रिन्! रणक्षेत्र में तुम विकराल कर्म करने वाले होते हो। मरुद्गण को साथ लेकर तुमने शुष्ण का समूल नाश किया। प्रसन्न होने पर तुम सदा दानशील होते हो ॥११॥ हे इन्द्र! हमारी आशाएं नष्ट न हों। हे वज्रिन् हमारी कामनाएं फलरूप मंगलकारिणी हों ॥१२॥ हे इन्द्र! तुम हमारी हिंसा करने वाले न होओ। तुम्हारी कृपा हम पर बनी रहे। जैसे गौ का दूध भोगने योग्य होता है, वैसे ही तुम्हारे दिये हुए फलों को हम भोगें ॥१३॥ हाथ पावों से रहित यह पृथिवी देवताओं के कर्म से ही विस्तीर्ण हुई है। हे इन्द्र! तुमने इस पृथिवी की परिक्रमा करके ही शुष्ण को मारा था ॥१४॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! इस सोमरस को शीघ्र पियो। तुम इसके द्वारा बली होकर हमें हिंसित न करना। हे इन्द्र! स्तुति करने वाले यजमान की रक्षा करते हुए उसे अत्यन्त धनवान् बनाओ ॥१५॥ [८]

सूक्त २३

(ऋषि—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः देवता—इन्द्रः छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥१॥
हरीन्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव
क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥२॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद् धूनोति वातो यथा वनम् ॥४
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५
स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥६
माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥७।६

अपने हर्यश्वों को रथ में योजित करने वाले इन्द्र दक्षिण हस्त में वज्र धारण करते हैं। ऐसे इन्द्र की हम पूजा करते हैं। वे सोम पान के पश्चात् अपनी मूँछों को हिलाते हुए विस्तृत आयुधों के सहित शत्रु-नाश के लिए प्रकट होते हैं ॥१॥ श्रेष्ठ तृण सेवन करने वाले अपने दोनों अश्वों को लेकर इन्द्र ने वृत्र का हनन कर डाला। यह इन्द्र अत्यन्त बली भयंकर तेजस्वी और धन के स्वामी हैं। उनकी सहायता से मैं राक्षसों का नाम तक मिटा देने का इच्छुक हूँ ॥२॥ इन्द्र जब अपने तेजस्वी वज्र को उठाते हैं, तब वे अपने उसी रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हैं, जिसे हरे रंग वाले दो द्रुतगामी अश्व वहन करते हैं। वह इन्द्र सबके द्वारा जाने हुए श्रेष्ठ अन्नों और धनों के स्वामी हैं ॥३॥ जैसे वर्षा के जल से पशु भीगते हैं, वैसे ही हरे सोम के रस से इन्द्र अपनी मूँछों को भिगोते हैं। फिर वे श्रेष्ठ यज्ञ स्थान में पहुँच कर प्रस्तुत मधुर सोम का पान करते हैं और जैसे वायु जंगल के वृक्षों को हिलाते हैं, वैसे ही यह अपनी मूँछ-दाढ़ी को हिलाते हैं ॥४॥ विभिन्न प्रकार के उत्तेजनात्मक वाक्यों को बोलने वाले शत्रुओं को इन्द्र ने अपनी ललकार से चुप किया और उन हजारों शत्रुओं को मार डाला। पिता जैसे अन्न से पुत्र को पुष्ट करता है वैसे ही इन्द्र हम मनुष्यों का पोषण करते हैं। हम इन्द्र के इन सब कर्मों का कीर्तन

करते हैं ॥५॥ हे इन्द्र ! तुमको अत्यन्त श्रेष्ठ मानकर ही यह विस्तृत स्तोत्र विमद ऋषियों द्वारा रचा गया है। हम तुम्हारी स्तुतियों के साधन को जानते हैं । जैसे भोजन का लोभ दिखाकर चरवाहा गौ को अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार हम भी इन्द्र को आहूत करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र! विमद से तुमने जो सख्यभाव स्थापित किया है, उसे शिथिल मत होने देना। जैसे भाई बहिन समान मन वाले होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा मन हमारी ओर हो और हमारा बन्धुभाव सदैव बना रहे ॥७॥

सूक्त २४

('ऋषिः—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः । देवता—इन्द्रः, अश्विनौ। छन्द—पंक्तिः अनुष्टुप्)

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे
सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥१॥

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं
नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२॥

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे
द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४
विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ॥५
मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।

ता नो देवा देवतथा युवं मधुमतस्कृतम् ॥६॥१०

यह मधुर सोम अभिषवण फलकों पर पीसा गया है। हे इन्द्र ! यह तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है। इसे ग्रहण करते हुए हमको सहस्रों धन प्रदान करो। तुम महान् हो ॥१॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारा हव्यादि के द्वारा आह्वान करते हैं। तुम हमारे सब कर्मों के स्वामी हो। तुम हमको अत्यन्त श्रेष्ठ ऐश्वर्य दो; क्योंकि मुझ विमद के लिए तुम महिमावान् हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम पूजक को सेवा की प्रेरणा करते हो। तुम विभिन्न काम्य पदार्थों के ईश्वर हो। हे स्तुति करने वालों के रक्षक इन्द्र ! हमें शत्रु से और पाप से मुक्त करो ॥३॥ हे अश्विद्वय ! तुम विचित्र कर्म वाले और यथार्थ रूप वाले हो। जब विमद ने तुम्हारा स्तोत्र किया था, दोनों काष्ठों को एकत्र कर उनके घर्षण द्वारा तुम्हें प्रकट किया ॥४॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम्हारे हाथों में स्थित दोनों अरणियां अग्नि की चिंगारी छोड़ने लगीं, तब सभी देवताओं ने तुम्हारी प्रशंसा की। सभी देवताओं ने उन्हें बारम्बार ऐसा करने को कहा॥५॥ हे अश्विनीकुमारो ! मैं शुभ समय में यात्रा करूँ। लौट कर आऊँ तब भी मधुर समय हो। तुम दिव्य शक्तियों से सम्पन्न हो अतः हमको हर प्रकार सुखी करो।६॥[१०]

सूक्त २५

(ऋषिः—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुकः । देवता—सोमः ॥ छन्दः—पंक्तिः)

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥१॥
हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥२॥
उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

मधु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽश्वा इव ।
ऋणुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४॥
तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५।११॥

हे सोम ! हमारे मन को श्रेष्ठ कर्मों में निपुणता प्राप्त कराने वाला बनाओ। गौएँ जैसे तृण की कामना करती हैं, वैसे ही स्तोता अन्न की कामना करते हैं। तुम विमद ऋषि के निमित्त महान् गुण वाले होओ ॥ १ ॥ हे सोम ! अपने स्तोत्रों से तुम्हारे मन को आकर्षित करने वाले स्तोता चारों ओर बैठते हैं, तब धन प्राप्ति की अभिलाषा होती है। तुम विमद के लिए महान् होओ ॥ २ ॥ हे सोम ! मैं अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से तुम्हारे कार्य के विस्तार को जानता हूँ। जैसे पिता पुत्र को चाहता है, वैसे ही तुम हमको चाहने वाले होओ। हे शत्रु विमद के लिए महान् सोम ! तुम हमको सुख देने के लिए शत्रु संहारक बनो ॥ ३ ॥ जैसे घड़े के द्वारा कुँए से जल निकाला जाता है, वैसे ही हमारे स्तोत्र तुम्हें पात्र से निकालते हैं। जैसे प्यासा मनुष्य नदी के किनारे से पात्र को जल-पूर्ण करता है, वैसे ही तुम हमको पूर्ण करो। हे महान् सोम ! तुम हमारी जीवन-रक्षा के लिए इस यज्ञ को पूर्ण करो ॥ ४ ॥ विभिन्न फलों की कामना करने वाले मनुष्यों ने अनेक कर्म करके हे सोम ! तुम्हें संतुष्ट किया है अतः तुम गौ और घोड़ों से सम्पन्न गोशाला प्रदान करो। तुम महान् गुण करने वाले और मेधावी हो ॥ ५ ॥ [११]

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥६॥
त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७॥

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९॥
अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१०॥
अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे।११।१२

हे सोम ! हमारे पशुओं और सुसज्जित घरों की रक्षा करो । विभिन्न रूपों में स्थित सब लोकों की भी रक्षा करो । तुम सब लोकों को देखते हुए हमारे लिए जीवन लेकर आते हो । तुम मुझ विमद के लिए महान् हो ॥६॥ हे दुर्धर्ष सोम ! हमारी हर प्रकार रक्षा करो । हमारे शत्रुओं को दूर भगा दो । विमद के लिए महान् गुण वाले सोम ! हमारे निन्दक अपने दुष्कर्म में सफल न हो पावें ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठ कर्म वाले सोम ! तुम धन-दान के लिए सावधान रहने वाले हो । तुम्हारे समान हमको भूमि दान करने वाला कोई दाता नहीं है । हे महान् ! तुम हमारी पापों से रक्षा करो । और शत्रुओं के हाथ से भी हमें बचाओ ॥ ८ ॥ विकराल युद्ध उपस्थित होने पर अपनी प्रजाओं का भी बलिदान करना पड़ जाता है । हे सोम ! जब हमें सब ओर से युद्ध के लिए चुनौती दी जाती है, तब तुम इन्द्र की सहायता करते हुए उनकी रक्षा करते हो । तुम महान् एवं शत्रुओं का नाश करने वाले हो । तुम्हारी समता कोई नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ हर्ष प्रदायक सोम इन्द्र को तृप्त करते हैं । वे सब कार्यों को शीघ्रता से कराने वाले हैं । उन्होंने कक्षीवान् की बुद्धि को तीव्र किया था । हे सोम ! मुझ विमद ऋषि के लिए तुम महान् हो ॥ १० ॥ हवि देने वाले यजमान को सोम पशुओं से युक्त धन प्रदान करते हैं और सप्त होताओं को भी उत्कृष्ट धन देते हैं । इन्होंने लुंज परावृज ऋषि को पाँव और नेत्र-हीन दीर्घतमा ऋषि को चक्षु प्रदान किये थे । हे सोम ! तुम महान् हो ॥ ११ ॥

[१२]

सूक्त २६

(ऋषिः—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः । देवता—पूषा । छन्दः—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१॥
यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।
विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥२॥
स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा ।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥३॥
मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥४॥
प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५॥ १३ ॥

इन अत्यंत श्रेष्ठ स्तोत्रों को पूषा देवता के निमित्त किया जाता है। वे सदा रथ में अश्व योजित करते हुए आते हैं। वे यजमान और उसकी भार्या की रक्षा करें ॥ १ ॥ उन मेधावी पूषा के स्थान में जो जल राशि है, उसे वे इस यज्ञ के द्वारा पृथिवी पर बरसावें। वे पूषा देवता यजमान की स्तुतियों को ध्यान से सुनते हैं ॥ २ ॥ वह श्रेष्ठ स्तोत्रों के श्रवण करने वाले पूषा सोम के रस को सींचते हैं। वे जल वृष्टि करने वाले सूर्य हमारे गोष्ठ में भी जल वृष्टि करते हैं ॥ ३ ॥ हे पूषादेवता, तुम हमारे स्तोत्र को तीक्ष्ण करो। हम तुम्हारा ध्यान करते हुए सेवा में लगे रहते हैं ॥ ४ ॥ यज्ञ के आधे भाग को पूषा प्राप्त करते हैं। वे रथ में अश्व योजित कर चलते हैं। वे मनुष्यों के हितैषी और मेधावी मित्र तथा शत्रुओं के भगाने वाले हैं ॥ ५ ॥ [१३]

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६॥

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७॥
आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८॥
अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥९॥ १४ ॥

यह सूर्य देवता सब पशुओं के स्वामी हैं। भेड़ की ऊन के वस्त्र को वही बुनते और वही धोते हैं ॥ ६ ॥ सूर्य सबको पुष्टि देने वाले अन्नों के स्वामी हैं। वे सुन्दर और तेजोमय रूप वाले पूषा अपने कर्म में मूँछ-दाढ़ी को हिलाते हुए चलते हैं ॥ ७ ॥ हे पूषन्! तुम्हारे रथ के धुरे को छाग वहन करते हैं। तुम अत्यन्त प्राचीन काल में उत्पन्न हुए हो। सभी कामना वाले उपासकों की कामनाओं को तुम सिद्ध करते हो ॥ ८ ॥ हमारे रथ की पूषा अपने बल से रक्षा करें। वे हमारे आह्वान को सुनें और अन्न को बढ़ावें ॥ ९ ॥ [१४]

सूक्त २७

(ऋषिः—वसुक्र ऐन्द्रः । देवता—इन्द्र । छन्दः—त्रिष्टुप्)

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥ १ ॥
यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥ २ ॥
नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३॥
यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५।१५॥

(इन्द्र) हे स्तोता ! मैं सोम याग करने वाले यजमान की कामना पूर्ण करने वाला हूँ । जो सत्य का पालन नहीं करता और यज्ञ में हवि आदि नहीं देता, उसे मैं नष्ट कर देता हूँ । मैं दुष्कर्मी पापों को भी मिटा देता हूँ ॥ १ ॥ (ऋषि) हे इन्द्र ! देवताओं का अनुष्ठान न कर अपने ही उदर को भरने वाले पापियों से मैं युद्ध करूँगा । उस समय हवि देकर मैं तुम्हें तृप्त करूँगा । मैं नित्य प्रति पक्ष के पंद्रहों दिन तुम्हारे लिए सोम-रस अर्पित करता हूँ ॥ २ ॥ (इन्द्र) ऐसा कहने वाला मैंने कोई नहीं देखा जिसने देवताओं के विरोधी और कर्मों से शून्य मनुष्यों को मारने की बात कही हो । दुष्ट मनुष्यों को जब मैं लड़ कर मारता हूँ तब मेरे उस वीर-कर्म का सब कीर्तन करते हैं ॥ ३ ॥ जब मैं अकस्मात् रणक्षेत्र में जाता हूँ, तब सभी ऋषि मेरे चारों ओर रहते हैं । मैं मनुष्यों के कल्याण के निमित्त ऐसे शत्रुओं को हराता हूँ और उसके पाँव पकड़ कर शिला पर पछाड़ता हूँ ॥ ४ ॥ रणक्षेत्र में मुझे कोई रोक नहीं सकता । विशाल पर्वत भी मेरे कार्य में बाधक नहीं हो सकते । जब मैं शब्द करता हूँ तब बहरे भी काँप जाते हैं । मेरे शब्द के भय से रश्मियों के स्वामी सूर्य भी कम्पित हो जाते हैं ॥ ५ ॥ [१२]

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६॥
अभूर्वौक्षीर्व्यु आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७॥
गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८॥
सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥६॥

अग्नेदु मे मंसते सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥१०॥१६॥

जो शुष्क इन्द्र के शासन को स्वीकार नहीं करते और देवताओं के पीने योग्य सोम-रस को स्वयं पी लेते हैं तथा जो भुजा चढ़ा कर मारने को आते हैं, मैं उन सब के कर्मों का द्रष्टा हूँ। मैं अपने निन्दकों पर वज्र-प्रहार करता हूँ और उपासक का मित्र हो जाता हूँ॥ ६ ॥ (ऋषि) हे इन्द्र! तुम सवतजीवी हो। तुमने जल-वृष्टि की और दर्शन दिया। प्राचीन काल में तथा अब भी तुम शत्रु-हन्ता होते हो। सम्पूर्ण जगत से भी तुम बड़े हुए हो। आकाश पृथिवी भी तुम्हारा परिमाण करने में समर्थ नहीं हैं॥ ७ ॥ (इन्द्र) मैं इन्द्र हूँ। स्वामी के समान इन गौओं का पालन करता हूँ। अनेक गौएँ जौ भक्षण कर रही हैं। चराने वाले ग्वाले उन्हें वन में चराते हैं। उसके द्वारा बुलाए जाने पर वे सब एकत्र हो जाती हैं। जब वह अपने स्वामी के पास पहुँचती हैं, तब उनके दुग्ध का दोहन किया जाता है॥ ८ ॥ (ऋषि) विश्व में अन्न, जौ, तृणादि खाने वाले हम हैं। हृदयाकाश में विराजमान ब्रह्म मैं ही हूँ। यह इन्द्र अपने उपासक पर प्रीति करते हैं। जो योग से रहित और अत्यन्त भोगी हैं, उन्हें भी वे श्रेष्ठ मार्ग पर चलाने का यत्न करते हैं॥ ९ ॥ (इन्द्र) मैंने जो कुछ यहाँ कहा है, वह यथार्थ है। मैं सब मनुष्यों और पशुओं का जन्मदाता हूँ। जो पुरुष अपने वीरों को स्त्रियों से युद्ध करने को प्रेरित करता है, मैं बिना संग्राम किये ही उस पापी के ऐश्वर्य को छीन कर अपने उपासकों को प्रदान कर देता हूँ॥१०॥ [१६]

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥११॥
कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥१२॥
पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।

मासीन ऊर्ध्वामुरसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥१३॥
बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥
सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥१५॥१७॥

किसी की भी नेत्र हीना कन्या का आश्रयदाता कौन होगा ? उसे वरण करने तथा वहन करने वाले को कौन मारेगा ? ॥ ११ ॥ कुछ स्त्रियाँ द्रव्य से ही पुरुष के वशीभूत हो जाती हैं। परन्तु जो स्त्रियाँ सुशील, स्वस्थ और श्रेष्ठ मन वाली हैं, वे इच्छानुकूल पुरुष को पति रूप में वरण करती हैं ॥ १२ ॥ रश्मियों के द्वारा ही सूर्य अपने प्रकाश को फैलाते हैं और अपने मंडल में स्थित प्रकाश को स्वयं ही समेट लेते हैं। वे अपनी आच्छादन करने वाली रश्मियों को मनुष्यों के मस्तक पर डालते हैं। ऊपर स्थित रहते हुए ही वे अपने प्रकाश को पृथिवी पर विस्तृत करते हैं ॥ १३ ॥ जैसे विना-पत्र के शुष्क पेड़ छाया करने वाले नहीं होते, वैसे ही इन सूर्य की भी छाया नहीं पड़ती। आकाश रूप माता ने कहा कि सूर्य के रूप वाला यह बालक अलग होकर दूध पीता है। यह आकाश रूपिणी गौ ने अदिति रूपिणी अन्य माता के वत्स को प्रेम से चाट कर दृढ़ किया। इस गौ के थन कहाँ रहते हैं ? ॥ १४ ॥ इन्द्र रूप प्रजापति ने ही विश्वामित्र आदि सात ऋषियों को रचा। उनके ही शरीर से बालखिल्य आदि आठ उत्पन्न हुए, फिर भृगु आदि नौ होगए। अंगिरा आदि को मिला कर दश उत्पन्न हुए। यह यज्ञ भाग का सेवन करने वाले, आकाश के उन्नत प्रदेश को बढ़ाने लगे ॥ १५ ॥ [१०]

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥१६॥
पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्वन्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥१७॥

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्रवन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥१८॥
अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥
एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥१८॥

दशों अंगिराओं में एक कपिल हैं. वे यज्ञ-साधन की प्रेरणा पाकर कर्म में लगे । सन्तुष्ट माता ने तब जल में बीज बोया ॥ १६ ॥ प्रजापति के पुत्र अंगिराओं ने स्थूल मेष को प्राप्त किया । घृत के स्थान में पाश डाले गए । दो विकराल धनुषों को लेकर मंत्रों के द्वारा अपने देह को पवित्र कर जल में घूमने लगे ॥ १७ ॥ यह अंगिरागण प्रजापति द्वारा उत्पन्न किये गए । इनमें से अर्द्ध संख्यक प्रजापति के निमित्त हव्य पकाते हैं और अर्द्ध संख्यक नहीं पकाते । काष्ठ रूप अन्न और घृत रूप ओदन ग्रहण करने वाले अग्नि प्रजापति की कामना करते हैं, यह सूर्य का कथन है ॥ १८ ॥ अपने द्वारा बनाए गए आहार से प्राण धारण करने वाले अनेक व्यक्ति दूर से आते देखे जाते हैं । उनके स्वामी दो-दो को मिलाते हैं । वे नवीन अवस्था वाले व्यक्ति अपने शत्रुओं को शीघ्र ही नष्ट कर डालते हैं ॥ १६ ॥ मेरे द्वारा योजित इन दो बैलों को मत ललकारो । इन्हें बारंबार पुचकारते हुए गतिमान करो । इनका धन जल में नाश को प्राप्त होता है । जो वीर गौओं को शिक्षित करता है, वह उन्नतिशील होता है ॥ २० ॥ [१८]

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥
देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।

अयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा वृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३॥
सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥२४॥[९]

सूर्य मंडल के नीचे यह वज्र वेग से पतित होता है। फिर जो अन्य स्थान हैं, उन्हें स्तोतागण अकस्मात् खोज लेते हैं ॥ २१ ॥ प्रत्येक वृक्ष (वृक्ष की लकड़ी से ही धनुष बनता है) के ऊपर प्रत्यंचारूपिणी गौ शब्द करती है तब शत्रु के भक्षण करने वाले बाण चलते हैं। जगत उन बाणों से भयभीत होता है और सब मनुष्य और ऋषिगण इन्द्र को सोम रस प्रदान करते हैं ॥ २२ ॥ जब देवताओं की उत्पत्ति हुई तब प्रथम मेघ दिखाई पड़े। इन्द्र ने उन मेघों को चीर डाला तब जल निकला। पर्जन्य, सूर्य और वायु उद्भिजों को पकाते और सूर्य तथा वायु दोनों ही जल को धारण करते हैं ॥ २३ ॥ हे ऋषि ! सूर्य तुम्हारे जीवन के लिए आश्रय रूप हैं, अत यज्ञ-काल में तुम सूर्य के गुणों का कीर्तन करते हुए उन्हें नमस्कार करना। क्योंकि यह सूर्य सब प्राणियों और पदार्थों के पवित्र करने वाले हैं। यह अपनी गति को कभी नहीं छोड़ते और यही स्वर्ग लोक का प्रकाश करने वाले हैं ॥ २४ ॥ [२०]

सूक्त २८

(ऋषिः—इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः। देवता—
इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥१॥
स रोरुवद् वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥२॥
अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥३॥

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥
कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५॥
एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥६॥२०॥

(ऋषि पत्नी) सब देवता हमारे यज्ञ में आगये परन्तु मेरे श्वसुर इन्द्र ही नहीं आये। यदि वे आजाते तो भुने हुए जौ के साथ सोम पान करते और फिर अपने गृह को लौटते ॥१॥ (इन्द्र) हे पुत्रवधू! मैं तीक्ष्ण सींग वाले बैल के समान शब्द करने वाला हूँ और पृथिवी के विस्तृत तथा ऊँचे प्रदेश में वास करता हूँ। जो मेरे पान के निमित्त सोम प्रदान करता है, मैं उसकी सदा रक्षा करता रहता हूँ ॥२॥ (ऋषि) हे इन्द्र! जब यजमान अभिषवण फलकों पर शीघ्रता से हर्षकारी सोम को प्रस्तुत करता है, तब तुम उसे पीते हो। उस समय अन्न की कामना करते हुए तुम्हें हवि और स्तुति अर्पित की जाती है ॥३॥ हे इन्द्र! मेरी इच्छा मात्र से ही नदी का जल विपरीत दिशा में प्रवाहित हो, तृण-भक्षक हिरण बाघ को खदेड़ता हुआ उसका पीछा करे और वराह को शृगाल भगादे ॥४॥ हे इन्द्र! तुम मेधावी और प्राचीन कालीन हो। मैं अल्प बुद्धि वाला निर्बल पुरुष तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ। परन्तु समय-समय पर तुम्हारे गुणों का कीर्तन सुनकर ही मैं कुछ स्तुति करने लगा हूँ ॥ ५ ॥ (इन्द्र) स्तोतागण मुझ पुरातन पुरुष इन्द्र की स्तुति करते हुए कहते-हैं कि मेरे विस्तृत कार्य स्वर्ग से भी महान् हैं। मेरे जन्म से ही मैं इतना बलवान हूं कि शत्रु मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं एक साथ ही हजारों शत्रुओं के बल को क्षीण कर डालता हूँ ॥६॥ [२०]

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणामिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥७॥

देवास आयन्परशूँरविभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्रव दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८॥

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिद्दहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥९॥

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥२१

(ऋषि)हे इन्द्र ! मैंने प्रसन्न होकर वज्र से वृत्र को विदीर्ण किया और अपने बलसे दानशील व्यक्ति को गौओं से सम्पन्न धन प्रदान किया इसीलिए देवगण मुझे तुम्हारे समानही पुरातन, घोर और काम्य फल का देने वाला समझते हैं ॥७॥ देवगण मेघ को विदीर्ण करने के लिए गमन करते हैं, तब वे जल को निकालते हुए वृष्टि करते हैं। वह जल श्रेष्ठ नदियों में रहता है। देवता जिस मेघ में जल देखते हैं, उसी को विद्युत से भस्म करके जल वृष्टि करते हैं ॥८॥ इन्द्र की इच्छा मात्र से आते हुए बाघ का सामना खरगोश कर सकता है। मैं भी उसी की कृपा से एक कंकड़ से पर्वत को तोड़ सकता हूँ। इन्द्र चाहें तो बछड़ा भी सांड का सामना करने लगे और बड़े भी छोटे के आधीन होजायँ ॥९॥ पिंजड़े में बन्द बाघ जैसे अपने पांव को रगड़ता है, वैसे ही बाजपक्षी ने भी अपने नाखूनों को रगड़ा। जब महिष प्यास से व्याकुल होताहै तब इन्द्र की इच्छा होती गोह भी उसके लिए पानी लाताहै।।१०।। यज्ञके अन्नसे जो अपना निर्वाह करतेहैं,गोह उनके लिए अकस्मात् जल लाता है। वह इन्द्र सर्वगुण से युक्त सोम का पान करते और शत्रुओं के शारीरिक बल को नष्ट कर डालते हैं ॥११॥ जो सोमयाग

करके अपने देह का पोषण कर सके हैं वे सुन्दर कर्म वाले पुरुष श्रेष्ठकर्मा कहे जाते हैं। हे इन्द्र! तुम हमारे लिए अन्न लाते हुए श्रेष्ठ वचन कहते हो। इस प्रकार तुम दानवीर भी कहे जाते हो ॥१२॥

सूक्त २९

(ऋषि—वसुक्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्)

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नृन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्यु ग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नृन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥२२

हे देव! पक्षी जब डर जाता है तब सब ओर देखता हुआ अपने शिशु को नीड़ में रखता है, उसी प्रकार मैंने अपने हार्दिक भावों को स्तोत्र में रखा है। इस श्रेष्ठ स्तोत्र को मैं तुम्हारे प्रति प्रेरित करता हूँ। वे नेताओं में श्रेष्ठ और मनुष्यों का हित करने वाले हैं। मैं उन्हें स्तुतियों द्वारा आहूत करता हूँ ॥१॥ हे नेताओं में श्रेष्ठ इन्द्र! सभी दिन प्रातःकालों में तुम्हारा स्तोत्र करने वाले हम श्रेष्ठ हों। त्रिशोक ऋषि ने तुम्हारी स्तुति करके ही सहायता प्राप्त की थी और कुत्स तुम्हारे साथ ही रथारूढ़ हुए थे ॥२॥ हे इन्द्र हमारी स्तुति सुनकर तुम इस यज्ञ-द्वार की ओर आगमन करो। किस प्रकार का सोम तुम्हें प्रसन्न करने

वाला है ? तुम्हारी स्तुति करने वाला मैं अन्न धन कब पा सकूँगा ? मुझे वाहनादि कब प्राप्त होंगे ? ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम कब आगमन करोगे और कब धन दोगे ? किस स्तुति से प्रसन्न होकर तुम मनुष्यों को अपने समान ऐश्वर्यवान् बनाओगे ? स्तुति करते ही तुम सच्चे मित्र के समान स्तोता का पालन करने वाले होते हो ॥४॥ पति द्वारा पत्नी को संतुष्ट करने के समान ही जो तुम्हें सन्तुष्ट करता है, उसे अभीष्ट धन प्रदान करो। जो स्तोता प्राचीन सोम से तुम्हें हविरन्न देते हैं, उन्हें ऐश्वर्य दो, क्योंकि तुम सूर्य के समान दानी हो ॥५॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥२३

हे इन्द्र ! प्राचीन काल में रची गई द्यावा पृथिवी तुम्हारी माता के समान हैं। तुम इस घृत से युक्त सोम रस का पान करो। यह मधुर रस वाला अन्न सुस्वादु है, तुम इससे प्रसन्नता और हर्ष को प्राप्त होओ ॥६॥ इन्द्र पृथिवी से भी महान् हैं। वे मनुष्यों का हित करने वाले और धन प्रदान करने वाले हैं। उनके सभी कार्य आश्चर्यजनक हैं। अतः उनके निमित्त मधुर सोम-रस को पात्र में भरकर उन्हें अर्पित करो ॥७॥ यह इन्द्र महाबली हैं। विकराल शत्रु भी इनसे मित्रता करने को उत्सुक होते हैं। इन्होंने शत्रु-सेनाओं को अनेक बार घेरा है। हे इन्द्र ! विश्व का कल्याण करने के लिए तुम जिस रथ पर आरूढ़ होकर रण-क्षेत्र में जाते हो, उसी रथ पर इस समय भी आरूढ़ होओ ॥८॥

सूक्त ३० (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—कवष ऐलूषः । देवता—आप अपान्नपाद्वा । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुजयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२॥

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥३॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥४॥

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छापरेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥५।४

यज्ञ के समय में यह सोम-रस शीघ्रतापूर्वक देवताओं के निमित्त जल की ओर गमन करें। हे ऋत्विज ! मित्रावरुण के लिए उस महान अन्न का संस्कार करो और इन्द्र के लिए श्रेष्ठ स्तुति उच्चारित करो ॥१॥ हे ऋत्विजो ! तुम हविरन्न निर्मित करो। यह जल तुमसे प्रीति करने वाला हो। तुम उस जल की ओर गमन करो। लाल पक्षी के समान यह सोम क्षरित होता है, तुम उसे अपने कर्मवान् हाथों द्वारा तरंगित करो ॥२॥ हे ऋत्विजो ! जल वाले समुद्र में गमन करो और अपान्नपात् देव को हव्य दो। वे तुम्हें श्रेष्ठ जल की लहर दें, इसलिए उनको मधुर सोम रस अर्पित करो ॥३॥ स्तोता जिस काष्ठ की यज्ञ के अवसर पर स्तुति करते हैं तथा जो काष्ठ जल के कारण ही जल जाते हैं, वे अपान्नपात् देव इन्द्र को बल देने वाला श्रेष्ठ जल प्रदान करें ॥४॥ इन जलों से सिंचित सोम अत्यन्त अद्भुत होते हैं और जलों से मिलने पर ही सोम

पुष्ट होते हैं। हे ऋत्विजो! तुम ऐसे जल लाओ जिससे सोम को शुद्ध किया जा सके ॥५॥ [२४]

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६॥
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या
अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७॥
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८॥
तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९॥
आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०।२५

स्त्री-पुरुषों के परस्पर आकर्षण के समान ही जल सोम के प्रति आकर्षित होते हैं। ऋत्विजों और उनके स्तोत्रों से जल रूप वाले देवताओं की जानकारी है। अपने अपने कार्यों को ये दोनों देखते हैं ॥६॥ हे जलो! रोक लेने पर जो इन्द्र तुम्हें खोलकर मार्ग प्राप्त कराते हैं, तुम उन इन्द्र के लिये के लिए ही हर्षप्रदायक और मधुर सोम रस प्रस्तुत करो ॥७॥ हे जल! तुम्हारे बीज रूप जो मधुर रस वाला सोम है, उसकी तरंग इन्द्र को प्राप्त भेजो। हे जल! तुम ऐश्वर्यवान् हो। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ, उसे सुनो। मैं घृताहुति के साथ ही स्तुति करता हूँ ॥८॥ हे जल! तुम अपनी स्निग्ध और पार्थिव तरंगों को इन्द्र के पीने के लिए प्रस्तुत करो। तुम हर्ष को बढ़ाने वाली अभिलाषाओं की वृद्धि करने वालों, आकाश में उत्पन्न होकर तीनों लोकों में विचरण करने वाली तरंग को लाओ ॥९॥ जल के लिए संग्राम करने वाले इन्द्र के निमित्त अनेक धाराओं में विभक्त हुआ जल बारम्बार प्रेरित होता है। यह जल विश्व को रचिता माता के समान है और सोम से मिलता है। ऋषि-

गए इस जल को नमस्कार करते हैं ॥१०॥ [२४]

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥
आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥
प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥
एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥
आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥२६

हे जल ! हमारे इस देव यज्ञ में तुम सहायक होओ। हमको पवित्र करो और धन प्राप्त कराओ। हमारे अनुष्ठान के समय गौ का द्वार खोलते हुए हमें सुखी करो ॥११॥ हे जल ! यज्ञ कल्याणकारी है और तुम धर्म के सम्पात् रूप और उसके स्वामी हो। हमारे यज्ञ को सम्पन्न करते हुए अमृत लाओ और हमारे धन तथा सन्तानों की रक्षा करने वाले बनो। सरस्वती स्तुति करने वालों को धन प्रदान करें ॥१२॥ हे जल ! तुम जब आते थे तब घृत दुग्ध और मधु से सम्पन्न हुए आते थे। स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हुए बोलते थे। तुम श्रेष्ठ और सुसंस्कृत सोम-रस को इन्द्र के लिए अर्पित करते थे ॥१३॥ यह जल धन का आश्रय रूप है, यह प्राणी का हित करने वाला है। हे ऋत्विजो ! इस आते हुए जल को स्थापित करो। वृष्टि के अधिष्ठाता देवता से इन जलों का परिचय है। इन्हें कुशों पर प्रतिष्ठित करो। यह जल सोम-रस के अनुकूल हैं ॥१४॥ देवताओं की ओर गमन करने के लिए कुशों की ओर जाता हुआ जल यज्ञभूमि को प्राप्त हुआ है। हे ऋत्विजो ! जल आगया है अब तुम पूजन-कर्म सरलता से कर सकोगे। मधुर सोमरस को इन्द्र के लिए अर्पित करो ॥१५॥ [२६]

सूक्त ३१

(ऋषिः—कवष ऐलूषः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्दः-त्रिष्टुप्)

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥ १ ॥
परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥ २ ॥
अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥ ३ ॥
नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥ ४ ॥
इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः
॥ ५ ॥ २७

हमारी स्तुति विश्वेदेवाओं को प्राप्त हों। यज्ञ के देवता सब शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। वे देवता हमारे साथ मित्र भाव रखें और हम सभी पापों से मुक्त हो जाँय ॥ १ ॥ सब प्रकार के धनों की अभिलाषा करने वाला पुरुष यज्ञानुष्ठानादि सत्य कर्मों में लगकर कल्याण प्राप्त करे और सब उन्हें हार्दिक सुख मिले ॥ २ ॥ यज्ञ के सब उपकरण आवश्यकतानुसार रखे जाँय । यह पदार्थ देखने में सुन्दर और रक्षा के उपयुक्त साधन हैं। यज्ञ-कार्य का आरम्भ हो चुका है और हमने सोम का रसास्वादन भी किया है। देवगण स्वरूप से ही सब कुछ जानते हैं ॥ ३ ॥ प्रजापति विनाश-रहित हैं। वे दान शील हृदय से हम पर अनुग्रह करें । यज्ञकर्त्ता यजमान को, सूर्य सुफल प्रदान करें । भग और अर्यमा प्रसन्न हों और सब देवता भी यजमान पर हर प्रकार अनुग्रह करें ॥ ४ ॥ स्तुतियों की इच्छा करते हुए देवता जब कोलाहल करते हुए द्रुतगति से आते हैं, तब हमारे लिए प्रातःकाल में पृथिवी

आलोकमयी होती है । विभिन्न प्रकार के सुख देने वाले अन्न हमको प्राप्त हों ॥ ५ ॥ [२७]

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥ ६ ॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥ ७ ॥
नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥ ८ ॥
स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ९ ॥
स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥ १० ॥
उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥ ११ ॥ २८

महान् देवताओं के पास गमन करने की इच्छा से हमारी स्तुतियाँ महिमामयी होकर विस्तार को प्राप्त होती हैं । सभी देवता हमारे इस यज्ञ में अपने अपने स्थानों पर विराजमान होते हुए श्रेष्ठ फल देने के लिए आगमन करें तब मैं बल से सम्पन्न होऊँगा ॥ ६ ॥ जिस वृक्ष या जिस जंगल के उपादान से इस आकाश-पृथिवी की रचा गया है, वह वृक्ष कौन-सा है ? आकाश और पृथिवी परस्पर मिले हुए हैं और समान मन वाले हैं । वे जीर्ण या पुराने नहीं है । प्राचीन दिवस और उषा जीर्ण होगए ॥ ७ ॥ पृथिवी या आकाश ही अन्तिम नहीं हैं और कुछ भी इनके ऊपर है । वह जो है, सृष्टि के रचने वाला और आकाश-पृथिवी का धारणकर्त्ता है । वह अन्न का स्वामी है । सूर्य के अश्वों ने जब तक सूर्य का वहन करना आरम्भ नहीं किया था, तभी तक उसने अपने देह की स्वयं रचना कर डाली ॥ ८ ॥ रश्मिवंत

सूर्य पृथिवी को नहीं लाँघते और वायु देवता वर्षा को अत्यन्त छिन्न भिन्न नहीं करते । वन में उत्पन्न अग्नि के समान प्रकट होकर मित्रावरुण अपने प्रकाश को सब ओर फैलाते हैं ॥ ९ ॥ वृद्धा गौ के प्रसव करने के समान ही अरणि अग्नि को प्रकट करती है । अरणि संसार के सब प्राणियों की रक्षा करती हैं। जो अरणियों की रक्षा करते हैं उनके क्लेश मिट जाते हैं। अग्नि अरणियों के पुत्र हैं । यह अरणी रूपी गौ शमी वृक्ष पर उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ काले रंग के कण्व ऋषि अन्नवान हैं। वे नृसद के पुत्र कहाते हैं। उन्होंने ऐश्वर्य प्राप्त किया। अग्नि ने उन कण्व के निमित्त अपना श्रेष्ठ रूप दिखाया। जैसा यज्ञ कण्व ने किया, अग्नि देवता के लिए वैसा यज्ञ और किसी ने भी नहीं किया ॥ ११ ॥ [२८]

सूक्त ३२

(ऋषि—कवष ऐलूषः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वरां अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥ १ ॥
वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वरां उप ते सु वन्वन्तु वग्वनां अराधसः ॥ २ ॥
तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयती ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥ ३ ॥
तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥ ४ ॥
प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥ ५ ॥ २९

जो यज्ञ करने वाला यजमान इन्द्र का आह्वान करता है, इन्द्र उसके यज्ञ में पहुँच कर उसकी पूजा स्वीकार करने के लिए अपने अश्वों को योजित करते हैं। उनके ये हर्यश्व अद्भुत चाल वाले हैं। यह इन्द्र उत्कृष्ट से भी

उत्कृष्ट वर लेकर आए हैं। यजमान भी इन्हें श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पदार्थ अर्पित करता है। जब हमारी स्तुतियों और हव्यादि को वह स्वीकार करना चाहते हैं तब मधुर सोमरस का पान करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों के द्वारा स्तुत हो। तुम अपने प्रकाश को बढ़ाते हुए दिव्य धामों में घूमते हो। तुम जब अपनी ज्योति के सहित पृथिवी पर आते हो तब यज्ञ में तुम्हें पहुँचाने वाले तुम्हारे दोनों अश्व हमको धनवान बनावें। हे इन्द्र ! हम धन हीनः धन पाने के लिए ही श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा तुम से धन की याचना करते हैं ॥ २ ॥ जिस अत्यन्त विचित्र धन को पुत्र अपने पिता से पाता है, वैसा ही अद्भुत धन इन्द्र मुझे देने की इच्छा करें। मधुरभाषिणी नारी जैसे पति को प्रिय होती है, वैसे ही भले प्रकार संस्कृत सोम पौरुषवान इन्द्र को प्रिय होता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जिस स्थान पर स्तुति रूप गौएं प्राप्त हों, तुम उस यज्ञ स्थान को अपने तेज से आलोकमय बनाओ। प्राचीन और पूजन के योग्य जो स्तोत्रों की माता हैं, उसके सातों छन्द यज्ञ स्थान पर ही स्थित हैं ॥ ४ ॥ रुद्रों के साथ अकेले ही अपने स्थान को प्राप्त होने वाले अग्नि तुम्हारे हित के लिए ही देवताओं की ओर गमन करते हैं। अब अविनाशी देवताओं का बल कम हो रहा है अतः शीघ्र ही सोम रूप मधु को इन्द्र के लिए अर्पित करो। तब यह देवगण वरदाता होंगे ॥ ५ ॥ [२६]

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६॥
अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥ ७ ॥
अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥ ८ ॥
एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥ ९ ॥ ३०

पुण्य यज्ञ कर्म देवताओं के निमित्त किया जाता है, इन्द्र उसके रक्षक

होते हैं। हे अग्ने! इन्द्र ने तुम्हारे जल में स्थित रूप को निगूढ़ बताया है। मैं तुम्हारे पास उसी कथन के अनुसार आया हूँ ॥ ६ ॥ मार्ग से अभिज्ञ व्यक्ति मार्ग के जानने वाले से पूछ कर अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त होता है। उसी प्रकार यदि तुम जल की खोज करना चाहो तो जानकार व्यक्ति से पता लगाकर जल के पास पहुँच सकते हो ॥ ७ ॥ यह गोवत्स रूप अग्नि उत्पन्न होकर कुछ दिनों से उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं। इन्होंने अपनी माता का दूध पान किया है। ये सब कार्यों के सरल करने वाले, अत्यन्त धन वाले और मन की स्वस्थता से पूर्णत: सम्पन्न हैं। इनको तरुणावस्था के साथ ही वृद्धावस्था आगई ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम स्तुतियों को सुनकर धन प्रदान करते हो। यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही बनाए गए हैं। हे स्तोत्र के रूप वाले धन से सम्पन्न स्तोताओ! इन्द्र तुम्हारे निमित्त दाता बनें और मेरे हृदय में विराजमान सोम भी मुझे ऐश्वर्य देने वाले हों ॥ ९ ॥ [१०]

सूक्त ३३

(ऋषि—कवष ऐलूषः। देवता—विश्वेदेवाः, इन्द्रः, कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः, उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः। छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री)

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥ २ ॥
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥ ३ ॥
कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्। मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥ ४ ॥
यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया। स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥ ५ ॥ १

सब कर्मों की प्रेरणा देने वाले देवताओं ने मुझे भी कर्म की ही प्रेरणा दी। मैंने मार्ग में पूषा को ढोया। मुझ कवष की रक्षा विश्वेदेवाओं

ने की। फिर दुर्धर्ष ऋषि के आगमन का समाचार सुनाई पड़ा ॥ १ ॥ मेरी पसलियाँ सौत के समान क्लेश देने वाली हैं। मेरा मन पक्षी के समान चलायमान होगया है। इसीलिए मैं दीन-हीन तथा क्षीण होता हुआ अपनी ही कुबुद्धि से क्लेश पा रहा हूँ ॥ २ ॥ चूहों द्वारा स्नायु का भक्षण करने के समान तुम्हारे मुझ उपासक का भक्षण मेरे मन का क्लेश ही कर रहा है। हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हमारी ओर कृपा-पूर्वक देखते हुए हमारे पिता के समान होकर हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ त्रसदस्यु के पुत्र राजा कुरुश्रवण अत्यन्त श्रेष्ठ दाता हैं, मुझ कवष ऋषि ने उनसे ही ऐश्वर्य की याचना की थी ॥ ४ ॥ मैं जब रथारूढ़ होता हूँ तब हरित वर्ण वाले तीन घोड़े उसे भले प्रकार चलाते हैं। जब मेरी सहस्र संख्यक सभा या दक्षिणा दी जाती है, तब उसे सभी चाहते हैं ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　　[१]

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः । क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥ ६ ॥
अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि । पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥७॥
यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् । जीवेदिन्मघवा मम ॥ ८ ॥
न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति । तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥ २

मेरे पिता आदर्श के स्थान थे। उनका वचन युद्ध भूमि में भी प्रसन्नता करने वाला हो ॥ ६ ॥ हे मित्रातिथि के पुत्र उपमश्रवस ! मैं मित्रातिथि के लिए स्तोत्र करता हूँ। तुम शोक न करते हुए मेरे समीप आगमन करो और धन प्रदान कराओ ॥ ७ ॥ देवता अविनाशी हैं। उनका और मनुष्यों का यदि स्वामी यहाँ होता तो ऐश्वर्यों से सम्पन्न मित्रातिथि अवश्य प्राणवान होंगे ॥ ८ ॥ सौ प्राण भी देह से युक्त होना चाहें तो भी देवताओं की इच्छा के बिना कोई भी जीवित नहीं रहता। हमारे साथियों से हमारा जो वियोग होता है, उसका यही कारण है ॥ ९ ॥　　　　[२]

सूक्त ३४

(ऋषि—कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान्। देवता—अक्षकृषिप्रशंसा अक्षकितवनिन्दा। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृताना. ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥ १ ॥
न मा मिमेथ न जिहीळ एपा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥ २ ॥
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥३॥
अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥ ४ ॥
यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतं एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥ ५ ॥ ३

जब चौसर के ऊपर श्रेष्ठ पासे इधर से उधर जाते हैं तब उन्हें देख कर अत्यंत विनोद होता है। पर्वत पर उत्पन्न होने वाली श्रेष्ठ सोमलता का रस पान करने पर जो हर्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार काष्ठ से बने पासे मुझे उत्साह प्रदान करते हैं ॥ १ ॥ मेरी यह सुन्दर सुशीला भार्या मुझसे कभी भी असंतुष्ट नहीं हुई। वह सदा मेरी और मेरे कुटुम्बियों की सेवा-सुश्रूषा करती रही है। परन्तु इस पासे ने ही मुझसे अत्यंत प्रेम करने वाली भार्या को पृथक् कर दिया है ॥ २ ॥ जुआ खेलने वाले पुरुष की सास उसे कोसती है और उसकी सुंदरी भार्या भी उसे त्याग देती है। जुआरी को कोई एक फूटी कौड़ी भी उधार नहीं देता। जैसे वृद्ध अश्व को कोई नहीं लेना चाहता, वैसे ही जुआरी को कोई पास में भी नहीं बैठने देता ॥३॥ पासे के घोर आकर्षण में जुआरी सिंचा रहता है। उसके पासे की चाल खराब होने पर उसकी भार्या भी उत्तम कर्म वाली नहीं रहती, जुआरी के माता पिता और भाई भी उसे न पहिचानने का ढंग अपनाते हुए उसे पकड़वा देते हैं ॥ ४ ॥ मैं अनेक बार यह चाहता हूँ कि अब द्यूत नहीं खेलूँगा। यह विचार करके जुआरियों का साथ छोड़ देता हूँ। परन्तु चौसर पर पीले पासों को

देखते ही मन ललचा उठता है और मैं विवश होकर जुआरियों के स्थान की ओर गमन करता हूँ ॥ ५ ॥ [३]

सभामेति किलवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो कृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥७॥
त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०। ४ ॥

जब जुआरी उत्साह पूर्वक जीतने की आशा से जुए के स्थान पर पहुँचता है तब कभी तो उसकी इच्छा पूर्ण हो जाती है और कभी उसके विपक्षी की बलवती कामना पूर्ण होती है ॥ ६ ॥ परन्तु जब हाथ की चाल बिगड़ जाती है तब पाशा भी विद्रोही हो जाता है, वह जुआरी के अनुकूल नहीं चलता तब वही पाशा जुआरी के हृदय में बाण के समान प्रविष्ट होता है, छुरे के समान त्वचा को काटता, अंकुश के समान चुभता है और तपे हुए लोहे के समान दग्ध करने वाला होता है। जो जुआरी जीतता है, उसके लिए पाशा पुत्र-जन्म का सा हर्ष देता है। संसार भर का माधुर्य उसी में भर जाता है। परन्तु पराजित जुआरी का तो मरण ही हो जाता है ॥ ७ ॥ चौसर पर तिरेपन पाशे क्रीडा करते हैं, जैसे सूर्य अपनी रश्मियों सहित क्रीडा कर रहे हों। पाशा महान् वीर के वश में भी नहीं रहता। राजा भी इस पाशे के आगे झुक जाते हैं ॥ ८ ॥ इन पाशों के हाथ न होते हुए भी कभी ऊपर उठते और कभी नीचे जाते हैं। हाथ वाले पुरुष इनसे हारते हैं। यह

श्री से सम्पन्न होते हुए भी प्रज्वलित अंगार के समान चौसर पर प्रतिष्ठित होते हैं। स्पर्श में शीतल होते हुए भी यह हृदय को दग्ध कर डालते हैं ॥ ६ ॥ जुआरी की पत्नी सदा संतप्त रहती है, उसका पुत्र भी मारा मारा फिरता है। अपने पुत्र की चिन्ता में वह और भी चितातुर रहती है। जुआरी सदा दूसरों के आश्रय में ही रात काटता है। उसे जो कोई कुछ उधार देता है उसे अपने धन के लौटने में सन्देह रहता है ॥ ० ॥ [४]

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जाया सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥
यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥
अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥
मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥५॥

यद्यपि जुआरी अपनी स्त्री के सन्ताप से सन्तप्त रहता है, वह दूसरे की स्त्रियों के सौभाग्य और ऐश्वर्य को देख देख कर वह अपने मन को मसोसता है। जो जुआरी धन जीतने पर प्रातःकाल अश्वारूढ़ होकर आता है, सायंकाल उसी के पास शरीर पर वस्त्र भी नहीं रहता। इसलिए जुआरी का कोई ठिकाना नहीं ॥ ११ ॥ हे अक्ष ! तुममें जो प्रमुख है, उसे मैं अपने हाथों की दसों अंगुलियों को मिला कर नमस्कार करता हूँ। मैं तुमसे धन की कामना नहीं करता ॥ १२ ॥ हे जुआरी, जुआ खेलना छोड़ कर खेती करो। उसमें जो लाभ हो उसी में सन्तुष्ट रहो। इसी कृषि के प्रभाव से गौएं और भार्या आदि प्राप्त करोगे। यही सूर्य का कथन है ॥ १३ ॥ हे अक्षो ! हमको मित्र मान कर हमारा कल्याण करो। हम पर अपना विपरीत प्रभाव मत डालो। तुम्हारा क्रोध हमारे शत्रुओं पर हो, वही तुम्हारे चंगुल में फंसे रहें ॥ १४ ॥ [५]

सूक्त ३५

(ऋषिः—लुशो धानाकः । देवताः—विश्वेदेवाः । छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥
दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥
द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥३॥
इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥४॥
प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥५।६॥

अग्नि चैतन्य होगए । इन्द्र भी उनके साथ आगए । जब प्रातःकाल अंधकार को अन्यत्र प्रेरित करता है, तब अग्नि अपने प्रकाश के सहित प्रदीप्त होते हैं । विस्तीर्ण आकाश पृथिवी जागरणशील हों । देवगण हमारी स्तुतियाँ सुन कर हमारे रक्षक हों ॥ १ ॥ माता के समान नदियाँ और पर्वत हमारे रक्षक हो । आकाश-पृथिवी भी हमारी रक्षा करें । सूर्य और उषा हमको पापों से बचाते रहें । यह अर्पित किये जाने वाले मधुर सोम भी हमारी स्तुतियाँ सुन कर कल्याणकारी हों ॥ २ ॥ हम अपनी माता के समान आकाश पृथिवी के प्रति अपराध करने वाले न हों । वे हमको सुख प्रदान करने के लिए रक्षिका बनें । अंधकार को दूर करने वाली उषा हमारे पापों को नष्ट कर डालें । हम उन तेजस्वी अग्नि से मंगल-याचना करते हैं ॥ ३ ॥ उषा पापों को, अन्धकारों को दूर करने वाली है । वह धन वाली और श्रेष्ठ उषा हमको धन प्रदान करे । दुष्टजनों का क्रोध हमारे ऊपर न पड़े । हम प्रदीप्त और तेजस्वी अग्नि देवता से कल्याण की याचना करते हैं ॥ ४ ॥ सूर्य की

रश्मियों से संयुक्त होने वाली जो उषा आलोकमयी होकर अन्धेरे को दूर भगाती है, वह हमें श्रेष्ठ एवं उपभोग्य धन प्रदान करने वाली हो। हम उन प्रदीप्त और तेज से प्रकाशमान अग्नि से कल्याण की याचना करते हैं ॥ ५ ॥

[६]

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना-तूतुजिं रथं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥६॥
श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥७॥
पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥८॥
अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥९॥
आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१०॥७॥

आरोग्य-दायिनी उषा जब हमारी ओर आगमन करे तब अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवता भी ऊँचे उठें। हम उन अग्नि देवता से ही मंगल-याचना करते हैं। शीघ्रगामी रथ में अपने अश्वों को दोनों अश्विनीकुमार भी हमारे यहाँ आने के लिए योजित करें ॥ ६ ॥ हे आदित्य ! तुम अभीष्टों को फल-पूर्ण करते हो। तुम हमारे लिए श्रेष्ठ धन भाग दो। धन को उत्पन्न करने वाली स्तुतियों को हम उच्चारित करते हैं। प्रकाशमान अग्निदेवता से हम मंगल की याचना करते हैं ॥ ७ ॥ कर्मवान् मनुष्य जिस देव-याग के करने की इच्छा करते हैं, वही यज्ञ मुझे भी सम्पन्न बनावे। आदित्य नित्य प्रातः काल सब पदार्थों को प्रकाशित करते हुए उदित होते हैं। प्रकाशमान अग्नि से हम कल्याण कामना करते हैं ॥ ८ ॥ इस यज्ञ स्थान में आज कुश विस्तृत किया गया है। सोम का संस्कार करने के लिए दो पाषाण ग्रहण किये गए हैं। हे यजमान ! आज तुम अपने अभीष्ट पूर्ति के लिए इन्हें रक्षित देव-

ताओं का आश्रय ग्रहण करो । तुम्हारे श्रेष्ठ अनुष्ठान से प्रसन्न हुए आदित्य-गण तुम्हें सुख देने वाले हों । प्रज्वलित अग्नि से हम मंगल प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! हमने जिस यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, उसमें एकत्र हुए देवगण विहार करते हैं । तुम इस यज्ञ में विराजमान होने के लिए स्वर्गलोक से देवताओं का आह्वान करो । सप्त होताओं को बुलाकर मित्र, वरुण, भग और इन्द्र को भी यहाँ लाओ । मैं श्रेष्ठ ऐश्वर्य के निमित्त सब देवताओं की स्तुति करता हूँ और इन प्रज्वलित अग्नि से कल्याण माँगता हूँ ॥ १० ॥ [७]

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥११॥
तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१२॥
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३॥
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४।८॥

हे आदित्यो ! तुम विश्व-विख्यात हो । तुम हमारे पास आओ । तुम्हारे आने से सब ऐश्वर्य वृद्धि को प्राप्त होंगे । हमारे सुख के लिए सब देवता इस यज्ञ का पालन करें । अश्विनीकुमार, भग, बृहस्पति, सूर्य और अग्नि से हम मंगल की याचना करते हैं ॥ ११ ॥ हे देवगण ! हमारे यज्ञ को सर्व-सम्पन्न बनाओ । हे आदित्यगण ! हमको ऐश्वर्य से सम्पन्न राजभवन प्रदान करो । हम अग्नि देवता से पुत्र, पौत्र, स्त्री, पशु, दीर्घ आयु आदि समस्त कल्याणों की याचना करते हैं ॥ १२ ॥ मरुद्गण सब प्रकार से हमारी रक्षा करें । अग्नि देवता प्रदीप्त हों । सभी देवता हमारे यज्ञ में रक्षा-साधनों के सहित आगमन करें जिससे हम सब प्रकार के अन्न, धन, पुत्रादि तथा पशु आदि को प्राप्त करने वाले हों ॥ १३ ॥ हे देवगण ! तुम जिसे उबारना

चाहते हो, अन्न देकर जिसकी रक्षा करते हो, जिसके पापों को दूर करते और श्रीसम्पन्न करते हो, वह तुम्हारी शरण में रहता हुआ निर्भीक रहता है। हम देवताओं की सेवा करने वाले पुरुष उसी प्रकार के हों ॥ १४ ॥ [८]

सूक्त ३६

(ऋषि—लुशो धानाकः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वतां अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥
द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२॥
विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३॥
ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४॥
एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५॥६॥

मैं अपने यज्ञ में उषा, रात्रि, विस्तीर्ण और पूर्ण आकाश पृथिवी, मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, आदित्यगण, समस्त पर्वत और समस्त जलों को आहूत करता हूँ। अन्तरिक्ष, स्वर्गलोक और द्यावापृथिवी का भी आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ यज्ञ की अधिष्ठात्री रूपिणी तथा विशाल हृदया द्यावापृथिवी पाप से हमारी रक्षा करें। पाप वृत्ति वाली निर्ऋति हम को अपने वश में न कर सकें। विश्वेदेवाओं से हम श्रेष्ठ रक्षा-साधनों की याचना करते हैं ॥ २ ॥ धनवान मित्रावरुण की माता अदिति पापों से हमारी रक्षा करें जिससे हम सब प्रकार की अविनाशी ज्योति को पा सकें। हम उन विश्वेदेवों से विशिष्ट रक्षाएँ माँगते हैं ॥ ३ ॥ सोम को संस्कृत करने वाला पाषाण अपने शब्द से राक्षसों को, बुरे स्वप्नों को, मृत्यु रूप पाप को और

समस्त विघ्नरूप शत्रुओं को हमसे दूर भगावें। आदित्यगण और मरुद्गण हमको सुख देने वाले हों। विश्वेदेवों से हम याचना करते हैं ॥४॥ इन्द्र के लिए जब विशिष्ट स्तोत्र उच्चारित हों तब वे हमारे विस्तृत कुश पर विराजमान हों। बृहस्पति देवता ऋक् और सोम के द्वारा उनकी पूजा करें। हम दीर्घ आयु और इच्छित श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त करें। विश्वेदेवाओं से हम विशिष्ट रक्षाओं की याचना करते हैं ॥५॥

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६॥
उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७॥
अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥
सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥९॥
ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥१०

हे अश्विनीकुमारो! हमारा यज्ञ देवताओं को स्पर्श करने वाला हो। यज्ञ में उपस्थित समस्त बाधाओं को दूर भगाओ। हमारे अभीष्टों को पूर्ण करके सुख दो। जिस अग्नि में घृताहुति प्रदान की जाती है, उनकी ज्वालाओं को देवताओं के पास भेजो। हम इन देवताओं से रक्षा माँगते हैं ॥६॥ श्रेष्ठ दर्शनीय, कल्याणोत्पादक, धन को प्रवृद्ध करने वाले मरुद्गण सबका शोधन करते हैं। उनका ध्यान करते ही हृदय हर्षित होजाता है। मैं उन्हीं मरुतों को आहूत करता हूँ। मैं अन्न की प्राप्ति के लिए उनका ध्यान करता हुआ, विश्वेदेवों से विशिष्ट रक्षा की याचना करता हूँ ॥७॥ स्वच्छन्दता के देने वाले और जल में मिश्रित होने वाले सोम

अपने नाम से प्रसन्नता देते और देवताओं को तृप्त करते हैं। वे श्रेष्ठ दीप्ति वाले और यज्ञ को सुशोभित करने वाले हैं। उनसे बल की याचना करते हुए हम उन्हें धारण करते हैं और देवों से रक्षा-याचना करते हैं ॥८॥ हम और हमारी सन्तान दीर्घायु हों। हम अपने मनुष्यों में सोमरस को विभाजित करके पीवें। हम देवताओं के प्रति अपराधी न हों। हम देवों से श्रेष्ठ रक्षा चाहते हैं ॥९॥ हे देवगण! तुम यज्ञ-भाग प्राप्त करने के अधिकारी हो। हमारे द्वारा याचित पदार्थों को हमें प्रदान करो। हमको वह उपदेश करो जिससे हम बलवान होजाँय। हमको ऐश्वर्य और यश भी दो। हम उन देवताओं से रक्षा चाहते हैं ॥१०॥

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम्।
यथावसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्-
सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो
रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥११

जिस प्रकार देवगण प्रचण्ड, अविचल और महान् हैं, उसी प्रकार के गुण हम भी माँगते हैं। हे देवगण! हम धन और बल प्राप्त करें। हम तुमसे रक्षा की याचना करते हैं ॥११॥ मित्रावरुण के प्रति निरपराध सिद्ध होते हुये हम सुख पावें। प्रदीप्त अग्नि हमें कल्याण प्रदान करें। सूर्य हमारे लिये शान्तिप्रद हों। देवगण से हम श्रेष्ठ रक्षा की

याचना करते हैं ॥१२॥ सत्य रूप वाले सूर्य, मित्र और वरुण के यज्ञ में उपस्थित रहने वाले सभी देवता हमें बल; धन, गौ आदि से युक्त सौभाग्य धन आदि प्रदान करें। उनकी कृपा से हम पुण्यकर्मा बनें ॥१३॥ चारों दिशाओं में सूर्य हमारी श्री-सम्पन्नता को बढ़ावें और हमको दीर्घ आयु दें ॥१४॥ [११]

सूक्त ३७

(ऋषि:—अभितपाः सौर्यः । देवता—सूर्यः । छन्दः—जगती,त्रिष्टुप्)

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१॥
सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२॥
न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३॥
येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥४॥
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५॥
तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य सन्दृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६॥१२

ऋत्विजो ! मित्रावरुण के देखने वाले सूर्य को प्रणाम करो। यह सूर्य सब वस्तुओं के देखने वाले, तेजस्वी, दिव्यजन्मा, प्रकाशयुक्त, पवित्र करने वाले और आकाश के पुत्र रूप हैं। उनका पूजन और स्तवन करो ॥१॥ सत्यवाणी के अवलम्ब से आकाश टिका है। सब संसार और प्राणीगण जिसके आश्रित हैं,और दिन प्रकाशित होते हैं, सूर्योदय होता

और जल भी निरन्तर गति से प्रवाहित रहता है, वही सत्यवाणी मेरी रक्षा करे ॥२॥ हे सूर्य। जब तुम अपने अश्वों को रथ में योजित कर आकाश में गमन करते हो, तब कोई भी देव विमुख प्राणी तुम्हारे पास नहीं जा सकता। तुम जिस ज्योति को धारण करके उदित होते हो, वही ज्योति सदा तुम्हारे साथ गमन करती है ॥ ३ ॥ हे सूर्य! तुम अपनी जिस ज्योति से अन्धेरे को दूर करते और विश्व को प्रकाशित करते हो, उसी ज्योति से हमारे पापों को हटाओ, रोगों को और क्लेशों को नष्ट करो तथा दारिद्र्य को भी मिटा डालो ॥४॥ प्रातःकालीन यज्ञ के समय उदित होने वाले सूर्य! तुम सरलता से ही संसार के सब कार्यों का पालन करते हो। हम जिस समय तुम्हारा नामोच्चारण करते हुए स्तुति करें, उसी समय हमारे यज्ञ को देवगण फल से सम्पन्न करदें ॥५॥ इन्द्र, मरुद्गण द्यावा पृथिवी और जल हमारे आह्वान को सुनें, आदित्य की कृपा पाकर हम दुःख को प्राप्त न हों। हम दीर्घजीवन के निमित्त अपनी वृद्धावस्था तक सौभाग्य से सम्पन्न रहें ॥६॥   [१८]

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७॥

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८॥

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९॥

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।

अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो

वसवो नि धेतन ॥१२॥१३

हे सूर्य ! तुम नित्यप्रति उदित होते हो, वैसे ही हम अपने ज्योति-सम्पन्न नेत्रों के द्वारा नित्यप्रति तुम्हारा दर्शन करते रहें। हम सदा निरोग रहें और सन्तान वाले होकर निरपराध रहें । हम दीर्घ आयु प्राप्त कर तुम्हारे दर्शन करते रहें ॥७॥ हे सूर्य ! तुम्हारी ज्योति सब में श्रेष्ठ है, तुम्हारा तेज अत्यन्त उज्वल है। तुम्हारे दर्शन सुख देने वाले हैं। जब तुम्हारा तेज आकाश को व्याप्त करता है, तब हम तुम्हारे उस तेजोमय रूप के नित्यप्रति दर्शन करें ॥८॥ तुम्हारी जिस ध्वजा रूप रश्मियों से विश्व प्रकाशित होता है और रात्रि का अन्धकार नित्यप्रति दूर होता है, तुम अपनी उसी श्रेष्ठ ध्वजा के सहित प्रतिदिन उदित होओ और हम भी पाप-रहित रहते हुए उसका दर्शन करते रहें ॥९॥ तुम्हारे देखने मात्र से हमारा मंगल हो। तुम्हारी रश्मियां, तेज, उत्ताप और शीतलता सभी हमारे लिए मङ्गल करने वाले हों। हमारा घर पर रहना अथवा यात्रा करना दोनों ही कार्य कल्याणकारी हों। हे सूर्य ! हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करो ॥१०॥ हे देवो ! हमारे आश्रित मनुष्य और पशु सबको तुम सुख दो। सब प्राणी श्रेष्ठ भाजन पाकर पुष्टि और बल को प्राप्त करते हुए स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करें ॥११॥ हे देवगण ! कर्म और वचन द्वारा जो कुछ भी अपराध देवताओं के प्रति हमसे बन जाता हो उसका पाप-दोष उस व्यक्ति पर डालो जो पापी तथा अश्रद्धानशील है और हमारा अनिष्ट-चिंतन करता रहता है ॥१२॥ [१३]

सूक्त ३८

(ऋषिः— इन्द्रो मुष्कवान् । देवता—इन्द्रः । छन्दः—जगती)

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥१॥

स न. क्षुमन्त सदने व्यूर्णु हि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयत. शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२
यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहा. सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ॥३
यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये :
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४
स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुंचस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु
त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५।१४

हे इन्द्र ! इस सन्मुख प्रहार वाले युद्ध में विजयी होने पर सदा यश लाभ होता है । तुम उस यज्ञ में वीर रस में भरकर ललकारते और शत्रुओं से ली हुई गौओं की रक्षा करते हो । युद्ध से गिरते मनुष्य तीक्ष्ण बाणों को शत्रुओं पर गिरते हुए देखकर भयभीत होजाते हैं ॥ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे गृह को उत्तम अन्न, धन और गौओं से पूर्ण करो। हम जिस धन की तुमसे याचना करते हैं वह श्रेष्ठ धन हमको प्रदान करो । जब तुम शत्रुओं को पराभूत करो तब हमारे ऊपर कृपा करने वाले होओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! अनेकों द्वारा आहूत तुम बहुत बार पूजित हुए हो। जो मनुष्य हमसे युद्ध करना चाहे वही रण भूमि में पराजित हो। हम उसे तुम्हारे रक्षा साधनों के द्वारा जीत न लें ॥३॥ जो इन्द्र श्रेष्ठ वस्तु को भी युद्ध में जीत लेते हैं, जो अत्यन्त दुःसाध्य युद्धों में भी विजय पाते हैं, जो युद्ध में रम जाते और अपने यश को प्रसिद्ध करते हैं और जिनका पूजन सब मनुष्य करते हैं हम उन्हीं इन्द्र की शरण प्राप्त करने के लिये उन्हें अपने अनुकूल बनाते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम अपने उपासकों में उत्साह भरते हो। हमें कौन व्यक्ति उत्साहित करता है, यह हम जानते हैं। तुम अपने बन्धन को स्वयं काटने में समर्थ हो। अतः हे इन्द्र ! तुम क्यों

शुष्क-द्वय के बन्धन में पड़े हो। हे शक्र ! तुम यहाँ आगमन करो और कुत्स के हाथ से हमारी रक्षा करो ॥२॥ [१४]

सूक्त ३९

(ऋषिः—घोषा काक्षीवती । देवता—अश्विनौ । छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१॥
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥
अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥३॥
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४॥
पुराणा वां वीर्या प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५।१५॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा जो रथ सर्वत्र गमनशील है और तुम्हारे जिस सुदृढ़ रथ का रात-दिन आह्वान करना यजमान का कर्त्तव्य माना गया है, इस समय हम उसी रथ का नामोच्चार करते हैं। जिस प्रकार पिता का नाम स्मरण करता हुआ मनुष्य सुखी होता है, वैसे ही हम इस रथ का नाम लेते हुए सुखी होते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! हम मधुरभाषी हों। हमारे सभी कर्म पूर्ण हों। हमारी प्रार्थना है कि हममें-अनेक सुमति उदित करो। हमें श्रेष्ठ और कीर्तिशाली ऐश्वर्य का भाग प्रदान करो। सोम का मधुर रस जैसे स्नेह उत्पन्न करने वाला होता है, वैसे ही हम भी यजमानों के प्रति स्नेह करने वाले हों—ऐसा करो ॥ २ ॥ एक स्त्री अपने पिता के घर में वद रही थी, तुम उसके सौभाग्य रूप वर को ले आए। हे अश्विद्वय ! जो पंगु हैं, पतित हैं उसे भी तुम शरण प्रदान करते हो। तुम नेत्रहीन, बलहीन !

रोगियों की चिकित्सा करने वाले कहे जाते हो ॥ ३ ॥ पुराने रथ की मरम्मत करके जैसे कोई व्यक्ति उसे नया सा कर लेता है, वैसे ही तुमने वृद्धावस्था से जीर्ण हुए च्यवन ऋषि को तरुण बना दिया। हे अश्विद्वय! तुमने ही तुग्र के पुत्र को जल पर वहन किया और किनारे लगाया। तुम दोनों के यह पराक्रम यज्ञ में कीर्तन के योग्य हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों के पराक्रमों का मैं बखान करती फिरती हूँ। तुम अत्यंत कुशल चिकित्सक हो अतः मैं तुम्हारी शरण प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करती हूँ। हे अश्विद्वय! तुम सत्यके साक्षात रूप हो, मेरी स्तुति पर यजमान अवश्य ही विश्वास कर लेगा ॥ ५ ॥

[१५]

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥
युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥७॥
युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥८॥
युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥९॥
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०॥१६॥

हे अश्विद्वय! मेरा आह्वान सुनो। जैसे पिता पुत्र को सीख देता है वैसे ही तुम मुझे दो। मुझे ज्ञान-रहित का न कोई भाई है, न कुटुम्बी है। श्रेष्ठ बुद्धि भी मेरे पास नहीं है। यदि मुझे कोई क्लेश प्राप्त हो तो उसे पहले ही दूर कर दो ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम राजा पुरुमित्र की कन्या शुन्ध्युव को रथ पर बैठा कर ले गए और विमद के साथ उसका विवाह कर दिया। तुम्हें वध्रिमती ने आहूत किया था, तब तुमने उसके दुःख को सुना

और सुख से प्रसव कराया ॥ ७ ॥ कलि नामक वृद्ध स्तोता को तुमने पुनर्यौवन प्रदान किया। तुमने ही वन्दन को कूप से निकाला था और तुमने ही लँगड़ी विश्पला को लोहे के पाँव देकर उसे गमन योग्य बना दिया था ॥८॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम कामनाओं के देने वाले हो। जब शत्रुओं ने रेभ को मरणासन्न करके गुफा में डाल दिया था तब तुम्हींने उसकी रक्षा की थी। जब अत्रि ऋषि को सात-बन्धनोंमें बाँधकर तप्त अग्नि कुण्डमें डाल दिया गया था, तब तुमने उस अग्निकुण्ड को ही शीतल कर दिया था ॥ ९ ॥ हे अश्विनी कुमारो ! तुमने ही निन्यानवे अश्वों के साथ एक श्रेष्ठ श्वेत वर्ण वाला अश्व राजा पेदु को प्रदान किया था। उस अद्‌भुत तेज वाले अश्व को देखते ही शत्रु-सेना दूर भागती थी। मनुष्यों की दृष्टि में वह अश्व अत्यन्त मूल्यवान था। उसके दर्शन से मन में हर्ष होता था और नाम लेने मात्र से सुख मिलता था ॥ १० ॥ [१६]

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥
आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२॥
ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामपुञ्चतम् ॥१३॥
एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥१७॥

हे अश्विद्वय ! जब तुम गमन करते हो तब मार्ग में ही सब ओर के मनुष्य तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारा नाम लेने से ही आनन्द की उत्पत्ति होती है। तुम यजमान दम्पत्ति को यदि रथ पर चढ़ा कर शरण प्रदान करो तो फिर उन्हें कोई भी पाप-दोष, विपत्ति, विघ्नादि का स्पर्श नहीं हो सकता ॥ ११ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! ऋभुओं ने तुम्हारे लिए रथ प्रदान किया

था। उस रथ के प्रकट होते ही आकाश की पुत्री उषा भी उदित होती है। उसी से सूर्य की आश्रिता दिवस रात्रि जन्म लेती हैं। अपने उसी अत्यन्त वेग वाले रथ पर आरूढ होकर तुम कल्याणकारी मन से यहाँ आओ ॥ १२ ॥ हे अश्विनीकुमारो! उसी रथ पर आरूढ होकर तुम पर्वत वाले पथ पर चलो और शयु नाम वाली वृद्धा गौ को पुनः पयस्विनी बनाओ। तुमने ही तेंदुए के मुख से वर्त्तिका नामक पक्षी को निकाल कर उसकी रक्षा की ॥ १३ ॥ हे अश्विनीकुमारो! भृगुओं द्वारा जैसे रथ बनाए जाते हैं, वैसे ही तुम्हारे लिए मैं यह रथ बनाती हूँ। जैसे कन्या के पाणिग्रहण के अवसर पर उसे वस्त्रालंकारों से सजाते हैं, वैसे ही हमने यह स्तोत्र सजाया है। हम पुत्र पौत्रादि के सहित सदा सुखी रहें ॥ १४ ॥ [१७]

सूक्त ४०

(ऋषिः—घोषा काक्षीवती। देवताः—अश्विनौ। छन्दः—जगती)

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१॥
कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२॥
प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३॥
युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४॥
युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५।१८॥

हे अश्विनीकुमारो! तुम मनुष्य के लिए कर्म का उपदेश करते हो। तुम्हारा जो रथ प्रातः काल गमन करता हुआ प्रत्येक उपासक के पास धन पहुँचाता है, उस समय अपने यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए कौन सा यजमान

उस रथ की स्तुति करता है ? ॥ १ ॥ हे अश्विनी कुमारो ! तुम अपना समय कहाँ व्यतीत करते हो ? दिन में और रात्रि में कहाँ गमन करते हो ? तुम्हें अपने श्रेष्ठ यज्ञ में आदर सहित कौन आहूत करता है ॥ २ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! दो श्रद्धास्पद राजाओं को जैसे यशगान करते हुए जगाया जाता है, वैसे ही तुम्हारे लिए प्रातःकाल स्तुतियाँ की जाती हैं। यज्ञ प्राप्ति के लिए तुम नित्य प्रति किसके गृह में जाते हो ? हे कर्मों के उपदेशक ! तुम किसके पापों को दूर करते हो ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मैं हव्यादि से सम्पन्न व्यक्ति दिन-रात तुम्हारा आह्वान करती हूँ। तुम्हारे लिए यथा समय यज्ञ किये जाते हैं। तुम समस्त कल्याणों के स्वामी हो और अपने उपासकों के लिए अन्न लेकर आते हो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मैं राजकुमारी घोषा सब ओर घूमती हुई तुम्हारा गुणानुवाद करती हूँ और तुम्हारा ही चिंतन करती रहती हूँ। तुम दिन रात मेरे यहाँ निवास करते हुए रथ और अश्वों से सम्पन्न मेरे भ्राता के पुत्र को वश में रखते हो ॥ ५ ॥ [१८]

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥
युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥
युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्य स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८॥
जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥९॥
जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥१९॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम रथ पर आरूढ़ हो। कुत्स के समान स्तोता के घर अपने रथ पर ही जाते हो। तुम्हारे मधु को मक्खियाँ ग्रहण करती हैं ॥६॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने भुज्यु को समुद्र से उबारा, तुम्हीं ने

राजा वश, महर्षि अत्रि और उशना की रक्षा की। दानशील व्यक्ति से ही तुम्हारी मित्रता होती है। तुम्हारी शरण पाकर जो सुख मिलता है,मैं उसी सुख को चाहता हूँ ॥७॥ हे अश्विनीकुमारो! तुमने ही शयु,कृश और पति विहीना स्त्री तथा अपने सेवक की रक्षा की थी। यज्ञ करनेवाले के निमित्त मेघको तुम्हीं विदीर्ण करते हो। तब गतिवान मेघ शब्द करता हुआ जल-वृष्टि करता है ॥ ८ ॥हे अश्विनीकुमारो! मैं घोषा हर प्रकार से सौभाग्यवती हो गई। मेरे विवाह के लिए वर भी प्राप्त होगया। तुम्हारी वृष्टि से अनाज भी उत्पन्न हुआ है। नीचे की ओर बहने वाली नदियाँ अपने जल को इनकी ओर प्रेरित कर रही हैं। यह सब प्रकार की शक्ति से सम्पन्न और रोग-रहित हो गए हैं ॥९॥ हे अश्विनीकुमारो! जो पुरुष अपनी स्त्री की प्राण-रक्षा के लिए रोते हैं, जो उन्हें यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में लगाते हैं, जो सन्तानो-त्पत्ति करते हुए पितृ-मार्ग आदि से युक्त होते हैं, उनकी स्त्रियाँ सुख से रहती हैं ॥१०॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥१२
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३
क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४॥२०

हे अश्विनीकुमारो! मैं उन्हें प्राप्त होने वाले सुख को नहीं जानती। उस सुख का मेरे प्रति उपदेश करो। हे अश्विनीकुमारो! जो पति मुझे चाहने वाला हो उसी बलवान के गृह को मैं प्राप्त होऊँ, यही मेरी कामना

है ॥ ११ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न और धन के स्वामी हो । तुम मुझ पर दया करो । हे कल्याण करने वालो ! मेरी कामना पूरी करो और मेरे रक्षक बनो । मैं अपने पति के घर को प्राप्त होती हुई पति की प्रियतमा होऊँ ॥ १२ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे पति को धन-सन्तान से पूर्ण करो । तुम दोनों कल्याण करने वाले हो । मेरे पति गृह वाले मार्ग में पड़ने वाले विघ्नों को नष्ट करो और मैं जिस नदी तट पर जल पीऊँ, उसे मेरे लिए सुखमय करो ॥ १३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सदा मंगल करने वाले हो । तुम्हारे दर्शन अत्यन्त रम्य हैं । तुम आज कहाँ हो ? किस यजमान के घर में विहार करते हो ॥ १४ ॥ [२०]

सूक्त ४१

(ऋषि—सुहस्त्यो घौषेयः । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती)

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥ १ ॥
प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥ २ ॥
अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥३॥२१

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे एक ही रथ को अनेक उपासक आहूत करते हैं । तीन चक्रों वाला वह रथ यज्ञों में आगमन कर चारों ओर विचरण करता है । हम स्तोता तुम्हारे उसी रथ को अपने प्रातः सवन में स्तुति करते हुए बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा जो रथ प्रातःकाल अश्वों से युक्त होता है, और गमन करता हुआ मधु वहन करता है, उसी रथ के द्वारा तुम यज्ञ करने वालों की ओर गमन करो । हे अश्विद्वय ! अपने स्तोता के यज्ञ में अवश्य पहुँचो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मेरे पास आगमन करो । मैं मधु हस्त होता हुआ अध्वर्यु का कार्य कर रहा हूँ । अथवा तुम अग्निध्र नामक ऋत्विज् के रूप में गमन करो । हे अश्विद्वय ! तुम सदा

मेधावी जनों के यज्ञ में गमन करते हो, परन्तु आज मेरे इस यज्ञ में मधु-पानार्थ आगमन करो ॥ ३ ॥   [२१]

सूक्त ४२

(ऋषि—कृष्णः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥
किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥ २२

जैसे चतुर धनुर्द्धर लक्ष्य पर अपने बाण को चलाता है, वैसे ही इन्द्र के लिए स्तुति करो। हे स्तोताओ! अपने स्तोत्र को अलंकृत और प्रवृद्ध करके प्रस्तुत करो। तुमसे स्पर्द्धा करने वाला पुरुष तुम्हारे स्तोत्र के प्रभाव से पराभूत हो। इस समय इन्द्र को सोम-रस की ओर प्रेरित करो॥ १ ॥ हे स्तोताओ! गौओं का दोहन करके जैसे मनुष्य अपना कार्य साधन करते हैं, वैसे ही तुम इन्द्र से अपने कार्य को निकालो। यह इन्द्र स्तुतियों के पात्र हैं, इन्हें चैतन्य करो। जैसे अन्न से पूर्ण पात्र को टेढ़ाकर अन्न निकालने के लिए अनुकूल करते हैं, वैसे ही इन्द्र को अपने अनुकूल करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम काम्यदाता क्यों कहाते हो? दाता होने के कारण ही तो लोग ऐसा कहते हैं। तुम तीक्ष्ण करने वाले हो, अतः मुझे भी तीक्ष्ण करो। तुम बुद्धि को कर्म में प्रेरित करने वाले हो, अतः मेरी बुद्धि को भी धनोपार्जन के योग्य

बनाओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! योद्धा जब रणभूमि में गमन करते हैं तब तुम्हारा नाम उच्चारित करते हैं। यह इन्द्र यजमान की सहायता करने वाले हैं। जो व्यक्ति इन्द्र के लिए सोम को अभिषुत नहीं करता, वह इन्द्र की मित्रता को भी प्राप्त नहीं करता ॥ ४ ॥ जो अन्नवान व्यक्ति इन्द्र के लिए सोम अिषव करता है, और गवादि दान करने वाले धनवान् के समान इन्द्र को मधुर सोम रस अर्पित करता है, इन्द्र उस व्यक्ति की सहायता करते हैं। वे वृत्रहन्ता इन्द्र अपने उस उपासक के असंख्य सेना वाले बलवान् शत्रु को भी शीघ्रता पूर्वक दूर भगाते हैं ॥ ५ ॥ [२२]

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८ ॥
उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥२३

इन्द्र धनवान हैं। हमने उनकी स्तुति की है और उन्होंने, हमारे अभीष्ट पूर्ण किये हैं। इन्द्र के सामने से शत्रुगण शीघ्र भाग जाँय और उनकी सब सम्पत्ति इन्द्र को प्राप्त हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हें अनेक उपासक आहूत करते हैं। तुम मुझे यवादि अन्न और गौओं से युक्त ऐश्वर्य दो। मुझ स्तोता के स्तोत्र को अन्न और धन उत्पन्न करने वाला बनाओ। तुम अपने

विकराल वज्र से निकटस्थ शत्रु को दूर भगाओ ॥ ७ ॥ अनेक धारों वाले मधुर रस की वृष्टि करने वाले सोम जब इन्द्र के शरीर में रमते हैं तब वे इन्द्र सोम प्रदान करने वाले को रोकते नहीं। अपितु सोम रस को निकाल कर अधिक से अधिक भेंट करने वाले को इच्छित वस्तुऐं देते हैं ॥ ८ ॥ जुआरी जिससे हार जाता है, उसे ढूँढ कर हारा हुआ जुआरी हराने का यत्न करता है, वैसे दुष्कर्म करने वाले को इन्द्र हरा देते हैं। जो उपासक उपासना कर्म में कृपणता नहीं करता, उसे इन्द्र अत्यन्त धनवान बना देते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र अनेकों द्वारा आहूत होते हैं, वे हमारे जौ से अपनी भूख को मिटावें। हम गौओं के द्वारा अपनी दरिद्रता को दूर करें। हम राजाओं के साथ आगे बढ़ते हुए अपने बल से विशाल धनों को जीतने वाले हों ॥ १० ॥ वृहस्पति हमें पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं के शत्रुओं से रक्षित करें। इन्द्र हमें पूर्व और मध्य दिशा में रक्षित करें। वे इन्द्र हमारे सखा हैं और हम भी इन्द्र के सखा हैं, वह इन्द्र हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥ ११ ॥ [२२]

सूक्त ४३ [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—कृष्ण. । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५॥ ७४

इन्द्र के उद्देश्य से मेरे स्तोत्रों ने इन्द्र का यश कीर्तन किया है। स्तुतियाँ हर प्रकार की कामना पूर्ण कराती हैं। हमारी स्तुतियाँ इन्द्र के आश्रय में जाती हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! मेरा मन अन्यत्र गमन नहीं करता। वह तुम्हारी ही इच्छा करता है। राजा जैसे अपने सिंहासन पर विराजमान होता है, वैसे ही उन कुशों पर विराजमान होओ। इस सोम के द्वारा पान-कार्य पूर्ण हो ॥२॥ अन्न के अभाव और बुरी दशा से हमारी रक्षा करने वाले इन्द्र हमारे स्व ओर रहें, क्योंकि वे सब धनों और ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। वे हमारी कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं। उन्हीं की इच्छा से सातों नदियाँ निम्न सुखगामिनी होती हुई कृषि को बढ़ाती हैं ॥३॥ चिड़ियायें जैसे सुन्दर पत्तों वाले वृक्ष का आश्रय लेती हैं, वैसे ही आनन्द की वर्षा करने वाले सोम इन्द्र का आश्रय प्राप्त करते हैं। सोम-रस पान से इन्द्र तेजस्वी होता है, वह इन्द्र हमें श्रेष्ठ ज्योति-प्रदान करें ॥४॥ जैसे जुआरी अपने हराने वाले को ढूँढकर हराता है, वैसे ही इन्द्र वर्षा के रोकने वाले वृत्र को हराते हैं। हे धन के स्वामी इन्द्र ! तुम्हारे समान पराक्रम कोई भी प्राचीन या नवीन पुरुष नहीं कर सकता ॥५॥ [२४]

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥२५

कामनाओं के सिद्ध करने वाले इन्द्र सबकी स्तुतियां सुनते हैं। धन देने वाले इन्द्र मनुष्यों में ही वास करते हैं। इन्द्र जिस यजमान के यज्ञ में प्रीति पाते हैं, वह यजमान अपने वैरियों के हराने में समर्थ होता है॥६॥ जैसे जल के सोते छोटे जलाशय में तथा नदियों में जाते हैं वैसे ही सोमरस इन्द्र में जाता है। जैसे दिव्य जल वाली वर्षा जौ की कृषि की वृद्धि करती है, वैसे मेधावी जन उस सोम के तेज की यज्ञ स्थान में वृद्धि करते हैं ॥७॥ जैसे परस्पर क्रोधित बैल एक दूसरे की ओर दौड़ते हैं; वैसे ही इन्द्र मेघ की ओर दौड़कर जल को निकालते हैं। जो व्यक्ति दान देने में उदार है, जो सोमयाग का कर्त्ता है और जो हव्य प्रदान करता है, उसे धनवान् इन्द्र तेज प्रदान करते हैं ॥८॥ तेजस्वी श्रेष्ठ आलोक को धारण कर सुशोभित हों। वे सज्जनों के रक्षक इन्द्र सूर्य के समान तेज से प्रकाशमान हों, उस इन्द्र का तेज यज्ञ सहित प्रकट हो। प्राचीनकाल के समान ही अब भी यज्ञ में स्तोत्रादि कहे जाँय ॥९॥ इन्द्र अनेकों द्वारा आहूत हैं। वे हमारे जौ से भूख मिटावें। हम राजाओं के साथ आगे बढ़ते हुए अपनी ही शक्ति से शत्रु के महान् धनों को विजय करें और गौओं के द्वारा हम अपनी दरिद्रता को दूर भगादें ॥ १० ॥ बृहस्पति हमें पश्चिम उत्तर, दक्षिण दिशाओं के शत्रुओं से रक्षित करें! इन्द्र पूर्व और मध्य दिशाओं में हमारी रक्षा करने वाले हों। वे इन्द्र हमारे मित्र हैं, हम भी उनके मित्र हैं, वह इन्द्र हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥११॥   [२५]

सूक्त ४४

(ऋषि—कृष्णः। देवता—इन्द्रः। छन्द,—त्रिष्टुप् जगती)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्ती ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज: स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव

पात्राणि धर्मणा ॥५।२६

शरीर में स्थूल, बल में महान् और बल-सम्पन्न पदार्थों के बल को हीन कर देने वाले इन्द्र अपने रथ पर आरूढ़ होते हुए यहाँ आवें और प्रसन्नता प्राप्त करें ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ सुन्दर प्रकार से निर्मित हुआ है। तुम्हारे रथ के दोनों अश्व चतुर हैं। तुम वज्र को धारण किये हुए हो। हे स्वामिन् ! तुम ऐसे रूप में ही यहाँ आओ। यह सोम तुम्हारे पीने के लिए रखा है उसके द्वारा हम तुम्हें अधिक बलवान कर देंगे ॥ २ ॥ तेजस्वी श्रेष्ठ इन्द्र के हाथ में वज्र रहता है। उनका क्रोध निरर्थक नहीं होता। वे शत्रुओं को अपने बल से निर्बल बना देते हैं। उन इन्द्र को उनके दुर्धर्ष हमारे यज्ञ में लेकर आवें ॥३॥ यह सोम कलश में संयुक्त होता है। यह बल का संचार करने वाला और शरीर का पोषक है अतः हे इन्द्र ! तुम इस सोमरस को अपने उदर में सींचो। फिर मुझे अपना मित्र बनाते हुए मेरे देह में बल की वृद्धि करो। तुम मेधावी जनों के स्वामी और उन्हें सब प्रकार समृद्ध करने वाले हो ॥४॥ हे इन्द्र ! मैं स्तुति करने वाला हूँ। विश्व का धन मेरे समीप आवे। मैंने अपनी श्रेष्ठ कामनाओं की सिद्धि के लिए सोम-याग की योजना की है। हे सब भूतों के स्वामिन ! तुम यहाँ आकर कुश पर विराजमान होओ। तुम्हारे पीने के लिए सोम से पूर्ण जो पात्र

मजाए गए हैं उन्हें कोई अन्य व्यक्ति बलपूर्वक पाने में समर्थ नहीं है ॥५॥ [२६]

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपय: ॥६
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७
गिरीँरज्राग्रेजमानाँ अधारयद्यौ: क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे विष्कभायति वृष्ण: पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुज: ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभग: ॥९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभि: प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०
बृहस्पतिर्न: परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायो: ।
इन्द्र: पुरस्तादुत मध्यतो न: सखा सखिभ्यो वरिव: कृणोतु ॥११॥२७

जो प्राचीन कालीन मेधावी पुरुष अपने यज्ञों में देवताओं का आह्वान करते थे, उन्होंने समस्त धनों को प्राप्त करके श्रेष्ठ गति पाई है। परन्तु जो दुष्कर्म करने वाले रहे हैं अथवा जो यज्ञ रूप नाव पर नहीं चढ़े, वे पतित हो गए और उनके सिर पर ऋण का बोझ भी बढ़ गया ॥६॥ वर्तमान काल में जो कुबुद्धि वाले व्यक्ति देख दिखते हैं, वे भी पतित ही हैं। भविष्य में वे किस गति को प्राप्त होंगे—यह कोई नहीं जानता। जो व्यक्ति यज्ञादि कर्मों में दान करते हैं वे अत्यन्त भोग्य पदार्थों से सम्पन्न लोक को प्राप्त होते हैं ॥७॥ जब इन्द्र सोम पीकर हर्षयुक्त होते हैं तब वे सब ओर घूमते और काँपते हुए मेघों को स्थिर करते हैं। उस समय विचलित हुआ आकाश भी कम्पित-सा होजाता है। परस्पर मिले हुए द्यावा-पृथिवी को इन्द्र पूर्ववत् व्यवस्था में रखते हुए श्रेष्ठ शब्द करते हैं ॥८॥ हे इन्द्र ! यह उत्तम

रीति से निर्मित अंकुश तुम्हारे निमित्त हो मैंने हाथ में लिया है। इस स्तोत्र-रूप अंकुश से ही तुम बड़े-बड़े हाथियों को अपने वश में रखते हो। हे ऐश्वर्य सम्पन्न! इस सोम-याग में अपने स्थान पर विराजमान होते हुए हमें श्रेष्ठ सौभाग्य प्रदान करो ॥९॥ इन्द्र अनेकों द्वारा बुलाए गए हैं, यह जौ से अपनी भूख मिटावें। हम राजा के साथ आगे बढ़ते हुए, रणक्षेत्र में अपने बल से महान धनों के विजेता हों और इन्द्र से प्राप्त गौओं के द्वारा दुःख और दरिद्रता से छूट जाँय ॥१०॥ बृहस्पति पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। इन्द्र पूर्व और मध्य दिशाओं में हमारी रक्षा करने वाले हों। इन्द्र हमारे सखा हैं और हम इन्द्र के सखा हैं, अतः वे इन्द्र हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥११॥ [२७]

सूक्त ४५

(ऋषि—वत्सप्रिः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१॥
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२॥
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥८

अग्नि का प्रथम जन्म स्वर्गलोक में विद्युत के रूप में हुआ। उनका द्वितीय जन्म हम मनुष्यों के मध्य हुआ, तभी वे सबके जानने वाले कहलाये। उनका तृतीय जन्म जल में हुआ। मनुष्यों का हित करने वाले अग्नि सदा प्रज्ज्वलित होते हैं। उनकी स्तुति करने वाले जन उनकी ही सेवा करते हैं॥१॥ हे अग्ने! हम तुम्हारे तीनों रूपों के ज्ञाता हैं। जहाँ-जहाँ तुम्हारा निवास है, उन स्थानों को भी हम जानते हैं। हम तुम्हारे निगूढ़ नाम और तुम्हारे उत्पन्न होने के स्थान के भी जानने वाले हैं। तुम जहाँ से आते हो वह भी हम जानते हैं॥२॥ हे अग्ने! वरुण ने तुम्हें समुद्र के जल में प्रज्ज्वलित कर रखा है। तुम आकाश के स्तन रूप सूर्य में भी अपने तेज से प्रज्ज्वलित हो। तुम ही मेघस्थ जल में विद्युत रूप से स्थित हो। मुख्य देवगण तुम्हें तेज प्रदान करते हैं॥३॥ आकाश में जब अग्नि कड़कते हैं तब वज्र के गिरने का-सा शब्द होता है। तब वे अग्नि पृथिवी की लता आदि को स्पर्श करते हैं। जन्म लेते ही अग्नि विस्तृत और प्रवृद्ध रूप से प्रज्ज्वलित होते हैं। आकाश-पृथिवी के मध्य अपनी रश्मियों का विस्तार करने के कारण अग्नि की विशेष महिमा हुई है॥४॥ प्रातःकाल के प्रथम चरण में जब अग्नि प्रज्ज्वलित होते हैं। उस समय वे अत्यन्त शोभायमान लगते हैं। यह सभी धनों के आश्रय रूप अग्नि स्तुतियों को सौन्दर्य करते हुए मधुर सोमरस की पुष्ट करते हैं, जल में निवास करने वाले अग्नि धनों के साक्षात् रूप हैं, वे बल के द्वारा उत्पन्न होते हैं॥५॥अग्नि जल में जन्म लेते हैं। उन्होंने उत्पन्न होते ही आकाश पृथिवी को पूर्ण किया और सब पदार्थों को प्रकाशित किया। जब पाँचों वर्णों ने

मनुष्यों के मध्य रहने वाले अग्नि को यज्ञ में प्रकट किया, तब उन अग्निने श्रेष्ठ प्रकार से छाये हुए मेघ को चीरकर जल निकाल कर वृष्टि की ॥६॥

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७
दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९
आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२।२९

सबको पवित्र करने वाले अग्नि हवियों की कामना करते हैं। वे सब ओर गमन करने वाले हैं। वे अविनाशी अग्नि मरणशील के मध्य निवास करते हैं। मनोहर रूप धारण करते हुए वे सर्वत्र जाते रहते हैं और अपने उज्ज्वल तेज से आकाश को भी सम्पन्न करते हैं ॥७॥ ज्योतिर्मान अग्नि अत्यन्त तेजस्वी हैं। वे अपनेप्रकाश को पूर्ण करते हुए महान शोभा को प्राप्त होते हैं। आकाश ने अग्नि को उत्पन्न किया और वे वनस्पति रूप अन्न सेवन करते हुए ही अमरत्व को प्राप्त हुए ॥८॥ हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालाऐं कल्याण करने वाली हैं। जिस यजमान ने आज तुम्हारे लिए घृतयुक्त पुरोडाश अर्पित किया है, उस श्रेष्ठ यजमान को तुम महान् ऐश्वर्य की ओर करो। उस देवोपासक को सुख और स्वच्छन्दता प्राप्त हो

॥१॥ हे अग्ने! जब श्रेष्ठ अन्न के साथ यज्ञानुष्ठान किया जाता है; उसी समय तुम यजमान पर कृपा करो। वह यजमान सूर्य का और अग्नि का प्रिय भक्त हो। उसका उत्पन्न पुत्र या होने वाला पुत्र उसके साथ ही शत्रु का वध करने वाला हो ॥ ०॥ हे अग्ने! यजमान तुम्हें नित्यप्रति श्रेष्ठ हव्य अर्पित करते हैं। देवताओं ने तुम्हारे साथ मिल कर यजमान की धनेच्छा को सिद्ध करने के निमित्त उसके लिये श्रेष्ठ गौओं से पूर्ण गोष्ठ का द्वार खोल डाला था ॥११॥ जिस अग्नि को सुशोभित आभा मनुष्यों में निवास करती है और जो अग्नि सोम या पालन करते हैं, उन्हीं अग्नि का ऋषियों ने स्तव किया है। हे देवताओ! हमको धन और बल प्रदान करो। हम द्वेष-रहित द्यावा-पृथिवी का आह्वान करते हैं ॥१२॥ [२६]

॥ इति सप्तमोष्टकः ॥

अष्टमो अष्टकः

—::▭::—

सूक्त ४६

(ऋषिः—वत्सप्रिः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृपद्वा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥१॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२॥
इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥३॥
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥४॥
प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥५॥१॥

मनुष्यों के मध्य निवास करने वाले अग्नि, जल में रहने वाले अग्नि और आकाश में उत्पन्न अग्नि अपने गुणों से ही महिमावान् होकर यजमानों के होता बने हैं। यज्ञ को धारण करने वाले यह अग्नि वेदी पर प्रतिष्ठित किये गए हैं। हे वत्सप्रि ! तुम उन अग्नि के पूजक हो। वे अग्नि तुम्हें धनादि ऐश्वर्य प्रदान करें और तुम्हारे देह की भी रक्षा करें ॥ १ ॥ ऋषियों ने जल में रहने वाले अग्नि को जैसे चोर द्वारा चुराए गए पशु को ढूंढते हैं, वैसे ही ढूंढा। तब उनमें अत्यंत मेधावी भृगुओं ने एकान्त स्थान में विराजमान्

अग्नि को, स्तुतियों के द्वारा प्राप्त किया ॥ २ ॥ अग्नि की कामना करते हुए विभुवस पुत्र त्रित ने श्रेष्ठ अग्नि को पृथिवी पर प्राप्त किया। यह अग्नि स्वर्ग लोक के नाभि रूप हैं। यह यजमानों के घरों में उत्पन्न होने वाले तरुण अग्नि सुख की वृद्धि करने वाले हैं ॥ ३ ॥ अग्नि आह्वान के योग्य, यज्ञ योग्य, पवित्र करने वाले, गतिवान्, हवियों के वहन करने वाले हैं। ऋषियों ने इन्हें अपने श्रेष्ठ स्तोत्रों से बढ़ाया है ॥ ४ ॥ हे स्तोताओं! यह अग्नि मेधावियों के धारण करने वाले और विजयशील हैं। यह सब मनुष्यों के जानने वाले, पुरियों के तोड़ने वाले, स्तुत्य, अरणि-गर्भ और ज्वालामय हैं। तुम इन्हीं की स्तुति करो। क्योंकि सब विद्वान् इन्हें हवि देकर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

[१]

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः सङ्गृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥६॥
अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥७॥
प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥८॥
द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥९॥
यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः सं हि पूर्वीः ॥१०॥२॥

गार्हपत्यादि तीन रूप वाले अग्नि यजमानों के घरों को स्थिर करते हैं। यह ज्वालाओं से सम्पन्न होकर यज्ञ वेदी में विराजमान होते हैं। मनुष्यों द्वारा दी गई हवि आदि से पुष्ट होते हुए अग्नि यजमानों के लिए दान की कामना करते हैं और शत्रुओं का संहार करने वाले वे अग्नि देवताओं के पास गमन करते हैं ॥ ६ ॥ यह यजमान अनेक अग्नियों से सम्पन्न हैं। वे सब अग्नि जरा-रहित, शत्रुओं को वश में करने वाले, पवित्रकर्त्ता, उज्ज्वल, वन

वासी और श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त हैं। जैसे सोम शीघ्रगामी हैं, उसी प्रकार अग्नि भी शीघ्रता से गमन करते हैं ॥ ७ ॥ जो अग्नि पृथिवी की रक्षा के लिए अनुकूल स्तोत्रों के धारणकर्ता और अपनी ज्वालाओं से कर्मों के धारण करने वाले हैं मेधावी मनुष्य उन्हीं पवित्र करने वाले, स्तुत्य, तेजस्वी, यज्ञ के योग्य और आह्वान करने वाले अग्नि को स्थापित करते हैं ॥ ८ ॥ आकाश पृथिवी में उत्पन्न होने वाले अग्नि को जल, त्वष्टा और भृगु-वंशियों ने अपने स्तोत्रों द्वारा पाया था और मातरिश्वा, तथा अन्य देवताओं ने जिन्हें मनुष्यों के यज्ञादि कर्म के लिए प्रकट किया था, वे अग्नि स्तुतियों के पात्र हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! देवताओं ने तुम्हें धारण किया था। तुम हवियों के वहन करने वाले हो। तुम्हारी कामना वाले मनुष्यों ने तुम्हें स्थापित किया है। देवोपासक यजमान तुम्हारे द्वारा यश पाता है। हे पावक ! मुझ स्तोता को अन्न प्रदान करो ॥ १० ॥ [२]

सूक्त ४७

(ऋषि:—सप्तगु: । देवता —इन्द्रो वैकुण्ठः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१॥
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२॥
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३॥
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४॥
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५।३॥

हे इन्द्र ! तुम विविध धनों के स्वामी हो। हम धन की अभिलाषा

से तुम्हारे दक्षिण हस्त को ग्रहण करते हैं। तुम अनेक गौओं के अधिपति हो, अत हमको पूर्ण करने वाला अद्भुत और श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको श्रेष्ठ और वर्षक धन प्रदान करो। क्योंकि हम तुम्हें सुन्दर रक्षा, तीक्ष्ण आयुध, चारु नेत्र, समुद्र की जल से पूर्ण करने वाले, धनों के धारणकर्त्ता, अनेकों द्वारा स्तुत और दुःखों का शमन करने वाला जानते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमें देवताओं का उपासक, श्रेष्ठ रूप वाला, प्रतिष्ठावान्, गम्भीर, मेधावी, स्तुतिशील, ज्ञानी, शत्रु-हन्ता, सम्मान के योग्य और वर्षक पुत्र प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तारने वाला, सुन्दर बल वाला, मेधावी, वर्षक, सत्य कर्म वाला, प्रवृद्ध, अन्नवान्, शत्रु-नाशक, शत्रु पुरियों का ध्वंसक और अद्भुत कर्मा पुत्र हमें दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वीर, रथी, गवादि धन से सम्पन्न सेवकों का प्रिय स्वामी, ब्राह्मणों का कृपा पात्र, अन्नवान्, प्रतिष्ठित, अन्नों से युक्त श्रेष्ठ पुत्र हमें प्रदान करो ॥ ५ ॥ [३]

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा ॥६॥
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा ॥७॥
यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा ॥८।४॥

मैं अंगिरा गोत्री सप्तगु हूँ। मैं सत्य कर्मों का करने वाला, सुन्दर बुद्धि से युक्त और मन्त्र का स्वामी हूं। स्तुति मेरे पास गमन करती है, और वे देवताओं के पास नमस्कारों से युक्त हुआ जाता हूं। हे इन्द्र ! तुम मुझे प्रतिष्ठित और वर्षक पुत्र प्रदान करो ॥ ६ ॥ मैं श्रेष्ठ हार्दिक भावों वाले स्तोत्रों को रच कर उनका नित्यप्रति पाठ करता हूँ। यह स्तुतियाँ, सुनने वालों का हृदय स्पर्श करने वाली हैं। दूत के समान अंतःकरण इन्द्र की सेवा में इन स्तुतियों को कहते हैं। हे इन्द्र ! मुझे पूजनीय और वर्षक पुत्र-रत्न प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुमसे जो याचना करता हूँ, मुझे वह प्रदान

करो मुझे अद्वितीय निवास-गृह भी प्रदान करो। मुझे पूजनीय और वर्धक पुत्र-धन भी दो। आकाश-पृथिवी मेरी इस याचना का भले प्रकार अनुमोदन करें ॥ ८ ॥ [४]

सूक्त ४८

(ऋषि:—इन्द्रो वैकुण्ठः। देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः। छन्द—जगती)

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१॥
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमाददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥२॥
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३॥
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः॥४॥
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५॥५॥

मैं शत्रुओं के धन का विजेता और श्रेष्ठ धनों का स्वामी हूँ। मनुष्य मुझे आहूत करते रहते हैं। पिता जैसे पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही मैं, हवि देने वाले यजमानों को श्रेष्ठ अन्न प्रदान करता हूँ॥ १ ॥ मैंने ही दध्यङ् ऋषि का शिर काट लिया। मैंने ही कूप में गिरे त्रित की रक्षा के लिए मेघ में जल को प्रेरित किया। मैंने ही शत्रुओं से धन छीना और मैंने ही मातरिश्वा के पुत्र दधीचि के लिए जल को रोकने वाले मेघों को चीर कर जल-वृष्टि की ॥ २ ॥ देवता मेरे निमित्त यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं। त्वष्टा ने मेरे लिए ही लौह-वज्र का निर्माण किया था। सूर्य के समान ही मेरा सेना दुर्भेद्य है। मैंने वृत्र-हनन जैसे भीषण कर्म किये हैं इसलिए सब मेरी आराधना करते हैं ॥ ३ ॥ जब यजमान मुझे मधुर सोम अर्पित करते हुए

स्तुतियों से सन्तुष्ट करते हैं, तब मैं अपने आयुध द्वारा शत्रु अश्व, गौ, सुवर्ण, और दुग्धादि से युक्त सब पशुओं पर विजय पाता हूँ। मैं दानशील यजमान के शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अपने अनेक आयुधों को तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ४ ॥ मैं सभी धनों का अधिपति हूँ। मेरे धनों को जीतने का सामर्थ्य किसी में नहीं है। मेरे उपासक को मृत्यु नहीं सताती। हे पुरुषो! मनुष्य मेरी मित्रता को न तोड़ें। हे यजमानो! तुम अपने अभीष्ट धन की याचना मुझ से ही करो ॥ ५ ॥   [४]

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥ ६ ॥
अभी दमेकमेको अस्मि निष्पाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७॥
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥ ८ ॥
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥
प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०॥
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥ ११ ॥ ६

जो घोर निःश्वास छोड़ने वाले शत्रु दो-दो करके, मुझ आयुधधारी इन्द्र से युद्ध करने लगे और जिन्होंने प्रतिपक्षी के रूप में युद्ध के लिए मेरा आह्वान किया, मैंने उन्हें ललकारा और अपने आयुधों से आघात किया जिससे वे गिर कर मृत्यु को प्राप्त होगए। मैं इन्द्र किसी के सामने नहीं झुका ॥ ६ ॥ मैं आक्रमण करने वाले एक या दो शत्रुओं को शीघ्र ही पराभूत करता हूँ, तीन हर, मिलकर भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। धान

मसलने के समय कृषक जैसे अकस्मात् पुराने धान्य स्तम्भों को मसलता है, वैसे ही मैं दुष्ट शत्रुओं का संहार करता हूँ ॥७॥ अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को मैंने ही गुंगुओं के देश में बसाया था, अब यह गुंगुओं के वैरियों को मारते, उनके दुःखों को दूर करते और उनका हर प्रकार पोषण करते हैं। मैं पर्णय और करंज नामक शत्रुओं के युद्ध में मारे जाने पर अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था ॥ ८ ॥ मेरी स्तुति करने वाले पुरुष सब को आश्रय देने वाले, भोग्य सामग्री प्रदान करने वाले और अन्न से सम्पन्न हैं। मैं उसे जिताने के लिए संग्राम शस्त्रास्त्र उठाता हुआ स्तोता के यश का विस्तार करता हूँ ॥ ९ ॥ दो व्यक्तियों में जो एक व्यक्ति सोम-याग करता है, उसके लिए इन्द्र ने वज्र ग्रहण किया और ऐश्वर्य से सम्पन्न बना दिया। हे तीक्ष्ण तेज वाले सोम ! जब यज्ञकर्त्ता से शत्रु ने युद्ध करना चाहा, तभी वह घोर अन्धकार में पड़ गया ॥ १० ॥ जिन आदित्यों, वसुओं और रुद्रों ने मेरे कल्याण के लिए तथा मुझे अजेय और अहिंसित रखने के लिए किसी अन्न को कल्पित किया है, इन्द्र उन देवताओं के स्थान को नहीं तोड़ते ॥ ११ ॥ [६]

सूक्त ४९

(ऋषि—इन्द्रो वैकुण्ठः । देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥ १ ॥
मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥ २ ॥
अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥ ३ ॥
अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥ ४ ॥
अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥ ११ ॥ ८

नववास्त्व और बृहद्रथ को मैंने उसी प्रकार मारा जिस प्रकार वृत्र को मारा था । यह दोनों ही उस समय प्रसिद्ध बलवान थे । मैंने इनके उज्ज्वल भविष्य को समाप्त कर दिया ॥ ६ ॥ द्रुतगामी अश्व मुझे वहन करते हैं, तब मैं सूर्य की परिक्रमा करता हूँ । जब सोमाभिषुत होने पर यजमान द्वारा मेरा आह्वान किया जाता है, तब मैं हिंसनीय शत्रुओं को अपने तीक्ष्ण आयुधों द्वारा नष्ट कर देता हूँ ॥ ७ ॥ मैंने तुर्वश और यदु को बली बनाकर प्रसिद्ध किया और अन्य स्तोताओं को भी शक्ति प्रदान की । मैंने सात शत्रुओं के नगरों को नष्ट किया । मेरे द्वारा निन्यानवे नगरियाँ ध्वस्त की गईं । मैं जिसे बाँधता हूँ, वह छूट नहीं सकता ॥ ८ ॥ सिंधु आदि सातों नदियों को यथा स्थान प्रवाहित रहने के लिए मैंने ही प्रेरित किया है । मैं सुन्दर कर्म वाला और जल की वृष्टि करने वाला हूँ । यज्ञ करने वाले के लिए संग्राम करके मैं ही उसके मार्ग को विस्तृत करता हूँ ॥ ९ ॥ गौओं के स्तनों को मैंने श्रेष्ठ, मधुर और सब के द्वारा काम्य दुग्ध से पूर्ण किया । नदो के समान ही गौ का स्तन भी दूध को धारण करता है । वह दुग्ध जब सोम में मिश्रित होता है, तब अत्यन्त सुस्वादु और सुखकारी होता है ॥ १० ॥ इन्द्र के पास सर्व धन हैं, इसलिए वे धनी हैं । वे अपनी महिमा से देवताओं और मनुष्यों को भाग्यवान बनाते हैं । हे इन्द्र ! तुम अश्वों से सम्पन्न तथा अनेकों कर्म वाले हो । तुम्हारे सब कर्म तुम्हारे ही आश्रित रहते हैं । मेधावी ऋत्विज् तुम्हारे उन सभी कर्मों का गुणानुवाद करते हैं ॥ ११ ॥ [८]

सूक्त ५०

(ऋषि—इन्द्रो वैकुण्ठः । देवता—इन्द्रो वैकुण्ठ. । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥१॥
सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।

विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे ॥ २ ॥
के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्य मियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥ ३ ॥
भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञिय. ।
भुवो नृँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥ ४ ॥
अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥ ५ ॥
एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥ ६ ॥
ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥७॥ ६

हे स्तोताओ ! इन्द्र सब के रचयिता और अधिपति हैं । वे तुम्हारे द्वारा दिये जाने वाले सोम से हर्षित होते हैं । उनकी शक्ति अद्भुत है, कीर्ति महान् है । समस्त संसार उनके कर्मों की प्रशंसा करता है । अतः तुम उन्हीं का पूजन करो ॥ १ ॥ सब के स्वामी इन्द्र सभी की स्तुतियों के पात्र हैं । वे भाई के समान ही मनुष्यों का हित करने वाले हैं । हे इन्द्र ! तुम सज्जनों का पालन करने वाले हो । जब किसी प्रकार के अत्यन्त शक्ति की आवश्यकता वाले कार्य समुपस्थित हों तब, अथवा जल वृष्टि के लिए भी हमें तुम्हारा पूजन करना चाहिए ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो भाग्यवान् व्यक्ति, राक्षसों के संहार के निमित्त वज्री बनाने के लिए, तुम्हें सोम देते हैं और अन्न, धन आदि ऐश्वर्य तुमसे पाते हैं, वे कौन हैं ? जो अपने खेत में वर्षा का जल प्राप्त करने के लिए और उसके द्वारा अन्न पाने के लिए तुम्हें सोम रस अर्पित करते हैं, वे कौन हैं ? ॥३॥ हे इन्द्र ! इन अनुष्ठानों ने ही तुम्हें महान् बनाया है । तुम सभी यज्ञों में उसका अंश पाने के अधिकारी हो । तुम श्रेष्ठ मन्त्र के समान हो और सभी संग्रामों में तुम प्रमुख बलवान शत्रुओं का वध करने वाले होते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! सब जानते हैं कि तभी श्रेष्ठ रक्षाएं

तुम में संयुक्त हैं। अतः तुम जरा रहित रहते हुए, वृद्धि को प्राप्त होओ। हे सर्वोत्कृष्ट इन्द्र! इन यजमानों की रक्षा करो और इस सोम याग को शीघ्र ही सम्पूर्ण करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! तुम बलवान् हो। तुम जिन यज्ञों को धारण करते हो उन्हें शीघ्र सम्पूर्ण करते हो। तुम्हारी शरण में जाने के लिए हमारे पास यह धन, यह यज्ञ, यह सोम और यह पवित्र स्तुति मन्त्र उपस्थित हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! स्तुतियों में रमे हुए विद्वान् तुमसे विविध प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए सोम याग करते हैं। जब सोम रूप अन्न का अभिषव होता है, उस समय तुम स्तुतियों के द्वारा उस सुमधुर सुख को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥ [९]

सूक्त ५१

(ऋषि—देवाः, अग्निः सौचीकः। देवता—अग्निः सौचीकः, देवाः। छन्द–त्रिष्टुप्)

महत्तदुल्वं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः।
विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः ॥ १ ॥
को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत्।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ॥ २ ॥
ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥ ३ ॥
होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥ ४ ॥
एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरङ्कृत्या तमसि क्षेष्यग्ने।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः ॥ ५ ॥ १०

हे अग्ने! जब तुम जल में प्रतिष्ठित हुए थे, तब तुम अत्यन्त मेधावी हुए थे और स्थूलता से ढक गए थे। हे उत्पन्न हुओं के जानने वाले अग्निदेव! एक देवता ने तुम्हारे विभिन्न रूपों के दर्शन किए ॥ १ ॥

वे देवता कौन से थे जिन्होंने मेरे विभिन्न रूपों को देखा था ? मित्र, वरुण और अग्नि का वह तेज और देवयान को सिद्ध करने वाला वह शरीर कहाँ है, यह बताओ ? ॥२॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न जीवों के ज्ञाता हो । जल और औषधियों में तुम्हारा निवास है । हम तुम्हीं को ढूँढ रहे हैं । तुम्हें यम ने देखते ही पहिचान लिया था । उस समय तुम अपने दशों स्थानों से भी अधिक तेजस्वी दिखाई पड़ रहे थे ॥ ३ ॥ हे वरुण ! होता का कार्य बड़ा दुष्कर है । मैं उससे डर कर ही यहाँ आगया हूँ । मेरी इच्छा है कि देवगण मुझे अब यज्ञ-कर्म में न रखें । इसीलिए मुझ अग्नि का शरीर दश स्थानों में चला गया है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! इस समय तुम अन्धकार में हो । इस पुरुष ने यज्ञ करने की इच्छा की है । वह अनुष्ठान का आयोजन भी कर चुका है । अतः तुम यहाँ आकर हवियाँ प्राप्त करने की कामना से मार्ग को सुलभ करो और प्रसन्न मन से हव्य वाहक होओ ॥ ५ ॥ [१:]

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेत रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥ ६ ॥
कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥ ७ ॥
प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥ ८ ॥
तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो यमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥ ९ ॥ ११

हे देवताओ ! रथ पर गमन करने वाला पुरुष जैसे दूर देश में पहुँचता है, वैसे ही मुझ अग्नि के तीन ज्येष्ठ बंधु इस कार्य को करते हुए ही मिट गए । जैसे धनुष वाले की प्रत्यंचा से श्वेत मृग भय मानता है, वैसे ही मैं भी इस कर्म से भयभीत हुआ हूँ । इसीलिए मैं यहाँ से चला आया हूँ ॥६॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न हुओं के ज्ञाता हो । तुम अजर होओ । हमारे द्वारा दी गई आयु से तुम मृत्यु को प्राप्त नहीं होगे । अतः अब तुम प्रसन्न मन

से हवियों को वहन करते हुए हम देवताओं के पास ले आओ ॥ ७ ॥ हे देव-गण ! यज्ञ का प्रथम, शेष और अत्यन्त विपुल अंश मुझे प्रदान करो । औषधियों का सार अंश, दीर्घायु और जलों का सार रूप अंश घृत भी मुझे प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! जितने यज्ञ हों, वे सब तुम्हारे ही हों । प्रथम, शेष और विपुल यज्ञ-भाग तुम प्राप्त करोगे । विश्व की चारों दिशाएं भी तुम्हारे समक्ष झुकने वाली हों ॥ ९ ॥ [११]

सूक्त ५२

(ऋषि—अग्निः सौचीकः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥ १ ॥
अहं होता न्यसीदं यजीयान् विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ॥ २ ॥
अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ३ ॥
मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥ ४ ॥
आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥ ५ ॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ६ ॥ १२ ॥

हे विश्वेदेवाओ ! तुमने मुझे होता नियुक्त किया है । मुझे जिस मंत्र का यहाँ उच्चारण करना है, वह मुझे बताओ । इस यज्ञ में तुम्हारा भाग कौन-सा है और मेरा भाग कौन-सा है यह मुझे बताओ । मैं अग्नि इस यज्ञ में दिए गए हव्य को तुम्हारे पास किस मार्ग से पहुँचाऊँ, यह भी बताओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम नित्य प्रति अध्वर्यु का कार्य करते

हो। तेजस्वी सोम मंत्र के समान हो रहे हैं, तुम उनका पान करते हो। समस्त देवताओं ने और मरुद्गण ने मुझे होता नियुक्त किया है। इसीलिए मैं यज्ञ करने को यहाँ बैठा हूँ ॥ २ ॥ होता का कार्य क्या है? यजमान के जिस द्रव्य का होता हवन करते हैं, वह द्रव्य देवताओं को प्राप्त होता है। प्रत्येक मास अथवा प्रत्येक दिन यज्ञ होते हैं उन सब में अग्नि को हव्य-वहन करने के लिए देवताओं ने नियुक्त किया है ॥ ३ ॥ मैं चला गया था। मैंने अनेक कष्ट उठाए थे। मुझे अब देवताओं ने हव्य वहन कर्त्ता के रूप में वरण किया है। यज्ञ के पाँच मार्ग हैं। तीन सवनों में सोम का अभिषव होता है और सात छंदों में स्तुति की जाती है। हमारे इन यज्ञों को मेधावी अग्नि सम्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥ हे देवगण! मैं तुम्हारा उपासक हूँ। तुम मुझे मृत्यु से रक्षित करो, मुझे सन्तान प्रदान करो। जब मैं इन्द्र के हाथों में वज्र ग्रहण कराता हूँ तब वे शत्रुओं की सब सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं ॥५॥ तेंतीस सौ उन्तालीस देवों ने भी अग्नि की परिचर्या की थी। उन्होंने अग्नि को घृत से सींचा और यज्ञ में कुश विस्तृत कर उन्हें होता के रूप में प्रतिष्ठित किया ॥ ६ ॥   ॥१२॥

सूक्त ५३

(ऋषिः—देवाः, अग्निः सौचीकः। देवता—अग्निः सौचीकः, देवाः।

छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

यमैच्छाम मनसा सो३यमागाद्यज्ञस्य विद्वान्परुषश्चिकित्वान्।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ॥ १ ॥
अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत्।
यजामहै यज्ञियान्हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ॥ २ ॥
साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम्।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥ ३ ॥
तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥ ४ ॥

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ ५ ॥ १३

यज्ञ के जानने वाले अग्नि की हम कामना करते हैं। उनका आगमन हुआ है। वे सम्पूर्ण अङ्ग वाले हैं । उनके समान कोई भी यज्ञ नहीं कर सकता। वे यज्ञ-योग्य देवताओं के मध्य वेदी पर प्रतिष्ठित हैं। वे हमारे लिए यज्ञ करें ॥ १ ॥ यज्ञ को भले प्रकार सम्पन्न करने वाले और श्रेष्ठ होता अग्नि यज्ञ वेदी में प्रतिष्ठित होकर हवि-ग्राहक हुए हैं। वे यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री का इसलिए निरीक्षण कर रहे हैं, जिससे यजनीय देवताओं के लिए शीघ्र ही यज्ञ किया जाय ॥ २ ॥ हमारे यज्ञ में देवताओं को लाने वाला जो मुख्य कार्य है उसे अग्नि पूर्ण करें । हम अग्नि रूप यज्ञ की जिह्वा को प्राप्त कर चुके हैं। यह अविनाशी अग्नि गौ रूप से यहाँ आए हैं! इन्होंने देवताओं के आह्वान को सम्पन्न किया है ॥ ३ ॥ जिस श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा हम राक्षसों को हरा सकें, उसी श्रेष्ठ स्तोत्र को उच्चारित करें। हे पंचजन! हे मनुष्यादिको! तुम अन्न के खाने वाले और यज्ञ के करने वाले हो। अतः हमारे इस यज्ञ में आकर कार्य करो ॥ ४ ॥ पंचजन मेरे यज्ञ का सम्पादन करें। हवियों के लिए प्रकट हुए यज्ञार्ह देवता मेरे यज्ञ की परिचर्या करें। पृथिवी और अन्तरिक्ष पाप से हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥ [१३]

तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥
अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥ ७ ॥
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः ये शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८॥
त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥ ९ ॥

सतो नून कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभि रमृताय तक्षथ ।
विद्वांस पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥ १० ॥
गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिपासनिर्वनते कार इज्जितिम्

॥ ११ ॥ १४

हे अग्ने ! हमारे यज्ञ को बढ़ाते हुए सूर्य मण्डल में पहुँचो । जिन ज्योतिर्मय मार्गों को श्रेष्ठ कर्मों द्वारा पाया जाता है, उनके रक्षक होओ । तुम पूजनीय होकर देवताओं को यज्ञ में बुलाओ और स्तोताओं के कार्य में उपस्थित विघ्नों को दूर करो ॥ ६ ॥ हे सोम के पात्र देवगण ! तुम अपने अश्व की लगाम को स्वच्छ करो और अपने रथ में अश्वों को योजित करो । अपने उन श्रेष्ठ अश्वों को सुसज्जित करो । तुम्हारा रथ आठ सारथियों के स्थान वाले हैं, उन्हें सूर्य के रथ सहित इस यज्ञ में ले आओ । देवगण इसी रथ के द्वारा गमन करते हैं ॥ ७ ॥ हे देवताओ ! अश्मन्वती नाम वाली नदी प्रवाहित है । तुम इसे लाँघकर पहुँचो । हम तुम्हारी उपस्थिति से दुःखों से छुटकारा पा सकेंगे । तुम्हारे द्वारा ही हम नदी से पार होंगे और अन्न रूप श्रेष्ठ धन प्राप्त करेंगे ॥ ८ ॥ त्वष्टा देव श्रेष्ठ पात्र बनाते हैं, उन्होंने देवताओं के लिए शोभन पात्रों का निर्माण किया है । वे श्रेष्ठ लौह से निर्मित कुठार को तीक्ष्ण करते हैं । ब्रह्मणस्पति उसी कुठार से पात्र योग्य काष्ठ को काटते हैं ॥ ९ ॥ हे विद्वानो ! तुम अपने जिस कुल्हाड़े से अमृत पीने के योग्य पात्रों का निर्माण करते हो, उस कुल्हाड़े को भले प्रकार तीक्ष्ण करो । तुम हमारे लिए वह निवास-गृह निर्मित करो, जिसमें रह कर देवताओं ने अमरत्व प्राप्त किया था ॥ १० ॥ ऋभुओं ने मरी हुई गौओं में से एक गौ को रखा और उसके मुख में एक बछड़ा भी रखा । वे देवता बनना चाहते थे । उनका कुठार इस कार्य को सम्पूर्ण करने में साधन रूप है । शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले ऋभुगण अपने योग्य श्रेष्ठ स्तोत्रों को स्वीकृत करते हैं ॥ ११ ॥ [१४]

सूक्त ५४

(ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१॥
यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२॥
क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥३॥
चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४॥
त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥५॥
यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥६॥१५

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा को कहता हूँ । भयभीत द्यावा-पृथिवी ने जब तुम्हारा आह्वान किया, तब तुमने देवताओं का पालन किया था । यजमान को शक्ति प्रदान करते हुए तुमने दुष्ट राक्षसों को मार डाला था ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा शत्रु कोई नहीं है । पहिले भी कभी कोई शत्रु नहीं था । तुमने अपने देह को अधिक पुष्ट करके बल से सिद्ध होने वाले जिन कार्यों को पूर्ण किया था, वे सब माया द्वारा ही पूर्ण होजाते हैं । तुम्हारे सभी कार्य मायामात्र हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! हमारे पूर्व ऋषियों ने भी तुम्हारी माया का आदि अन्त नहीं पाया । तुमने अपने माता-पिता रूप आकाश-पृथिवी को अपनी ही देह से प्रकट किया है ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी महिमा बलवती है । तुम्हारी अहिंसनीय देह राक्षसों का नाश करने में समर्थ है । तुम अपनी इसी विस्तृत देह से इतनी महान कार्यों को सम्पन्न करते

हो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम प्रकट होकर दोनों प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी हो। सभी धनों पर तुम्हारा अधिकार है। हे इन्द्र ! तुम दान करने का स्वयं ही आदेश करते हो और स्वयं ही दान करते हो। अतः मेरी कामनाओं की सिद्धि करने वाले होओ ॥५॥ जिन इन्द्र ने तेजोमय पदार्थों में ज्योति स्थापित की है, जिन्होंने मधु प्रदान द्वारा सोम रस जैसे मधुर पदार्थों को उत्पन्न किया है बृहद् उक्थ मन्त्रों के रचयिता ऋषि ने उन्हीं इन्द्र के लिए श्रेष्ठ और बल करने वाली स्तुति की थी ॥६॥

सूक्त ५५

(ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्य । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्ना पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१
महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥२
आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३
यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥४
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥५।१६

हे इन्द्र ! जब आकाश पृथिवी तुम्हारे देह को अन्न के लिए आहूत करते हैं, तब तुम अपने वश में पड़े मेघों को तीक्ष्ण करते हो और आकाश को पृथिवी के आकर्षण में रखते हो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा अप्रकट देह अत्यन्त बल-सम्पन्न है। भूत और भविष्यत् काल तुम्हारे उसी शरीर से प्रकट हुए हैं। जिन प्रकाशमान वस्तुओं को तुमने प्रकट करने की इच्छा की, उन्हीं से सब प्राचीन पदार्थों की उत्पत्ति हुई, जिससे पाँचों वर्ग पुष्ट हुए

॥२॥ आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को इन्द्र ने ही अपने शरीर से सम्पन्न किया। वे ही पञ्चजनों को अपने तेज द्वारा धारण करते हैं। उन्हीं ने सात तत्वों को अपने विभिन्न कार्यों में नियुक्त किया। सब कार्य समान भाव से होते हैं। इन सब कार्यों में इन्द्र के सहायक तीस देवता लगे रहते हैं॥३॥ हे इन्द्र ! सब ज्योतिर्मय पदार्थों को तुमने ही ज्योति दी है। उषा और नक्षत्र आदि सब तुम्हारे ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। जो पुष्ट है वह तुम्हारी ही पुष्टि के द्वारा पुष्ट हुआ है। तुम दिव्यलोक में रहते हुए भी पार्थिव मनुष्यों के बन्धु बनते हो। यह तुम्हारे श्रेष्ठ बल और महिमा का प्रत्यक्ष उदाहरण है॥४॥ इन्द्र अपनी तरुणावस्था में ही सब कार्यों के करने वाले होते हैं। रणक्षेत्र में उनके भय से भीत अनेक शत्रु पलायन कर जाते हैं। परन्तु कालों में अत्यन्त प्रवृद्ध काल उन सबका भक्षण कर लेता हैं। यह भी उनकी ही महिमा है कि जो कल जीवित थे, वे आज मृत्यु को प्राप्त होते हुए मिट गये॥५॥ [१६]

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता॥६
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः॥७॥
युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट्।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून्॥८।१७

इस आने वाले पक्षी का बल विस्तृत है। उस पक्षी का कोई नीड़ नहीं है। वह विकराल, महान् तथा सनातन है। उसकी जो इच्छा होती है, संसार में वही होता है। वह शत्रुओं के जिस धन को जीतता है, उसे अपने उपासकों में वितरित कर देता है॥६॥ मरुद्गण के साथ ही इन्द्र ने वर्षा करने वाले सामर्थ्य को पाया। मरुद्गण के साथ ही उन्होंने वृत्र को विदीर्ण कर जल-वृष्टि द्वारा पृथिवी को सींचा। जब महान् इन्द्र कोई कार्य करना चाहते हैं तब मरुद्गण वर्षा को उत्पन्न करने में यत्नशील होते हैं॥७॥ इन्द्र यह सभी कार्य मरुद्गण की सहायता से पूर्ण

करते हैं। वे सभी राक्षसों को हनन करने वाले हैं। उनका तेज सब ओर जाने वाला है। उसका मन विश्व में रमा हुआ है। वे शीघ्रता पूर्वक विजय करने वाले हैं। इन्द्र ने सोम पीकर अपने शरीर की वृद्धि की और राक्षसों को मार डाला ॥८॥ [१७]

सूक्त ५६

(ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्यः। देवता–विश्वेदेवा। छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवाना परमे जनित्रे ॥१
तनूष्टे वाजि त वं नयन्ती वाममस्मभ्य धातु शर्म तुभ्यम्।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥२
वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः।
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३
महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम्।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥४
सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५
द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदम स्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्य सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥६
नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७।१८

हे वाजी! यह अग्नि तुम्हारा एक अंश मात्र ही है। यह वायु भी तुम्हारा ही एक अंश है। ज्योतिर्मय आत्मा तुम्हारा तृतीय अंश है। तुम अपने तीनों अंशों के द्वारा अग्नि, सूर्य और वायु में प्रविष्ट होओ। तुम अपने शरीर में प्रविष्ट होते समय कल्याणरूप बनो और सूर्य के लोक में सबसे स्नेह स्थापित करो ॥१॥ हे पुत्र! पृथिवी में तुम्हारे देह को धारण

किया था। वह हमारा और तुम्हारा दोनों का मंगल करे। तुम अपने स्थान से मत गिरो। अपने तेज को प्रदीप्त करने के लिए, सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य में अपनी आत्मा को युक्त करो ॥२॥ हे पुत्र ! तुम सुन्दर रूप वल वाले हो। तुमने जिस प्रकार श्रेष्ठ स्तुति की थी उसी प्रकार लोकों में श्रेष्ठ स्वर्ग को प्राप्त होओ। श्रेष्ठ कर्म करने के कारण तुम्हें श्रेष्ठ फल मिले। श्रेष्ठ देवताओं और सूर्य में तुम संयुक्त होओ ॥३॥ देवताओं के समान महिमा हमारे पितरों को भी मिली है। वे देवत्व को प्राप्त होकर उनके साथ समान व्यवहार करने वाले हुए हैं। उन्होंने देवताओं के शरीर में निवास किया है। जितने भी ज्योतिर्मय पदार्थ हैं वे सब उनके साथ संयुक्त हुए हैं ॥४॥ वे पितर अपनी शक्ति से समस्त लोकों में घूम चुके हैं। जिन प्राचीन लोकों में जाने की शक्ति किसी में नहीं है, उन सब लोकों में विचरण किया है। सब लोकों में उन्होंने अपने शरीर से व्याप्त किया है और अपने तेज को समस्त प्रजाओं में बढ़ाया है ॥५॥ सूर्य के पुत्र के समान देवताओं ने स्वर्ग के जानने वाले, सर्वज्ञाता और बलवान् सूर्य की दो प्रकार से प्रतिष्ठा की है। सन्तानोत्पत्ति द्वारा मेरे पितरों ने पैतृक बल को स्थिर किया और सब उनका वंश चिरस्थायित्व को प्राप्त हुआ ॥६॥ मनुष्य जैसे नाव द्वारा जल से पार होते हैं, पृथिवी की भिन्न दिशा को जिस प्रकार लाँघते हैं, जिस प्रकार कल्याण साधनों द्वारा विपत्तियों से छुटकारा मिलता है, उसी प्रकार बृहदुक्थ ऋषि ने अपने मृत पुत्र को अपने बल से अग्नि आदि पृथिवी के तत्वों में तथा सूर्यादि दिव्य तत्वों युक्त कर दिया ॥७॥

[१८]

सूक्त ५७

(ऋषि—बन्धुः सुबन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायनाः। देवता–विश्वेदेवाः छन्द–गायत्री)

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः

मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि ॥२
मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितृणां च मन्मभिः ॥३
आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥५
वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥६।१९

हे इन्द्र ! हम सुमार्गगामी हों । कुपथगामी न बनें । हम सोमवान् यजमान के घर से दूर न रहें । शत्रु हम पर बलवान न हो सकें ॥१॥ जो अग्नि पुत्ररूप होते हुए देवताओं के समान ही विशाल हैं, जिन अग्नि के द्वारा यज्ञ-कार्य सम्पन्न होते हैं । हम उन अग्नि को पाकर यज्ञ करें ॥२॥ हम पितरों के सोम से मन को आहूत करते हैं। पितरों के स्तोत्र से भी मन का आह्वान करते हैं ॥३॥ हे भ्राता ! तुम्हारा मन पुन आगमन करे । तुम कार्य द्वारा बल प्रकट करो । जब तक जीवित रहो, सूर्य के दर्शन करते रहो ॥४॥ हमारे पूर्वज मन को पुनः प्राप्त करावें । वे देवताओं को भी पुन. प्राप्त करावें । प्राण और उसकी सब विभूतियों को हम प्राप्त करें ॥५॥ हे सोम ! अपने शरीर में हम मन को प्रतिष्ठित करते हैं । हम सन्तानों से सम्पन्न होकर तुम्हारे कार्य में लगने वाले हों और यज्ञ करें ॥६॥

सूक्त ५८

(ऋषि—बन्ध्वादयो गौपायनाः । देवता—मन आवर्त्तनम् । छन्द—अनुष्टुप्)

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१
यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥२
यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।

तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥३
यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥४

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥५
यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥६।२०

हम तुम्हारे मन को विवस्वान्-पुत्र यम के पास से लौटा लाते हैं। हे सुबन्धु ! तुम इस जगत में रहने के लिए ही जीवित रहना चाहते हो ॥१॥ हे सुबन्धु ! सुदूर स्वर्ग में गए हुए तुम्हारे मन को हम पुनः लौटाते हैं। तुम इस संसार में रहने के निमित्त ही जीते रहना चाहते हो ॥२॥ हे भ्राता ! सब ओर झुक जाने वाले तुम्हारे मन को हम अत्यन्त दूर के लोकों से लौटाकर लाते हैं, क्योंकि संसार में रहने के लिए जीवन-कामना करते हो ॥३॥ हे सुबन्धु ! अत्यन्त दूरस्थ प्रदेश को प्राप्त हुए तुम्हारे मन को हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम जगत में निवास करने के लिए ही जीवित हो ॥४॥ हे सुबन्धु ! तुम्हारा जो मन जल से सम्पन्न और अत्यन्त दूरस्थ समुद्र में चला गया है, उसे हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो ॥ ५ ॥ हे बन्धो ! तुम्हारा जो मन सब ओर विस्तृत रश्मियों में स्थित होगया है, क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए ही जीवित हो ॥६॥ [२०]

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥११

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१२।२१

हे सुबन्धो ! हम तुम्हारे गए हुए मन को वृक्षादि से तथा दूरस्थ जल से लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम जगत में रहने के लिए ही जीवित हो ॥७॥ हे भ्राता ! सूर्य में या उषा में जाकर रमे हुए तुम्हारे मन को हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने की कामना से ही जीवित हो ॥८॥ हे सुबन्धु ! दूर स्थित पर्वतों में जाकर रमे हुए तुम्हारे मन को हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने की इच्छा करते हुए ही जीवित हो ॥९॥ हे सुबन्धो ! संसार में अत्यन्त दूर गए तुम्हारे मन को हम पुनः लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए ही जीवन धारण किए हुए हो ॥१०॥ हे सुबन्धो ! दूर से भी दूर गए हुए तुम्हारे मन को हम उस स्थान से लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने की इच्छा करते हुए ही जीवित हो ॥११॥ हे भ्राता ! तुम्हारा जो भूत, भविष्यत् आदि जिस किसी काल से युक्त हो गया है, उसे हम लौटाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहना चाहते हुए ही जीवित हो ॥१२॥ · [२१]

सूक्त ५६

(ऋषि:—बन्ध्वादयो गौपायना: । देवता—निर्ऋति: । निर्ऋति:सोमश्च । द्यावापृथिव्यौ । छन्द:—त्रिष्टुप्,पंक्ति: जगती)

प्र तार्यायु: प्रतरं नवीय: स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ १ ॥
सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ २ ॥
अभी ष्वर्य: पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमि गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ३ ॥
मो षु ण: सोम मृत्यवे परा दा: पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ४ ॥
असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयु: ।
रारन्धि न: सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ५ ॥ २२

चतुर सारथि के कारण रथारूढ़ व्यक्ति जैसे आश्वस्त रहता है, उसी प्रकार सुबन्धु की आयु वृद्धि हो । क्योंकि जिसकी आयु क्षीण होती है, वह अपनी आयु के बढ़ने की कामना करता है । सुबन्धु के पास से निर्ऋति दूर हो जाय ॥ १ ॥ इस परमायु की प्राप्ति के लिए साम गान करते हुए यज्ञ के लिए अन्न आदि हव्य एकत्रित करते हैं । निर्ऋति देवता का भी हमने स्तव किया है । वह हमारे समस्त पदार्थों से प्रसन्न होते हुए हमसे बहुत दूर चले जाँय ॥ २ ॥ पृथिवी से आकाश जैसे ऊँचा है, वैसे हम शत्रुओं को बलपूर्वक पराभूत करते हुए उनसे ऊँचा स्थान पावें । मेघ की गति को पर्वत जैसे रोक लेता है, वैसे ही हम शत्रुओं की गति को रोकने में समर्थ हों । निर्ऋति देवता हमारी स्तुति को सुनकर हमसे दूर चले जाँय ॥३॥ हे सोम ! हम उदय होते हुए सूर्य के नित्य प्रति दर्शन करें । हमारा बुढ़ापा सुखपूर्वक व्यतीत हो । निर्ऋति हमारे पास से दूर ही जाय । तुम हमको मृत्यु के मुख

में मत डालना ॥ ४ ॥ हे असुनीति ! अपने मन को हमारी ओर करो। हमारे जीवन के लिए श्रेष्ठ परमायु दो। सूर्य जहाँ तक देखते हैं, हमें वहाँ तक रहने वाला बनाओ। हम तुम्हारी पुष्टि और प्रसन्नता के निमित्त यह घृताहुति देते हैं ॥ ५ ॥ [२२]

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ ६ ॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥ ७ ॥
शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥८॥
अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः
पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥ ९ ॥
समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत्॥१०॥२३

हे असुनीति ! हमारे प्राण को पुनः हमारे समीप लाओ। हमें नेत्र पुनः प्रदान करो जिससे हम भोगों में समर्थ हों। हम कभी नाश को प्राप्त न हों और सदा हमारा मङ्गल हो। हम चिरकाल तक सूर्य के दर्शन करने वाले हों ॥ ६ ॥ आकाश और अन्तरिक्ष हमें पुनः प्राण प्रदान करें। पृथिवी हमें पुनर्जीवित करे। सोम हमारे देह को पुनः बनावे और पूषा हमको सर्वश्रेष्ठ और मङ्गल करने वाली वाणी प्रदान करें जिसके द्वारा हम अपना हित-साधन कर सकें ॥ ७ ॥ महिमामयी आकाश-पृथिवी सुबन्धु का मङ्गल करने वाली हों। स्वर्गलोक और भूलोक समस्त अकल्याणों को दूर भगावें। हे सुबन्धु ! वे तुम्हारा अहित न करें ॥ ८ ॥ स्वर्ग में दो तीन औषधियाँ हैं, उनमें से एक पृथिवी पर घूमती है। यह सब औषधियाँ सुबन्धु के प्राणों को पुष्ट करें।

आकाश और पृथिवी समस्त अकल्याणों को दूर कर दें, वे सुबन्धु का किसी प्रकार अहित न करें ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! उशीनरःपत्नी के शकट को खींच ले जाने वाले बैल को प्रेरणा दो। आकाश-पृथिवी समस्त अकल्याणों को दूर करें और सुबन्धु का अहित न होने दें ॥ १० ॥ [२३]

सूक्त ६०

(ऋषि:—बन्ध्वादयो गौपायनाः, अगस्त्यस्य स्वसैषां माता ।
देवता—असमाती राजा, इन्द्रः, सुबन्धोर्जीविताह्वानम्
छन्दः—गायत्री, अनुष्टुप्, पंक्ति)

आ जनं त्वेषसन्दृशं माहीनानामुपस्तुतम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥१॥
असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् । भजेरथस्य सत्पतिम् ॥२॥
यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् । उतापवीरवान्युधा ॥३॥
यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते । दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४॥
इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय । दिवीव सूर्यं दृशे ॥५॥
अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६॥ २४

असमाति नरेश का राज्य अत्यन्त श्रेष्ठ है। उस देश की सभी मेधावी जन प्रशंसा करते हैं। हमने विनीत भाव से उस देश में गमन किया था ॥ १ ॥ शत्रु का नाश करने वाले राजा असमाति अत्यन्त तेजस्वी हैं। जैसे रथारूढ होने पर अनेक अभिप्राय सिद्ध होते हैं, वैसे ही राजा असमाति से मिलने पर अनेक कार्यों की सिद्धि होती है। वे भजेरथ नरेश के वंशज और प्रजाओं के श्रेष्ठ प्रकार से पालन करने वाले हैं ॥ २॥ राजा असमाति का पराक्रम इतना बढ़ा हुआ है कि जैसे बाघ भैंसों को मार देता है, वैसे ही वे मनुष्यों को मार देते हैं। यह कार्य बिना हथियार ग्रहण किये भी वे कर सकते हैं ॥३॥ शत्रुओं को नाश करने वाले और ऐश्वर्यवान् राजा इक्ष्वाकु रक्षण-कर्म में प्रसिद्ध हैं। उनकी रक्षा में स्थित

पंचजन स्वर्गीय सुख प्राप्त करें ॥४॥ हे इन्द्र ! आदित्य को जैसे सबके द्वारा दर्शन करने के लिए तुमने आकाश में चढ़ाया है, वैसे ही रथ पर चढ़ने वाले राजा असमाति की आज्ञा में चलने वाले श्रेष्ठ वीरों को उन्हें प्राप्त कराओ ॥५॥ हे राजन् ! महर्षि अगस्त्य के धेवतों के निमित्त लाल वर्ण के दो अश्वों को रथ में योजित करो। अत्यन्त लोभी और अदानशील व्यक्तियों पर विजय प्राप्त करो ॥६॥ [२४]

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् ।
इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥ ७ ॥
यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥ ८ ॥
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥ ९ ॥
यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥ १० ॥
न्यग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥ ११ ॥
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ १२ ॥ २५

प्राणदाता औषधि रूप जो अग्नि यहाँ पर आए हैं वे हमारे माता पिता के समान हैं। हे सुबन्धु ! तुम्हारा देह यही है, तुम इसी में आविष्ट होओ ॥७॥ जैसे रथ-धारणार्थ रस्सी से दोनों काठों को बाँधते हैं, वैसे ही अग्निने तुम्हारे मन को ग्रहण किया हुआ है। इससे तुम्हारी मृत्यु तुमसे दूर भागेगी और तुम जीवित होकर मंगलमय रूप से उठ बैठोगे ॥८॥ जैसे इस महिमामयी पृथिवी ने बड़े बड़े वृक्षों को धारण कर रखा है, वैसे ही अग्नि ने तुम्हारे मन को भी धारण किया हुआ है, जिससे तुम्हारी तुम्हारी मृत्यु दूर भागे और तुम जीवन धारण कर मङ्गलरूप होजाओ ॥९

सुबन्धु के मन का विवस्वान्-पुत्र यम के पास से मैंने अपहरण किया है। इससे उनकी मृत्यु दूर हो जायगी और वे मंगल रूप धारण करते हुए जीवन को प्राप्त होंगे ॥ १० ॥ स्वर्गलोक से नीचे, अन्तरिक्ष में वायु विचरण करते हैं। सूर्य नीचे की ओर मुख करके तपते हैं । गौओं का दूध भी नीचे की ओर ही दुहा जाता है । हे सुबन्धु ! उसी प्रकार तुम्हारा अमंगल भी निम्नगामी हो ॥ ११ ॥ अत्यन्त सौभाग्यशाली मेरा यह हाथ सब के लिए भेषज के समान है । यह स्पर्श के द्वारा ही मंगल का देने वाला होता है ॥ १२ ॥ [२५]

सूक्त ६१ [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि—नाभानेदिष्ठो मानवः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१ ॥
स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥ २ ॥
मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥ ३ ॥
कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥ ४ ॥
प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥ ५ ॥ २६

नाभानेदिष्ट के माता, पिता, भ्राता आदि ने नाभानेदिष्ट को यज्ञ-भाग नहीं दिया और वे रुद्र का स्तव करने लगे । तब नाभानेदिष्ट भी रुद्र की स्तुति करने के लिए अंगिराओं के यज्ञ में गए। यज्ञ के छठवें दिन अंगिरा-गण जो भूल गए, उसे उन्होंने सात होताओं को बताया और यज्ञ को सम्पूर्ण किया ॥ १ ॥ स्तुति करने वालों को धन-दान के लिए वेदी पर प्रवि-

छिन होते हुए रुद्र ने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अस्त्रादि प्रदान किये। जल वृष्टि द्वारा मेघ जैसे अपनी सामर्थ्य दिखलाता है, वैसे ही रुद्र देवता यज्ञ में आकर उपदेश करते हुए अपने सामर्थ्य को सब ओर प्रकाशित करते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मैंने यज्ञ की आयोजना की है। मेरे हाथ की अंगुलियों को पकड़ कर और हव्य सामग्री को एकत्र कर जो अध्वर्यु तुम्हारे निमित्त चरु पकाता है, तुम उस अध्वर्यु के अनुष्ठान का आरम्भ देखकर उसके यज्ञ में शीघ्र गति से प्रस्थान करते हो ॥ ३ ॥ हे आकाश के पुत्र रूप अश्विनीकुमारो ! जब रात्रि का अन्धेरा दूर हो जाता है और प्रात काल की ललिमा दृष्टिगत होती है, उस समय मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम मेरे यज्ञ में आकर हव्य ग्रहण करो। दो अश्वों के समान उसका सेवन करो, जिससे हमारा अहित न हो सके ॥ ४ ॥ जब प्रजनन कर्म में समर्थ प्रजापति का बल प्रवृद्ध हो गया तो उन्होंने जगत के हितार्थ प्रजा को उत्पन्न किया ॥ ५ ॥   [२६]

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ६ ॥
पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ७ ॥
स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेता ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥ ८ ॥
मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥ ९ ॥
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥ १० ॥ २७

प्रजा की वृद्धि के निमित्त प्रजापति की शक्ति का अवस्थान श्रेष्ठ और उपयुक्त स्थान में हुआ ॥ ६ ॥ जब प्रजापति की शक्ति का संयोग पृथ्वी

से हुआ तो उसके प्रभाव को ग्रहण कर देवताओं ने वास्तोष्पति वा रुद्र का निर्माण किया ॥ ७ ॥ नमुचि के मारे जाते समय इन्द्र जैसे संग्राम भूमि में पहुँचे थे, वैसे ही वास्तोष्पति मेरे पास से चले गए । अंगिराओं ने जो गौएं मुझे दक्षिणा में प्रदान की थीं, उन गौओं को उन्होंने दूर हटाया। ग्रहण-समर्थ होते हुए भी उन्होंने वे गौएँ ग्रहण नहीं की थीं ॥ ८ ॥ रुद्र द्वारा रक्षित इस यज्ञ में प्रजा को कष्ट देने वाले और समान अग्नि को जलाने वाले दैत्य नहीं आ सकते। इस यज्ञाग्नि की ओर नग्न असुर रात्रि को भी आने में समर्थ नहीं है। यज्ञ की रक्षा करने वाले अग्नि ने काष्ठों को ग्रहण कर अन्न रूप धन बाँटा । वही अग्नि प्रकट होकर असुरों से संग्राम करने लगे ॥ ९ ॥ नौ महीने तक यज्ञ करते हुए अंगिराओं ने गौओं को प्राप्त किया। उन्होंने श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञ को सम्पूर्ण किया । उन्होंने इहलौकिक और पारलौकिक समृद्धि प्राप्त की और इन्द्र के समीप उपस्थित हुए। उन्होंने बिना दक्षिणा के यज्ञ द्वारा अमर फल पाया ॥१०॥

[२७]

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ११ ॥
पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥ १२ ॥
तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥ १३ ॥
भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४॥
उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥ १५ ॥ २८

~ अमृत के समान दूध देने वाली गौओं के पवित्र दूध को अंगिराओं

ने जय यज्ञ में दिया, तब श्रेष्ठ स्तुतियों से नये वैभव के समान जल वृष्टि प्राप्त हुई ॥११॥ यज्ञ करने वाले पर इन्द्र का बड़ा अनुग्रह रहता है। जिसका पशु खो जाता है, उसके पशु को वे ढूँढकर दे देते हैं ॥ १२ ॥ जब इन्द्र अत्यन्त विस्तीर्ण शुष्ण के मर्म को ढूँढकर उसका वध कर देते हैं और नृपद के पुत्र को चीर डालते हैं, तब उनके अनुचर उनके चारों ओर रहते हुए गमन करते हैं ॥ १३ ॥ जो देवता पवित्र कुश पर यज्ञ में विराजमान होते हैं, वे उस समय अग्नि के तेज को भर्ग कहते हैं। इन अग्नि के एक तेज को जातवेदा कहते हैं। हे अग्ने! तुम यज्ञ के सम्पादनकर्त्ता और होता हो तुम हमारे आह्वान को सुनकर हम पर अनुग्रह करते हो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र! वे तेजस्वी रुद्रपुत्र अश्विनीकुमार मेरे यज्ञ को और स्तुतियों को स्वीकार करें। जैसे मनु के यज्ञ में वे हर्ष को प्राप्त होते हैं, वैसे ही मेरे यज्ञ में हर्षित हों। मैंने उन्हीं के निमित्त यह कुश विस्तृत किया है। वे यज्ञ को स्वीकार करके प्रजाओं को ऐश्वर्यवान् बनावें ॥ १५ ॥   [२८]

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥ १६ ॥
स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७॥
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥ १८ ॥
इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥ १९ ॥
अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२०॥ २९

जैसे सोम की सब स्तुति करते हैं, वैसे ही हम भी करते हैं। यह सेतु रूप सोम कर्म में कुशल और श्रेष्ठ है। वे जल का अतिक्रमण करते हैं। द्रुतगामी अश्व जैसे रथ चक्र की परिधि को कम्पायमान करते हैं, वैसे ही यह

अग्नि को भी कंपित करते हैं ॥ १६ ॥ यज्ञकर्त्ता अग्नि सब के पार लगाने वाले हैं। यह इहलौकिक और पारलौकिक स्थानों में हित करने वाले हैं। जब पयस्विनी गौ दूध नहीं देती, तब वे उसे गर्भवती करते हुए दुग्ध से पूर्ण कर देते हैं। उस समय मित्रावरुण और अर्यमा को श्रेष्ठ स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न किया जाता है ॥ १७ ॥ हे सूर्य !, तुम स्वर्ग में वास करते हो। मैं तुम्हारा भाई नाभानेदिष्ट तुम्हारा स्तव करता हूँ। मैं गौएँ प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। स्वर्गलोक मेरा और सूर्य का जन्म-स्थान है ॥ १८ ॥ मैं स्वर्ग में रहता हूँ, मेरा जन्म-स्थान यहीं है । सभी देवता मेरे आत्मीय हैं। सत्य-स्वरूप ब्रह्मा ने द्विजों को सर्व प्रथम उत्पन्न किया है। यज्ञ रूपिणी गौ ने इन सब की उत्पत्ति की है ॥ १९ ॥ अग्नि अपने स्थान को सुख पूर्वक ग्रहण करते हैं। यह तेजस्वी अग्नि काष्ठों को वश में करते हुए अपनी ज्वालाओं को उन्नत करते हैं। यह इहलोक और परलोक में सहायता करने वाले और स्तुतियों के योग्य हैं। अरणि रूप माताएँ इन सुखमय अग्नि को शीघ्रता से उत्पन्न करती हैं ॥ २० ॥ [२९]

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥
अध त्वमिन्द्र विद्ध्य स्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥ २२ ॥
अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥ २३ ॥
अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥ २४ ॥
युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥ २५ ॥
स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।

प्र्धंदुक्थं वंचोभिरा हि नूनं व्यध्वेति पयस उस्रियायाः ॥ २६ ॥
त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
य वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥ २७ ॥   ३०

मैं नाभानेदिष्ट श्रेष्ठ स्तुतियों का उच्चारण करता हुआ शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ । मेरे स्तोत्र इन्द्र को प्राप्त हो गए हैं । हे अश्वने ! इन इन्द्र के निमित्त यज्ञ करो । मैं अश्वमेध यज्ञकर्त्ता मनु का पुत्र हूँ । तुम मेरे स्तोत्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त होतेहो ॥२१॥ हे वज्रिन् ! तुम हमारी धन की कामना को जानो । हम तुम्हें हव्य प्रदान करते हुए तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हर प्रकार हमारी रक्षा करो । हे हर्यश्व इन्द्र ! हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त हों और तुम्हारे प्रति दोषी न हों ॥ २२ ॥ गौओं के प्राप्त करने की कामना से अंगिराओं ने यज्ञ किया था । सब के जानने वाले नाभानेदिष्ट स्तुतियों की कामना करते हुए उनके प स गये । हे मित्रावरुण ! मैंने स्तुतियाँ करते हुए यज्ञ को सपूर्ण किया, इसीलिये वे मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥ गौओं को प्राप्त करने की कामना से स्तुति करते हुए हम अजेय वरुण की शरण में जाते हैं । उन वरुण का पुत्र द्रुतगामी अश्व है । हे अन्नदाता वरुण ! तुम विद्वान् हो ॥ २४ ॥ हे मित्रावरुण ! ऋत्विज् तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हारी मैत्री अत्यन्त हित करने वाली है । जब हम तुम्हारा स्नेह प्राप्त कर लेंगे, सब मय घोर से स्तुतियाँ की जाँयगी । जैसे पहिले से जाना हुआ मार्ग कल्याणप्रद होता है, वैसे ही तुम्हारी मित्रता हमारे स्तोत्र को कल्याणकारी करे । तुम हम पर प्रसन्न होओ ॥ २५ ॥ वरुण हमारे अतीव मित्र हैं । वे हमारी श्रेष्ठ स्तुतियों और नमस्कारों के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों । पयस्विनी गौ के दूध की धारा वरुण के यज्ञ के लिए प्रवाहित हो ॥ २६ ॥ हे देवगण ! तुम हमारी रक्षा करने के लिए सब समान मति वाले होओ । तुम हमारे यज्ञ में सोम पान के अधिकारी हो । हे अंगिराओ ! तुमने मुझे अन्न प्रदान किया है । हमारे इस यज्ञ में तुम गो धन रूप दुग्ध को प्राप्त करो ॥ २७ ॥

[३०]

सूक्त ६२

(ऋषिः—नाभानेदिष्ठो मानवः । देवता—विश्वेदेवा अङ्गिरसो वा, विश्वेदेवाः, सावर्ण्योर्दानस्तुतिः । छन्दः—जगती, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्तिः, गायत्री, त्रिष्टुप्)

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१॥
य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥
य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३॥
अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥
विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः ।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥५।१॥

हे अंगिराओ ! तुमने हव्यादि के साथ इन्द्र की मैत्री और अमरत्व प्राप्त कर लिया है । तुम्हारा मंगल हो । तुम मुझ मनु पुत्र को आश्रय दो । मैं भले प्रकार यज्ञानुष्ठान में लगूँगा ॥ १ ॥ हे अंगिराओ ! तुम हमारे पिता के समान हो । तुम उस अपहृत गौ को लौटा लाए । तुमने एक वर्ष यज्ञ किया और बल नामक दैत्य का नाश किया । तुम दीर्घ आयु प्राप्त करते हुए मुझ मनु-पुत्र को आश्रय दो । मैं भले प्रकार यज्ञ करूँगा ॥ २ ॥ तुमने सत्य रूप यज्ञ से सूर्य को आकाश में प्रविष्ठित किया है और सब की रचयिता पृथिवी को पूर्ण किया । तुम संतान वाले होओ । तुम मुझ मनु-पुत्र को आश्रय दो । मैं भले प्रकार अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ कर्म करूंगा ॥ ३ ॥ हे अंगिराओ ! यह नाभानेदिष्ट तुम्हारे यज्ञ में श्रेष्ठ स्तुति करता है । तुम मेरी बात सुनो और श्रेष्ठ ब्रह्मतेज को प्राप्त होओ । तुम मुझ मनु-पुत्र को अपना आश्रय

प्रदान करो। मैं भले प्रकार यज्ञादि कर्म करूँगा ॥ ४ ॥ यह अंगिरागण विविध रूप वाले और श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले हैं। यह अग्नि के पुत्र सब ओर प्रकट होते हैं ॥ ५ ॥ [१]

ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥६॥
इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥७॥
प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥८॥
न तमश्नोति कश्चन दिवइव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥९॥
उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा ।
यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥ १० ॥
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥२॥

विभिन्न रूप वाले यह अंगिरागण अग्नि के द्वारा आकाश में सब ओर उत्पन्न हुए, उनमें से किसी ने नौ मास तक तथा किसी ने दस मास तक यज्ञानुष्ठान किया, जिससे उन्हें श्रेष्ठ गोधन की प्राप्ति हुई। यह अंगिरागण देवताओं के साथ वास करते हैं। इनमें श्रेष्ठ अंगिरा मुझे धन प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥ कर्मवान् अंगिराओं ने इन्द्र के सहयोग से गौओं और अश्वों से युक्त स्थान को प्राप्त किया। उन लम्बे कान वाले अंगिराओं ने एक हजार गौएँ मुझे प्रदान कीं और देवताओं को एक यशात्मक अन्न प्रदान किया ॥ ७ ॥ जैसे जल के सींचने पर बीज बढ़ता है, वैसे ही सावर्णि मनु कर्मों के फल से युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त हुए। ये मनु इस समय सौ अश्व और एक हजार गौएँ दान करना चाहते हैं ॥ ८ ॥ मनु के समान दानदाता कोई भी नहीं

है। वे स्वर्ग के समान उन्नत लोक जैसे ऊंचे भावों से सम्पन्न हैं। उन सावर्णि मनु का दान नदी के समान ही गंभीर और विस्तृत है ॥ ९ ॥ यदु और तुर्व नामक राजर्षि गौओं से सम्पन्न और सदा मंगल करने वाले हैं। वे मनु को दुग्ध रूप भोजन के लिए गवादि पशु प्रदान करते हैं ॥ १० ॥ मनुष्यों के नेता मनु सहस्र गौओं के देने वाले हैं। उन्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता। देवगण इनकी आयु वृद्धि करें और इनकी दक्षिणा सूर्य सहित सब लोकों में विख्यात हो। हम सब कर्मों के करने वाले अन्न को पावें ॥११॥
[२]

सूक्त ६३

(ऋषिः—गयः प्लातः। देवताः—विश्वेदेवाः, पथ्यास्वस्तिः। छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१॥
विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२॥
येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥३॥
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥५।३॥

सुदूर लोक से आकर जो देवता मनुष्यों से सख्य भाव स्थापित करते हैं। प्रसन्नता प्राप्त करके जो देवता विवस्वान्-पुत्र मनु की सन्तानों का पोषण करते हैं, जो देवता नहुष के पुत्र राजा ययाति के यज्ञ में पूजित होते हैं, वे हमें धनादि ऐश्वर्य प्रदान करें और हमारे सम्मान की वृद्धि करें ॥ १ ॥ हे

देवगण! तुम्हारे सभी रूप नमन योग्य, स्तुत्य और यज्ञ के योग्य हैं। अदिति जल, पृथिवी आदि से प्रकट हुए सभी देवता मेरी स्तुतियों को सुनें॥ २॥ पृथिवी सप की रचयित्री और मधुर रस प्रवाहित करने वाली है। मेघ युक्त आकाश जिनके लिए अमृत रूप जलों का धारण करने वाला है, उन सब आदित्यों की स्तुति करके कल्याण को प्राप्त होओ। इन आदित्यों का बल स्तुत्य है। उनका कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है। वे जल वृष्टि के लाने वाले हैं॥ ३॥ जितनी देर में मनुष्य पलक गिराते हैं, उससे भी न्यून समय में दर्शक ने देवताओं के लिए अमृत्व को पाया। उनका रथ दमकता हुआ है। वे निष्पाप, मनुष्यों के कल्याणार्थ उन्नत लोक में निवास करते हैं। उनके कर्म को कोई रोक नहीं सकता॥ ४॥ यज्ञों में आने वाले देवता श्रेष्ठ प्रकार से बढ़े हुए और अपने तेज में प्रतिष्ठित रहने वाले हैं। वे किसी के द्वारा हिंसित नहीं हो सकते। उन स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं के लिए और अदिति के लिए श्रेष्ठ नमस्कार और स्तुतियाँ करो और विविध प्रकार से उनकी सेवा करो॥ ५॥ [३]

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥६॥
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥७॥
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥८॥
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये॥९॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥१०।४॥

हे सर्वज्ञाता और महावान् देवताओ! मैं जैसी स्तुति करता हूँ, वैसी स्तुति अन्य कोई नहीं कर सकता। जो यज्ञ कल्याणप्रद और पापों से रक्षा

करने वाला है, उसका श्रेष्ठ आयोजन मेरे सिवाय अन्य कौन कर सकता है ॥ ६ ॥ श्रद्धावान् मन वाले मनु ने अग्नि को प्रज्वलित किया और सात होताओं के साथ देवताओं को हवन योग्य सामग्री अर्पित की। वे सभी देवता हमारे भयों को दूर करें। हमारे सब कार्यों को सरल करते हुए हमें कल्याण प्रदान करें ॥ ७ ॥ स्थावर जंगम के स्वामी देवगण मेधावी और सब के जानने वाले हैं। हे लोक पालक देवताओ! तुम हमें भूतकालीन और भविष्य के भी पापों से बचाओ। तुम हमारे लिए कल्याणप्रद होओ ॥ ८ ॥ अपने यज्ञों में हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। उन्हें आहूत करना मंगलजनक है। हम देवगण का आह्वान करते हैं। वे श्रेष्ठ कर्म वाले, और पाप-नाशक हैं। अग्नि, मित्र, वरुण, भग, आकाश-पृथिवी और मरुद्गण को भी हम धन प्राप्ति की कामना करते हुए तथा कल्याण चाहते हुए आहूत करते हैं ॥ ९ ॥ हम आकाश रूप वाली मंगलमयी नौका पर आरूढ़ हों और देवत्व को प्राप्त करें। इस नाव पर चढ़ने से अरक्षा का कोई डर नहीं रहता। इस पर चढ़ने से अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। यह अक्षय नौका सुविस्तीर्ण हो। यह श्रेष्ठ कर्म वाली और सुदृढ़ है। यह पाप-रहित तथा कभी भी नाश को प्राप्त न होने वाली है ॥ १० ॥ [४]

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११॥
अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२॥
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३॥
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६॥
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥४॥

हे देवताओ ! तुम यज्ञ के योग्य हो । हमें रक्षा का आश्वासन प्रदान करो। नाश करने वाली कुगति से हमारी रक्षा करो। हम इस श्रेष्ठ यज्ञ को आरम्भ करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हमारे आह्वान को सुनकर हमारा मंगल करो ॥११॥ हे देवताओ ! हमारी पाप-बुद्धि का नाश करो। हमारे रोगों को दूर भगाओ। हमारी बुद्धि दान से विमुख न हो। तुम हमारे शत्रुओं को हमसे दूर लेजाओ। उनकी दुष्ट बुद्धि को नष्ट करो। हमको अतीव कल्याण और सुख प्रदान करो ॥१२॥ हे देवगण ! तुम अदिति के पुत्र हो। तुम जिसे श्रेष्ठ मार्ग पर चलाते हुए कल्याण की ओर लेजाते हो तथा पापों से निवृत्त करते हो, वह मनुष्य बुद्धिमान् होता है। उसके वंश की वृद्धि होती है। उस धर्म कार्यों के करने वाले पुरुष को कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥१३॥ हे देवगण ! तुम अन्न प्राप्ति के लिए जिस रथ के रक्षक होते हो, हे मरुद्गण ! तुम जिस रथ की धन के निमित्त युद्ध में रक्षा करते हो, हे इन्द्र ! रथयोग में जाते हुए उस रथकी उसी प्रातःकाल कामना करनी चाहिए। उस रथ पर आरूढ़ होकर हम कल्याण प्राप्त करने वाले हों। उस रथ को कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥१४॥ श्रेष्ठ मार्ग और मरुभूमि जहाँ कहीं हम गमन करें, वहीं हमारा मंगल हो। जल में और युद्ध में सर्वत्र हम जयशील रहें। जिस युद्ध में शस्त्रास्त्र चलाये जाते हैं, उस सेना में हमारा कल्याण हो। हमारे गर्भस्थ शिशुओं का मंगल हो। हे देवगण ! धन के निमित्त हमारा कल्याण करो ॥१५॥ जो पृथिवी मंगलमय पथ वाली है, जो श्रेष्ठ धनों से भरपूर है तथा जो वरण करने योग्य वृद्धियों प्रस्थान के रूप में है, वह घर और जंगल में, सर्वत्र हमारा कल्याण

करने वाली हो। देवगण जिस पृथिवी का भरण करते हैं, उस पृथिवी पर हम सुखपूर्वक निवास करने वाले हों ॥१६॥ हे देवगण! हे अदिति! प्लुति के पुत्र गय ने तुम लोगों को इस प्रकार प्रवृद्ध किया। गय ने तुम्हारी ही स्तुति की है। तुम्हारे प्रसन्न होने पर मनुष्यों को स्वामित्व की प्राप्ति होती है ॥१७॥

सूक्त ६४

(ऋषि—गयः प्लातः। देवता—विश्वेदेवा। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१
क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनः पतयन्त्या दिशः।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२
नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥३
कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः।
अज एकपात्सुहवेभिर्ऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ॥४
दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५।६

हम किस देवता के लिए, किस प्रकार स्तोत्र रचना करें? कौन से देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करते हुए हमें सुखी बनायेंगे? हमारी रक्षा के लिए कौन-से देवता हमारे यज्ञ में आगमन करेंगे? वे देवता यज्ञ में आकर हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥१॥ हमारी बुद्धि हमें यज्ञादि कर्म करने को प्रेरित करती है। वह बुद्धि देवताओं की कामना करने वाली है। हमारी कामनाएं देवताओं की ओर गमन करती हैं। उनके समान सुख देने वाला कोई अन्य नहीं है। हमारी इच्छाएं इन्द्रादि देवताओं में निहित होकर फल चाहती हैं ॥२॥ हे स्तोता! पूषा देवता धन देकर पुष्ट करने वाले और

शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष हैं। तुम उनका स्तव और पूजन करो। जो अग्नि सब देवताओं में तेजस्वी हैं, उनका स्तोत्र करो तथा सूर्य चन्द्रमा, यम, वायु, उषा, रात्रि, अश्विद्वय और स्वर्गलोक में निवास करने वाले त्रित की स्तुति करो ॥३॥ अग्नि मेधावी हैं, वे किन स्तोताओं के किन स्तोत्रों से प्रसन्न होते हैं। बृहस्पति सुन्दर स्तुतियों से प्रवृद्ध होते हैं। अज, एकपात और अहिर्बुध्न्य देवता हमारे श्रेष्ठ आह्वान को श्रवण करें ॥ ४ ॥ हे पृथिवी ! तुम कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं और सूर्य के उत्पत्तिकाल से ही तुम मित्रावरुण की परिचर्या करती हो। सूर्य अपने सुविस्तीर्ण रथ पर आरूढ होकर गमन करते हैं। उनका प्राकट्य विभिन्न रूप से होता है। सहर्षि उन सूर्य का श्रेष्ठ आह्वान करते हैं ॥५॥ [६]

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हव विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६
प्र वो वायुं रथयुजं पुरन्धिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥७
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वतां अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥८
सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९
उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥१०।७

इन्द्र के हर्यश्व संग्राम में से शत्रुओं के धनों को जीतकर स्वयं ले आते हैं। जो यज्ञानुष्ठानों में सदा धन प्रदान करते हैं और चतुर अश्वों के समान पग प्रहार करते हैं। वे सभी हमारे आह्वान को श्रवण करें, क्योंकि आहूत किये जाने पर वे श्रेष्ठ कर्मी रुकते नहीं ॥६॥ हे स्तोताओ ! रथ को जोड़ने वाले वायु, अनेक कर्म वाले इन्द्र और पूषा देवता की स्तुति करो और उनकी मित्रता प्राप्त करो। वे सब समान मन वाले होते हुए

हमारे प्रातः सवन में प्रसन्नता पूर्वक पधारते हैं ॥७॥ हम इक्कीस नदियों, वनस्पतियों, पर्वतों, सोम-पालक गन्धर्वों, वाण चलाने वालों, नक्षत्रों, रुद्रों में मुख्य रुद्र और अग्नि देवता को रक्षा-कामना से अपने यज्ञ में आहूत करते हैं ॥८॥ अत्यन्त महत्व वाली यह इक्कीस नदियाँ हमारे लिए रक्षा करने वाली हों। यह सब नदी रूपा देवियाँ जल को प्रेरित करने वाली हैं। अतः यह घृत और मधु के समान मधुर जल दें ॥९॥ अपनी महिमा से तेजस्विनी हुई देवमाता और अपने पत्रों तथा पुत्र वधुओं सहित देवता पिता त्वष्टा हमारे आह्वान को श्रवण करें। इन्द्र, मरुद्गण, वाज, ऋभुगण आदि सब देवता स्तुतियों की अभिलाषा करते हुए हमारी रक्षा करें ॥१०॥ [७

रण्व: संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११
यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम्।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२
कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३
ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४
वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५
एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७।८

जैसे अन्न से परिपूर्ण घर देखने में सुन्दर लगता है, वैसे ही य मरुद्गण भी सुन्दर दर्शन वाले हैं। इन रुद्रपुत्रों की स्तुतियाँ सदा मंगल

करने वाली होती हैं । हे देवगण ! हम सदा अन्नादि से सम्पन्न रहें और गवादि धन से युक्त होते हुए समान पुरुषों में यशवान बनें ॥ ११ ॥ गौ जैसे दुग्ध से परिपूर्ण रहती है, वैसे ही हे इन्द्र, वरुण, मरुद्गण, मित्र तथा अन्य सब देवताओ ! तुम लोगों के मुक्तों को फलों से पूर्ण करो, क्योंकि तुम रथारूढ़ होकर हमारे आह्वान को सुनते हुए इस यज्ञ में पधारे हो ॥१२॥ हे मरुद्गण ! प्राचीन काल में अनेक बार तुमने मनुष्यों को मित्रता की रक्षा की है, उसी प्रकार अब भी करो । हम जहाँ सर्व प्रथम वेदों की रचना करते हैं, वहाँ पृथिवी सब प्राणियों से हमारे बन्धुत्व को स्थापित करे ॥१३॥ अत्यन्त तेजस्वी, सबकी रचयिता, श्रेष्ठ महिमा वाली और यजनीय द्यावा पृथिवी प्रकट होते ही इन्द्र को पाती है । यह अपनी विविध रक्षा सामर्थ्यों द्वारा देवताओं और मनुष्यों का पालन करती है । और देवताओं के सहयोग से, मेघ से जल वृष्टि करने में समर्थ होती है ॥१४॥ वाणी बड़े-बड़ों का पालन करने वाली है । यह स्तुति रूप वाक्यों से सम्पन्न होकर सोम निष्पीड़न कर्म में सहायक होने से महिमामयी कही जाती है । इसके द्वारा समस्त धन व्याप्त होते हैं । स्तुति करने वाले मेधावी जन अपनी स्तुतियों के प्रभाव से देवताओं को यज्ञ अभिलाषा वाले बनाते हैं ॥१५॥ मेधावी गय ऋषि अनेक स्तोत्रों से सम्पन्न हैं । ये धन की कामना करने वाले हैं । उन्होंने अपने श्रेष्ठ वचनों द्वारा देवताओं का पूजन किया ॥१६॥ हे देवतागण और अदिति ! प्लुति के पुत्र गय ने तुम्हें अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा प्रवृद्ध किया । उन्होंने देवताओं की भले प्रकार स्तुति की । क्योंकि देवताओं को प्रसन्न करने वाले मनुष्य ही संसार में प्रभुत्व प्राप्त करते हैं ॥१७॥

सूक्त ६५

(ऋषि—वसुकर्णो वासुक्रः । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।

आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२
तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ३॥
स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ,
पृक्षाइव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवंते मनुषाय सूरयः ॥४
मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥५।८

अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, वायु, अर्यमा, पूषा, आदित्यगण, विष्णु, मरुद्गण; सरस्वती, रुद्र, सोम, स्वर्गलोक, अदिति और ब्रह्मणस्पति अपने बल से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं ॥१॥ सज्जनों के रक्षक इन्द्राग्नि संग्राम में मिलकर शत्रुओं का पराभव करते हैं। वे महान् आकाश को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं। घृत-मिश्रित मधुर सोम-रस उन दोनों के बल की वृद्धि करते हैं ॥२॥ यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ में, मैं देवताओं की स्तुति करता हूँ। जो देवता श्रेष्ठ मेघों से जल वृष्टि करते हैं, वे हमको धन-प्रदान कर यशस्वी बनावें और हमारे मित्र हों ॥३॥ सबके अधीश्वर सूर्य और ग्रह, नक्षत्र, आकाश-पृथिवी आदि को उन्हीं देवताओं ने अपने स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। जैसे धन-दान करने वाले मनुष्य ग्रहणकर्त्ता को यशस्वी बनाते हैं, वैसे ही देवगण मनुष्यों को धन-दान द्वारा सम्मानित बनाते हैं। धन-दान के कारण ही वह स्तुतियों की आकांक्षा करते हैं ॥४॥ हे स्तोताओ! मित्रावरुण के निमित्त हवि दो। यह राजाओं में भी राजा के समान देवता कभी निष्क्रय नहीं रहते। इनका लोक भले प्रकार स्थिर रह कर अत्यन्त प्रकाश करने वाला हुआ है। आकाश-पृथिवी याचिका के समान इनके आश्रय में रहती है ॥५॥ [१]

या गोर्वर्तनि पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६
दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्य प आचक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी नि मामृजुः ॥७
परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८
पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ॥९
त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥१०॥१०

यज्ञ स्थान में आने वाली पवित्र गौ अपने दुग्ध द्वारा यज्ञ को परिपूर्ण करती है । वह गौ, दानशील वरुण तथा अन्य सब देवताओं को हव्य प्रदान करे और मुझ देवोपासक का भले प्रकार पालन करे ॥६॥ जिन देवताओं के लिए अग्नि जिह्वा रूप होकर हवि ग्रहण करते हैं. जो देवता यज्ञ को प्रवृद्ध करते और अपने तेज से आकाश को व्याप्त करते हैं, वे देवता इस यज्ञ में अपने स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं। वे अपनी महिमा से ही यज्ञ से जल का उद्धारन करते और यज्ञीय हव्य का सेवन करते हैं ॥७॥ सर्वव्यापिनी द्यावा पृथिवी सबकी माता पिता रूप हैं । यह समान स्थान वाली सबसे पहिले प्रकट हुई हैं । इन दोनों का ही यज्ञ में वास है। यह दोनों ही समान मति वाली होकर वरुण को घृत दुग्ध से अभिषिक्त करती हैं ॥८॥ कामनाओं को सींचने वाले मेघ और वायु जल से सम्पन्न हैं । हम इन्द्र, वायु, मित्रावरुण आदित्यों और अदिति को भी आहूत करते हैं । आकाश, पृथिवी और जल में उत्पन्न होने वाले देवताओं का भी हम आह्वान करते हैं । हे ऋभुगण ! तुम्हारे कल्याण के लिए जो सोम देवाह्वाक त्वष्टा और वायु की ओर गमन करते हैं तथा जो बृहस्पति और वृत्रहन्ता इन्द्र की ओर

जाकर उन्हें तृप्त करते हैं, उन्हीं सोम से हम धन की याचना करते हैं। ॥१०॥ [१०]

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वतां अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥११
भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः ॥१२
पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या ॥१३
विश्वे देवाः सह धीभिः पुरन्ध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥१४
देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५।११

पृथिवी, वन, वृक्ष, लता, पर्वत, गौ, अश्व और अन्न यह सब देवताओं द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं। देवताओं ने सूर्य का आकाश पर आरोहण किया है। उन्होंने पृथिवी पर अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न किये हैं। उनका दान अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥११॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने भुज्यु की रक्षा की। तुम्हारी कृपा से वध्रिमती को एक पिंगलवर्ण पुत्र प्राप्त हुआ। तुमने ही विमद को एक सुन्दरी पत्नी प्राप्त कराई और विश्वक ऋषि को भी विष्णाप्व नाम का एक पुत्र प्राप्त कराया ॥१२॥ माध्यमिकी वाक् मधुर और आयुधों से सम्पन्न है। आकाश को धारण करने वाले अज एकपात्, ज्ञानवती और विविध कर्मों वाली सरस्वती, विश्वेदेवा, समुद्र और वृष्टि-जल मेरे निवेदन को श्रवण करें ॥१३॥ इन्द्रादि देवगण सभी कर्मों के प्रेरण करने वाले, अत्यन्त ज्ञानी, यजनीय, अविनाशी, हव्य-ग्राहक, सत्य के जानने वाले और यज्ञों में आने वाले हैं। वह देवता हमारे द्वारा अर्पित अन्न और श्रेष्ठ स्तुतियों को स्वीकार करें ॥१४॥ वह देवता सब लोकों में व्याप्त हैं। वसिष्ठ वंशीय ऋषियों ने इनकी स्तुति की थी। वह हमको यशस्वी बनाने वाला अन्न प्रदान करें। हे देवगण ! तुम हमको कल्याण

प्रदान करो और सब प्रकार से हमारी रक्षा करो ॥१५॥

सूक्त ६६

(ऋषि—वसुकर्णो वासुक्रः । देवता—विश्वे देवाः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१
इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२
इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु॥३
अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून्रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥४
सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥५॥१२

जो देवता इन्द्रात्मक, ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्, अन्नवान्, अत्यन्त तेज के करने वाले, अविनाशी और यज्ञ से सम्पन्न हैं, मैं उन देवताओं को यज्ञ के निर्विघ्न सम्पूर्ण होने की अभिलाषा से आहूत करता हूँ ॥१॥ जो मरुद्गण इन्द्र की प्रेरणा से कार्यों में लगते और वरुण की सहमति से प्रकाशमान सूर्य के मार्ग को सम्पन्न करते हैं, उन शत्रुओं का नाश करने वाले मरुद्गण की स्तुति का हम ध्यान करते हैं। हे मेधावीजनो ! इन्द्र के पुत्रों के लिए यज्ञानुष्ठान का आरम्भ करो ॥२॥ आदित्यों के सहित अदिति हमारा मंगल करें। वसुओं सहित इन्द्र हमारे घर को ऐश्वर्य से परिपूर्ण करें। मरुद्गण के सहित रुद्र हमारा कल्याण करें और सपत्नीक त्वष्टादेव हमारे लिए सुख की वृद्धि करें ॥३॥ हम अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, आदित्यगण, रुद्रगण, वसुगण, विस्तीर्ण स्वर्ग, द्यावा पृथिवी, अदिति और श्रेष्ठ दान वाले सूर्य का आह्वान करते हैं। यह सब देवता श्रेष्ठ रक्षण साधनों से सम्पन्न हैं। अतः हमारी भी रक्षा करें ॥४॥ अत्यन्त महिमामय विष्णु,

कर्मवान् वरुण, पूषा, मेधावी समुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, पापियों का नाश करने वाले, मेधावी तथा स्तुति करने वालों के अन्नदाता और अविनाशी देवगण हमको श्रेष्ठ गृह प्रदान करें ॥५॥

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६॥
अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥७॥

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्नतु वृत्रतूर्ये ॥८॥
द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्षं स्व रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी नि मामृजुः ॥९॥

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो
रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥ १० ॥ १३ ॥

यह यज्ञ हमारा इच्छित फल प्रदान करे । यज्ञ के देवता हमारी अभिलाषाओं को पूर्ण करें । हव्यादि एकत्र करने वाले, देवगण, स्तोतागण, पर्जन्य और यज्ञ के अधिष्ठात्री देवता आकाश पृथिवी हमारे अभीष्टों की पूर्ति करें ॥ ६ ॥ अग्नि देवता काम्यदाता हैं । मैं अन्न प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति करता हूँ । समस्त संसार दाता कह कर उनकी स्तुति करता है । ऋत्विगगण यज्ञ में उन्हीं को पूजते हैं, वे हमें सुन्दर निवास वाला गृह प्रदान करें ॥७॥ जो देवगण यज्ञ को सुशोभित करने वाले हैं, जो अत्यन्त बलवान् और तेजस्वी हैं । जो सत्यनिष्ठ अग्नि के द्वारा आहूत किये जाते हैं और जो यज्ञ में आकर यज्ञ को सम्पूर्ण करते हैं, उन देवताओं ने वृत्र से संग्राम कर वर्षा के लिए जल का उद्घाटन किया ॥ ८ ॥ देवताओं ने अपने श्रेष्ठ कर्म द्वारा आकाश-पृथिवी की रचना की तथा वनस्पति, जल और यज्ञ-योग्य सामग्री

भी बनाया। देवताओं ने ही स्वर्ग को अपने तेज से सम्पन्न किया और अपने को यज्ञ में व्याप्त कर यज्ञ की शोभा बढ़ाई ॥ ९ ॥ श्रेष्ठ हाथ वाले ऋभुओं ने आकाश को धारण किया। वायु और मेघ अत्यन्त शब्द करने वाले हैं। धन देने वाले भग देवता और अर्यमा देवता मेरे यज्ञ में आगमन करें। जल और वनस्पति हमारी स्तुतियों को समृद्ध करें ॥ १० ॥ [१३]

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचासि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥ ११ ॥
स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्रणयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमान नि जिन्वत ॥१२॥
दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छत. ॥१३॥
वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये ।
प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥ १४ ॥
देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥ १४

गर्जनशील मेघ, अज एकपात्, अहिर्बुध्न्य, समुद्र, नदी, आकाश और धूलि युक्त भूमि मेरे आह्वान को श्रवण करें ॥ ११ ॥ हे देवताओ! हम मनुष्य तुम्हारे निमित्त हव्य देने वाले हों। तुम हमारे सनातन यज्ञ को सुसम्पन्न करो। हे आदित्यगण, वसुगण और रुद्रगण! तुम श्रेष्ठ दान में समर्थ हो। अतः हमारे उत्कृष्ट आह्वान को श्रवण करो ॥ १२ ॥ अग्नि और आदित्य दोनों ही सर्वोत्कृष्ट ऋत्विज् हैं। वही देवताओं का आह्वान करने वाले हैं। मैं उन अग्नि और आदित्य को हवि देता हुआ अपने यज्ञ में निर्विघ्नता प्राप्त कर रहा हूँ। हम अपने पास रहने वाले क्षेत्रपति और अविनाशी देवगण की स्तुति करते हुए उनकी शरण में जाते हैं, क्योंकि वे देवगण स्तोता की कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं ॥ १३ ॥ वसिष्ठ ऋषि के वंशजों ने वसिष्ठ के समान ही मंगल-कामना करते हुए देवताओं का पूजन

और स्तवन किया। वे देवगण! अपने मित्र को जैसे तुमने अभीष्ट दिया था, वैसे ही यहाँ आकर तृप्त होते हुए हमारी भी कामनाओं को पूर्ण करो ॥ १४ ॥ यह देवगण समस्त लोकों में व्याप्त रहते हैं। वसिष्ठों ने इन सब का श्रेष्ठ स्तोत्र किया है। यह हमको यशस्वी बनाने वाला अन्न प्रदान करें। हे देवगण! तुम हमको कल्याणकारी होते हुए सब प्रकार से हमारी रक्षा करो ॥ १५ ॥ [१५]

सूक्त ६७

(ऋषि—अयास्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥ १५

हमारे पितरों ने सात छन्दों वाले विस्तृत स्तोत्र को रचा है। वह स्तोत्र सत्य द्वारा उत्पन्न हुआ है। विश्व का कल्याण चाहने वाले अयास्य नामक ऋषि ने एक पद के स्तोत्र की रचना करते हुए इन्द्र की स्तुति की ॥ १ ॥ सत्यवादी, सरल भाव वाले और स्वर्ग के पुत्र रूप अंगिराओं ने यज्ञ रूप श्रेष्ठ स्थान में जाने का विचार किया। बुद्धिमानों के समान व्यव-

द्वार करने वाले वे अंगिरागण श्रेष्ठ बल और उत्कृष्ट मेधा से सम्पन्न हैं ॥ २ ॥ बृहस्पति के अनुचरों ने हंसों के समान शब्द करना आरम्भ किया । बृहस्पति ने उनके सहयोग से पत्थर के द्वार का उद्‌घाटन कर भीतर रोती हुई गौओं को मुक्त किया । उस समय उन्होंने उच्च स्वर से श्रेष्ठ स्तुतियों का गान किया ॥ ३ ॥ नीचे एक एक द्वार से और ऊपर दो द्वारों से वे गौएँ अन्धकार से युक्त गुफा में छिपाई गई थीं । बृहस्पति ने उस अन्धकार को दूर कर प्रकाश करने के लिए तीनों द्वारों को खोलकर गौओं का उद्धार किया ॥ ४ ॥ रात्रि में उन्होंने मौन पूर्वक पुरी के पृष्ठ भाग को तोड़ा और समुद्र के समान उस गुफा के तीनों द्वारों का उद्‌घाटन किया । प्रातःकाल उन्होंने सूर्य और गौ को एक साथ देखा । तब वे घोर रूप में मेघ के समान शब्द करने लगे ॥ ५ ॥ जिस बल द्वारा वे गौ रोकी गई थीं, उस बल को इन्द्र ने अपने-गर्जन से इस प्रकार नष्ट कर डाला, जैसे आयुध से छेद डाला हो । उन्होंने मरुद्‌गण से मिलने की इच्छा करते हुए गौओं को साथ लिया और पाप रूप असुर को रुलाया ॥ ६ ॥
[१५]

स ईं सत्येभि सखिभि शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्द. ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा ईयानास इषणयन्त धीभि. ।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भि ॥ ८ ॥
तं वर्धयन्तो मतिभि शिवाभि सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।

अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥ १६

अपने सहायकों के साथ इन्द्र ने वल को छिन्न-भिन्न किया। उनके सहायक मरुद्गण सत्य भाषण करने वाले, धन देने वाले, तेजस्वी, वर्षणशील, जल लाने वाले तथा श्रेष्ठ चाल वाले हैं। उनको साथ लेकर ही इन्द्र ने उस गोधन पर अधिकार किया ॥ ७ ॥ सत्य को चैतन्य करने वाले मरुद्गण ने अपने कर्म से गौओं को पाया और तब बृहस्पति को गौओं का स्वामी बनाने की इच्छा की। तब परस्पर सहायता करने वाले मरुद्गण के साथ बृहस्पति ने गौओं को बाहर निकाला ॥ ८ ॥ मरुद्गण अन्तरिक्ष में सिंह के समान गर्जनशील हैं। उन कामनाओं की वर्षा करने वाले, विजयशील और बृहस्पति को प्रवृद्ध करने वाले मरुद्गण की हम सुन्दर स्तोत्र से स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ जब बृहस्पति अन्तरिक्ष पर आरूढ़ होते हैं और विभिन्न प्रकार के अन्नों का सेवन करते हैं, तब वर्षणशील बृहस्पति की सब देवता, विभिन्न दिशाओं से स्तुति करते हैं ॥ १० ॥ अन्न प्राप्ति के लिए मेरी स्तुति को फलवती करो। मुझे अपनी शरण देकर रक्षा करे। हमारे सब शत्रु नाश को प्राप्त हों। जगत को पुष्ट करने वाली आकाश-पृथिवी हमारे आह्वान को सुनें ॥ ११ ॥ बृहस्पति महिमामय हैं, उन्होंने जल से सम्पन्न मेघ के मस्तक को छिन्न-भिन्न किया और जल-निरोधक शत्रु का नाश कर डाला। इससे समस्त नदियाँ जलवती होकर समुद्र में जा मिलीं। हे द्यावापृथिवी ! तुम समस्त देवताओं के सहित हमारा पालन करो ॥ १२ ॥ [१६]

सूक्त ६८

(ऋषि—अयास्यः। देवता—बृहस्पतिः। छन्द,—त्रिष्टुप्)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्य. ॥३॥
आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्यो. ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥   १७

जैसे जल को सींचने वाला किसान अपने अन्न वाले खेत से पक्षियों को उड़ाने के लिए शब्द करते हैं, जैसे वर्षक मेघ गर्जन करते हैं, जैसे पर्वत से टकराती हुई जल की लहरें शब्द करती है, वैसे ही बृहस्पति की प्रशंसा वाली स्तुतियाँ शब्द करती हैं ॥ १ ॥ अंगिरा के पुत्र बृहस्पति ने गुफा में छिपी हुई गौओं के पास सूर्य का प्रकाश पहुँचाया तब उनका तेज भग देवता के समान व्याप्त हो गया । जैसे मित्र दम्पति का मेल करा देते हैं, वैसे ही उन्होंने गौओं का मनुष्यों से मेल कराया । जैसे रण-क्षेत्र में अश्व को दौड़ाते हैं, वैसे ही हे बृहस्पते ! तुम इन गौओं को दौड़ने वाली करो ॥ २ ॥ जैसे कोठी से जौ निकाले जाते हैं, वैसे ही बृहस्पति ने पर्वत से गौओं को बाहर निकाला । वे गौऐं श्रेष्ठ वर्ण और रूप वाली हैं । वह शीघ्र गमन वाली, स्पृहणीया और श्रेष्ठ कल्याणकारी दूध देने वाली हैं ॥ ३ ॥ बृहस्पति ने गौओं का उद्धार करके सत्कर्म के स्थान यज्ञ को मधुर दुग्ध से सींचा । तब सूर्य के आकाश से उल्कापात करने के समान बृहस्पति अत्यन्त तेजस्वी हुए । उन्होंने पाषाण रूप कपाट से गौओं को निकाल कर उनके खुरों से पृथिवी की त्वचा को उसी प्रकार चीरा, जैसे वर्षा-काल में मेघ वृष्टि के वेग से भूमि की त्वचा को कुरेदते हैं ॥ ४ ॥ वायु द्वारा जल से शैवाल को हटाये जाने के समान ही बृहस्पति ने आकाश से अंधकार को हटाया । जैसे वायु मेघों को विस्तृत करता है, वैसे ही बृहस्पति ने बल के छिपे हुए स्थान को जान कर गौओं को उससे बाहर किया ॥ ५ ॥ बृहस्पति के अग्नि के समान

दृढ़ और तेजस्वी आयुध ने जब वायु के अस्त्र को काट डाला, तब बृहस्पति ने उन गौओं को अपने वश में किया। जैसे दाँतों द्वारा चर्वण किये गए पदार्थ को जीभ खाती है, वैसे ही अपहरणकर्त्ता पणियों का वध करके बृहस्पति ने गौओं को प्राप्त किया ॥ ६ ॥ [१७]

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्त्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य । ८॥
सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥६॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥११॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स
नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥ १८ ॥

गुफा में छिपी हुई गौओं ने जब शब्द किया तभी बृहस्पति ने गौओं के यहाँ होने का पता लगाया। जैसे अन्डे को फोड़ कर पक्षी बच्चे को उससे बाहर निकालता है, वैसे ही उन्होंने पर्वत से गौओं को बाहर किया ॥ ७ ॥ मछलियाँ अल्प जल में जैसे प्रसन्न नहीं रहतीं, उसी प्रकार पर्वत की गुफा में बँधी हुई अप्रसन्न गौओं को बृहस्पति ने देखा। जैसे वृक्ष के काष्ठ से सोम-पात्र निकालते हैं, वैसे ही बृहस्पति ने गौओं को पर्वत से बाहर निकाला ॥८॥ गौओं को देखने के निमित्त बृहस्पति ने उषा को पाया। उन्होंने सूर्य और अग्नि को प्राप्त कर अंधकार को दूर किया। जैसे अस्थि से मज्जा को बाहर

निकालते हैं, वैसे उन्होंने बल राक्षस के पर्वत से गौओं को बाहर निकाला ॥ ६ ॥ हिम जैसे पद्म-पात्रों को हर लेता है, वैसे ही बल द्वारा छिपी हुई गौओं का बृहस्पति ने अपहरण किया। अन्य व्यक्ति ऐसा कर्म करने में समर्थ नहीं है। उनके इस कार्य से ही सूर्य और चन्द्र का उदय रूप कर्म प्रारम्भ हुआ ॥ १० ॥ पालनकर्त्ता देवताओं ने नक्षत्रों से आकाश को उसी प्रकार सुसज्जित किया, जिस प्रकार कृष्ण वर्ण के अश्व को सुवर्ण के आभूषणों से सजाया जाता है। उन्होंने प्रकाश को दिवस के लिए और अन्धकार को रात्रि के लिए नियत किया। बृहस्पति ने पर्वत को विदीर्ण कर गौ रूप धन को पाया ॥ ११ ॥ अनेक ऋचाओं के रचयिता तथा अंतरिक्ष में वास करने वाले बृहस्पति को हमने नमस्कार किया। वे बृहस्पति हमें गौ, अश्व, सन्तान, भृत्य और अन्न-धन प्रदान करें ॥ १२ ॥ [१८]

सूक्त ६६ [छठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—सुमित्रो वाध्र्यश्वः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य सदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतय.।
यदी सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥
घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्न घृतम्वस्य मेदनम्।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२॥
यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीय।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ॥३॥
यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व।
स न. स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥४॥
भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम्।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥५॥
समज्र्या पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥६।१९॥

वध्र्यश्व ने जिन अग्नि की स्थापना की, उन अग्नि का अनुग्रह हमारा मंगल करे। उनका रूप दर्शन के योग्य हो और उनका यज्ञ स्थान में आना अत्यन्त शुभ हो। जब हम उन अग्नि देवता को प्रतिष्ठित करते हैं, तब वे घृत की आहुति प्राप्त कर प्रदीप्त होते हैं। हम उन्हीं अग्नि देवता का स्तोत्र करते हैं ॥ १ ॥ वध्र्यश्व के अग्नि घृत के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों। घृत रूप आहार ही उनका पोषण करे। घृत की आहुति प्राप्त कर अग्नि अत्यन्त फैल जाते हैं। घृत के प्राप्त होने पर अग्नि का प्रकाश सूर्य के समान अत्यन्त उज्वल होता है ॥ २ ॥ हे अग्ने! मनु ने जैसे तुम्हें प्रदीप्त किया था, वैसे ही मैं भी तुम्हें प्रदीप्त कर रहा हूँ। किरणों का यह समूह नवीन है अतः तुम ऐश्वर्यवान् होकर बढ़ो। हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर शत्रु सेना को चीर डालो और हमारे पास अन्न पहुँचाओ ॥ ३ ॥ वध्र्यश्व ने ही, हे अग्ने! तुम्हें प्रथम प्रज्वलित किया था। तुमने जो कुछ हमें प्रदान किया है वह अविनश्वर हो। तुम हमारे घर और शरीर की भी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे वध्र्यश्व के अग्नि, तुम प्रज्वलित होकर हमारे रक्षक बनो। तुम्हें हिंसक दुष्ट हरा न सकें। तुम वीरों के समान शत्रुओं के नाशक बनो। मैं सुमित्र इन अग्नि के नामों का उच्चारण करता हूँ ॥ ५ ॥ हे अग्ने! पर्वत पर उत्पन्न धन को जीत कर तुमने अपने उपासकों को दिया है। तुम वीर के समान होकर शत्रुओं के हिंसक बनो। जो शत्रु युद्ध करने के लिये आवें, उनसे सामना करो ॥६॥

[१६]

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७॥
त्वं धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८॥
देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९॥
पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।

जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वा अवनोर्व्राधतश्चित् ॥१०॥
शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥११॥
अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व॥१२।२०॥

यह अग्नि दीर्घ सूत्र वाले हैं। यह देने वालों में प्रमुख हैं। यह सहस्रों स्थानों को ढकने में समर्थ हैं। सैंकड़ों मार्गों से आगमन करते हैं। यह प्रकाश मार्गों में भी प्रकाशमान हैं। हे अग्ने ! हम सुमित्रों के घरमें सुख पूर्वक प्रज्व-लित होओ ॥७॥हे मेधावी अग्ने ! तुम्हारी गौ सरलता से दुही जाती है। उनका दोहन निर्विघ्न रूपसे होता है। वह अमृत के समान मधुर दुग्ध देने वालीहैं। देवताओं के उपासक सुमित्र वंश वाले ऋषि दक्षिणासे युक्त होकर तुम्हें प्रदीप्त करते हैं॥८॥ हे वध्र्यश्व के अग्नि,जब मनुष्यों ने तुम्हारी महिमा जाननी चाही थी, तब तुमने प्रवृद्ध देवताओं के साथ कर्म में विघ्न डालने वालों पर विजय पाई थी। वही देवता तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा का भले प्रकार गान करते हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! पिता जैसे पुत्र को गोद में उठा कर प्यार करता है, वैसे ही मेरे पिता ने तुम्हारी परिचर्या की थी। उस समय मेरे पिता से समिधाऐं ग्रहण करके तुमने शत्रुओं का नाश किया था ॥ १० ॥ वध्र्यश्व के अग्नि ने सोमाभिषवकर्त्ता ऋषियों के साथ शत्रुओं पर सदा विजय पाई है। हे अग्ने ! तुम विभिन्न तेजों से युक्त हो। तुम हिंसक राक्षसों को सदा जलाते हो। जो हिंसाकारी दैत्य अधिक प्रवृद्ध हुए थे, उन्हें अग्नि ने नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ वध्र्यश्व के अग्नि शत्रु का संहार करने वाले हैं। वे सदा प्रदीप्त होते हैं। उनको नमस्कार किया जाता है। हे अग्ने ! तुम हमसे भिन्न शत्रुओं का परा-भव करो ॥ १२ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[२०]

सूक्त ७०

(ऋषिः—सुमित्रो वाध्र्यश्वः । देवता—आप्रम् । छन्दः—त्रिष्टुप्)

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।

वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१॥
आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२॥

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३॥
वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ॥४॥
दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भि र्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥५।२१॥

हे अग्ने ! तुम उत्तरवेदी पर प्रतिष्ठित होकर मेरी समिधाओं को स्वीकार करो । घृतयुक्त स्रुक की कामना करते हुए पृथिवी के श्रेष्ठ भाग पर, देवयाग में अपनी ज्वालाओं को उन्नत करो ॥१॥ अग्नि देवताओं से आगे चलने वाले हैं । मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं । वे विभिन्न रंग वाले अश्वों के सहित हमारे यज्ञ स्थान में आगमन करें । देवताओं में मुख्य और कर्मों में चतुर अग्नि हमारी हवियों का वहन करें ॥२॥ हवि देने वाले यजमान दौत्य कर्म के निमित्त अग्नि की स्तुति करते हैं । सुन्दर रथ को वहन करने वाले अश्वों के साथ हे अग्ने ! इन्द्रादि देवताओं को यज्ञ में लाओ और हमारे इस यज्ञ में होता रूप से विराजमान होओ ॥३॥ देवताओं की सेवा करने वाला कुश वृद्धि को प्राप्त हो और सुरभि के समान सुखदाता हो । हे अग्ने ! हव्याकांक्षी इन्द्रादि देवताओं को हर्षित मन से पूजो ॥४॥ हे द्वार देवियो ! तुम उन्नत होती हुई पृथिवी के समान बढ़ो । तुम रथ की कामना करती हुई देवताओं की अभिलाषा करो और तुम अपनी महिमा से प्रतिष्ठित होकर विचरण-साधन रथ को धारण करने वाली बनो ॥५॥

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वा देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६॥
ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥७
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सदित चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥८॥
देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९॥
वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवता द्यावापृथिवी हवं मे ॥१०
आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥२२

आकाश की पुत्री और श्रेष्ठ तेज वाली उषा और रात्रि हमारे यज्ञ में विराजमान हों। हे सुन्दर धन वाली देवियो ! तुम्हारे निकटस्थ स्थान में हवि चाहने वाले देवता विराजमान हों ॥६॥ जब सोम को निष्पन्न करने के लिए हाथ में पाषाण ग्रहण करते हैं, जब महान् अग्नि प्रदीप्त होते हैं और जब हवियों के धारण करने वाले पात्र यज्ञ में प्रस्तुत किये जाते हैं, तब तुम हमारे यज्ञ में धन प्रदान करो ॥७॥ हे इडा आदि त्रिदेवियो ! तुम्हारे निमित्त यह कुश विस्तृत किया गया है, तुम इस पर प्रतिष्ठित होओ। हे इडा ! जैसे ओजस्विनी सरस्वती और दैदीप्यमती भारती ने मनु के यज्ञ में हव्य ग्रहण किया था, उसी प्रकार हमारे यज्ञ में दिये जाने वाले हव्य को भी स्वीकार करो ॥८॥ हे त्वष्टादेव ! तुम्हारा रूप कल्याणकारी है। तुम अंगिराओं के मित्र हो। तुम श्रेष्ठ धन से सम्पन्न हो। तुम हव्य की कामना से देवभाग को जानते हुए धन प्रदान करो ॥९॥ हे यूप काष्ठ ! तुम वनस्पति से बनाए गए हो। तुम जब रस्सी से बांधे जाओ

तब हमको अन्न प्रदान करने वाले बनो। वनस्पति हवि सेवन करें और हमारी हवियों को देवताओं को पहुँचावें। आकाश, पृथिवी मेरी स्तुतियों का पालन करें ॥१०॥ हे अग्ने! हमारे यज्ञ के लिए आकाश और अन्तरिक्ष से इन्द्र और वरुण को यहाँ लाओ। यज्ञ योग्य देवता हमारे कुश पर विराजमान हों और हमारे स्वाहाकार से प्रसन्न हों ॥११॥

सूक्त-७१

(ऋषिः—बृहस्पतिः। देवता —ज्ञानम्। छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥३॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५।२३

बृहस्पति प्रथम पदार्थ का नामकरण करते हैं। यह उनकी शिक्षा की प्रथम सीढ़ी है। इनका जो गोपनीय ज्ञान है वह सरस्वती की कृपा से ही उत्पन्न होता है ॥१॥ जैसे सत्तू को सूप से शुद्ध करते हैं, वैसे ही मेधावी-जन अपने बुद्धि-बल से शोधित भाषा को प्रयुक्त करते हैं। उस समय ज्ञानीजन अपने प्राकट्य के जानने वाले हैं। इनकी वाणी में कल्याणकारिणी लक्ष्मी का निवास रहता है ॥२॥ मेधावीजन यज्ञ से भाषा के मार्ग को पाते हैं। ऋषियों के अन्तःकरण में स्थित वाणी को उन्होंने

पाया। वही वाणी सब मनुष्यों को सिखाई गई। इसी वाणी के योग से सातों छन्द स्तुति करने में समर्थ होते हैं ॥३॥ कोई व्यक्ति समझ देख कर और सुनकर भी भाषा को समझने देखने या सुनने का यत्न नहीं करते। परन्तु किसी व्यक्ति पर वाग्देवी सरस्वती की अत्यन्त कृपा रहती है ॥४॥ कोई-कोई व्यक्ति विद्वानों के समाज में इतने प्रतिष्ठित हो जाते हैं कि उनके बिना कोई कार्य नहीं हो पाता। परन्तु कोई-कोई व्यक्ति निरर्थक वाणी को प्रयुक्त करते हैं ॥५॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६

अक्षण्वन्त कर्णवन्त सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे दद्दृश्रे ॥७

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणो संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञय ॥९

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्विषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०

ऋचा त्व पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्व ॥११॥२४

मित्र से विमुख होने वाले विद्वान् की वाणी फलहीन होती है। उसका सुना हुआ सब व्यर्थ होता है। क्योंकि वह सत्य मार्ग से अनजान रहता है ॥६॥ आँख कान से सम्पन्न मित्र मनके भावों को प्रकाशित करने में विशिष्टता वाले होते हैं। कोई कोई मुख तक गहरे जल वाले

और कोई कमर तक जल वाले जलाशय के समान होते हैं तथा कोई कोई हृदय के समान गंभीर होते हैं ॥ ७ ॥ जब अनेक मेधावीजन वेदार्थों के गुण दोषों का विवेचन करने के लिए एकत्र होते हैं, तब कोई २ स्तोत्र वाला पुरुष वेदार्थ का जानने वाला होकर सर्वत्र घूमता है और कोई २ व्यक्ति सर्व ज्ञान से शून्य होता है ॥ ८ ॥ इस लोक में पुरुष वेद के जानने वाले ब्राह्मणों और पारलौकिक देवताओं के सहित यज्ञादि कर्मों को नहीं करते, जो स्तुति नहीं करते और न सोम-याग की ही इच्छा करते हैं, वे पाप के चंगुल में फंस कर मूर्खों के समान केवल लोक व्यवहार के द्वारा हल चलाने में चतुर होते हैं ॥ ९ ॥ यश मित्र के समान है। इसके द्वारा सभाओं में प्रमुखता प्राप्त होती है। यश को पाने वाले पुरुष प्रसन्न रहते हैं। यश से बुराई दूर होकर अन्न मिलता और विभिन्न प्रकार से उनका उपकार ही होता है ॥ १० ॥ एक प्रकार के उपासक अनेक ऋचाओं द्वारा स्तुति करते हुए यज्ञादि कर्मों में सहायक होते हैं। दूसरी प्रकार के उपासक गायत्री छन्द युक्त साम का गान करते हैं। यज्ञस्थ ब्रह्मा विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं को करते हैं और अध्वर्युगण यज्ञ के अनेक कर्मों के करने वाले होते हैं ॥ ११ ॥ [२४]

सूक्त ७२

(ऋषि:—बृहस्पतिर्बृहस्पतिर्वा लौक्य अदितिर्वा दाक्षायणी।
देवता—देवा:। छन्द:—अनुष्टुप्)

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥
ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगे ऽसतः सदजायत ॥२॥
देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥
भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥४॥
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
ता देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५।१॥

'हम देवताओं के प्राकट्य का विस्तृत वर्णन करते हैं। अगले युग में देवगण यज्ञ के आरम्भ में स्तोताओं की ओर देखते रहने वाले होंगे ॥ १ ॥ कर्मकार के समान सृष्टि के आदि में अदिति ने देवताओं को जन्म दिया। वे नाम और रूप से रहित देवता नाम, रूप आदि के सहित प्रकट हुए ॥ २ ॥ देवताओं के उत्पन्न होने से पहिले असत् से सत् की उत्पत्ति हुई। फिर दिशाऐं और वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ वृक्षों के पश्चात् पृथिवी और पृथिवी से दिशाऐं उत्पन्न हुईं। दक्ष अदिति से उत्पन्न हुए और दक्ष से अदिति उत्पन्न हुईं ॥ ४ ॥ हे दक्ष! तुम्हारी पुत्री अदिति ने जिन देवताओं को उत्पन्न किया है, वे अविनाशी देवता स्तुतियों के योग्य हैं ॥ ५ ॥ [1]

यद्देवा अद. सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥६॥
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥७॥
अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभि. परा मार्ताण्डमास्यत् ॥८।
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥९।२॥

देवगण इस पृथिवी में रह कर अत्यंत उत्साह प्रदर्शित करने लगे। उन्होंने नर्तन सा किया, जिससे कष्टप्रद धूलि सब ओर उड़ने लगी ॥ ६ ॥ देवताओं ने समस्त विश्व को मेघ के समान आच्छादित कर लिया। आकाश में छिपे हुए सूर्य को उन्होंने प्रकाशित किया ॥ ७ ॥ अदिति के आठ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें से सात को साथ लेकर वे स्वर्ग लोक में गईं। आठवें

सूर्य आकाश में ही रह गए थे ॥ ८ ॥ उस श्रेष्ठ समय में अदिति सात पुत्रों को साथ ले गई और सूर्य को आकाश में ही प्रतिष्ठित किया ॥ ९ ॥ [२]

सूक्त ७३

(ऋषि—गौरिवीतिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

ज़निष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥१॥
द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः । २॥
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥३॥
समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४॥
मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५।३।

हे इन्द्र ! जब इन्द्र की माता ने इन्द्र को उत्पन्न किया, तब मरुद्गण ने तेजस्वी इन्द्र की प्रशंसा करते हुए कहा कि तुमने शत्रुओं का नाश करने को ही जन्म लिया है । तुम ओजस्वी, वीर, मानी और स्तुतियों के पात्र हो ॥ १ ॥ दोहनकर्त्ता इन्द्र के पास गमनकर्त्ता मरुद्गण सहित सेना सुसज्जित है । मरुद्गण ने श्रेष्ठ स्तुतियों के द्वारा इन्द्र की वृद्धि की । जैसे विस्तीर्ण गोष्ठ में ढकी हुई गौऐं उससे बाहर निकलती हैं, वैसे ही घोर अंधकार में ढका हुआ वर्षा का जल बाहर निकलता है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम महिमावान चरणों वाले हो । जब तुम उनके द्वारा गमन करते हो तब ऋभुगण वृद्धि को प्राप्त होते हैं । उस समय सभी देवता महानता को प्राप्त होते हैं । तुम सहस्र वृक को मुख में रखते हो और अश्विनीकुमारों को लौटाते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! संग्राम में जाने की जल्दी होते हुए भी तुम यज्ञ में गमन

करते हो। उस समय तुम दोनों अश्विनीकुमारों से मित्रता करते हो। तुम हमारे निमित्त हजारों धनों को धारण करते हो तब अश्विनीकुमार हमें धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ जब इन्द्र यज्ञ में प्रसन्न हो जाते हैं तब मरुद्गण के साथ यजमान को धन प्रदान करते हैं। यजमान के निमित्त इन्द्र ने राक्षसी माया का नाश किया तथा अंधकार को दूर कर वर्षा की ॥ ५ ॥ [३]

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उपसो यथा न. ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामै साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥
त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दास कृण्वान ऋपये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७॥
त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवा: शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८॥
चक्रं यदस्याप्स्वा निपत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥
अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यत. प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०॥
वय. सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य स्मान्निधयेव बद्धान् ॥११॥४॥

इन्द्र अपने सब शत्रुओं को एक प्रकार से ही नष्ट करते हैं। उन्होंने उषा को तथा शत्रु को समान रूप से ही मिटा दिया। वृत्र वध की कामना वाले महान् इन्द्र अपने मित्र मरुद्गण सहित वृत्र का हनन करने के निमित्त पहुँचे। हे इन्द्र! तुमने अत्यन्त रूपवान पुरुषों को भी मार डाला ॥ ६ ॥ नमुचि तुम्हारे धन को चाहता था। तुमने उसे मार डाला। तुमने मनु के समीप जाने वाले नमुचि की माया को नष्ट कर दिया। तुमने देवताओं के मध्य मनु के लिए मार्ग बनाया, जिसके द्वारा सरलता से देव लोक में जाया जा सकता है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! तुम विश्व को अपने तेज से भरते हो। तुम

जब वज्र धारण करते हो तब सब के स्वामी होते हो। समस्त बलवान देवता तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। क्योंकि तुमने मेघों को अधोमुखी कर दिया है ॥८॥ इन्द्र का चक्र जल में अवस्थित है। वह इन्द्र के लिए मधु निकालता है। हे इन्द्र! तृण-लता आदि में जो तुमने मधुर रस स्थापित किया है, वह उज्वल गो-दुग्ध के रूप में हमें प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ लोगों का कथन है कि इन्द्र आदित्य से प्रकट हुए हैं। परन्तु वे बल से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा मैं जानता हूँ। यह इन्द्र उत्पन्न होते ही शत्रुओं की अट्टालिकाओं की ओर दौड़े। वे किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसे उनके सिवाय अन्य कोई नहीं जानता ॥ १० ॥ सूर्य की रश्मियाँ भले प्रकार गमन करने वाली और नीचे गिरने वाली हैं। वे इन्द्र के पास गईं तब तब यज्ञ की कामना वाले ऋषि ही पक्षी रूप हुए। उन्होंने इन्द्र से निवेदन किया कि हे इन्द्र! मेरे चक्षुओं को ज्योति से पूर्ण करो। अंधकार को दूर करो। जिस पाश से हम बँधे हैं, तुम उससे हमें मुक्त करो ॥ ११ ॥ [४]

सूक्त ७४

(ऋषि—गौरिवीतिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥१॥
हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम्।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥२॥
इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम्।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्य मसामि ॥३॥
आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥४॥
शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून्।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥५॥

इन्द्रावान पुरुतमं पुरापाळ्हा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥६॥५॥

यज्ञ के द्वारा इन्द्र को धन देने के लिए प्रेरित किया जाता है। वे देवताओं और मनुष्यों द्वारा आरविंत किये जाते हैं। संग्राम में धन जीतने वाले अश्व उन्हें अपनी ओर खींचते हैं। शत्रुओं का नाश करने में प्रसिद्ध योद्धा भी इन्द्र को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं ॥१॥ अंगिराओं की स्तुतियों के घोष ने आकाश को पूर्ण किया। जो देवता इन्द्र की कामना करते हुए अन्न चाहते हैं, उन्होंने यंत्रकर्त्ताओं को गौएं प्राप्त कराने को भूमि प्राप्त की। पक्षियों द्वारा चुराई गौओं को खोजते हुए देवताओं ने सूर्य समान अपने तेज से आकाश को आलंकित किया ॥२॥ अविनाशी देवगण यज्ञ में विभिन्न प्रकार के श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं। तब उनकी स्तुति की जाती है। वे हमारी स्तुति को स्वीकार करें और हमें महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३॥ हे इन्द्र! शत्रुओं के गोधन को जीतने की कामना वाले उपासक तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। एक ही बार उत्पन्न हुई यह विस्तीर्ण पृथिवी अनेकों को जन्म देती है। यह सहस्र धाराओं वाले श्रेष्ठ दूध के देने वाली है। जो इस पृथिवी रूप गौ का दोहन करने की इच्छा करते हैं, वे भी इन्द्र की पूजा करते हैं ॥४॥ हे ऋत्विजो! इन्द्र किसी के सामने नहीं झुकते। वे मनुष्यों का हित करने के लिए वज्र धारण करते और शत्रुओं से जूझते हैं। तुम उन्हीं महान् ऐश्वर्य वाले इन्द्र से रक्षा की याचना करते हुए उनका आश्रय प्राप्त करो ॥५॥ इन्द्र ने शत्रुओं के नगर को तोड़ा। उन्होंने जब वृत्र जैसे दुर्धर्ष शत्रु का हनन किया, तब पृथिवी जल से परिपूर्ण हुई। तब इन्द्र की क्षमता सब पर प्रकट हुई और सब यह जान गए कि इन्द्र कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं ॥६॥   [५]

सूक्त ७५

(ऋषि—सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः । देवता—नद्य. । छन्द—जगती)

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्नमातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५।६

हे जल ! उपासना करने वाले यजमान के घर में, मैं तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा का बखान करता हूँ । सात-सात के रूप में नदियाँ तीन प्रकार से गमनशील हुईं । उनमें सिन्धु नाम की नदी अत्यन्त प्रवाह वाली है ॥१॥ हे सिन्धु नदी, जब तुम हरे-भरे प्रदेश की ओर गमन करने वाली हुईं, उस समय वरुण ने तुम्हारे प्रवाहित होने के लिए मार्ग को विस्तीर्ण किया । तुम सब नदियों में श्रेष्ठ हो और पृथिवी पर उत्कृष्ट मार्ग से गमन करती हो ॥२॥ सिन्धु नदी का निनाद पृथिवी से उठकर आकाश को गुँजाता है । यह नदी अपनी प्रचण्ड लहरों और अत्यन्त वेग के साथ गमन करती हैं । जब यह बैल के समान घोर शब्द करती है, तब ऐसा लगता है जैसे गर्जनशील मेघ जल की वर्षा कर रहे हों ॥ ३ ॥ माता जैसे बालक के पास जाती है और पयस्विनी गौएं अपने बछड़ों की ओर गमन करती हैं, वैसे ही प्रवाहित होती हुई सब नदियाँ, सिन्धु की ओर गमन करती हैं ; जैसे युद्ध में प्रवृत्त राजा अपनी सेना को संग्राम भूमि में ले जाता है, वैसे ही तुम अपने साथ चलने वाली दो नदियों को आगे-आगे लेकर चलती हो ॥४॥ हे गंगा, यमुना, सरस्वती, सतलज, परुष्णी,

असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, सुषोमा, आर्जीकीया आदि नदियो ! तुम मेरे स्तोत्र को अपने-अपने भाग में विभाजित कर मेरी याचना श्रवण करो ॥५॥   [६]

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिंधो कुभया गोमती क्रमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६
ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८
सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिन. ॥९॥७

हे सिन्धुनदी, तुम पहिले तृष्टामा के संग चलीं । फिर सुसर्तु, रसा और श्वेत्या के साथ हुईं । तुमने ही क्रमु और गोमती को कुभा और मेहत्नु से सुसंगत किया । तुम इन सब नदियों में मिलकर प्रवाहित होती हो ॥६॥ श्वेतवर्ण वाली सिन्धु नदी सरलता से गमन करने वाली है । उसका वेगवान् जल सब ओर पहुँचता है, क्योंकि सिन्धु नदी सबसे अधिक वेगवाली है । वह स्थूल नारी के समान दर्शनीय और अश्व के समान सुन्दर है ॥७॥ सिन्धु नदी सुन्दर, रथ, अश्व, वस्त्र, सुवर्ण, अन्नादि से सम्पन्न है । इसके प्रदेश में वृक्ष भी उत्पन्न होते हैं । यह मधुरता के बढ़ाने वाले पुष्पों से ढकी हुई है ॥८॥ यह नदी कल्याणकारी अश्वों वाले रथ को योजित करती है । अपने उस रथ के द्वारा अन्न प्रदान करे । सिन्धु नदी के इस रथ की यज्ञ में प्रशंसा की जाती है । वह रथ कभी हिंसित न होने वाला, महान और यशस्वी है ॥९॥   [७]

सूक्त ७६

(ऋषि—जरत्कर्ण ऐरावतः सर्पः । देवता—ग्रावाण. । छन्द—जगती)

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥१
तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्धयर्यो अभिभूत पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥२
तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वरौं अशिश्रयुः ॥३
अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४
दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५।८

हे पाषाणो ! मैं तुम्हें अन्नवती उषा के आगमन के साथ ही कर्म में लगाता हूँ । तुम सोम प्रदान द्वारा इन्द्र, मरुद्गण और आकाश-पृथिवी का अनुग्रह प्राप्त कराओ। यह आकाश पृथिवी हममें से सबके घरों में स्तुतियाँ स्वीकार करती हुई घरों को धन से सम्पन्न करें ॥१॥ अभिषवण प्रस्तर जब हाथों में ग्रहण किया जाता है तब वह अश्व के समान वेग वाला होजाता है। हे प्रस्तर ! तुम सोम को अभिषुत करो, जिससे अभिषवकर्त्ता यजमान शत्रुओं को पराभव करने वाली शक्ति प्राप्त करे। जब यह अश्वदान करता है, तब इसे अभीष्ट धन प्राप्त होता है ॥२॥ मनु के यज्ञ में जैसे सोम-रस आया था, उसी प्रकार पाषाण द्वारा अभिषुत होकर यह सोम जल में मिश्रित हो। यज्ञ में गौओं को और अश्वों को जल-स्नान कराने तथा घर निर्मित करने आदि कर्मों में सोम के आश्रित होते हैं ॥ ३ ॥ हे पाषाणो ! हिंसक राक्षसों का वध करो । पाप देवता को दूर भगाते हुए कुबुद्धि को दूर करो। देवताओं को हर्षप्रद स्तोत्र का सम्पादन करते हुए हमें सन्तानयुक्त धन प्रदान करो ॥४॥ जो सुधन्वा के पुत्र विभ्वा से भी शीघ्र कार्य करने वाले, आकाश से भी अधिक तेजस्वी और सोमाभिषव-

कर्म में वायु से भी अधिक वेगवान हैं, उन अग्नि से भी बढ़कर धन देने वाले अभिषवण पाषाणों को, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पूजो ॥१॥ [८]

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुर ॥६
सुन्वन्ति सोम रथिरासो अद्रयो निरस्य रस गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७
एते नर स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामवाम वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु व. पार्थिवाय सुन्वते ॥८।६

यह पाषाण हमारे यज्ञ में सोम का निष्पीड़न करें। वे श्रेष्ठ स्तोत्र रूप वाणी द्वारा हमको सोम-याग में प्रतिष्ठित करें। ऋत्विगगण शीघ्र कर्म करते हुए सोम याग में स्तोत्र ध्वनि के द्वारा सोमरस का दोहन करते हैं ॥६॥ वे पाषाण सोम को चलित करते हैं। अग्नि को सींचने की कामना से स्तोत्र को चाहते हुए सोम रस का दोहन करते हैं। अभिषव कराने वाले ऋत्विज् अवशिष्ट सोम को पीकर अपने को पवित्र करते हैं ॥७॥ हे पाषाणो ! हे ऋत्विजो ! सुन्दर सोम का निष्पीड़न करो। इन्द्र के निमित्त सोम का संस्कार करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति के लिए अद्भुत पदार्थ प्रस्तुत करो और निवास के योग्य श्रेष्ठ धन यजमान को प्रदान करो ॥८॥ [८]

सूक्त ७७

(ऋषि—स्यूमरश्मिर्भार्गवः । देवता—मरुत. । छन्द— त्रिष्टुप्,जगती)

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुत न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१
श्रिये मर्यासो अञ्जीरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिचे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो मर्या अभिद्यवः ॥३
युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४
यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः॥५॥१०

स्तुतियों द्वारा प्रसन्न हुए मरुद्गण मेघ से जल-विन्दु रूप वैभव की वृष्टि करते हैं। वही हवि सम्पन्न यज्ञ के समान विश्व के रचयिता हैं। मैं मरुद्गण के दल का यथार्थ पूजन नहीं कर सका हूँ। मैंने इनकी स्तुति भी नहीं की है ॥१॥ प्रारम्भ में मनुष्य रूपी मरुद्गण अपने पुण्यकर्मों द्वारा देवता बने। अनेक सेनायें एकत्र होकर भी उन्हें हरा नहीं सकतीं। दिव्य लोक के वासी इन मरुद्गणों ने अभी हमको दर्शन नहीं दिये, क्योंकि अभी हमने इनकी स्तुति नहीं की है ॥२॥ पृथिवी और स्वर्ग में यह मरुद्गण स्वयं प्रवृद्ध हुए हैं। सूर्य के मेघ से बाहर निकलने के समान ही मरुद्गण प्रकट हुए हैं। यह वीर पुरुषों के समान प्रशंसा की कामना करते हैं और शत्रु का संहार करने वाले मनुष्यों के समान तेजस्वी हैं ॥३॥ हे मरुद्गण! जब तुम पृथिवी पर वृष्टि करते हो तब पृथिवी न तो व्याकुल होती है और न बलहीन ही होती है। तुम अन्नवान पुरुषों के समान एकत्र होकर आगमन करो ॥४॥ हे मरुद्गण! रस्सी से योजित रथ जिसप्रकार गमन करने वाला होता है, वैसे ही तुम गमन करने वाले हो। प्रातःकालीन प्रकाश के समान तुम प्रकाशित हो और बाज के समान शत्रु के भगाने वाले हो। तुम स्वयं यशस्वी होते हो और सब ओर विचरण करते हुए जल-वृष्टि करते हो ॥५॥ [१०]

प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६
य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठा ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषा महश्च यामन्नध्वरे चकाना ॥८॥११

हे मरुद्गण ! बहुत दूर से तुम अभीष्ट धन लाते हो। द्वेष करने वाले शत्रुओं को दूर भगाते हुए तुम उनके सब धनों को प्राप्त कर लेते हो ॥६॥ जो यज्ञकर्त्ता पुरुष अपने यज्ञ के पूर्ण होने पर अनुष्ठान करता हुआ मरुद्गण को हवि देता है, वह पुरुष अन्न, धन और अपत्यादि को प्राप्त करता हुआ देवगण के साथ बैठकर सोम पीने वाला होता है ॥७॥ मरुद् गण यज्ञ के अवसर पर रक्षा करने वाले हैं। अदिति जल-वृष्टि द्वारा सुख प्रदान करती हैं, वे अपने द्रुतगामी रथ से आकर हमें शोभन बुद्धि दें ॥८॥

सूक्त ७८

(ऋषि —स्यूमरश्मिर्भार्गव । देवता—मरुत । छन्द-त्रिष्टुप जगती)

विप्रासो न मन्मभि स्वाध्यो देवाव्यो न यज्ञै स्वप्नस ।
राजानो न चित्रा सुसन्दृशः क्षितीना न मर्या अरेपस ॥१
अग्निर्नये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुज सद्यऊतय ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठा सुनीतय सुशर्माणो न सोमा ऋत यते ॥२
वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीना न जिह्वा विरोकिण ।
वर्मण्वन्तो न योधा शिमीवन्त पितृणा न शसा सुरातय ॥३
रथाना न य रा सनाभयो जिगीवासो न शूरा अभिद्यव ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभ ॥४
अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्य सुदानव ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अ गिरसो न सामभि ॥५॥१२

विद्वान् स्तोता जैसे स्तोत्र से प्रीति रखते हैं उसी प्रकार मरुद्गण यज्ञ में श्रेष्ठ ध्यान के योग्य है । देवताओं को तृप्त करने की इच्छा वाले यजमान जैसे कर्मों में लगे रहते हैं, वैसे ही मरुद्गण वृष्टिपात आदि

कर्मों में व्यस्त रहते हैं। वे मरुद्गण राजाओं के समान पूज्य और गृह-स्वामी के समान सत्कार के योग्य हैं ॥१॥ अग्नि के समान तेजस्वी मरुद्गण अपने हृदय पर सुन्दर अलंकार धारण करते हैं। वे वायु के समान शीघ्रगन्ता और ज्ञानियों के समान पूजनीय हैं। जैसे सोम यज्ञ में जाते हैं वैसे ही वे श्रेष्ठ चक्षु और मुख वाले मरुद्गण यज्ञ में गमन करते हैं ॥२॥ वायु के समान शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले मरुद्गण वायु वेग से ही गति करते हैं। वे अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी, कवच धारण करने वाले योद्धाओं के समान वीरकर्मा और पितरों के आशीर्वाद के समान दाता हैं ॥३॥ रथ-चक्र के डंडे के समान मरुद्गण एक नाभि से युक्त हैं। वे दान देने वाले के समान जलके सींचने वाले, वीरों के समान विजय शील हैं। जैसे श्रेष्ठ स्तोत्र करने वाले शब्द करते हैं, उसी प्रकार मरुद्गण भी शब्द करते हैं ॥४॥ अश्वों के समान द्रुत गति वाले मरुद्गण धन-सम्पन्न रथ के स्वामियों के समान श्रेष्ठ दान के देने वाले हैं। जैसे नदियों का जल नीचे बहता है, वैसे ही वे नीचे की ओर वृष्टि करते हैं। वे विविध रूप धारण करने वाले और अंगिराओं के समान साम-गायक हैं ॥५॥ [१२]

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७

सुभगान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८।१३

जैसे जल देने वाले मेघ नदियों को प्रवाहित करते हैं, वैसे ही मरुद्गण करते हैं। जैसे वज्र आदि आयुध ध्वंस करने में समर्थ हैं वैसे ही वे शत्रु का संहार करने में समर्थ हैं। जैसे वात्सल्यमयी माता का

शिशु निर्भय खेलता है, उसी प्रकार वे क्रीड़ा करते हैं। वे महिमावान् व्यक्तियों के समान यशस्वी हैं ॥६॥ कल्याण चाहने वाले वरों के समान अलंकृत और उषा की रश्मियों के समान यज्ञ को आश्रय देने वाले हैं। नदियों के समान प्रवाह वाले और प्रदीप्त आयुध वाले हैं। दूर जाने वाले पथिक के समान वे मरुद्गण बहुतों को लाँघते हुए गमन करते हैं ॥७॥ हे मरुद्गण ! तुम स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न होकर स्तोताओं को श्रेष्ठ धन से सम्पन्न करो। तुमने हमें सदा ही धन प्रदान किया है अतः हमारे स्तोत्र को धारण करो ॥८॥   [७

सूक्त ७६

(ऋषि—अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, सप्तिर्वा वाजम्भर. । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१॥
गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२॥
प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३॥
तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४॥
यो अस्मा अन्नं तृष्वा दधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५॥
किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन्क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥६॥
विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।

चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥७॥१४॥

मरणशील मनुष्यों में निवास करने वाले अविनाशी अग्नि की महानता से मैं परिचित हूँ। यह अपने अद्भुत जबड़ों द्वारा चबाते नहीं, अपितु काष्ठादि को खाते हैं ॥ १ ॥ गुप्त स्थान में मस्तक वाले तथा विभिन्न स्थानों में नेत्र वाले अग्नि बिना चबाये ही काष्ठ को खा लेते हैं। इनके लिए हव्य जुटाने वाले यजमान इनके निकट लाकर हाथ जोड़ते हुए नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ यह अग्नि रूप वाले शिशु अपनी मातृ रूपा पृथिवी पर गमन करते हुए लता आदि को खाते हैं। पृथिवी के जो वृक्ष आकाश स्पर्शी कहे जाते हैं उन्हें यह पक्वान्न के समान ग्रहण करते हुए अपनी ज्वालाओं से भस्म कर डालते हैं ॥ ३ ॥ हे द्यावा पृथिवी! मेरी यथार्थ बात श्रवण करो। अरणियों द्वारा उत्पन्न यह अग्नि रूप शिशु अपने माता-पिता रूप अरणियों को खा जाते हैं। मैं अल्पज्ञान वाला मनुष्य अग्निदेव के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। हे वैश्वानर! तुम्हारा ज्ञान कैसा है—यह भी मैं नहीं जानता ॥४॥ अग्नि को शीघ्र हवि देने वाले, गोघृत और सोम से आहुति देने वाले और काष्ठादि से प्रदीप्त करने वाले यजमान को अग्नि अपनी असंख्य ज्वालाओं से देखते हैं। ऐसे हे अग्ने! तुम हमारे ऊपर कृपा करते हो ॥ ५ ॥ हे अग्ने! मैं अनजान तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुमने कभी देवताओं पर भी कोप किया था? हरे वर्ण वाले अग्नि क्रीडा करते, न करते भी काष्ठादि का भक्षण करते समय उसे वैसे ही टुकड़े कर डालते हैं, जैसे तलवार से किसी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं ॥ ६ ॥ जब अग्नि जंगल में प्रज्वलित हुए तब उन्होंने पुष्ट होकर द्रुतगामी अश्वों को रस्सी में बाँध कर योजित किया। काष्ठ के टुकड़ों से प्रवृद्ध होने वाले अग्नि काष्ठ रूप अन्न को प्राप्त कर उसे विचूर्णित कर देते हैं ॥ ७ ॥ [१४]

सूक्त ८०

(ऋषिः—अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा। देवताः—अग्निः।
छन्दः—त्रिष्टुप्)

अग्निः सप्तिं वाजभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ॥१॥
अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२॥
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥३॥
अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४॥
अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥५॥
अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥६॥
अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥७॥१५॥

संग्राम भूमि में शत्रुओं से धन जीत कर लाने वाले अश्व को अग्नि अपने उपासकों को प्रदान करते हैं। वे आकाश पृथिवी को सुशोभित कर घूमने और स्तोता को यज्ञ की कामना वाला वीर पुत्र प्राप्त कराते हैं। स्त्री भी उनकी कृपा से वीर पुत्र को जन्म देने वाली होती है ॥ १ ॥ अग्नि के कार्य में आने वाली समिधाएं कल्याण करने वाली हों। वे अपने तेज से आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हैं। संग्राम भूमि में वे अपने उपासकों को विजयी करते हुए उसके अनेक शत्रुओं को संहार करते हैं ॥ २ ॥ अग्नि ने जरूथ नामक शत्रु को जल से निकाल कर जलाया और जरत्कर्ण नामक ऋषि की भले प्रकार रक्षा की। तप्त कुण्ड में पड़े अत्रि ऋषि का उद्धार भी अग्नि ने ही किया और उन्होंने नि सन्तान नृमेध ऋषि को श्रेष्ठ सन्तान से युक्त किया ॥ ३ ॥ उत्तम रूप धन वाले अग्नि सहस्र गौओं वाले ऋषि को मन्त्र

इच्छा पुत्र प्रदान करते हैं। उनके इस पृथिवी पर अनेक विशाल देह हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त हव्य को अग्नि स्वर्ग लोक में ले जाते हैं ॥ ४ ॥ ऋषिगण, यज्ञारम्भ में श्रेष्ठ मन्त्रों से अग्नि को आहूत करते हैं। रण के उपस्थित होने पर मनुष्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के निमित्त अग्नि को आहूत करते हैं। नभचर पक्षी भी अग्नि का आह्वान करते हैं। वे अग्नि सहस्रों गौओं को घेर कर यज्ञ में आगमन करते हैं ॥ ५ ॥ मनुष्य और नहुष-वंश वाले पुरुष अग्नि का स्तोत्र करते हैं। अग्नि देवता गन्धर्वों के हितकारी वचनों को यज्ञ के लिए सुनते हैं। अग्नि का मार्ग घृत में निहित रहता है ॥ ६ ॥ मेधावी ऋतुओं ने अग्नि सम्बन्धी स्तोत्र की रचना की। हम भी उन महिमावान् अग्नि का स्तोत्र कर चुके हैं। हे अग्ने! महान् धन देते हुए, इस स्तोता की रक्षा करो ॥ ७ ॥ [१५]

सूक्त ८१

(ऋषिः—विश्वकर्मा भौवनः । देवता—विश्वकर्मा । छन्दः—त्रिष्टुप्)

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥१॥
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५॥
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७।१६॥

विश्वकर्मा हमारे पिता और होता है। आरम्भ में वे संसार का यज्ञ करके स्वयं अग्नि में प्रतिष्ठित हुए। स्वर्ग रूप धन को इच्छा करते हुए वे स्तोत्रादि से सम्पन्न होकर अपने निकटस्थ प्राणियों के सहित स्वयं भी अग्नि में समा गए ॥ १ ॥ सृष्टि के रचना काल में विश्वकर्मा किसके आश्रित थे? उन्होंने सृष्टि का कार्य किस प्रकार आरम्भ किया? विश्व के देखने वाले उन विश्वकर्मा ने किस स्थान पर आश्रय लिया और किस प्रकार पृथिवी तथा आकाश की रचना की? ॥ २ ॥ विश्वकर्मा के नेत्र, मुख, भुजा और चरण सब ओर हैं। वे अपने बाहु और चरणों से द्यावापृथिवी को प्रकट करते हैं। वे विश्वकर्मा एक हैं ॥ ३ ॥ विश्वकर्मा ने कौन से वन के किस वृक्ष द्वारा आकाश पृथिवी की रचना की? हे मेधावी जनो! तुम अपने ही मन से प्रश्न करो कि वे विश्वकर्मा किस पदार्थ पर खड़े होकर संसार को स्थिर करते हैं ॥ ४ ॥ हे विश्वकर्मा! तुम यज्ञ के ग्रहण करने वाले हो। तुम हमें यज्ञ के अवसर पर उत्तम, मध्यम, साधारण देह को बताओ। तुम अन्न से सम्पन्न होते हुए भी यज्ञ द्वारा अपने शरीर का पोषण करते हो ॥ ५ ॥ हे विश्वकर्मा! आकाश-पृथिवी में यज्ञ करके तुम अपने देह का पोषण करते हो। हमारे यज्ञ का विरोध करने वाले शत्रु चैतन्य न रहें और हमारे यज्ञ में विश्वकर्मा हमको कर्म फल के रूप में स्वर्गादि लोक प्राप्त करावें ॥ ६ ॥ अपने यज्ञ की रक्षा के लिए आज हम विश्वकर्मा को आहूत करते हैं। वे हमारे सब यज्ञों में उपस्थित हों। वे श्रेष्ठ कर्म वाले हमारी रक्षा में सावधान रहते हैं ॥ ७ ॥
[१६]

सूक्त ८२

(ऋषि:—विश्वकर्मा भौवनः। देवता—विश्वकर्मा। छन्दः—त्रिष्टुप्)

चक्षुष: पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ १ ॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥ २ ॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ३ ॥
त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४ ॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ ५ ॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ७ ॥ १७

शरीरों के रचने वाले और अत्यन्त धीर विश्वकर्मा ने जल को सर्व प्रथम रचा। फिर जल में इधर-उधर चलती हुई आकाश-पृथिवी की रचना की। फिर आकाश-पृथिवी के प्रदेशों को स्थिर किया। इसके पश्चात् आकाश-पृथिवी की ख्याति हुई ॥ १ ॥ विश्वकर्मा का मन महान् है। वे स्वयं महान् हैं। वे सर्वद्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ और सबके निर्माता हैं। वे सप्तर्षियों के दूरस्थ स्थान को भी देखते हैं। वहाँ वे अकेले ही हैं। उनके द्वारा विद्वानों की अन्न-कामना पूर्ण होती है ॥ २ ॥ संसार के उत्पत्तिकर्त्ता विश्वकर्मा हमारे उत्पन्न करने वाले तथा पालन करने वाले हैं। वे जगत् के सभी स्थानों के जानने वाले हैं। उन्होंने देवताओं का नामकरण किया है। सभी प्राणी उन एक मात्र देवता को प्राप्त करने के विषय में जिज्ञासु बनते हैं ॥ ३ ॥ जिन ऋषियों ने स्थावर जंगम संसार की उत्पत्ति पर धनादि दिया, उन्हीं पुरातन कालीन ऋषियों ने धन व्यय करने वाले स्तोता के समान यज्ञ कर्म का आरंभ किया था ॥ ४ ॥ वह आकाश-पृथिवी, राक्षसों और देवताओं को पार करके

अवस्थित है। ऐसा कौन-सा गर्भ जल में है जिसमें इन्द्रादि सब देवता परस्पर एकत्र होते हुए दिखाई पड़ते है ॥ ५ ॥ वही विश्वकर्मा जल द्वारा गर्भ में धारण किये गए। सब देवता गर्भ में ही मिलते हैं। अजकी जिस नाभि में ब्रह्माण्ड अवस्थित है, उस नाभि रूप ब्रह्माण्ड में विश्व के सभी प्राणी निवास करते हैं ॥ ६ ॥ तुम उन विश्वकर्मा को नहीं जानते, जिन्होंने समस्त प्राणियों की रचना की है। तुम्हारे हृदय ने अभी उन्हें भले प्रकार नहीं पहिचाना है। अज्ञान से दबे हुए मनुष्य विभिन्न प्रकार की बात करते हैं। वे अपने जीवन के निमित्त भोजन और स्तोत्र करते हैं। वे अपने स्वर्ग फल वाले कर्मों में लगे रहते हैं ॥ ७ ॥　　　　[१७]

सूक्त ८३

(ऋषि—मन्युस्तापसः। देवताः-मन्युः। छन्द-त्रिष्टुप्)

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १ ॥
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदा.।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥ २ ॥
अभीहि मन्यो तवसस्तवीयांतपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्व नः ॥ ३ ॥
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥
अभागः सन्प परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥
अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिवाव ॥ ७ ॥　१८

हे मन्यु देवता ! तुम वज्र और बाण के समान तीक्ष्ण क्रोध वाले हो। जो यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, वह ओज और बल का धारण करने वाला होता है। तुम महाबली हो, अतः तुम्हारी सहायता से हम अपने शत्रुओं को पराभूत करें ॥ १ ॥ मन्यु देवता हैं, वहीं जातवेद अग्नि और इन्द्र हैं। वही वरुण और होता हैं। सभी मनुष्य मन्यु की पूजा करते हैं। हे मन्यो ! हमारे पिता के सहयोग से तुम हमारी रक्षा करने वाले होओ ॥२॥ हे महाबली मन्यो ! यहाँ आगमन करो। मेरे पिता की सहायता लेकर शत्रुओं को नष्ट कर डालो। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले, वृत्र के हनन कर्त्ता हो। तुम हमारे निमित्त समस्त धनों को यहाँ लाओ ॥ ३ ॥ हे स्वयं उत्पन्न हुए मन्यो ! तुम शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ हो। शत्रुओं के आक्रमण को सहने वाले महाबली और तेजस्वी हो। अतः हमारे वीरों को भी तेजस्वी बनाओ ॥ ४ ॥ हे मन्यो ! तुम श्रेष्ठ ज्ञान वाले और महान् हो। मैं तुम्हारे यज्ञ का आयोजन न कर सकने के कारण तुम्हें नहीं पूज सका। तुम्हारे कर्म में प्रमाद करने के कारण मैं अत्यन्त लज्जित हूँ। तुम अपने स्वभाव के अनुसार मुझे सशक्त बनाने के लिए आगमन करो ॥ ५ ॥ हे मन्यो ! मैंने तुम्हारे समीप गमन किया है तुम मुझ पर अनुग्रह कर मेरे निकट प्रकट होओ। हे सर्व धारक, वज्रधारी, सहनशील मन्यो ! तुम मेरे पास बढ़ो और मुझे अपना मित्र समझो। तुम्हारी ऐसी कृपा को पाकर मैं राक्षसों को मारने में समर्थ हो सकूँगा ॥ ६ ॥ हे मन्यो ! मेरे पास आकर मेरे दक्षिण हस्त की ओर प्रतिष्ठित होओ। तब हम अपने शत्रुओं को मार सकेंगे। मैं तुम्हारे लिए श्रेष्ठ सोम रूप हव्य देता हूँ। फिर हम दोनों ही मिल कर मधुर सोमरस का पान करेंगे ॥ ७ ॥ [१८]

सूक्त ८४

(ऋषिः—मन्युस्तापसः । देवता—मन्युः । छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।

तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १ ॥

अग्निरिव मन्यो त्विषित. सहस्व सेनानीर्न सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ ३ ॥
एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥ ४ ॥
विजेषकृदिन्द्रइवानवब्रवो स्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥ ५ ॥
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ ६ ॥
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥१९

हे मन्यो ! मरुद्गण आदि संग्राम का नेतृत्व करने वाले देवता पुष्ट होकर तीक्ष्ण धार वाले आयुधों को ग्रहण कर और अग्नि के समान दाहक बन कर तुम्हारे साथ एक रथ पर चढ़ कर सहायता के लिए रण भूमि में प्रस्थान करें ॥ १ ॥ हे मन्यो ! तुम अग्नि के समान तेजस्वी होकर शत्रुओं का पराभव करो । तुम युद्ध में हमारे सेनापति होओ, इसलिए हम तुम्हें आहूत करते हैं । हमको बल प्रदान कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले बनाओ और उनका धन जीत कर हमें दे दो ॥ २ ॥ हे मन्यो ! हमारे प्रतिस्पर्द्धी शत्रु का नाश करो । उन्हें मारते काटते हुए उनका सामना करो । तुम इकले ही सब शत्रुओं को वशीभूत करते हो, क्योंकि तुम्हारे बल को रोकने का सामर्थ्य अन्य किसी में भी नहीं है ॥ ३ ॥ हे मन्यो ! तुम एकाकी हो। संग्राम के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित करो । तुम जब सहायता करोगे तब हमारा तेज कभी भी नष्ट नहीं होगा । हम विजय की कामना करते हुए सिंहनाद करते हैं और तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हे मन्यो ! तुम अनिंद्य हो। हम तुम्हारी प्रिय स्तुति करते हैं । तुम इन्द्र के समान ही, शत्रुओं को

जीवने वाले हो। तुम हमारे इस यज्ञ में रक्षाकारी होओ। तुम बल के उत्पन्न करने वाले हो और स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥ ५ ॥ हे रिपुहन मन्यो ! तुम स्वभाव से ही शत्रु-नाशक हो। तुम सदा श्रेष्ठ तेज को धारण किये रहते हो। हमारे संग्राम में तुम अपने कर्म से पुष्ट होओ। अनेक जन तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ६ ॥ वरुण और मन्यु प्राप्त और विजित धनों को हमें दें। उनकी कृपा से भयभीत और पराजित शत्रु कहीं जा छिपें ॥ ७ ॥ [१९]

सूक्त ८५ [सातवाँ अनुवाक]

(ऋषि:—सूर्या सावित्री । देवता—सोमः । सूर्याविवाहः। देवा, सौमार्कौ, चन्द्रमाः, नृणां विवाहमन्त्रा आशीः प्रायाः, वधूवासः संस्पर्शनिन्दा। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, बृहती)

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥
सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ३ ॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ४ ॥
यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ५ ॥ २०

देवताओं में प्रमुख ब्रह्मा ने पृथिवी को आकाश के आकर्षण में रोक लिया है। सूर्य ने स्वर्ग को स्थिर किया है। देवगण यज्ञाहुति के आश्रित रहते हैं। सोम स्वर्ग में स्थित है ॥ १ ॥ सोम के बल से इन्द्रादि देवता बलवान होते हैं। सोम के द्वारा ही पृथिवी महिमामयी हुई है। यह सोम

नक्षत्रों के समीप अवस्थित किया गया है ॥ २ ॥ जब वनस्पति रूप वाले सोम को पीसते हैं तब ऐसा लगता है जैसे सोम पी लिया हो । परन्तु ब्राह्मण जिसे यथार्थ सोम बताते हैं, उसे यज्ञ न करने वाला कोई पुरुष नहीं पी सकता ॥ ३ ॥ हे सोम ! स्तोतागण ! तुम्हें प्रकट रखते हैं । तुम प्रस्तर के शब्द को सुनते हो । कोई मनुष्य तुम्हें पी नहीं सकता ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम्हें पीने पर तुम भी बढ़ते हो । जैसे मास वर्ष का पोषण करते है, वैसे ही वायु सोम को पुष्ट करते हैं । दोनों ही समान रूप वाले हैं ॥ ५ ॥   [२०]

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥६॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षु रा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०।२१॥

जब सूर्या का विवाह हुआ, तब रैभी नाम की ऋचायें उसकी सखी बनीं । नाराशंसी नाम की ऋचायें उसकी सेविका हुईं और उसका श्रेष्ठ परिधान साम गान से सुसज्जित हुआ ॥ ६ ॥ जब सूर्या पति के घर में पहुँची तो वहाँ चैतन्य रूप चादर बना, नेत्र उबटन हुआ और आकाश पृथिवी कोश हुए ॥ ७ ॥ स्तोत्र रथ-चक्र के डन्डे हुए, कुरीर नामक छन्द रथ के आंतरिक भाग हुए, अग्नि आगे चलने वाले दूत हुए और अश्विद्वय उसके पति थे ॥ ८ ॥ जब सूर्य ने सूर्या का विवाह किया, तब सोम उसे वरण करना चाहते थे । इस पति कामा सूर्या के वर अश्विनीकुमार ही निश्चित किये गए

॥ ९ ॥ जब सूर्या पति-गृह को चली तब उसका मन ही शकट हुआ, आकाश उसका बना और सूर्य चन्द्र उसके रथ के वहन करने वाले हुए ॥ १० ॥
[२१]

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥ २२ ॥

ऋग्वेद और सामवेद में वर्णित वृषभ के समान सूर्य और चन्द्रमा उसके रथ को खींचने वाले बने । हे सूर्या ! रथ के दोनों चक्र तुम्हारे कान हुए और आकाश रथ का मार्ग बना ॥ ११ ॥ तुम्हारे गमन काल में रथ के दोनों चक्र नेत्र के समान उज्वल हुए । तब सूर्या अपने मन के समान रथ पर आरूढ़ हुई ॥ १२ ॥ पति-गृह की ओर गमन करते समय सूर्य ने उसे जो ओढ़नी दी थी, वह आगे चली । मघा नक्षत्र जब उदय हुआ तब विदाई में दी गईं गौएं हाँकी गईं और अर्जुनी में वह चादर रथ से ले जाई गई ॥ १३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम दोनों ने तीन चक्र वाले रथ पर आरोहण किया और सूर्या के विवाह की बात जान कर उससे विवाह किया तब सब देवताओं ने तुम्हारे कार्य का अनुमोदन किया । उस समय पूषा ने तुम्हें स्वीकार किया ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम वर रूप में सूर्या के समीप गए थे तब तुम्हारे रथ का चक्र कहाँ था ? तुम मार्ग को जानने की इच्छा से किस स्थान पर खड़े हुए थे ? ॥ १५ ॥ [२२]

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥
नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः । १९॥
सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०।२३॥

हे सविद्वय ! तुम्हारे कालानुसार चलने वाले दो चक्र प्रसिद्ध हैं और एक गोपनीय चक्र को मेधावी जन भले प्रकार जानते हैं ॥ १६ ॥ मित्रावरुण, सूर्या तथा सभी देवता प्राणियों के हितैषी हैं। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ यह दोनों बालक पूर्व पश्चिम में अपनी शक्ति से घूमते और क्रीड़ा करते हुए, यज्ञ में आगमन करते हैं। इनमें चन्द्रमा ऋतु का संचालन करते हैं और दूसरे सूर्य ऋतु को कल्पित करते हुए उदय अस्त को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ दिवस की सूचना देने वाले सूर्य नित्य प्रातः काल नवीन होकर उदित होते हैं। उनके आगमन पर देव-यागों की योजना होती है। चन्द्रमा दीर्घ आयु प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥ हे सूर्या ! तुम पति गृह को गमन करते समय श्रेष्ठ पलाश और शाल्मली वृक्ष के काष्ठ से निर्मित सुन्दर, सुवर्ण के समान उज्ज्वल और चक्र-युक्त रथ पर आरूढ़ होओ। तुम सोम के निमित्त सुख देने वाले अविनाशी स्थान में गमन करो ॥ २० ॥ [२३]

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज ॥२२॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तुदेवा ॥२३
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५।२४

हे विश्वावसो ! इस कन्या का पाणिग्रहण हो चुका है । अब तुम यहाँ से उठो । मैं इस स्तोत्र और नमस्कार के द्वारा तुम्हारा स्तव करता हूँ । यदि कोई अन्य कन्या विवाह-योग्य होगई हो तो उसे ही ग्रहण करने को गमन करो ॥२१॥ हे विश्वावसु ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हुआ पूजता हूँ । तुम यहाँ से उठो और किसी अन्य कन्या के पास जाकर उसे ग्रहण करो ॥२२॥ हे देवताओ ! जिन मार्गों से हमारे मित्र-सम्बन्धी कन्या के पिता के पास गमन करते हैं, उन मार्गों को काँटों से रहित एवं सरल करो । अर्यमा और भग हमें भले प्रकार पार करें । यह पति-पत्नि समान मति वाले होकर रहें ॥२३॥ हे कन्ये ! सूर्य ने तुम्हें जिस पाश से बाँधा था, उस वरुणपाश से मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ । जिस स्थान पर सत्कर्मों का वास है और सत्य का मार्ग ही जहाँ जाता है, उस सत्य रूप स्थान पर तुम्हें पति के साथ प्रतिष्ठित करता हूँ ॥२४॥ पितृकुल से कन्या को मैं पृथक् करता हूँ । मैं इसे पति गृह में भले प्रकार प्रतिष्ठित करता हूँ । हे इन्द्र ! यह कन्या सुन्दर भाग्य वाली और श्रेष्ठ पुत्र रूप सन्तान वाली हो ॥२५॥ [२४]

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एघन्ते अस्या ज्ञातय पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्येषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०।२५

हे सूर्या, पूषा तुम्हें हाथ में उठाकर ले जाँय । तब अश्विनीकुमार रथ में बैठाकर घर ले जाँय । वहाँ तुम श्रेष्ठ गृहिणी बनो, और पतिगृह में निवास करती हुई भृत्यादि पर शासन करो ॥२६॥ हे कन्ये ! पति गृह में पुत्र-प्रसवा होती हुई सुख पाओ । स्वामी से प्रीति स्थापित करो और वृद्धावस्था तक अपने घर पर शासन करने वाली रहो ॥२७॥ पाप देवता नीले-लाल हो रहे हैं । इस स्त्री पर कृत्या प्रेरित की जाती है । इस स्त्री के जातीय व्यक्ति प्रवृद्ध हो रहे हैं और इसका पति सांसारिक बन्धनों में बंधा हुआ है ॥२८॥ हे पति पत्नी, मैले वस्त्र को त्यागकर ब्राह्मणों को दान दो । कृत्या प्रस्थान कर गई । अब पति से पत्नी मिल रही है ॥२९॥ पत्नी के वस्त्र से पति अपने शरीर को ढके तो उस पर कृत्या का कोप होता है और सुन्दर शरीर मलीन हो जाता है ॥३०॥   [२५]

ये वध्वश्चन्द्रं वहतु यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५।२६

जो पाप ग्रह वर द्वारा वधू को प्राप्त हुए प्रसन्नतापद आदर को लेने की इच्छा करते हैं, यज्ञ-भाग पाने वाले देवता उनके मनोरथ को विफल कर दें ॥३१॥ इन पति-पत्नी के प्रति जो व्यक्ति शत्रु-भाव रखें, वे नष्ट होजाँय। इनके शत्रु दूर भागें। कल्याण के सामने अमंगल भी नाश को प्राप्त हो ॥३२॥ आशीर्वाद देने वाले जन इस वधू को देखें। यह मंगलमयी अपने पति की प्रियपात्री हो, ऐसा आशीर्वाद दें और फिर अपने-अपने गृहों को लौट जाँय ॥३३॥ यह वस्त्र व्यवहार करने योग्य नहीं है। यह मलीन, दूषित और विष से युक्त है। सूर्य को जानने वाला मेधावी ब्राह्मण इस वस्त्र को प्राप्त कर सकता है ॥ ३४ ॥ सूर्या का रूप कैसा है? इसका वस्त्र कहीं आगे, बीच में और कहीं सब ओर से फटा है। ब्रह्मा ही इसके वस्त्र को ठीक करने में समर्थ हैं ॥३५॥ [२६]

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यंत्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०।२७

हे कन्ये! तुझे सौभाग्यवती बनाने के लिए मैं तेरा पाणिग्रहण

करता हूँ। तुम मुझे स्वामी रूप से प्राप्त करती हुई वृद्धावस्था तक साथिनी रहना। भग, अर्यमा और पूषा देवताओं ने तुम्हें मुझे प्रदान किया है ॥३६॥ हे पूषन्! नारी को कल्याणमयी बनाकर प्रेरित करो तब हम उसके साथ सुखपूर्वक रहेंगे ॥३७॥ हे अग्ने! सूर्या को पहिले तुम्हारे ही पास ले जाते हैं। तुम उसे पति के हाथों में देते हो ॥३८॥ अग्नि ने उस कन्या को सौन्दर्य और सौभाग्य के निमित्त प्रदान किया है। उसका स्वामी शतायुष्य होगा ॥३९॥ हे नारी! तुम्हारा प्रथम पति सोम, द्वितीय गन्धर्व और तृतीय अग्नि हैं। यह मनुष्य तुम्हारा चतुर्थ पति है ॥४०॥ [२७]

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७।२८

यह स्त्री सोम द्वारा गन्धर्व को दी गई, गन्धर्व ने इसे अग्नि को दिया और अग्नि ने इसे धन और सन्तान से सम्पन्न करके मुझे

देदी ॥४१॥ हे वर वधु ! तुम समान प्रीति वाले होकर यहाँ निवास करो। विभिन्न प्रकार के भोजनों को प्राप्त करते हुए तुम, पुत्र-पौत्रों सहित प्रसन्नतापूर्वक सुख भोग करो ॥४२॥ प्रजा हमें अपत्यवान बनावें। अर्यमा हमें वृद्धावस्था तक साथ रहने वाले करें। हे वधु ! तुम कल्याणकारिणी होकर इस घर में रहो और सबका मंगल करो ॥४३॥ हे वधु ! तुम पति के लिए मंगल करने वाली होओ। तुम्हारा नेत्र शुभ दर्शन हो। तुम पशुओं को सुख देने वाली बनो। तुम्हारी सौंदर्य वृद्धि हो और मन सदा प्रसन्न रहे। तुम देवताओं की उपासिका और वीर-प्रसवा होओ ॥४४॥ हे इन्द्र ! तुम स्त्री को श्रेष्ठ पुत्र वाली और सौभाग्य से सम्पन्न बनाओ। यह दश पुत्रों की माता हो ॥४५॥ हे वधू ! तुम सास, श्वसुर, ननद, देवर आदि को वश में रखने वाली होओ ॥४६॥ जल, वायु ब्रह्मा, सरस्वती हम दोनों को एक करें। सभी देवता हमें समान प्रीति वाले बनावें ॥४७॥ [३८]

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

सूक्त ८६

(ऋषि—वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत्।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥१

मैंने स्तोताओं से सोम निष्पीडन के लिए कहा था। उन्होंने वृषाकपि का स्तोत्र किया, इन्द्र का नहीं किया। वृषाकपि मेरे मित्र होकर सोम से बढ़े हुए यज्ञ में सोम पीकर प्रसन्न हुए। तो भी मैं इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हूँ ॥१॥ हे इन्द्र! तुम अत्यन्त गमनशील होकर वृषाकपि के पास पहुँचते हो। तुम सोम पीने के लिए नहीं जाते। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! वृषाकपि ने तुम्हारा कौन-सा हित किया है, जिससे तुम उदारता पूर्वक उन्हें पोषक अन्न देते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! वृषाकपि के कान को कुक्कुर काटता है, तुम उसकी रक्षा करते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥ यजमानों ने जो घृत युक्त सामग्री मेरे लिए प्रस्तुत कर रखी थी उसे इस वृषाकपि ने अपवित्र कर दिया। मैं इन्द्राणी इस दुष्ट कर्म वाले को सुखी नहीं रहने देना चाहती। इसका सिर काट डालना चाहती हूँ। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥ [२]

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥ २

कोई अन्य नारी मुझसे अधिक सौभाग्यवती और पुत्रवती नहीं है। मुझसे बढ़ कर कोई स्त्री अपने स्वामी को सुख देने में समर्थ नहीं होती ॥६॥ हे माता! तुम सौभाग्यवती हो। तुम्हारे अङ्ग आश्चर्यजनक हो जाते

है। तुम पिता को प्रसन्न करो। इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्राणी! तुम सुन्दर अङ्गों वाली हो। वृषाकपि पर इस समय क्यों क्रोधित हो रही हो? इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ यह वृषाकपि हिंसक स्वभाव वाला है। यह मुझ पुत्र और पति वाली नारी से पति-विहीना और पुत्र-रहिता के समान व्यवहार कर रहा है। मुझ इन्द्र पत्नी के मरुद्गण सहायक हैं। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥ यज्ञ के अवसर पर पति और पुत्र वाली इन्द्राणी उसमें भाग लेती हैं। उन यज्ञ-संयोजिका की सभी पूजा करते हैं। इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हैं ॥ १० ॥ [२]

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥
उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

इन्द्राणी को मैंने सबसे अधिक सौभाग्यवती समझा है क्योंकि इसके पति को अन्य मरणशील पुरुषों के समान मरण प्राप्त नहीं होता। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्राणी! वृषाकपि मेरा हितैषी है, उसके बिना मैं प्रसन्न नहीं रहता। उसका ही हव्यादि पदार्थ देवताओं को प्राप्त होता है। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥ हे वृषाकपि की पत्नी! तुम धनवती, पुत्रवती श्रेष्ठ वधू हो। इन्द्र तुम्हारे श्रेष्ठ हव्य का भक्षण करने वाले हों। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥ इन्द्राणी द्वारा प्रेरित याज्ञिकों के यत्न से मैं

हृष्ट होता हूँ। अभिषवकर्त्ता याज्ञिक सोम से मेरी कुक्षियों को परिपूर्ण करते हैं। इन्द्र सब से श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! जैसे बैल तीक्ष्ण शब्द करता है, वैसे ही करो। शब्द करता हुआ दधि मन्थन तुम्हारे हृदय को सुखी करे। जिस सोम को इन्द्राणी निष्पन्न करती है, वह सोम भी कल्याणकारी हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥ [३]

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या
कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥

धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एषः स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा
पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामय-
द्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥ ४ ॥

वह मनुष्य शक्तिशाली और प्रभावित करने वाला नहीं हो सकता जो सदैव शिथिल सा बना रहता है। जो अवसर आते ही चैतन्य होकर कार्य को उद्यत होता है, वही सफल होता है ॥ १६ ॥ जो संघर्ष के समय निर्भय भाव से कार्य करने को उद्यत हो जाता है और विरोधियों को आज्ञा देकर उन पर भी शासन करने में समर्थ होता है, वही कृतकार्य होता है ॥१७॥ हे इन्द्र ! वृषाकपि, चोर को अपने लिए धन-सहित प्राप्त करें। यह खड्ग, चरु, काष्ठ-शकट को पावे। इन्द्र सब से अधिक श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ मैं अपने उपासकों को देखता हुआ और उनके शत्रुओं को भगाता हुआ यज्ञ में आगमन करता हूँ। सोमाभिषवकर्त्ता और हव्य-पाक करने वाले के सोम को मैं पान करता हूँ और मेधावी जन का द्रष्टा होता हूँ। इन्द्र सब से श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ हे वृषाकपि ! समीपस्थ घर में निवास करो। जल से हीन मरुभूमि और कृषि योग्य उर्वरा भूमि में कितने योजनों का अन्तर है ? इन्द्र सब से श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥ हे वृषाकपि ! पुनः आगमन करो। हम तुम्हारे लिए श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म करते हैं। जैसे स्वप्न को दूर कर देने वाले सूर्य अस्ताचल में गमन करते हैं, वैसे ही तुम भी अपने घर में लौट आओ। इन्द्र सब से श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ हे वृषाकपि और हे इन्द्र ! तुम मेरे गृह में आगमन करो। लोगों को आनन्द देने वाला वह मृग कहाँ चला गया ? इन्द्र सब से श्रेष्ठ हैं ॥ २२ ॥ मनु की पुत्री पर्शु ने बीस पुत्र उत्पन्न किये। उस मनु-पुत्री का मंगल हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥ [४]

सूक्त ८७

(ऋषिः—पायुः । देवता—अग्नी रक्षोहा । छन्दः—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।

शिशानो अग्नि: क्रतुभि: समिद्धः स नो
दिवा स रिष: पातु नक्तम् ॥ १ ॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेद समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो
वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥ २ ॥
उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं
धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥
यज्ञैरिषूः सन्नममानो अग्ने वाचा शल्यां अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो
बाहून्प्रति भङ्ध्येषाम् ॥ ४ ॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि
चिनोतु वृक्णम् ॥ ५ ॥ ५ ॥

अग्नि देवता राक्षसों को नष्ट करने वाले, बलवान और यजमानों के मित्र हैं। उन्हें मैं घृताहुति देता हूँ और अपने घर को गमन करता हूँ। अग्नि यजमानों के द्वारा प्रज्वलित होकर अपनी ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हैं। वे अग्नि हिंसक असुरों से हमारी दिन रात रक्षा करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञाता हो। अपने लौह-दंत रूप ज्वालाओं से राक्षसों को दग्ध करो। मांस भक्षी दैत्यों को मुख में रखते हुए, हिंसकों को ताड़ित करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम राक्षसों के दाहक हो। अपने दोनों ओर के दाँतों को तीक्ष्ण कर उन्हें राक्षसों में गड़ा दो। तुम अन्तरिक्ष में रहने वाले पिशाचों को अपने दाँतों से चबा डालो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर तीक्ष्ण बाणों की नोंक से राक्षसों के हृदयों को बींध डालो और उनकी भुजाओं को विचूर्णित करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! असुरों के चर्म को छेद कर अपने तेज रूप

वज्र से उनका वध करो। उनके अंगों को चीर डालो। मांस भक्षी पक्षी मांस भक्षण के लिए इनके देह पर टूट पड़ें ॥ ५ ॥ [५]

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ६ ॥
उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥ ९ ॥
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥ १० ॥ ६

हे अग्ने! तुम मेधावी हो। जो राक्षस, आकाश में वा पृथिवी के मार्ग में घूमता हो अथवा कहीं खड़ा हो, तुम उसे जहाँ कहीं देखो, तीक्ष्ण बाण से उसे छेद डालो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! आक्रमणकारी राक्षस के खड्ग से रक्षा करो। कच्चे मांस का भक्षण करने वाले दुष्टों को नष्ट करो। यह पक्षी उन राक्षसों का भक्षण करें ॥ ७ ॥ हे अग्ने! इस यज्ञ में कौन-सा राक्षस विघ्न उपस्थित करता है। तुम काष्ठ द्वारा प्रकट होकर उस राक्षस का वध करो। तुम सब मनुष्यों पर अनुग्रह की दृष्टि करो और राक्षस का संहार कर डालो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! हमारे यज्ञ की अपने तीक्ष्ण तेज द्वारा रक्षा करो और तुम्हें श्रेष्ठ धन के उपयुक्त करो। तुम राक्षसों की हिंसा करने वाले हो। राक्षस तुम्हें हिंसित न करें ॥ ९ ॥ हे अग्ने! मनुष्यों की हिंसा करने वाले इन राक्षसों को देखो। उनके तीन मस्तकों को छिन्न करो। उसके निकटस्थ राक्षस का भी वध करो। उसके तीन पाँवों को काट डालो ॥१०॥ [६]

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥ ११ ॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ १२ ॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१३॥
परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
पराचिर्षा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥ १४ ॥
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१५॥ ७

हे अग्ने ! जो राक्षस अपने असत् कर्म द्वारा सत्कर्मों को नष्ट करता है, उसे अपनी ज्वालाओं में तीन बार लपेट कर भस्म कर दो । तुम स्तोता के सामने ही ऐसा करो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! गर्जनशील दैत्य पर अपने तेज को प्रेरित करो । तुम अपने नखों से सन्त भक्षक दैत्यों को टटोलने वाले हो । तुम असत्य से सत्य को दबाने वाले उस राक्षस को अपने तेज से ही जला दो ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! परस्पर स्त्री-पुरुष झगड़ते और स्तोता कटु वाणी का प्रयोग करते हैं, तब मन में जो क्रोध उत्पन्न होता है उस क्रोध रूप बाण से राक्षसों के हृदयों को बींध डालो ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! अपने बल से राक्षस को पछाड़ो, अपने तेज से उसे बींध डालो । मनुष्यों के प्राणापहारक राक्षसों का वध करो, उन्हें तेज से भस्म करो ॥ १४ ॥ उस पापी दैत्य को अग्नि आदि देवता मार दें । हमारे शाप रूप वाक्य राक्षस के पास पहुँचें और बाण उसके मर्म को छेद डालें । वह राक्षस अग्नि में गिर पड़े ॥ १५ ॥ [७]

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥ १७ ॥
विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।

परेनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ १८ ॥
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१९॥
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥२०॥

हे अग्ने ! मनुष्य मांस के संग्राहक और पशु-मांस के संग्राहक राक्षस को बल हीन करो। अहिंस्य गौ के दूध का अपहरण करने वाले राक्षस के मस्तक को काट डालो ॥ १६ ॥ एक वर्ष तक गौ में जो रस संचित होता है, उसे राक्षस न पी सके। हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के देखने वाले हो। जो राक्षस उस अमृत रूप दूध का पान करने की इच्छा करे, उसके मर्म को अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से बींध डालो ॥ १७ ॥ गौओं का दूध राक्षसों के लिए विष के समान हो जाय। हे अग्ने ! अदिति के सामने उनका बलिदान करो। तृण, लता, वनस्पति आदि के त्याज्य अंश को यह राक्षस ग्रहण कर पावें ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! आने वाले राक्षसों को मारो। वे तुम्हें संग्राम में हरा न सकें। अपक्व मांस भक्षी राक्षसों का समूल नाश करो। वे तुम्हारे दिव्यास्त्रों से बचकर न चले जाँय ॥ १९ ॥ हे अग्ने ! चारों दिशाओं में हमारी रक्षा करो। तुम्हारी श्रेष्ठ, अविनाशी और उत्तप्त ज्वालाएं राक्षसों को जला दें ॥ २० ॥ [८]

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥ २१ ॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २२ ॥
विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥ २३ ॥
प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः ॥ २४ ॥

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं विरुज वीर्यम् ॥ २५ ॥ ६

हे अग्ने ! तुम कर्म कुशल और तेजस्वी हो। अतः हमको चारों दिशाओं में यत्न पूर्वक रक्षित करो । मैं तुम्हारा सखा हूँ। मुझे दीर्घजीवी बनाओ। हे अविनाशी अग्ने ! हम मरणशील मनुष्यों के रक्षक बनो ॥ २१ ॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम राक्षसों को नित्य प्रति मारते हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! ध्वंसात्मक कार्यकारी राक्षसों को अपने विस्तृत तेज से भस्म करो। उन्हें तप्त खड्ग से पूर्णतया जलाकर राख कर दो ॥ २३ ॥ कहाँ क्या हो रहा है ! यह देखने वाले राक्षसों को भस्म करो। तुम्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता । तुम चैतन्य होओ। मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! राक्षसों के तेज को अपने प्रचण्ड तेज से नष्ट करो। उनको बल वीर्य हीन कर डालो ॥ २५ ॥ [६]

सूक्त ८८

(ऋषि—मूर्धन्वानाङ्गिरसो वामदेव्यो वा । देवता—सूर्यवैश्वानरौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥ १ ॥
गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥ २ ॥
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ३ ॥
यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥ ४ ॥
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५॥ १०

देवताओं द्वारा सेवन किया जाने वाला, सदा नवीन, पान-योग्य सोम रस आकाश को छूने वाले यज्ञाग्नि में होमा गया है। उसी सोम को उत्पन्न करने, परिपूर्ण करने और धारण करने के निमित्त कल्याणकारी अग्नि की देवगण वृद्धि करते हैं ॥ १ ॥ अन्धकार में लोक समा जाते हैं। वह उन्हें छुपा लेता है। अग्नि के प्रकट होते ही सब प्रकट हो जाते हैं। आकाश, जल, वृक्ष और देवगण आदि सब प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ यज्ञ-भाग पाने वाले देवताओं की प्रेरणा से मैं जरा रहित महान् अग्नि का पूजन करता हूँ। इन अग्नि ने आकाश-पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण किया है ॥ ३ ॥ जो वैश्वानर अग्नि मुख्य होता बनकर देवताओं द्वारा सेवित हुए और जिन्हें कामना वाले यजमान घृताहुति अर्पित करते हैं, उन अग्नि ने स्थावर जंगम रूप विश्व की उत्पत्ति की ॥ ४ ॥ हे अग्ने! तुम ज्ञानी हो। तुम तीनों लोकों के शीर्ष स्थान स्वर्ग में सूर्य के साथ निवास करते हो। तुम आकाश-पृथिवी के परिपूर्ण करने वाले और यज्ञ के पात्र हो। हम तुम्हें श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ [१०]

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥ ६ ॥

दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥ ७ ॥

सूक्तवाकं प्रथमादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥ ८ ॥

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥ ९ ॥

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१०॥ ११

वह अग्नि रात्रि के समय सब प्राणियों के शीर्ष रूप होते हैं और

प्रातःकाल सूर्य रूप से प्रकट होते हैं । यह यज्ञ-कर्म का सम्पादन करने वाले देवताओं की प्रज्ञा कहे जाते हैं । यह सभी स्थानों में द्रुत गति से विचरण करते हैं ॥ ६ ॥ जिन अग्नि ने विशिष्ट दीप्ति से युक्त होकर श्रेष्ठ रूप धारण कर स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर शोभा प्राप्त की, उन अग्नि के शरीर की सब देवता रक्षा करते हैं । उन देवताओं ने अग्नि के निमित्त हव्य प्रदान किया ॥ ७ ॥ पहिले आकाश-पृथिवी का निरूपण करने वाले देवता अग्नि को प्रकट करते हैं । वही देवता हविरन्न के भी उत्पादक हैं । देवताओं के यजनीय अग्नि उनके शरीर की रक्षा भी करते हैं । आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष उन अग्नि को भले प्रकार जानते हैं ॥ ८ ॥ देवताओं द्वारा उत्पन्न किये जिन अग्नि में, सर्वमेध यज्ञ में, सब पदार्थों की आहुति दी जाती है, वे अग्नि सरल गमन वाले होकर आकाश-पृथिवी को अपनी ज्वाला से तप्त करने वाले हो गए ॥ ९ ॥ देवताओं की स्तुति से उत्पन्न होने वाले अग्नि ने आकाश पृथिवी को परिपूर्ण किया । उन सुखकारी अग्नि को उन्होंने त्रिगुणात्मक रूप से उत्पन्न किया । वे अग्नि सब औषधियों को परिष्कृत रूप में लाते हैं ॥ १० ॥   [११]

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥ ११ ॥
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२॥
वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥ १३ ॥
वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥ १४ ॥
द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५॥ १२

जब अग्नि और सूर्य की यज्ञीय देवताओं ने प्रतिष्ठा की, तब वे दोनों एक रूप होकर घूमने लगे। उस समय सभी प्राणियों ने उनके दर्शन किए ॥ ११ ॥ अग्नि मनुष्यों का हित करने वाले हैं। देवताओं ने इन्हें विश्व की ध्वजा रूप माना है। वे विशिष्ट प्रकाश वाले प्रभात को विस्तार देते हैं और अपनी ज्वालाओं से सम्पूर्ण अन्धकार को दूर करते हैं ॥ १२ ॥ यज्ञ के पात्र और मेधावान देवताओं ने सूर्य रूप से अग्नि को प्रकट किया। जब वे अग्नि महान् एवं स्थूल होते हैं तब वे दीर्घ काल से आकाश में रहने वाले नक्षत्रों की आभा हीन कर देते हैं ॥ १३ ॥ वे अग्नि जगत का हित करने वाले, सतत तेजस्वी और क्रान्तप्रज्ञ हैं। हम उनकी श्रेष्ठ मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हैं। वे अपनी महिमा से ही आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण करते हुए नीचे और ऊपर प्रदीप्त होते हैं ॥ १४ ॥ मैंने पितरों, देवताओं और मनुष्यों के दो मार्गों के सम्बन्ध में सुना है। यह सब जगत आगे बढ़ता हुआ उन्हीं मार्गों पर चलता है ॥ १५ ॥ [१२]

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ्विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः ॥१६॥

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७॥

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥१८॥

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥ १९ ॥ १३ ॥

सूर्य के शीर्ष स्थान से उत्पन्न अग्नि स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं। उनके विचरण काल में आकाश-पृथिवी उनकी रक्षा करती हैं। वे अपने रक्षण-कर्म में कभी उदासीन नहीं होते और प्रकाशमान होते हुए सुख पूर्वक संसार में रहते हैं ॥ १६ ॥ जब पार्थिव और माध्यमिक अग्नि यज्ञ-ज्ञान पर

विवाद करने लगते हैं, तब ऋत्विगगण यज्ञ करने लगते हैं। परन्तु उनके विवाद का निर्णय करने में समर्थ कोई नहीं है ॥ १७ ॥ हे पितरो ! मैं तुमसे तर्क नहीं करता, केवल जिज्ञासा ही करता हूँ कि सूर्य, अग्नि, उषाएं और जल की अधिष्ठात्री देवियाँ कितनी-कितनी हैं ॥ १८ ॥ हे वायो ! रात्रि जब तक उषा का मुख नहीं खोल देती, तब तक पृथिवी पर निवास करने वाले अग्नि यज्ञ के समीप पहुँच कर स्थान प्राप्त करते हैं, क्योंकि अग्नि ही स्तुति करने वाले हैं और वही होता हैं ॥ १६ ॥   [१३]

सूक्त ८६

(ऋषि—रेणु । देवता—इन्द्रः, इन्द्रसोमौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥१॥
स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥२॥
समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥३॥
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥४॥
आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५।१४॥

हे स्तुति करने वालो ! श्रेष्ठ नेतृत्व वाले इन्द्र की स्तुति करो। इनका तेज सब के तेज को फीका कर देता है। वे मनुष्यों का पालन करने वाले हैं। वे समुद्र से भी विशाल और समस्त संसार को अपने तेज से भर देने में समर्थ हैं ॥ १० ॥ जैसे सारथि के द्वारा चक्र वाला रथ घूमता है, वैसे ही, इन्द्र अपने तेज को सब ओर घुमाते हैं। घोर अन्धकार जब सृष्टि पर अपना अधिकार जमाता है, तब इन्द्र उसे अपनी दीप्ति से सर्वथा दूर कर देते हैं

॥ २ ॥ हे स्तोताओ ! तुम मेरे साथी होकर श्रेष्ठ, नवीन और उपमा रहित स्तोत्र को उच्चारित करो। क्योंकि वे इन्द्र स्तुतियों को प्राप्त करने की कामना करते और शत्रुओं को देखते हैं। वे अपने मित्रों की अनिष्ट कामना नहीं करते ॥३॥ धुरी जैसे चक्रों को चलाती है, वैसे ही इन्द्र ने अपने कर्मों के द्वारा आकाश-पृथिवी को आश्रय दिया है। उन इन्द्र की निर्लेप भाव से स्तुति की गई है और आकाश के शीर्ष स्थान मे मैं जल लेकर आया हूँ ॥४॥ जो सोम शत्रुओं को अपने बल से कम्पित करते हैं, जो शीघ्र ही प्रहार करने वाले हैं, जो शस्त्रास्त्र धारण करने वाले को गति प्रदान करते हैं और जो पान किये जाने पर तेज उत्पन्न करते हैं, उन्हीं सोमों के द्वारा वनों की वृद्धि होती है। परन्तु वे इन्द्र की समानता करने में समर्थ नहीं हैं। क्योंकि इन्द्र को कोई अपने से छोटा नहीं बना सकता ॥५॥ [१४]

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥६
जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७
त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९
इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१०॥१५

इन्द्र की समानता आकाश-पृथिवी, अन्तरिक्ष, मरुस्थल और पर्वत आदि भी करने में समर्थ नहीं हैं। उन्हीं इन्द्र के लिए सोम-रस निष्पन्न होता है। जब वह शत्रुओं पर क्रोध करते हैं, तब वे उनके सब अस्थिर और अचल पदार्थों को ध्वस्त करते और उनका संहार कर डालते हैं ॥ ६ ॥

जंगल को जैसे कुल्हाड़ा काट देता है, वैसे ही इन्द्र ने वृत्र को काट डाला और शत्रु के नगर को नष्ट कर दिया। उन्होंने अपक्व घट के समान मेघ को तोड़कर वर्षा के जल से नदियों के लिए मार्ग बनाया। इन्द्र ने अपने सहायक मरुद्गण के सहित जल को हमारे अभिमुख कराया ॥७॥ हे इन्द्र! जैसे फरसे से गाँठें काटी जाती हैं, वैसे ही तुम स्तुति करने वालों के उपद्रवों को काटते हो। तुम ही स्तोताओं को ऋण से छुड़ाते हो। जो पुरुष मित्रावरुण के कर्म में बाधा उत्पन्न करते हैं, उन्हें वीर इन्द्र नष्ट कर डालते हैं ॥८॥ जो मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुद्गण से बैर करते हैं, उन्हें हे इन्द्र! तुम मारने को उद्यत होओ और अपने शब्दवान वज्र को तीक्ष्ण करो ॥९॥ स्वर्ग, पृथिवी, पर्वत, जल आदि के स्वामी इन्द्र हैं। मेधावी और वीर पुरुष इन्द्र को ही अपना अधिपति मानते हैं। नवीन वस्तुओं की प्राप्ति और प्राप्त वस्तुओं की रक्षा के लिए ही इन्द्र की स्तुति की जाती हैं ॥१०॥   [१२]

प्राक्तुभ्य इन्द्र. प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः॥११
प्र शोशुचत्या उषसा न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२
अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३
कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४
शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥१५

जल से सम्पन्न समुद्र, अन्तरिक्ष, वायु, दिवस, रात्रि, पृथिवी की दिशाएं, नदी और मनुष्य इन सभी से इन्द्र महान् हैं। इन्द्र ने अपनी

महिमा से सभी को व्याप्त किया हुआ है ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र अविनश्वर है। वह ज्योतिमती उषा की ध्वजा के समान शत्रुओं पर पतित हो। आकाश से पतित हुआ वज्र जैसे वृक्षादि को नष्ट कर देता है, वैसे ही तुम अपने तीक्ष्ण और गर्जनशील वज्र से हिंसाकारी शत्रुओं को विदीर्ण करो ॥१२॥ इन्द्र के उत्पन्न होते ही आकाश-पृथिवी, पर्वत, जंगल, वनस्पति और मास परस्पर मिलकर उनके पीछे-पीछे चले ॥१३॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने जिस आयुध को फेंक कर उस दुष्ट असुर को मार दिया था, तुम्हारा वह आयुध फेंकने योग्य नहीं है। जैसे वध स्थान में पशुओं का वध किया जाता है, वैसे तुम्हारे आयुध से आहत होकर दैत्यगण भूमिगत होकर शयन करते हैं ॥१४॥ जिन राक्षस शत्रुओं ने हमें घेरकर अत्यन्त पीड़ित किया, वे इन्द्र के प्रभाव से अन्धकूप में पतित हों। चाँदनी रात्रि भी उनके लिए पूर्ण अन्धकार वाली होजाय ॥१५॥ [४]

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६
एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१८।१९

हे इन्द्र ! यजमान तुम्हारे ही निमित्त इन अनेक यज्ञों को करते हैं। स्तुति करने वालों के स्तोत्र सुनते हुए तुम प्रसन्न होते हो। जो तुम्हें आहूत करें उन्हें आशीर्वाद दो और पूजा करने वालों के अनुकूल होते हुए उनके समीप पहुँचो ॥१६॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति द्वारा रक्षित होते हैं। हम तुमसे सम्बन्धित नवीन और श्रेष्ठ स्तोत्रों को प्राप्त करें। हम विश्वामित्र के वंशज तुम्हारी स्तुति द्वारा विभिन्न अन्न प्राप्त करें ॥१७॥ युद्ध जीतने पर जन धन आदि का वितरण होता है, तब वही हमारी अध्यक्षता करते हैं। रणक्षेत्र में विशाल रूप बनाकर वे शत्रुओं का वध करते हैं। वे

वृत्रों को मार कर उनका धन प्राप्त करते हैं । ऐसे उन इन्द्र का हम आह्वान करते हैं ॥१८॥ [१७]

सूक्त ९०

(ऋषिः—नारायणः । देवता—पुरुषः छन्दः—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥१७

सहस्र मस्तक और सहस्र चक्षुओं वाले विराट् पुरुष के चरण भी अनन्त हैं । वे पृथिवी को सब ओर से व्याप्त करके और दस अंगुलियों के बराबर बढ़कर अवस्थित हैं ॥१॥ भूतकाल और भविष्यत् काल यह सब पुरुष रूप ही हैं । प्राणियों के भोग के लिए अपनी कारणावस्था को त्यागकर जगदावस्था पाने के कारण वे दिव्यता से सम्पन्न हैं ॥२॥ अपनी महिमा से भी महान् ईश्वर की महिमा यह सम्पूर्ण जगत ही है । यह ब्रह्माण्ड इनका एक पग मात्र है तथा इनके तीन पद स्वर्गलोक में हैं ॥३॥ तीन पद वाले पुरुष स्वर्ग में उठे । उनका एक पद पृथिवी पर रहा । फिर वे भक्षण करने वाले और भक्षण न करने वाले प्राणियों में अनेक रूपों से व्याप्त हुए ॥४॥ आदि पुरुष से विराट की उत्पत्ति हुई और

ब्रह्माण्ड रूप देह के आश्रय में प्राणरूप पुरुष प्रकट हुए। वे देहधारी मनुष्य देवता आदि हुए। उन्होंने पृथिवी की रचना की और प्राणधारण करने के लिए देहों की भी रचना की ॥५॥ [१७]

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः समानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०।१८

जब पुरुष रूप हार्दिक हव्य द्वारा देवताओं ने मानसिक यज्ञ किया, तब यज्ञ में काष्ठ ही ग्रीष्म ऋतु हुई, वसन्त ऋतु घृत हुआ और हव्यरूपी शरद ऋतु हुई ॥६॥ सबसे प्रथम जो उत्पन्न हुए हैं, मानस यज्ञ में उन्हीं की हवि दी गई। फिर उन्हीं पुरुषों की प्रेरणा से देवताओं ने और ऋषियों ने यज्ञानुष्ठान का आयोजन किया ॥७॥जिस यज्ञ में सर्वात्मा रूप पुरुष को हवि दी जाती है, उसी मानस यज्ञ के द्वारा दधि युक्त घृतादि की उत्पत्ति हुई। उससे वायु देवता सम्बन्धी वन्य पशु और ग्राम्य पशुओं की सृष्टि हुई॥८॥ उन सर्वात्मक पुरुष के यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद की उत्पत्ति हुई। उससे यजुर्वेद की तथा गायत्री आदि छन्दों की भी उत्पत्ति हुई ॥९॥ उसी यज्ञ से अश्व तथा अन्य पशु उत्पन्न हुए। गौ, बकरा, भेड़ भी उसी से प्रकट हुए ॥१०॥ [१८]

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं कमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६।१८

विराट् पुरुष कितने प्रकारों से उत्पन्न हुए । उनके हाथ, पाँव, उरु और मुखादि कौन हुए ॥११॥ इनका मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, जंघाएं वैश्य और चरण शूद्र हुए ॥१२॥ इनके मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्राग्नि और प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई ॥१३॥ इनके सिर से स्वर्ग, नाभि से अंतरिक्ष और चरणों से पृथिवी उत्पन्न हुई। श्रोत्र से लोक और दिशाओं का निर्माण हुआ ॥१४॥ प्रजापति के प्राण रूप देवताओं ने पुरुष को मानसिक यज्ञ के अनुष्ठान काल में वरण किया। उस समय सात परिधियाँ तथा इक्कीस समिधाओं की रचना हुई ॥१५॥ देवताओं ने मानसिक यज्ञ में जो विराट् पुरुष का पूजन किया, उससे संसार के गुण-धर्मों के धारणकर्त्ता धर्म उत्पन्न हुए। जिस स्वर्ग में देवगण निवास करते हैं उस स्वर्ग को याज्ञिक सन्तजन प्राप्त करते हैं ॥१६॥

सूक्त ६१ [आठवाँ अनुवाक]

(ऋषि:—अरुणो वैतहव्य: । देवता—अग्नि: । छन्द:—जगती, त्रिष्टुप्)

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१॥
स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनञ्जनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो विशंविशम् ॥२॥
सुदक्षो दक्षै: क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कवि: काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यत: ॥३॥
प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासद: ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपस: सूर्यस्येव रश्मय: ॥ ४ ॥
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतव: ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥५॥ २०

हे अग्ने ! तुम दान की कामना करते हुए उत्तर वेदी पर विराजमान होते और अन्न प्राप्ति की इच्छा से हविरन्न के होता बनते हो। स्तुति करने वाले पुरुष चैतन्य होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं। मैत्री की कामना से अग्नि भले प्रकार प्रदीप्त होते हैं। वे सुन्दर वर्ण वाले, वरण करने योग्य, व्यापक, प्रकाशवान तथा उपासकों के श्रेष्ठ सखा हैं ॥ १ ॥ अग्नि यजमानों के घरों में अथवा जङ्गलों में निवास करते हैं। वे श्रेष्ठ अतिथि और मनुष्यों का हित करने वाले हैं। वे सब प्रजाओं के घर में विराजमान होते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम बलों से भी अधिक बल वाले हो। तुम अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा मेधावी हो। तुम सबके जानने वाले तथा धनों की स्थापना करने वाले हो। जिन धनों को आकाश पृथिवी बढ़ाती हैं, तुम उनके अधिपति हो। तुम सदा एकाकी ही रहते हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे लिए जो घृत युक्त स्थान यज्ञ वेदी पर बनाया गया है, उसे पहिचान कर उस पर प्रतिष्ठित

होओ। तुम्हारी ज्वालाऐं सूर्य की आभा के समान प्रकाश देने वाली होती हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जल की वृष्टि करने वाले मेघ से तुम्हारी अद्भुत दीप्ति प्रकट होती है। विद्युत की आभायें भी प्रकाश के समान देखी जाती हैं। उस समय तुम वहाँ से निकल कर काष्ठ की खोज करते हो। क्योंकि काष्ठ ही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ अन्न है ॥ ५ ॥ — [२०]

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६॥

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक् शर्धास्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७॥

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥८॥

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥९॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१०॥ २१

औषधियाँ गर्भ रूप से अग्नि को धारण करतीं और मातृभूत जल उन्हें उत्पन्न करता है। वन की लतायें उन्हें गर्भ में रखती हुई समान भाव से उत्पन्न करती हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! वायु तुम्हें कम्पायमान करता हुआ चलाता है। तुम श्रेष्ठ वनस्पतियों में निवास करते हो। जब तुम दग्ध करना चाहते हो, तब रथ पर चढ़े वीरों के समान तुम्हारी ज्वालायें पृथक्-पृथक् होती हुई अपना बल दिखाती हैं ॥ ७ ॥ ज्ञानवान अग्नि उपासकों को बुद्धि देते हैं। वे यज्ञ में सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, वे यज्ञ के सम्पादनकर्त्ता और महान् हैं। हवि न्यून हो या अधिक, वे उसे सदा स्वीकार करते और प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! यज्ञकर्त्ता यजमान तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा करते हुए जब तुम्हें ही होता बनाते हैं, तब देवताओं के उपासक कुश को काट

कर लाये और तुम्हारे निमित्त हव्य प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! उस समय तुम ही होता और पोता का कार्य करते हो। यज्ञ करने वाले के लिए तुम ही नेष्टा हो। तुम ही प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा बनते हो। तथा तुम ही हमारे गृह के स्वामी रूप से पूजित होते हो ॥ १० ॥ [२१]

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२॥

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५॥ [२२]

हे अग्ने ! तुम्हें अविनाशी मानकर जो पुरुष समिधा आदि प्रदान करते हैं, तुम उनके होता बनते हो। उसके निमित्त दूत होते हुए देवताओं के पास जाते और उन्हें बुलाकर यज्ञ करते हो। उस समय तुम ही अध्वर्यु होते हो ॥ ११ ॥ सब वेद वाणी रूप स्तोत्र और उपासना आदि अग्नि के निमित्त ही किये जाते हैं। वे अग्नि वास देने वाले तथा ज्ञानी हैं। अर्थ की कामना से सब स्तोत्र उनके आश्रित होते हैं। इन स्तोत्रों के बढ़ने पर अग्नि प्रसन्न होते हैं और उपासकों की श्री वृद्धि करते हैं ॥ १२ ॥ स्तुतियों के चाहने वाले पुरातन अग्नियों के निमित्त मैं नितान्त अभिनव स्तोत्र का उच्चारण करता हूँ। वे हमारी स्तुति को सुनें। जैसे सौभाग्यवती नारी सुन्दर वस्त्रालङ्कारों में सुसज्जित होती है, वैसे ही मैं अग्नि का स्पर्श करता हुआ सुशोभित होता हूँ ॥ १३ ॥ यज्ञ में जिस अग्नि के लिए हव्य दिया जाता है,

जो अग्नि जलपान करते और सोम को ग्रहण करते हैं तथा जो यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, उन अग्नि के निमित्त मैं सुन्दर और मङ्गलमय स्तोत्र की रचना करता हूँ ॥ १४ ॥ चमस में जैसे सोम को रखते हैं, स्रुक में जैसे घृत को रखते हैं, वैसे ही हे अग्ने ! मैं तुम्हारे मुख में पुरोडाश, हव्यादि रखता हूँ। तुम मुझ पर प्रसन्न होकर श्रेष्ठ पुत्र, पौत्र, अन्न, धन आदि प्रदान कर यशस्वी बनाओ ॥ १५ ॥ [२२]

सूक्त ९२

(ऋषि—शार्यातो मानवः। देवता—विश्वेदेवा.। छन्द—जगती)

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद् वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१॥
इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२॥
बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३॥
ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्यरमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४॥
प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५॥ २३

हे देवताओ ! अग्नि मनुष्यों के स्वामी, यज्ञ के नेता, रात्रि में अतिथि और विभिन्न तेज रूप धनों से सम्पन्न हैं। तुम उनकी परिचर्या करो। वे हरे काष्ठों में प्रविष्ट होने वाले तथा शुष्क काष्ठों को भस्म करने वाले हैं। वे कामनाओं के वर्षक, यज्ञ-योग्य, ध्वजा रूप तथा आकाश में शयन करने वाले हैं ॥ १ ॥ अग्नि धर्म के धारण करने वाले और प्राणियों के रक्षक हैं। वे वायु के पुत्र और श्रेष्ठ पुरोहित हैं। उषाऐं सूर्य के समान ही उनका स्पर्श करने वाली हैं। उन्हीं अग्नि को मनुष्यों ने यज्ञ का साधन

बनाया ॥ २ ॥ जिस मार्ग को अग्नि दिखाते हैं वही मार्ग सत्य है । वे अग्नि हमारे हव्य का भक्षण करें । जब उनकी बलवती ज्वालाएं तीक्ष्ण होती हैं तब देवताओं की ओर गमन करती हैं ॥ ३ ॥ विस्तृत आकाश, व्यापक अन्तरिक्ष, असीमित पृथिवी इन यज्ञ में प्रकट अग्नि को प्रणाम करते हैं । मित्र, वरुण, इन्द्र, भग, सूर्य आदि देवता प्रकट हुए हैं ॥ ४ ॥ वेगवान् मरुद्गण की सहायता से नदियाँ प्रवाहित होती हुई पृथिवी को आच्छादित करती हैं । सब ओर जाने वाले इन्द्र मरुद्गण की सहायता से व्योम में गर्जन करते हुए अत्यन्त वेग से जल-वृष्टि करते हैं ॥ ५ ॥ [२३]

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥ ६ ॥
इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥ ७ ॥
सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८॥
स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९॥
ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१०॥२४

जब मरुद्गण कर्म में लगते हैं तब विश्व को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं । वे मेघ को आश्रय देने वाले और श्येन के समान हैं । वरुण, मित्र, अर्यमा और मरुद्गण सहित इन्द्र इन सब वालों के देखने वाले हैं ॥ ६ ॥ स्तुतिकर्त्ता यजमान इन्द्र से रक्षा और सूर्य से चक्षु प्राप्त करते हैं । जो उपासक इन्द्र का भले प्रकार पूजन करते हैं वे इन्द्र के वज्र की सहायता पाते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र के भय से भीत हुए सूर्य अपने अश्वों को चालित करते और गमन-काल में सबको प्रसन्न करते हैं । इन्द्र भयंकर जल-वृष्टि करने में समर्थ हैं । आकाश में गर्जन करते रहते हैं । शत्रुओं का पराभव करने वाला

यज्ञ का घोष इन्द्र के भय से नित्य उत्पन्न होता रहता है। ऐसे इन इन्द्र से कौन भयभीत नहीं होता ॥ ८ ॥ हे स्तोताओ ! उन्हीं इन्द्र रूप रुद्र को प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति करो । वे अश्वारोही मरुद्गण की सहायता से जल की वृष्टि करते हुए कल्याणकारी होते हैं । वे जब शत्रुओं का संहार करते हैं तब उनके यश का विस्तार होता है ॥६॥ सोम की इच्छा करने वाले देवताओं तथा बृहस्पति ने प्राणियों के पोषण के निमित्त अन्न एकत्र किया है। सर्वप्रथम अपने यज्ञ के द्वारा ऋषि अथर्वा ने देवताओं को तृप्त किया । देवगण और भृगुवंशी ऋषि अपने बल को करके यज्ञ को जानते हुए यज्ञ-स्थान में पहुँचे ॥ १० ॥   [२४]

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतमा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११॥
उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ॥१२
प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ॥१३
विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ॥१४॥
रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५॥२५

नराशंस नामक यज्ञानुष्ठान में चार अग्नियों की स्थापना हुई। यम, अदिति, धनदाता त्वष्टादेव, जल-वर्षक आकाश पृथिवी, रुद्र-पत्नी, ऋभुगण, मरुद्गण और विष्णु ने इस यज्ञ में स्तुतियों को प्राप्त किया ॥ ११ ॥ फला-भिलाषी होकर हम जिन महान् स्तोत्रों को करते हैं, उन्हें यज्ञ के अवसर पर, आकाश में निवास करने वाले अहिर्बुध्न्य अवश्य श्रवण करें। आकाश में विचरण करने वाले हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम हमारी इस स्तुति को हृदय से श्रवण करो ॥ १२ ॥ पूषा देवता सब देवताओं के शुभचिन्तक और जल

के वंशज हैं । वे हमारे पशुओं का पोषण करें । यज्ञ कर्म के निमित्त वायु भी हमारे रक्षक हों । उन आत्म-स्वरूप वायु की धन-लाभ के निमित्त स्तुति करो । हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा आह्वान कल्याणकारी होता है । तुम पथ पर चलते हुए हमारी श्रेष्ठ स्तुतियों को श्रवण करो ॥ १३ ॥ जो हमारे स्वामी होकर सम्पूर्ण प्राणियों को अभय प्रदान करते हैं और जो अपने यश को अपने कर्म द्वारा प्राप्त करते हैं हम उनकी स्तुति करते हैं । अविचलित भाव वाली अदिति की, देवताओं की पत्नियों और चन्द्रमा के सहित हम स्तुति करते हैं । वे सब प्राणियों पर कृपा करने वाले हैं ॥ १४ ॥ अंगिरा ऋषि बड़े हैं । उन्होंने इस यज्ञ में देवताओं की स्तुति की है । ऊपर उठते हुए पाषाण यज्ञ में निष्पीडित सोम को उपस्थित करते हैं । सोम पान द्वारा ही इन्द्र हृष्ट हुए और उनके वज्र ने जल वृष्टि की ॥ १५ ॥　　[२१]

सूक्त ९३

(ऋषिः—तान्वः पार्थ्यः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्दः—पङ्क्तिः, अनुष्टुप्, बृहती)

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥ १ ॥
यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥ २ ॥
विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः ।
विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥ ३ ॥
ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥ ४ ॥
उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥ ५ ॥ २६

हे आकाश-पृथिवी ! अत्यन्त विस्तार वाली होकर तुम हमारे घर

में कल्याणमती नारी के समान आगमन करो । तुम अपने रक्षण साधनों द्वारा शत्रु से हमारी रक्षा करो । अपनी महिमा से ही शत्रुओं से हमें रक्षित करो ॥ १ ॥ जो याज्ञिक पुरुष सब अनुष्ठानों में देवताओं की परिचर्या करता है अथवा जो शास्त्रों के सुनने वाला उपासक देवोपासन करता है, वही यथार्थ सेवक और उपासक है ॥ २ ॥ देवताओं का दान विस्तृत है । वे सब प्रकार बलवान हैं । यज्ञानुष्ठान के समय यज्ञ भाग पाने के अधिकारी और सब प्राणियों के स्वामी हैं ॥ ३ ॥ मनुष्य जिन रुद्र पुत्रों का स्तोत्र करने पर सुखी होता है, वे अर्यमा, वरुण, भग अमृत के स्वामी हैं । वे स्तुतियों के योग्य और प्राणियों के पोषक हैं ॥ ४ ॥ जब अहिर्बुध्न्य जल के साथ प्रतिष्ठित होते हैं, तब सूर्य और चन्द्रमा भी एकत्र बैठते हुए दिवस और रात्रि में जल रूप धन की वृष्टि करते हैं ॥ ५ ॥   [२६]

उत नो दवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥ ६ ॥
उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ॥ ७ ॥
ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टर यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ॥ ८ ॥
कृधी नो अह्रयो देव सवित. स च स्तुषे मघोनाम् :
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषा चर्षणीना चक्रं रश्मि न योयुवे ॥ ९ ॥
ऐषु द्यावापृथिवी धात महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षा रायोत तुर्वणे ॥ १० ॥२७॥

दोनों अश्विनीकुमार कल्याणों के स्वामी हैं । वे मित्रावरुण के साथ अपने तेज से हमारी रक्षा करें । यह जिस यजमान की रक्षा करते हैं, वह महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और बुरी गति से छूट जाता है ॥ ६ ॥ रुद्र-पुत्र वायु, पूषा, ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, भग, और इन्द्रादि

सभी देवता हमें सुख प्रदान करने वाले हों । हम उनके लिए श्रेष्ठ स्तोत्र करते हैं ॥ ७ ॥ यज्ञ के द्वारा इन्द्र महान् तेज को धारण करते हैं । हे इन्द्र ! जब तुम वेगवान् रथ को योजित करते हो तब यज्ञ करने वाले यजमान सुखी होते हैं । इन्द्र के लिए प्रस्तुत किया जाने वाला पान योग्य सोम विशिष्टता युक्त होता है । उनके निमित्त किया जाने वाला अनुष्ठान देवताओं की कृपा से ही सम्पन्न होता है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको प्रेरणा देने वाले हो । हमें लज्जित न करो । तुम ऐश्वर्यवान यजमानों के ऋत्विजों द्वारा पूजे जाते हो । तुम ही हमारे बल हो, क्योंकि तुम अपने श्रेष्ठ रथ को जोड़कर यज्ञ में आते हो ॥ ९ ॥ हे आकाश-पृथिवी, हमारे पुत्रादि को महान् ऐश्वर्य प्रदान करो । तुम्हारा अन्न हम को प्रचुर परिमाण में प्राप्त हो । विपत्तियों से छुटकारा पाने और धन लाभ करने के लिए तुम्हारा धन उपयोगी सिद्ध हो ॥ १० ॥ [२७]

एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।
मेदतां वेदता वसो ॥ ११ ॥
एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ॥ १२ ॥
वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी ।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥ १३ ॥
प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥ १४ ॥
अधीन्न्वत्र सप्तति च सप्त च ।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥१५॥

२८

हे इन्द्र ! जब तुम हमारे समीप आना चाहते हो, तब स्तुति करने वाला जहाँ भी हो, वहीं पहुँच कर उसकी रक्षा करते हो । हे धनदाता ! अपने स्तोता को जानो ॥ ११ ॥ मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त महिमा वाला है ।

यह अपने तेज के सहित सूर्य की सेवा में उपस्थित होता और मनुष्यों को समृद्ध करता है । रथकार जैसे अश्व द्वारा खींचने योग्य रथ की रचना करता है, वैसे ही मैंने इस स्तोत्र की रचना की है ॥ १२ ॥ हम जिनसे धन माँगना चाहते हैं, उनके निमित्त उत्कृष्ट स्तोत्र को बारम्बार उच्चारित करते हैं । युद्ध करने वाले सैनिक जिस प्रकार बारम्बार रणभूमि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हमारे स्तोत्र भी बारम्बार आराध्य की ओर जाते हैं ॥ १३ ॥ सब देवता जैसे पाँच सौ रथों को अश्वों में योजित कर यज्ञ-भाग पर गमन करते हैं, उसी प्रकार मैंने उनके यज्ञ-गाथा रूप स्तोत्र पृथवान्, वेन आदि राजाओं के समीप बैठ कर रचा है ॥ १४ ॥ तान्व, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियों ने इन राजाओं से सतहत्तर गौओं की याचना की ॥ १५ ॥   [२८]

सूक्त ९४

(ऋषिः—अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः । देवता—ग्रावाणः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥१॥
एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२॥
एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३॥
बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४॥
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५॥२९॥

हम अभिषवण पाषाणों की स्तुति करते हैं, वे शब्दवान् हों । हे

ऋत्विजो ! स्तोत्र का उच्चारण करो। हे पूजनीय पाषाण ! तुम इन्द्र के लिए सोम निष्पन्न करते हुए शब्द करो। हे सोमपायें ! तुम सोम-पान द्वारा तृप्त होओ ॥ १ ॥ यह पाषाण सहस्रों व्यक्तियों के समान घोष करते हुए सोम से मिल कर हरे रंग के मुख वाले होकर देवताओं का आह्वान करते हैं। यह श्रेष्ठ कर्म वाले पाषाण, देवताओं के यज्ञ में हव्य को अग्नि के पूर्व ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ २ ॥ यह पाषाण लाल रंग की शाखा का भक्षण करते हुए वृषभों के समान शब्द करते हैं। मांसाहारी जीव जैसे मांस से सन्तुष्ट होते हैं, वैसे ही आनन्द से यह भी शब्द करते हैं ॥ ३ ॥ निष्पन्न होते हुए हर्षकारी सोम के द्वारा इन्द्र को आहूत करने वाले यह पाषाण घोर शब्द करते हैं। उस हर्षकारी सोम को इन्होंने अपने मुख के द्वारा पाया है। यह सोमाभिषक कर्म में लग कर अपने मधुर शब्द से भूमि को परिपूर्ण करते हुए अंगुलियों के सहित नृत्य करते हैं ॥ ४ ॥ पाषाणों का शब्द ऐसा लगता है जैसे अन्तरिक्ष में पक्षी चहचहा रहे हों। यह मृगों के स्थान में गमन करने वाले पाषाण काले मृगों के समान नृत्य-सा कर रहे हैं। यह अभिषुत सोम रस को इस प्रकार प्रेरित करते हैं, जैसे सूर्य उज्ज्वल जलों की वृष्टि करते हैं ॥ ५ ॥

[२६]

उग्राइव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥ ६ ॥
दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७॥
ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८॥
ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥६॥
वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।

रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो

अजुषध्वमध्वरम् ॥ १० । ३० ॥

जैसे बलवान अश्व सुसंगत होकर अपने शरीर को बढ़ाते हुए रथ का वहन करते हैं, वैसे ही यह पाषाण भी आकर सोम रस को क्षरित करते हैं। श्वास लेने मात्र के समय में यह सोम का ग्रास करते हुए अश्व के शब्द के समान शब्द करते हैं। मैंने इनके शब्द को अनेक बार सुना है ॥ ६ ॥ हे स्तोताओ ! इन अमृतत्व सम्पन्न पाषाणों का यश गाओ। सोमाभिषव काल में जो दशों अंगुलियाँ जब इनका स्पर्श करती हैं, तब यह दशों अंगुलियाँ अश्वों के बांधने की दश रस्सियाँ, दश योक्त्र या दश लगामों के समान लगती हैं। अथवा ऐसा लगता है कि दश घुरे एकत्र होकर रथ का वहन कर रहे हों ॥ ७ ॥ दशों अंगुलियों को बंधनकारिणी रस्सियों के समान पाकर यह पाषाण शीघ्र कार्यकारी होते हैं। इनके द्वारा निचुड़ा हुआ सोम रस हरे रंग का होकर गिरता है। कुटे हुए सोम खंड, पीसे जाने पर अमृत के समान मधुर रस को बाहर निकालते हैं। उस अन्न रूप सोम रस का प्रथम भाग यह अभिषवण पाषाण ही प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ सोम का प्रथम सेवन करने वाले अभिषवण पाषाण इन्द्र के दोनों अश्वों का स्पर्श करते हैं। इन पाषाणों द्वारा जो मधुर सोम-रस क्षरित होता है, उसका पान करने पर इन्द्र प्रवृद्ध होकर वृषभ के समान बल प्रकट करने वाले होते हैं ॥ ९ ॥ हे पाषाणो ! सोम के खण्ड तुम्हें रस प्रदान करेंगे, इसलिए निराशा का कोई कारण नहीं है। जिनके यज्ञ में तुम रहते हो, वे यजमान सदा अन्नवान रहते और ऐश्वर्य-वंतों के समान तेजस्वी होते हैं ॥ १० ॥ [३०]

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।

अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो

अतृषिता अतृष्णजः ॥ ११ ॥

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।

अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण

पृथिवीमशुश्रवुः ॥ १२ ॥

तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं
न मिनन्ति बप्सतः ॥ १३ ॥

सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्ताम-
द्रयश्चायमानाः ॥ १४ ॥ ३१ ॥

हे पाषाणो ! तुम कभी निराश नहीं होते । तुम्हारे अनुग्रह के बिना दूसरों को निराश होना पड़ता है । तुम्हें थकान नहीं व्यापती । तुम को रोग, शोक, जरा, मृत्यु, तृष्णा आदि का आभास नहीं होता । तुम स्थूल हो । तुम एकत्र करने और उछटाने में चतुर माने जाते हो ॥ ११ ॥ पर्वत तुम्हारे पूर्वज हैं । यह पूर्णकाम पर्वत युग युगान्तर से अपने स्थान पर अडिग खड़े हैं । यह कभी भी अपने स्थान को नहीं त्यागते । वे जरा रहित हैं । उन पर सदा हरे वृक्ष लहलहाते हैं । वे हरे रंग के से होकर पक्षियों की चहचहाट से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं ॥ १२ ॥ जैसे रथ पर चढ़ने वाले पुरुष रथ के मार्ग पर रथ को चलाते हैं, तब उससे शब्द होता है, वैसे ही सोम का अभिषव करने वाले पाषाण शब्द करते हैं । जैसे धान्य बोने वाले किसान खेत में बीज को फैलाते हैं, वैसे ही यह पाषाण सोम-रस को फैलाते हैं । यह उसका सेवन करके उसे निर्वीय नहीं करते ॥ १३ ॥ जैसे खेलने वाला बालक खेलने के स्थान में शब्द करते हैं, वैसे ही सोम के निष्पन्न करने वाले पत्थर शब्द करते हैं । हे स्तोताओ ! जिन पाषाणों ने सोम का निष्पीड़न किया है, तुम उनकी स्तुति करो, जिससे वे घूमते हुए अपना कार्य करें ॥ १४ ॥ [३१]

सूक्त ९५

(ऋषिः—पुरूरवा ऐलः, उर्वशी । देवता—उर्वशी, पुरूरवा ऐळः ।
छन्दः—त्रिष्टुप्)

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१॥
किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वातइवाहमस्मि ॥२॥
इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥३॥
सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्टयन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४॥
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व स्तदासीः ॥५॥१॥

हे निर्दय नारी ! तुम अपने मन को अनुरागी बनाओ । हम शीघ्र ही परस्पर वार्तालाप करें । यदि हम इस समय मौन रहेंगे तो आगामी दिवसों में सुखी नहीं होंगे ॥ १ ॥ हे पुरुरवा ! वार्तालाप से कोई लाभ नहीं । मैं वायु के समान ही दुष्प्राप्य नारी हूँ । उषा के समान तुम्हारे पास आई हूँ । तुम अपने गृह को लौट जाओ ॥ २ ॥ हे उर्वशी ! मैं तुम्हारे वियोग में इतना सन्तप्त हूँ कि अपने तूणीर से बाण निकालने में भी असमर्थ हो रहा हूँ । इस कारण मैं युद्ध में जय लाभ करके असीमित गौओं को नहीं ला सकता । मैं राज कार्यों से विमुख हो गया हूँ, इसलिए मेरे सैनिक भी कार्य-हीन होगए हैं ॥ ३ ॥ हे उषा ! उर्वशी यदि श्वसुर को भोजन कराना चाहती तो निकटस्थ घर से पति के पास जाती ॥ ४ ॥ हे पुरुरवा ! मुझे किसी सपत्नी से प्रतिस्पर्द्धा नहीं थी, क्योंकि मैं तुमसे हर प्रकार सन्तुष्ट थी । जब से मैं तुम्हारे घर में आई तभी से तुमने मेरे सुखों का विधान किया ॥ ५ ॥   [२]

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्हृदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६॥
समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्य स्वगूर्ताः ।

महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥७॥
सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥८॥
यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥९॥
विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०।२॥

सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्न आदि अप्सराऐं मलीन वेश में यहाँ आती थीं । गोष्ठ में जाती हुई गौऐं जैसे शब्द करती हैं, वैसे ही शब्द करने वाली वे महिलाऐं मेरे घर में नहीं आती थीं ॥६॥ जब पुरुरवा उत्पन्न हुआ तब सभी देवांगनाऐं उसे देखने को आईं । नदियों ने भी उसकी प्रशंसा की ।

हे पुरुरवा ! देवगण ने घोर संग्राम में जाने और नाश करने के लिए तुम्हारी स्तुति की ॥७॥ जब पुरुरवा मनुष्य होकर अप्सराओं की ओर गए तब अप्सराऐं अंतर्धान होगईं । वह उसी प्रकार वहाँ से चली गईं जिस प्रकार भयभीत हरिणी भागती है या रथ में योजित अश्व द्रुतगति से चले जाते हैं ॥८॥ मनुष्य योनि को प्राप्त हुए पुरुरवा जब दिव्यलोकवासिनी अप्सराओं की ओर बढ़े तब वे अप्सराऐं, जैसे क्रीड़ाकारी अश्व भागा जाता है, वैसे ही भाग गईं ॥९॥ जो उर्वशी अंतरिक्ष की विद्युत के समान आभा मयी है, उसने मेरी सब अभिलाषाओं को पूर्ण किया था। वह उर्वशी अपने द्वारा उत्पन्न मेरे पुत्र को दीर्घजीवी करे ॥१०॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः । —
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११
कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयाद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वसुरेषु दीदयत् ॥१२
प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।

प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर माप. ॥१३
सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४
पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तोमा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता ॥१५॥

हे पुरुरवा ! तुमने पृथिवी की रक्षा के लिए पुत्र को उत्पन्न किया है। मैं तुमसे अनेक बार कह चुकी हूँ कि तुम्हारे पास नहीं रहूँगी। तुम इस समय प्रजा पालन के कार्य से विमुख होकर व्यर्थ वार्तालाप क्यों करते हो॥ ११ ॥ हे उर्वशी ! तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रहेगा ? वह मेरे पास आकर रोवेगा ? पारस्परिक प्रेम के बन्धन को कौन सद्गृहस्थ तोड़ना स्वीकार करेगा। तुम्हारे श्वसुर के घर में श्रेष्ठ आलोक जगमगा उठा है ॥१२॥ हे पुरुरवा ! मेरा उत्तर सुनो । मेरा पुत्र तुम्हारे पास आकर रोवेगा नहीं। मैं उसकी सदा मंगल-कामना करूँगी। तुम अब मुझे नहीं पा सकोगे, अतः अपने घर को लौट जाओ। मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास भेज दूँगी ॥१३॥ हे उर्वशी ! मैं तुम्हारा पति आज पृथिवी पर गिर पड़ा हूँ। वह (मैं) फिर कभी न उठ सका। वह दुर्गति के बन्धन में पड़कर मृत्यु को प्राप्त हो और वृकादि उसके शरीर का भक्षण करें ॥१४॥ हे पुरुरवा ! तुम गिरो मत। तुम अपनी मृत्यु की इच्छा न करो। तुम्हारे शरीर को वृकादि भक्षण न करें। स्त्रियों का और वृकों का हृदय एकसा होता है, उनकी मित्रता कभी अटूट नहीं रहती ॥१५॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६
अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७
इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८॥४

मैंने त्रिविध रूप धारण कर मनुष्यों में विचरण किया है। चार वर्षों तक मैं मनुष्यों में ही वास करती रही हूँ। नित्यप्रति एक बार घृत-पान करती हुई घूमती रही हूँ ॥१६॥ उर्वशी जल को प्रकट करने वाली और अन्तरिक्ष को पूर्ण करने वाली है। वसिष्ठ ही उसे अपने वश में कर सके हैं। तुम्हारे पास उत्तम कर्मा पुरुरवा रहे। हे उर्वशी! मेरा हृदय दग्ध हो रहा है, अतः लौट आओ ॥१७॥ हे पुरुरवा! सभी देवताओं का कथन है कि तुम मृत्यु को जीतने वाले होगे और हव्य द्वारा देवताओं का यज्ञ करोगे। फिर स्वर्ग में आनन्दपूर्वक वास करोगे ॥१८॥

सूक्त ९६

(ऋषि—सर्वहरिर्वैन्द्रः। देवताः-हरिस्तुतिः। छन्द-त्रिष्टुप्)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वंतो हरी दिव्यं यथा सदः।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इंद्राय शूषं हरिवंतमर्चत ॥२
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४
त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥५

हे इन्द्र! तुम शत्रुओं का संहार करने वाले हो। इस महान् यज्ञ में मैंने तुम्हारे दोनों अश्वों का स्तोत्र किया है। हे इन्द्र! मेरा निवेदन है कि तुम भले प्रकार हर्षित होकर घृत के समान श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो। तुम अपने हर्यश्व द्वारा आओ। मेरी स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों ॥ १ ॥ हे

स्तोताओ ! तुमने अपने यज्ञ की ओर इन्द्र को प्रेरित किया है और इन्द्र के दोनों अश्वों को यहाँ लाए हो । अतः अश्वों के सहित इन इन्द्र के वज्र की स्तुति करो । गौएँ जैसे दूध देकर तृप्त करती हैं, वैसे ही तुम हरित-वर्ण वाले मधुर सोम रस को देकर इन्द्र को तृप्त करो ॥२॥ शत्रुओं का नाश करने वाला, हरित वर्ण वाला जो लौह वज्र है, उसे इन्द्र अपने दोनों हाथों में धारण करते हैं । वे इन्द्र ऐश्वर्यवान् शोभन हनु वाले हैं और क्रोध में भरकर अपने आयुध द्वारा शत्रुओं को मारते हैं । उन इन्द्र को हम हरित एवं मधुर सोम-रस द्वारा सींचते हैं ॥३॥ सूर्य अपने प्रकाश से जैसे सब दिशाओं को व्याप्त करते हैं, उसी प्रकार शोभन तेज वाला वज्र सब स्थानों को व्याप्त करता है । श्रेष्ठ हनु वाले इन्द्र ने सोम पीकर इस लौह-वज्र से वृत्र हनन में अपरिमित शक्ति प्राप्त की ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे केश हरे वर्ण के हैं । प्राचीन ऋषियों ने जब जब तुम्हारी स्तुति की तब-तब तुम यज्ञों में गए । हे इन्द्र ! तुम्हारे अन्न की कोई उपमा नहीं हो सकती, क्योंकि वह श्रेष्ठ और सब प्रकार प्रशंसनीय है ।५॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०॥१६

वज्रधारी इन्द्र स्तुतियों के पात्र हैं । वे जब सोम-पान के हर्ष के

लिए चलते हैं, उस समय उनके रथ को दो श्रेष्ठ अश्व जुत कर वहन करते हैं। इन इन्द्र के लिए यज्ञों में बहुत बार सोम-रस का निष्पीड़न किया जाता है ॥ ६ ॥ इन्द्र की इच्छा के अनुसार प्रचुर सोम रस रहता है। वही सोम रस इन्द्र के अश्वों को भी यज्ञ की ओर लाने का उत्साह देता है। जिस रथ को उनके हर्यश्व संग्राम भूमि में ले जाते हैं, वही रथ इस सोम-याग में आकर ठहरता है ॥ ७ ॥ इन्द्र की दाढ़ी मूँछ भी हरी हैं। उनका शरीर लोहे के समान दृढ़ है। वे शीघ्र-शीघ्र सोम पीकर अपने देह को विशाल करते हैं। यज्ञ ही उनकी सम्पत्ति है। उनके हर्यश्व उन्हें यज्ञ-स्थान में ले जाते हैं। वे अपने दो अश्वों पर आरूढ़ होकर यजमान की सभी विपत्तियों को दूर करते हैं ॥ ८ ॥ स्त्रुवा पात्र के समान उज्वल इन्द्र के दो नेत्र यज्ञ कर्म में लगते हैं। जब वे अन्न सेवन करते हैं तब उनके दोनों जबड़े हिलते हैं। चमस में जो सोम रस रहता है, उसका पान करके अपने दोनों अश्वों को उत्साहित करते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र आकाश-पृथिवी पर रहते हैं। वे अश्व युक्त रथ पर आरूढ़ होकर अत्यन्त वेग से संग्राम भूमि में पहुँचते हैं। श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा उनकी प्रशंसा होती है। हे इन्द्र ! तुम अपने बल द्वारा प्रचुर अन्न प्रदान करते हो ॥ १० ॥ [६]

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ ११ ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ १२ ॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥ १३ । ७

हे इन्द्र। तुमने अपनी महिमा से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण किया है। तुम्हारी नित्य नवीन स्तुति की जाती है। तुम गौओं के श्रेष्ठ गोष्ठ को जलापहारक सूर्य के समीप उत्पन्न करो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे

हनु अत्यन्त उज्ज्वल हैं। रथ में योजित तुम्हारे अश्व तुम्हें हमारे यज्ञ में लेकर आवें। फिर तुम्हारे लिए जो सोम रस दश अंगुलियों द्वारा अभिषुत हुआ है उसका पान करो। यज्ञ के निधि रूप इस सोम को संग्राम के समय भी पान करने की कामना करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! प्रातः सवन में अभिषुत सोम को तुमने पिया था। इस मध्य सवन में जो सोम निष्पन्न हुआ है वह भी तुम्हारे निमित्त हो है। इस मधुर सोम रस का आस्वादन करते हुए अपने जठर को पूर्ण करो ॥ १३ ॥ [७]

सूक्त ९७

(ऋषि.—भिषगाथर्वणः। देवता—ओषधीस्तुति। छन्दः—अनुष्टुप्)

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥
ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरी ।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥३॥
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५।८॥

प्राचीन कालीन तीन युगों में देवताओं ने जिन औषधियों की कल्पना की है, वे सब पीत वर्ण की औषधियाँ एक सौ सात स्थानों में वर्तमान हैं ॥ १ ॥ हे औषधियो ! तुम असीम जन्म वाली हो। तुम्हारे प्ररोहण भी असीमित हैं। तुम सैकड़ों गुणों से सम्पन्न हो, अतः मुझे आरोग्यता देकर स्वस्थ करो ॥ २ ॥ हे पुष्प फल से सम्पन्न औषधियो ! तुम रोगी पर अनुग्रह करने वाली बनो। जैसे रणभूमि में अश्व विजय शील होते हैं, वैसे ही तुम रोगों

को जीतने वाली होओ। इन पुरुषों को आरोग्य प्रदान द्वारा रोगों से पार लगाओ ॥ ३ ॥ हे मातृवत औषधियो ! तुम अत्यन्त तेजस्विनी हो। मैं तुम्हारे समक्ष यह कहता हूँ कि मैं भिषक् को गौ, अश्व और वस्त्रादि प्रदान करूँगा ॥ ४ ॥ हे औषधियो ! तुम्हारा पीपल और पलाश पर निवास है। जब तुम रोगी पर कृपा करती हो, उस समय तुम्हें गौएँ दी जाती हैं। क्योंकि उपकारी के प्रति कृतज्ञता होनी चाहिए ॥ ५ ॥ [८]

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६॥
अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥
इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥१०॥९॥

सभाओं में जैसे राजागण एकत्र होते हैं, वैसे ही जहाँ औषधियाँ एकत्र रहती हैं और जो मेधावी उनके गुण धर्म का ज्ञाता है वही चिकित्सक कहाता है, क्योंकि वह रोगों को शमन करने वाले विभिन्न यत्नों को प्रयुक्त करता है ॥ ६ ॥ मैं अश्ववती, सोमावती, ऊर्जयन्ती, उदोजस आदि औषधियों का जानने वाला हूँ। वे औषधियाँ इस रोगी को आरोग्यता प्रदान करें ॥ ७ ॥ हे रोगी ! गौएँ जैसे गोष्ठ से बाहर निकलती हैं, वैसे ही औषधियों का गुण बाहर आता है। अतः यह औषधियाँ तुम्हें निरोग करने में समर्थ होंगी ॥ ८ ॥ हे औषधियो ! तुम्हारी माता इष्कृति है, क्योंकि वह रोगों को दूर करती है। तुम रोगों को नष्ट करने वाली हो। शरीर को जो रोग पीड़ित करता है उस दुष्ट रोग को तुम बाहर करो। क्योंकि तुम आरो-

ग्यता दायिनी हो ॥ ६ ॥ चोर जैसे गौओं के गोष्ठ के पार जाता है, वैसे ही यह संसार को व्याप्त करने वाली औषधियाँ रोगों के पार जाती हैं। यह देहगत समस्त वेदना को नष्ट करती हैं ॥ १० ॥ [६]

यदिमा वाजयन्नहमोपधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्ग परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३॥

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहस ॥१५॥१०॥

मैं इन औषधियों को ग्रहण कर रोगी की निर्बलता को नष्ट करता हूँ। तब जैसे मृत्यु को प्राप्त हुआ देहधारी मर जाता है, वैसे ही रोग की आत्मा भी नष्ट हो जाती है ॥ ११ ॥ हे औषधियो ! जैसे बलवान पुरुष सबको अपने वशीभूत कर लेते हैं, वैसे ही तुम जिसके शरीर में रम जाती हो, उसके सर्वाङ्ग स्थित रोग को समूल दूर कर देती हो ॥ १२ ॥ जैसे नीलकण्ठ और बाज पक्षी शीघ्रगति से उड़ जाते हैं और जिस वेग से वायु प्रवाहित होता है तथा जैसे गोधा भागती है, वैसे ही हे रोग ! तुम शीघ्रता से निकल जाओ ॥ १३ ॥ हे औषधियो ! तुममें से एक दूसरी से और दूसरी तीसरी से मिश्रित हो। इस प्रकार सभी औषधियाँ परस्पर मिल कर गुण वाली हों। यही मेरी कामना है ॥ १४ ॥ फल वाली या फल-हीन तथा पुष्प वाली और बिना पुष्प की सभी औषधियों को बृहस्पति उत्पन्न करते हैं। वे औषधियाँ पाप से हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥ [१०]

मुञ्चन्तु मा शपथ्या दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्विषात् ॥ १६ ॥
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ १७ ॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥ १८ ॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥ १९ ॥
मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥ २१ ॥
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥ २२ ॥
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो स्माकं यो अस्मां अभिदासति ॥ २३ ॥११॥

औषधियाँ मुझे शपथ से उत्पन्न हुए पाप-रोग से रक्षित करें। वे वरुण, यम तथा अन्य देवताओं के पाश से भी हमारी रक्षा करें ॥ १६ ॥ जब औषधियाँ दिव्य लोक से आने लगीं तब उन्होंने कहा था कि हम जिसकी रक्षा करें, वह पीड़ित न रहे ॥ १७ ॥ जो औषधियाँ प्राणी मात्र के लिए उपकारिणी हैं और जिन औषधियों में मुख्य सोम है, उनमें हे औषधि तुम श्रेष्ठ हो। तुम हमारी इच्छाओं को पूर्ण करती और सब का कल्याण करने में समर्थ हो ॥ १८ ॥ जो औषधियाँ पृथिवी के विभिन्न भागों में स्थित हैं और सोम जिनका राजा है, वे औषधियाँ बृहस्पति द्वारा उत्पन्न होती हैं। वे इस प्रयुक्त औषधि को गुणवाली बनावें ॥ १९ ॥ हे औषधियो! मैं तुम्हें

खोदकर निकालता हूँ, तुम मुझे हिंसित मत होने देना। मैं तुम्हें जिस रोगी के लिए ग्रहण कर रहा हूँ, वह रोगी भी नाश को प्राप्त न हो। हमारे मनुष्य और पशु सभी स्वस्थ रहें ॥ २० ॥ जो औषधि दूर हैं, अथवा जो औषधि मेरी स्तुति को सुनती हैं, वे सब औषधियाँ एकत्र होकर प्रयुक्त औषधि को गुण से सम्पन्न करें ॥ २१ ॥ सब औषधियों ने अपने राजा सोम से कहा कि—स्तुति करने वाले भिषक् जिसकी चिकित्सा करते हैं, उसी रोगी की हम रक्षा करती हैं ॥ २२ ॥ हे औषधि ! तुम सब वृक्षों से श्रेष्ठ हो। हमारा बुरा चाहने वाला शत्रु हमारे पास न आवे ॥ २३ ॥　　　　　　　　[११]

सूक्त ९८

(ऋषि—देवापिरार्ष्टिषेणः । देवता—देवाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान्त्स पर्जन्यं शन्तनवे वृषाय ॥ १ ॥
आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान्त्वद्देवापे अभि मामगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् ॥ २ ॥
अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शन्तनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ॥ ३ ॥
आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥ ४ ॥
आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥ ५ ॥
अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥ ६ ॥ १२

हे बृहस्पति ! मुझ पर अनुग्रह करते हुए तुम सब देवताओं के पास गमन करो। तुम मित्रावरुण, पूषा, आदित्यगण और वसुगण के साथ साक्षात् इन्द्र ही हो। अतः तुम राजा शन्तनु के लिए मेघ से जल वृष्टि

करो ॥ १ ॥ हे देवापि, कोई मेधावी और द्रुतगामी देवता दूत बनकर तुम्हारे पास से मेरे पास आगमन करें । हे बृहस्पते ! तुम हमारे सामने पधारो। तुम्हारे लिए हमारे मुख में श्रेष्ठ स्तुति प्रस्तुत है ॥२॥ हे बृहस्पते ! तुम हमारे मुख में श्रेष्ठ स्तोत्र स्थापित करो । वह स्तोत्र स्फूर्तिप्रद और स्पष्ट हो। हम उससे शान्तनु के लिए वृष्टि प्राप्त करें ॥ ३ ॥ हमारे निमित्त वर्षा का जल प्राप्त हो । हे इन्द्र ! तुम अपने रथ के द्वारा महान् धन प्रदान करो। हे देवापि ! हमारे इस यज्ञ में आकर विराजमान होओ और देवताओं का पूजन करते हुए हविरन्न से उन्हें तृप्त करो ॥ ४ ॥ देवापि ऋषि ऋषिपेण के पुत्र हैं । उन्होंने तुम्हारे लिए श्रेष्ठ स्तुति करने का विचार कर यज्ञ किया। तब वे अन्तरिक्ष रूप समुद्र से पार्थिव समुद्र में वर्षा का जल ले आए ॥ ५ ॥ देवताओं ने अन्तरिक्ष को आच्छादित किया है। देवापि ने इस जल को प्रेरित किया। उस समय उज्वल पृथिवी पर जल प्रवाहित होने लगा ॥ ६ ॥ [१२]

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥ ७ ॥
यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥ ८ ॥
त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ॥ ९ ॥
एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ॥१०॥
एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान्पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११॥
अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥१२॥ १३

जब शान्तनु के पुरोहित देवापि यज्ञ करने के लिए तैयार हुए तब उन्होंने जल का उत्पादन करने वाले देवताओं का स्तोत्र रचा, जिससे प्रसन्न होकर बृहस्पति ने उनके मन में श्रेष्ठ स्तोत्र रूप वाक्यों को भर दिया ॥७॥ हे अग्ने ! ऋष्टिषेण-पुत्र देवापि ने तुम्हें प्रज्वलित किया है, अतः तुम देवताओं का सहयोग प्राप्त करके जल वृष्टि वाले मेघ को प्रेरित करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! प्राचीन ऋषियों ने स्तुति करते हुए तुम्हारे पास आगमन किया। तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो, अतः वर्तमान कालीन यजमान अपने यज्ञ में स्तुतियों सहित तुम्हारी ओर गमन करते हैं। शान्तनु राजा ने जो दक्षिणा दी है, उसमें रथ सहित सहस्रों पदार्थ थे । हे अग्ने ! तुम रोहिताश्व भी कहाते हो। हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥९॥ हे अग्ने ! रथों सहित निन्यानवे हजार पदार्थ प्रदान किये गए हैं । तुम उनके द्वारा प्रसन्न होकर हमारे कल्याण के निमित्त आकाश से जल वृष्टि करो ॥ १० ॥ हे अग्ने ! नब्बे हजार आहुतियों द्वारा इन्द्र का भाग उन्हें प्रदान करो। तुम सब देवयानों के ज्ञाता हो अतः शान्तनु को समय आने पर देवताओं के मध्य अवस्थित करना ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं के दृढ़ नगरों को तोड़ डालो । रोग रूप व्याधियों को भगाओ। महान् अन्तरिक्ष से तुम श्रेष्ठ वृष्टि जल को लेकर आगमन करो॥ १२ ॥ [१३]

सूक्त ९९

(ऋषि—वम्रो वैखानसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

क नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥ १ ॥
स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥ २ ॥
स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥ ३ ॥
स यह्व्यो वनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।

अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ४ ॥
स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥ ५ ॥
स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥ ६ ॥ १४

हे इन्द्र ! तुम हमको अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हो । वह प्रशंसनीय ऐश्वर्य वृद्धि को प्राप्त होकर हमारी भी वृद्धि करता है । इन्द्र की बल-वृद्धि के निमित्त हम क्या दें ? उनके लिए वृत्र का नाश करने वाले वज्र की रचना की गई है । उन्हीं ने जल की वृष्टि की है ॥ १ ॥ विद्युत इन्द्र का आयुध है, वे उसे धारण कर यज्ञ में गाए जाते हुए साम की ओर गमन करते हैं । वे अपनी महिमा से अनेक स्थानों पर अधिकार करते हैं । वे एक साथ निवास करने वाले मरुद्गण के सहयोग से शत्रुओं का पराभव करते हैं । उनके विमुख होने पर कोई भी कार्य नहीं बनता । वे आदित्यगण में सातवें भाई हैं ॥ २ ॥ वे श्रेष्ठ चाल से रण-भूमि में जाते हैं । वे अविचलित होते हुए सौ द्वारों वाली शत्रु-नगरी से धन लेकर आते हैं और पापियों को अपने तेज से परास्त करते हैं ॥ ३ ॥ वे मेघों में जाकर घूमते और वहाँ से श्रेष्ठ भूमि पर जल वृष्टि करते हैं । उन सब जल युक्त स्थानों पर लघु नदियाँ एकत्र होकर उज्वल जल को प्रवाहित करती हैं । उनके चरण, रथ, नौका आदि कुछ भी नहीं हैं ॥ ४ ॥ प्रकाण्ड इन्द्र ! बिना माँगे ही इच्छित फल प्रदान करते हैं । कुख्यात व्यक्ति उनके समक्ष जाने का साहस नहीं करता । वे इन्द्र मरुद्गण सहित अपने स्थान से यहाँ आगमन करें । मुक्त वम्र के माता-पिता का दुःख दूर होगया । मैंने शत्रुओं को व्यथित किया है और उनके धन को प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ इन्द्र ने दस्युओं पर शासन किया । उन्होंने तीन कपाल वाले और छः नेत्रों वाले विश्वरूप का हनन किया था । त्रित ने इन्द्र के बल से बली होकर लौह समान तीक्ष्ण नखों से वराह को मार डाला था ॥ ६ ॥-[१४]

स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम्।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥७

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥८

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीतारुं यश्चतुष्पात् ॥१०

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१२॥१५

इन्द्र के जिस उपासक को उसके शत्रु युद्ध की चुनौती देते हैं, तब वे अभिमान से अपने शरीर को बढ़ाते हुए शत्रु का नाश करने वाला श्रेष्ठ आयुध देते हैं। वे मनुष्यों का नेतृत्व करने वाले हैं। जब उन्होंने राक्षसों का वध किया तब उनकी अनेक नगरियों को भी तोड़ डाला ॥७॥ तृण से युक्त पृथिवी पर इन्द्र मेघों से जल-वृष्टि करते हैं उन्होंने अपने देह के सब अवयवों को सोम से सींचा है। वे हमारे घर का मार्ग जानते हैं। बाज के समान वे तीक्ष्ण और दृढ़ पृष्ठ के द्वारा राक्षसों को मारते हैं ॥८॥ वे अपने दृढ़ आयुध से विकराल शत्रुओं को भी भगाते हैं। कुत्स की स्तुति सुनकर उन्होंने शुष्णासुर को विदीर्ण किया था। स्तुति करने वाले कवि उशना के वैरियों को भी उन्होंने वशीभूत किया। वही इन्द्र उशना तथाअन्य उपासकों को भी ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥९॥ इन्द्र ने मनुष्यों का हितकरने वाले मरुद्गण के साथ धन प्रेरित कियाथा। वे अपने तेजसे तेजस्वी

और वरुण के समान श्रेष्ठ महिमा वाले हैं। समय आने पर सभी उपासक उन्हें रक्षक रूप से मानते हैं। उन्होंने ही चतुष्पाद शत्रु का वध किया। ॥१०॥ उशिज्-पुत्र ऋजिश्वा ने इन्द्र की स्तुति द्वारा ही वज्र से पिप्रु के गोष्ठ का उद्घाटन किया। जब ऋजिश्वा ने सोम अर्पित कर स्तुति की तभी इन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होंने शत्रुओं के नगरों को तोड़ डाला॥ ११ ॥ हे इन्द्र! अनेक हवियाँ देने की कामना करता हुआ मैं वम्र तुम्हारी सेवा में पैदल चलकर उपस्थित हुआ हूँ। तुम मेरा कल्याण करो तथा श्रेष्ठ अन्न, सुन्दर गृह, सब पदार्थ और बल आदि मुझे दो॥१२॥ [१५]

सूक्त १०० (नौवां अनुवाक)

(ऋषिः—दुवस्युर्वान्दन। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१
भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥२
आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥३
इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः।
यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥४
इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥५
इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥६।१६

हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्यवान् हो। अपने समान बल वाली शत्रु-सेना का संहार करो और हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाओ। तुम हमारी स्तुति स्वीकार कर सोम पान करो। हमारी रक्षा के लिए आओ। सविता देव भी अन्य

देवताओं सहित आकर हमारे यज्ञ की रक्षा करें हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ॥१॥ हे ऋत्विज ! युद्ध के समय वायु को यज्ञ भाग प्रदान करो । वे मधुर सोम रस के पीने वाले हैं । जब वे आते हैं तब शब्द होता है। वे उज्ज्वल दूध का पान करते हैं । हम माता अदिति को भी स्तुति करते हैं ॥२॥ यह अभिषवकारी यजमान सरल मार्ग का याचक है । सविता उन्हें अन्न प्रदान करें । उस अन्न के द्वारा हम देवताओं का पूजन करेंगे । हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ॥३॥ इन्द्र हम पर सदा प्रसन्न रहें । हमारे यज्ञ में सोम अवस्थित हो । मित्रों की योजना के अनुसार ही हमारा यज्ञानुष्ठान पूर्ण हो । हम अदिति की स्तुति करते हैं ॥४॥ इन्द्र की महिमा प्रशंसनीय है, उस महिमा से ही वे हमारे यज्ञ का पालन करते हैं । हे बृहस्पते ! तुम दीर्घ आयु देने में प्रसिद्ध हो । यह यज्ञ हमारी गति और बुद्धि है । उसीके द्वारा कल्याण सम्भव है । वही हमारी रक्षा करने वाला है । हम अदिति को भी स्तुति करते हैं ॥५॥ इन्द्र ने ही देवताओं को बल दिया है । घर में विराजमान अग्नि, देवताओं के कार्य का निर्वाह करते हैं । वही यज्ञ करते हैं और वही स्तुति करते हैं । यज्ञ के समय वे दर्शनीय होते हैं । सब को ग्रहण करने वाली अदिति की हम स्तुति करते हैं ॥६॥   [१६]

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेलनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥७
अपामीवां सविता साविषन्न्यग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥८
ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥९
ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१०
क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११

चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः ॥१२॥१७

हे वसुगण ! हमने ऐसा कोई अपराध नहीं किया है, जो तुमसे छिपा हुआ हो। तुम्हारे समक्ष भी हमने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है, जिससे देवगण हम पर क्रोध करें। हे देवताओ ! तुम हमारा अनिष्ट मत करना। हम अदिति से भी प्रार्थना करते हैं ॥७॥ जहाँ सोमाभिषव होने पर पाषाण की भी भले प्रकार स्तुति करते हैं, वहाँ उपस्थित होने वाले सब रोगों को सविता दूर करते हैं। पर्वत भी वहाँ की भीषण व्याधियों को मिटाते हैं। हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ॥८॥ हे वसुगण ! जबतक सोमाभिषवण-पाषाण ऊँचा उठे, तबतक तुम शत्रुओं को पृथक्-पृथक् करो। सवितादेव सदा ही रक्षा करते हैं। उनकी हम स्तुति करते हैं। सबको ग्रहण करने वाली देव-माता अदिति की भी स्तुति करते हैं ॥९॥ हे गौओ ! तुम तृण-युक्त-भूभाग पर घास खाती हुई घूमो। यज्ञ में तुम दूध प्रदान करती हो। तुम्हारा दूध सोमरस के गुणों के समान हितकारी हो। हम अदिति की स्तुति करते हैं ॥१०॥ इन्द्र यज्ञ को परिपूर्ण करते हैं। वे साम-याग करने वाले यजमान के रक्षक हैं। वे श्रेष्ठ स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं। उनके पान के निमित्त सोम रस से भरे द्रोण-कलश उपस्थित हैं। सबके ग्रहण करने वाली अदिति की हम स्तुति करते हैं ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम अद्भुत तेज वाले हो। तुम्हारे तेज से ही सब कर्म सम्पन्न होते हैं। हम तुम्हारे तेज की स्तुति करते हैं। तुम्हारे महान् कर्म स्तुति करने वालों की इच्छा पूर्ण करते हैं। दुवस्यु ऋषि गौ की रस्सी का अगला भाग तुम्हारी कृपा से ही खींचते हैं ॥१२॥ [९]

सूक्त १०१

(ऋषिः—बुधः सौम्यः। देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा। छन्दः—त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती, जगती)

उदबुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥१
मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥२
युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥४
निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥५
इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् ।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥६।१८

हे मित्रभूत ऋत्विजो ! तुम एक मन वाले होकर सावधान होजाओ। तुम सब एक स्थान पर बैठकर अग्नि को प्रज्वलित करो। मैं दधिक्रा, उषा, अग्नि और इन्द्र का रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ ॥१॥ हे सखाओ ! हर्ष प्रदायक स्तुतियाँ करो फिर कृषि कर्म को बढ़ाओ। हल दण्डरूपी नौका ही पार करने वाली है, इसे ग्रहण कर हल के फल की तीक्ष्ण करो। फिर श्रेष्ठ यज्ञ का आरम्भ करो ॥२॥ हे ऋत्विजो ! हल को जोतो। जुओं को उठाओ। इस खेत में बीज वपन करो। हमारी स्तुतियों के द्वारा प्रचुर परिमाण में अन्न उत्पन्न हो। फिर पके हुए धान्य के खेत पर हँसुए गिरने लगे ॥३॥ हलों को जोतते हैं। कृषि कर्म में कुशल व्यक्ति जुओं को पृथक् करते हैं। उस समय मेधावी जन उत्तम स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥४॥ पशुओं के जल पीने का स्थान बनाओ। रस्सी को प्रस्तुत करो। हम गम्भीर, स्वच्छ जलाशय से जल लेकर खेत को सींचते हैं ॥५॥ पशुओं का जल पीने का स्थान बन गया। गम्भीर जल वाले गढ़े में श्रेष्ठ चर्म-रज्जु डालकर जल सींचा जाता है। अत इससे जल लेकर अपने खेत को सींचो ॥६॥

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥ ७ ॥
व्रजं कृणुध्वं सहि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ८ ॥
आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ९ ॥
आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥ १० ॥
उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥ ११ ॥
कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२। १९

बैलों को भोजन देकर तृप्त करो। खेत में कट कर एकत्र हुए धान्य को ग्रहण करो। फिर वहनशील रथ के द्वारा धान्य को ढोओ। पशुओं के जल से सम्पन्न जलाधार में एक द्रोण जल होगा। इसमें पाषाण निर्मित चक्र होगा। मनुष्यों के लिये कूपवत जलाधार बनाया गया है। इसे जल से भर दो ॥ ७ ॥ गोष्ठ बनाओ। इसमें जाकर मनुष्य भी जल पी सकते हैं। अनेक मोटे कवच सीं डालो। लोहे के दृढ़ पात्र उपस्थित करो और चमस को ऐसा बनाओ जिससे जल की बूँद भी न गिरे ॥ ८ ॥ हे देवगण! मैं तुम्हारा ध्यान यज्ञ की ओर खींचता हूँ, क्योंकि यज्ञ ही तुम्हें हव्य भाग देता है। गौऐं जैसे तृण भक्षण कर सहस्र धार वाला दुग्ध प्रदान करती हैं, वैसे ही तुम्हारा ध्यान हमारी कामनाओं को पूर्ण करे ॥ ९ ॥ काष्ठ-पात्र में अवस्थित सोम रस को सींचो। पाषाण के बने आयुधों से पात्र बनाओ। दश अँगुलियों में पात्र को पकड़ो। रथ के दोनों धुरों में वहनशील पशुओं को योजित करो ॥ १० ॥ रथ के दोनों धुरों में शब्द उत्पन्न करता हुआ

पशु रथ का वहन करता है। काष्ठ शकट को काष्ठ निर्मित आधार पर टिकाओ ॥ ११ ॥ हे कर्मवान् पुरुषो! इन्द्र सुख प्रदान करने वाले हैं। इन्हें मङ्गलमय सोम समर्पित करो। इन्हें अन्न दान के लिए प्रसन्न करो। यह अदिति के पुत्र हैं। तुम सबको विपत्तियों का भय है। अतः रक्षा के निमित्त इनका आह्वान करो, जिससे वे यहाँ आकर सोम पीवें ॥ १२ ॥ [११]

सूक्त १०२

(ऋषिः—मुद्गलो भार्म्यश्वः । देवता—द्रुघण इन्द्रो वा ।
छन्दः—बृहती, त्रिष्टुप्)

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥ १ ॥
उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥ २ ॥
अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥ ३ ॥
उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥ ४ ॥
न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥ ५ ॥
ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥६:२०

संग्राम भूमि में जब तुम्हारा रथ अरक्षित हो, उस समय दुर्धर्ष इन्द्र उसके रक्षक हों। हे इन्द्र! तुम इस रणक्षेत्र में धन लाभ के समय हमारे रक्षक होना ॥ १ ॥ जब रथारोहण करती हुई मुद्गल की पत्नी ने सहस्र संख्यक गौओं पर विजय प्राप्त की, तब वायु ने उनके वस्त्रों को उठाया।

मुद्गल पत्नी ने इन्द्र सेना में रथी होकर शत्रुओं से संग्राम किया और उनके पास से उनके गो धन को छीन कर ले आई ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो दुष्ट हमारी हिंसा करना चाहते हैं अथवा हमारा अनिष्ट चिन्तन करते हैं, उनके ऊपर अपने वज्र को गिराओ, शत्रु किसी भी जाति का हो, उसका अपने दुर्धर्ष बल के द्वारा संहार कर डालो ॥ ३ ॥ इस बैल ने जल पीकर तृप्ति को प्राप्त किया। इसने अपने सींग के द्वारा मिट्टी का ढेर खोद डाला और तब वह शत्रु पर झपट पड़ा। वह भोजन की कामना करता हुआ अपने सींग को तीक्ष्ण कर इधर आरहा है ॥ ४ ॥ मनुष्यों ने इस वृषभ को चैतन्य किया। उसे संग्राम भूमि में ले जाकर खड़ा किया। इसके द्वारा ही मुद्गल ने सहस्र संख्यक श्रेष्ठ गौओं को वश में कर लिया ॥ ५ ॥ शत्रु को मारने के लिए बैल को जोता गया। उसकी रस्सी को पकड़ने वाली मुद्गल-पत्नी ने गर्जन किया। वह वृषभ भी शकट को लेकर संग्राम भूमि की ओर दौड़ पड़ा। सभी सेना मुद्गल पत्नी की अनुगामिनी हुई ॥ ६ ॥ [२०]

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।

इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥७॥

शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।

नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥८॥

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।

येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥९॥

आरे अघा को न्वि त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।

नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०॥

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।

एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।

वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥२१ ॥

कुशल मुद्गल ने रथ के पहिये को चारों ओर से बाँधा। फिर उन्होंने रथ में बैल को योजित किया। उस बैल की इन्द्र ने रक्षा की। तब वह बैल द्रुतगति से युद्ध-मार्ग पर चल पड़ा ॥ ७ ॥ जब रथ के अवयव चर्म रज्जु द्वारा बँध गए तब वह भले प्रकार गमन करने लगा। उसने अनेकों का उपकार किया। वह अनेक गौओं को लेकर घर लौटा ॥ ८ ॥ रण-भूमि में गिरे हुए मुद्गल ने बैल का साथ दिया। उस बैल के द्वारा ही मुद्गल ने हजारों गौओं को जीत कर अपने आधीन कर लिया ॥ ९ ॥ कहीं दूर या समीप के देश में भी किसी ने यह देखा है कि जो रथ में जोता जाता है, वही उसका संचालन करने के लिए रथ पर बैठाया जाता है। यह तृण और जल का भक्षण नहीं कर सका है, फिर भी रथ धुरा के बोझे को वहन कर रहा है। इसी के द्वारा स्वामी को विजय प्राप्त हुई है ॥ १० ॥ पति-विहीना नारी के समान ही मुद्गल की पत्नी ने अपनी शक्ति के प्रयोग द्वारा पति के लिए धन पाया। हम ऐसे सारथि की अनुकूलता से विजय पावें और अन्न-धन आदि भी प्राप्त कर सकें ॥ ११ ॥ हे इन्द्र! तुम सम्पूर्ण जगत के चक्षु हो। जिनके नेत्र हैं, उनके नेत्र भी तुम्हारे द्वारा ही ज्योति वाले हैं। तुम अपने दोनों अश्वों को रस्सी से बाँध कर चलाते हुए जल-वृष्टि करते और धन भी देते हो ॥ १२ ॥   [२१]

सूक्त १०३

(ऋषि.—अप्रतिरथ ऐन्द्रः। देवता—इन्द्रः, बृहस्पतिः, अप्वा, इन्द्रो मरुतो वा। छन्दः—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥
सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ।।४।।
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ।।५।।
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।।६।२२।

शत्रुओं के लिए तीक्ष्ण इन्द्र साँड के समान विकराल, मनुष्यों को सशंक करने वाले और वैरियों के नाशक हैं। वे सबको देखते और शत्रुओं को विभिन्न त्रास देते हैं। वे अपनी महिमा से ही बड़ी-बड़ी सेनाओं को जीत लेते हैं ॥ १ ॥ हे वीरो ! तुम इन्द्र की सहायता से संग्राम को जीतो। विपक्षियों को हरा कर भगाओ। इन्द्र सब पर दृष्टि रखते और शत्रुओं को रुलाते हैं। वे संग्राम में सदा विजय प्राप्त करते हैं। वे बाणधारी और दुर्धर्ष हैं। उन्हें उनके स्थान से कोई नहीं हटा सकता। वे जल वृष्टि करने वाले हैं ॥ २ ॥ उनके साथ बाण और तूणीर धारण करने वाले वीर रहते हैं। वे संग्राम भूमि में भयङ्कर शत्रुओं को भी जीत लेते और सबको वश में कर लेते हैं। उनसे सामना करने वाला सदा हारता है। उनका धनुष भयोत्पादक है। वे उसी से शर सन्धान कर शत्रुओं को पतित करते हैं। वे सोमपायी हैं ॥ ३ ॥ हे बृहस्पते ! राक्षसों को मारो और शत्रुओं को पीड़ित करो। तुम शत्रुओं की सेनाओं को नष्ट करते हुए रथारूढ़ होकर आगमन करो। तुम हमारे रथों की रक्षा करो और शत्रुओं को जीतो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के बल को जानने वाले हो। तुम प्रचण्ड बली, तेजस्वी, विकराल कर्मा, प्राचीन कालीन और शत्रु पक्ष पर विजय पाने वाले हो। तुम बल के पुत्र रूप हो। गौओं को प्राप्त करने के लिए जय-लाभ कराने वाले रथ पर आरूढ़ होकर शत्रुओं की ओर दौड़ो ॥ ५ ॥ मेघों को विदीर्ण करने वाले इन्द्र ही गौएं प्राप्त कराते हैं। हे वीरो ! इनके

नेतृत्व में आगे बढ़ो और अपने वीर कर्म का प्रदर्शन करो। मित्रो! इन्हें अनुकूल बनाकर अपना पराक्रम प्रकट करो॥ ६॥   [२२]

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्यो स्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ९ ॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १० ॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ ११ ॥
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १२ ॥
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ १३ । २३

शतकर्मा इन्द्र मेघों की ओर दौड़ते हैं। वे अपने स्थान से कभी नहीं गिरते। वे अपने हाथों में वज्र ग्रहण कर शत्रु सेना पर विजय पाते हैं। उन इन्द्र से संग्राम करने का साहस किसी में नहीं होता। वे इन्द्र रणक्षेत्र में हमारी सेनाओं की रक्षा करने वाले हों॥ ७॥ जिन सेनाओं की अध्यक्षता इन्द्र कर रहे हैं, उन सेनाओं के दक्षिण ओर बृहस्पति रहें। यज्ञ में उपयुक्त सोम उनके साथी हों। शत्रुओं को हराने वाली विजयवाहिनी देव सेनाओं के आगे विकराल कर्मा मरुद्गण चलें॥ ८॥ इन्द्र! जल वर्षक हैं। इनके साथ ही वरुण, आदित्यगण और मरुद्गण भी विकराल कर्म वाले हैं। जब सब देवता लोक को कम्पायमान कर उसे जीतने

लगे तब सर्वत्र घोर कोलाहल होने लगा ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! अपने आयुधें को उठाओ। हमारे वीरों के मनों को उत्साह से पूर्ण कर दो। हमारे अश्व वेग वाले हों। विजयशील रथ से जय रूप ध्वनि प्रकट हो ॥ १० ॥ जब हम संग्राम के लिए पताका फहराते हैं, उस समय इन्द्र हमारा पक्ष लेवे हैं। हमारे बाण हमको विजयी करें। हमारे वीर विकराल कर्म वाले हैं। हे देवगण ! संग्राम में हमारे रक्षक होओ ॥ ११ ॥ हे पाप के अभिमानी देवताओ ! तुम यहाँ से चले जाओ। उन शत्रुओं के पास जाकर उन्हीं के हृदयों को लुभाओ। उनके शरीर में वास करो और उन्हें शोक के द्वारा दग्ध करो। वे घोर अंधकार से भरी हुई रात्रि को प्राप्त हों ॥ १२ ॥ हे मनुष्यो ! आगे बढ़ो। तुम विजय प्राप्त करो। तुम जैसे विकराल वीर हो वैसी ही विकरालकर्मा तुम्हारी भुजाऐं हों। इन्द्र तुम्हारी रक्षा करें ॥ १३ ॥ [२३]

सूक्त १०४

(ऋषि—रेणुः। देवता—इन्द्रः, इन्द्रसोमौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम्।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य ॥ १ ॥
अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ २ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ३ ॥
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ४ ॥
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ॥ ५ ॥ २४

हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा बुलाये जा चुके हो। हमारे यहाँ यह सोम संस्कृत हुआ है। तुम अपने दोनों अश्वों के द्वारा यहाँ शीघ्र ही

आगमन करो । मुख्य स्तोताओं ने स्तुति करते हुए यह सोम प्रस्तुत किया, तुम इसे पियो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने हर्यश्वों के अधिपति हो । जिस सोम को जल में मिश्रित करके यह यज्ञकर्त्ता यहाँ लाये हैं, तुम उसे पीकर अपने जठर को परिपूर्ण करो । तुम्हारे निमित्त जिस मधुर रस को पाषाणों ने सींचा है, उसके द्वारा हर्ष प्राप्त करते हुए अपनी श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम हर्यश्व स्वामी हो । हे वर्षक इन्द्र ! यह सोम निष्पन्न हुआ है । यज्ञ में तुम्हारे आगमन को जानकर हमने तुम्हारे लिए यह सोम रखा है । तुम उत्कृष्ट स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न होओ । यह स्तोत्र तुम्हारी विविध प्रकार वृद्धि करने वाला हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम सामर्थ्यवान हो । यह उशिज् वंशज तुम्हारे यज्ञ में प्रवृत्त हुए हैं । जो तुम्हारी शरण में गये उन्होंने तुम्हारी कृपा से अन्न प्राप्त किया और अपत्यवान् होकर यजमान के दिये हुए गृह में निवास करने लगे । वे सब सुखी हुए और सदा तुम्हारी स्तुति करने वाले हुए ॥ ४ ॥ हे हर्यश्व स्वामी इन्द्र ! तुम्हारा यश अत्यन्त श्रेष्ठ है । तुम्हारा धन अद्भुत है और तुम हर प्रकार तेजस्वी हो । तुमने स्तोता को जो धन दान किया है, उससे सुखी होकर तुम्हारी स्तुति करते हुए स्तोता ने अपनी और अपने मित्रों की रक्षा की है ॥ ५ ॥ [२४]

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥ ६ ॥
सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥ ७ ॥
सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥ ८ ॥
अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥ ९ ॥
वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।

आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥ १० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११ । २५

हे हर्यश्ववान् इन्द्र ! जो सोम तुम्हारे लिए निष्पन्न हुआ है, तुम उसका पान करके अपने दोनों अश्वों के सहित यज्ञों में गमन करते हो। हे इन्द्र ! यह यज्ञ तुम्हें ही प्राप्त होते हैं। तुम यज्ञ को देखकर धन देते हो। तुम अत्यन्त शक्ति वाले हो ॥६॥ शत्रुओं का पराभव करने वाले, महान् अन्न वाले, सोम से हर्षित होने वाले इन्द्र की स्तुति करने पर सुख प्राप्त होता है। उन इन्द्र का विरोध कोई नहीं कर सकता। वे स्तोत्रों से अलंकृत होते हैं। नमस्कारों द्वारा उनकी पूजा होती है ॥७॥ हे इन्द्र ! तुमने देवताओं और मनुष्यों के हित के लिए निन्यानवे नदियों के प्रवाहित होने का मार्ग बनाया। गङ्गा आदि सप्त नदियों के द्वारा तुमने शत्रु के नगरों को नष्ट किया और समुद्र को जल से परिपूर्ण किया ॥ ८ ॥ तुम जल लाने के लिए एकाकी ही चले। तुमने जलों के आवरक मेघ को विदीर्ण किया। तुमने अपने वृत्र-हनन कार्य के द्वारा सब प्राणियों का पालन किया ॥९॥ इन्द्र की स्तुति करने पर कल्याण होता है, क्योंकि वे अत्यन्त बली और कर्मवान् हैं। श्रेष्ठ स्तोत्र रचे जाकर उन्हें पूजा जाता है। उन्होंने शत्रुओं को हराकर वृत्र का हनन किया। इससे विश्व का पोषण हुआ ॥१०॥इन्द्र अपने उपासक की रक्षा के लिए विकराल रूप बनाकरसंग्राम में शत्रुओं का वध करते और धन प्राप्त करते हैं। वे ऐश्वर्यवान् और स्थूल देह वाले हैं। संग्राम भूमि में जब धन वितरित किया जायगा तब इन्द्र की अध्यक्षता में ही यह कार्य सम्पन्न होगा। हम उन्हीं इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥११॥ [२५]

सूक्त १०५

(ऋषि–सुमित्रो दुर्मित्रो वा कौत्सः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्

अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥१॥
हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥२
अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् ।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥३॥
सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् ।
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥४
अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै ।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥५।८६

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों की कामना करते हो यह स्तुति तुम्हारी ही है। यह मधुर सोम-रस तुम्हारे लिए अर्पित है। हम वृष्टि-कामना वाले मनुष्यों के खेत को तुम जल से परिपूर्ण करोगे ॥१॥ अनेककर्मा इन्द्र के दोनों अश्व चतुर हैं। उनके केश उज्वल हैं। उन अश्वों के स्वामी इन्द्र धन-दान के निमित्त यहाँ आगमन करें ॥२॥ बलवान् इन्द्र ने जब अपने अश्वों को रथ में योजित किया तब सभी प्राणी सुखी हुए और उनके पाप-दल नष्ट होगए ॥३॥ इन्द्र ने मनुष्यों की पूजा को स्वीकार कर सब धनों को इकट्ठा किया। फिर उन्होंने अपने विभिन्न कर्म वाले और चलने में शब्द करने वाले अश्वों को चलाया ॥४॥ इन्द्र अपने दोनों अश्वों पर आरूढ हुए। उन्होंने यज्ञ में जाकर शरीर की पुष्टि के लिए अपने श्रेष्ठ जबड़ों को कम्पित कर हव्य प्रस्तुत करने का आदेश दिया ॥५॥ [२६]

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा ।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥६
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् ।

अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥७
अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः ।
नाब्रह्मा यज्ञ ऋधगजोषति त्वे ॥८
ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूद्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् ।
सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ॥६
श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः ।
यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०
शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥११।२७

इन्द्र सौंदर्य सम्पन्न हैं। उनकी शक्ति महान् है। वे मरुद्गण के सहित यजमान के कर्म की प्रशंसा करते हैं। ऋभुओं ने जैसे अपने कर्म द्वारा रथादि की रचना की, वैसे ही इन्द्र ने अनेकों वीर-कर्मों को किया है ॥६॥ इन्द्र के दाढ़ी मूँछ हरे वर्ण के हैं। उनके अश्व भी हरित वर्ण वाले हैं। उनकी हनु शोभा-सम्पन्न है। वे आकाश के समान विस्तारयुक्त हैं। उन्होंने राक्षसों का नाश करने के लिए अपने हाथों में वज्र ग्रहण किया था ॥७॥ हे इन्द्र ! हमारे सब पापों को मिटाओ। वेद विमुख पुरुषों को ऋचाओं द्वारा नष्ट करने में हम समर्थ हों। जिस यज्ञ में स्तोत्र नहीं किये जाते उस यज्ञ के प्रति भी स्तुतियों वाले यज्ञ के समान तुम प्रीति नहीं करते ॥८॥ यज्ञ का भार वहन करने वाले ऋत्विजों ने जब यज्ञ कर्म का आरम्भ किया, उस समय हे इन्द्र ! तुम यजमान की नौका पर चढ़कर उसे पार लगाओ ॥९॥ पयस्विनी गौ तुम्हारा कल्याण करे। जिस दर्वी-पात्र से तुम अपने पात्र को मधु से पूर्ण करते हो, वह पात्र पवित्र और मंगलकारी हो ॥१०॥ हे इन्द्र ! सुमित्र ने तुम्हें प्रसन्न करने को सौ स्तोत्रोंका उच्चारण किया और दुर्मित्र ने भी तुम्हारी स्तुति की थी। तुमने राक्षस का बध करते समय कुत्स के पुत्र को बचाया था ॥११॥

सूक्त १०६

(ऋषि—भूतांशः काश्यपः । देवताः—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥१

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥२

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४

वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या पुरीषा ॥५।१

हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारी आहुतियों की कामना करते हो। जैसे वस्त्र बुनने वाला वस्त्र को बढ़ाता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र की वृद्धि करते हो। तुम दोनों एक साथ आगमन करते हो। इसका उल्लेख करते हुए यह यजमान तुम्हारी स्तुति करता है। तुमने सूर्य चन्द्र के समान ही खाद्यान्न को तेज से परिपूर्ण किया है ॥१॥ दो बैल जिस प्रकार तृण-युक्त भूमि में तृण भक्षण करते हुए घूमते हैं, वैसे ही तुम यज्ञ में दान करने वाले पुरुषों के पास गमन करते हो। रथ में जुते दो अश्वों के समान धन देने के लिए तुम स्तुति करने वाले के पास पहुँचते हो। दो भैंसे जैसे जल पीने के स्थान से दूर नहीं हटते, वैसे ही तुम सोम पीने के स्थान से मत हटना। तुम तेजस्वी दूत के समान उपासकों के पास जाओ ॥ २ ॥ पक्षी के दोनों पंख जैसे परस्पर मिले रहते हैं, वैसे ही तुम दोनों भी संयुक्त रहते हो। इस यज्ञ में तुम्हारा आगमन दो विचित्र पशुओं के समान

हुआ है। तुम सब जगह निवास करने वाले ऋत्विजों के समान विभिन्न यज्ञों में देवताओं का पूजन करते हो। यज्ञ-सम्पादक अग्नि के समान तुम अत्यन्त, तेजस्वी हो ॥३॥ माता-पिता का पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है, वही स्नेह तुम हम पर करो। तुम अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी होओ। ऐश्वर्यवान् पुरुषों के समान उपकार करने वाले बनो। तुम सूर्य की किरणों के समान प्रकाश दो और उपासकों को कल्याण देने वाले बनो। हमारे इस यज्ञ में कल्याणकारी जन के समान आगमन करो॥ ४॥ हे अश्विद्वय! श्रेष्ठ चाल वाले दो बैलों के समान तुम श्रेष्ठ एवं दर्शनीय हो। मित्रा-वरुण के समान तुम श्रेष्ठ एवं दर्शनीय हो। मित्रावरुण के समान तुम सत्यदर्शी हो और दुःख को हटाते हुए स्तुत होते हो। जैसे दो अश्व पेट भरने पर हृष्ट-पुष्ट होते हैं, वैसे ही तुम हव्य पाकर पुष्ट होते हो। तुम आलोकमय आकाश के वासी हो। तुम्हारे शारीरिक अंग सुगठित और दृढ़ हैं ॥५॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥६
पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा।
ऋभू नामत्खरज्भुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७
घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेवि ता तुर्फरी फारिवारम्।
पतरेव चचरा चंद्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्या न जग्मी ॥८
बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोंऽशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९
आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेवगवि नीचीनबारे।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०
ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम्।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥२

हाथी पर शासन करने वाले अंकुश के समान तुम भी सब जीवों के लिए अंकुश रूप हो ! वधकारी के समान शत्रुओं के नाशक और यजमानों के पालनकर्त्ता हो। तुम दोष रहित, लोक विजयी एवं बलवान हो। तुम मेरी मरणधर्मा देह को गए हुए यौवन को पुनः प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अत्यन्त बल वाले हो जैसे लम्बे पैर वाला मनुष्य जल से शीघ्र पार होता है, वैसे ही तुम मनुष्य के शरीर को संकट से दूर करो। तुमने ऋभुओं के समान अत्यन्त श्रेष्ठ रथ प्राप्त किया है। यह रथ द्रुतगामी तथा शत्रुओं के धन को जीतकर लाने वाला है ॥७॥ हे अश्विद्वय ! जैसे पहलवान अपने देह में पुष्टि के लिए घृत सींचते हैं, वैसे ही तुम अपनी देह को घृत से पुष्ट करो। तुम पक्षी के समान मनोहर और सब स्थानों पर विहार करने वाले हो। तुम शत्रुओं को संहार करते और धनों की रक्षा करते हो। तुम इच्छा मात्र से ही अलङ्कृत होते और स्तुतियों की कामना करते हुए यज्ञ में आगमन करते हो ॥८॥ लम्बे पाँव वाला व्यक्ति पार लगाता हुआ जैसे शरण देता है, वैसे ही तुम हमें शरण दो। स्तुति करने वाले के स्तोत्र को तुम ध्यान से श्रवण करते हो। तुम यज्ञ के दो खंभों के समान हमारे इस अद्भुत यज्ञ में आगमन करो ॥९॥ जैसे दो मधु मक्खियाँ गुंजती हुई, छत्ते में मधु का पूरण करती हैं, वैसे ही तुम गौओं के थनों में मधु के समान दूध को भर दो। जैसे श्रम से जीविकोपार्जन करने वाला पुरुष श्रम करके श्रम बिन्दुओं में भीग जाता है, वैसे ही तुम पसीने से भीगकर जल सींचो। जैसे गौ तृण सम्पन्न भूमि में जाकर अपना पेट भरती है, वैसे ही तुम भी यज्ञ में हव्य रूप अन्न प्राप्त कर अपने उदर को भरते हो ॥१०॥ हम स्तुतियों को बढ़ाते और हविरन्न को विभाजित करते हैं। तुम एक रथ पर आरूढ़ होकर हमारे यज्ञ स्थान में पधारो। गौ के स्तन में अत्यन्त मधुर अन्न के समान दूध भरा है। भूताश ऋषि ने इस स्तोत्र का उच्चारण कर अश्विनीकुमारों की कामना पूर्ण की है ॥११॥

सूक्त १०७

(ऋषिः—दिव्यो दक्षिणा वा प्राजापत्या । देवता—दक्षिणा तद्दातारो वा । छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥
उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥२॥
दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥३॥
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सङ्गमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥४॥
दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥५॥३॥

यजमानों का पालन करने के लिए ही सूर्यात्मक इन्द्र का महान् तेज उत्पन्न हुआ। तब सभी प्राणी अन्धकार से मुक्त हुए। पितरों द्वारा प्रदत्त ज्योति प्रकट हुई और दक्षिणा देने का मार्ग खुल गया ॥ १ ॥ दक्षिणा देने वाले यजमान स्वर्ग के श्रेष्ठ स्थान पर वास करते हैं। अश्व-दान करने वाले पुरुष सूर्य में मिल जाते हैं। वस्त्र देने वाले सोम के पास गमन करते और सुवर्ण देने वाले अमृतत्व को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ दक्षिणा पुण्य कार्यों को सम्पूर्ण करने वाली है। देवताओं के अनुष्ठान का यह प्रमुख अंग है। मिथ्याचरण वाले पुरुषों के कार्यों को देवगण पूर्ण नहीं करते। निन्दा से भयभीत होने वाले और दक्षिणा-दाता यजमानों का कर्म ही पूर्णता को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ सैकड़ों प्रकार से प्रवाहित होने वाले वायु के लिए, सूर्य द्वारा मनुष्यों का उपकार करने वाले अन्य देवताओं के लिए यज्ञ में हविरन्न प्रदान किया जाता है। जो दानशील व्यक्ति देवताओं को तृप्त करते हैं, दक्षिणा द्वारा

उनका अभीष्ट सिद्ध होता है। दक्षिणा को ग्रहण करने में समर्थ सात पुरोहित इस यज्ञ स्थान में उपस्थित हैं ॥ ४ ॥ दानशील व्यक्ति ही गाँव में प्रमुख व्यक्ति होता है। उसे प्रत्येक शुभ कर्म में प्रथम आमंत्रित किया जाता है। जो लोग सर्व प्रथम दक्षिणा आदि प्रदान करते हैं उन्हें मैं राजा के समान श्रद्धा के योग्य समझता हूँ ॥ ५ ॥   [३]

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥
दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥७।
न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥
भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥९॥
भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥१०॥
भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥११॥८॥

जो दक्षिणा द्वारा पुरोहित को सर्व प्रथम सन्तुष्ट करते हैं, वे ऋषि ब्रह्मा कहे जाने योग्य हैं। वही सामगाता, स्तोता माने जाते हैं और प्रमुख आसन उन्हीं को दिया जाता है। क्योंकि वे अग्नि के तीनों रूपों के भी जानने वाले हैं ॥ ६ ॥ दक्षिणा के रूप में मन को प्रसन्न करने वाला सुवर्ण, गौ, अश्व और आत्म रूप आहार भी प्राप्त किया जा सकता है। देह की रक्षा करने वाले कवच के समान ही मेधावीजन दक्षिणा को भी रक्षा करने वाली मानते हैं ॥ ७ ॥ दानशील पुरुष देवत्व प्राप्त करते हैं। वे अकाल मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। वे दुःख, क्लेश से बचते हैं तथा दारिद्र उनके पास नहीं

थाता। उनके द्वारा दी गई दक्षिणा उन्हें सभी पार्थिव या दिव्य पदार्थ प्रदान करती है ॥ ८ ॥ दानदाता व्यक्तियों को सर्व प्रथम घृत-दुग्ध प्रदात्री गौ सर्व प्रथम मिलती है। फिर वे सुन्दरी, सुशीला, नवोढ़ा पत्नी को प्राप्त करते हैं। वे हर्ष प्राप्त करते और वही आक्रमणकारी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥ दानदाता पुरुष द्रुतगामी और अलंकृत अश्व तथा सुन्दरी नारी को प्राप्त करता है। पुष्करणी के समान स्वच्छ और देव मन्दिर के समान रमणीय घर भी उसे मिलता है ॥ १० ॥ दानदाता पुरुष को द्रुतगामी अश्व वहन करते हैं। श्रेष्ठ रथ में उसके अश्व योजित किये जाते हैं। युद्ध-काल उपस्थित होने पर देवगण उसकी रक्षा करते हैं तब रणक्षेत्र में दाता शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ [४]

सूक्त १०८

(ऋषिः—पणयोऽसुराः, सरमा देवशुनी। देवता—सरमा, पणयः। छन्दः—त्रिष्टुप्)

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥१॥
इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥
कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥
नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥
इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥५॥

हे सरमा! तुम यहाँ किस कार्य से आई हो? यह स्थान तो बहुत दूर है। यहाँ आने वाला पीछे की ओर दृष्टि नहीं फेर सकता। तुम यहाँ

कितनी रात्रियों में आ सकी हो ? तुम नदी के गहन जल को कैसे पार कर सकी होगी ? हमारे पास की किस वस्तु की तुम इच्छा करती हो ॥ १ ॥ हे पणियो ! मैं इन्द्र की दूती के रूप में तुम्हारे पास आई हूँ। तुम्हारे यहाँ जो गोधन एकत्र है, मैं उसे लेना चाहती हूँ। मार्ग में, मैं जल से डरी तो थी, पर मैं जल के द्वारा ही रक्षित होकर उसे पार कर सकी ॥ २ ॥ हे सरमा ! तुम जिन इन्द्र की दूती के रूप में हमारे पास आई हो, वे इन्द्र कैसे हैं ? उनकी सेना किस प्रकार की है ? उनकी शक्ति कैसी है ? वे इन्द्र हमारे पास आगमन करें। हम उनसे मित्रता करने को तैयार हैं। वे हमारी गौओं को ले लें ॥ ३ ॥ हे पणियो ! मैं जिन इन्द्र की दूती होकर यहाँ आई हूँ, वे इन्द्र अजेय हैं। वे सब को हराने में समर्थ हैं। अत्यन्त जल वाली नदियाँ भी उनका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकतीं। वे तुम्हें मार कर धराशायी करने में सामर्थ्यवान् हैं ॥ ४ ॥ हे सरमा ! तुम स्वर्ग की सीमा से चल कर इतनी दूर यहाँ आई हो इसलिए हम तुम्हें, इनमें से जिन जिन गौओं को तुम लेने की इच्छा करो, वही देदें। वैसे, बिना युद्ध के कौन गौएँ दे सकता था। हम भी विभिन्न तीक्ष्ण आयुधों से सम्पन्न हैं ॥ ५ ॥ [४]

असन्या व. पणयो वचास्यनिपव्यास्तन्वः सन्तु पापी' ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृलात् ॥६॥
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति य पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्य ॥७॥
एह गमन्नृपयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥८॥
एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवे मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९॥
नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥
दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।

बृहस्पतिर्या अविन्द्न्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥११॥६॥

हे पणियो ! तुम्हारी उक्ति वीरों के मुख से निकलने योग्य नहीं है। तुम्हारे मन में पाप बसा है। कहीं तुम्हारे देह इन्द्र के बाणों से विंध न जाँय। तुम्हारे इस मार्ग पर कहीं देवताओं द्वारा आक्रमण न हो जाय। तुम गौएं न दोगे तो विपत्तियाँ उपस्थित होंगी और बृहस्पति तुम्हें दुःख में डाल देंगे ॥ ६ ॥ हे सरमा ! हम पर्वतों द्वारा सुरक्षित हैं। हम गौओं, अश्वों तथा अन्य विविध ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं। रक्षा कार्य में नियुक्त हमारे वीर इस स्थान की भले प्रकार रक्षा करते हैं। तुमने हमारे इस गौओं से युक्त स्थान में निरर्थक ही आगमन किया है ॥ ७ ॥ आंगिरस अयास्य ऋषि और नवगुगण सोम की शक्ति से सम्पन्न होकर यहाँ आगमन करेंगे। वे तुम्हारी सभी गौओं को ले जाँयगे। उस समय तुम्हारा अहंकार नष्ट हो जायगा ॥८॥ हे सरमा ! भयभीत देवताओं द्वारा प्रेरित होकर तुम यहाँ आई हो। तुम्हें हम बहिन के समान मानते हैं और तुम्हें हम गोधन रूप सम्पत्ति का भाग प्रदान करते हैं। तुम अब यहां से लौट कर न जाना ॥ ९ ॥ हे पणियों ! मैं भाई-बहिन की गाथा को नहीं जानती। इन्द्र और आंगिरस यह भले प्रकार जानते हैं कि उन्होंने तुम्हारे गौओं को प्राप्त करने के लिए रक्षित करके यहाँ भेजा है। मैं उन्हीं की सुरक्षा में यहाँ आ सकी हूँ। अतः तुम अब यहाँ से कहीं दूर चले जाओ ॥ १० ॥ हे पणियो ! यहाँ से कहीं दूर चले जाओ। कष्ट पाने वाली गौएं इस पर्वत से निकल कर धर्म के आश्रय को प्राप्त हों। सोम का अभिषव करने वाले पाषाण, ऋषिगण, सोम, बृहस्पति तथा अन्य सब विद्वान् इन छिपी हुई गौओं के सम्बन्ध में भले प्रकार जान गए हैं ॥ ११ ॥ [६]

सूक्त १०९

(ऋषिः—जुहूर्ब्रह्मजाया, ऊर्ध्वनाभा वा ब्राह्मः। देवताः—विश्वेदेवाः। छन्दः—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४
ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवाना भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीता जुह्वं न देवाः ॥५
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजाया पुनर्ददुः ॥६
पुनर्दाय ब्रह्मजाया कृत्वी देवैर्निकिल्विषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥७॥

जब बृहस्पति ने अपनी पत्नी जुहू को छोड़ दिया तब उन्होंने ब्रह्म किल्विष पाया । उस समय द्रुतवेग वाले वायु, प्रदीप्त अग्नि, तेजस्वी सूर्य, सुखकारी सोम, जल के अधिष्ठाता वरुण और सत्यरूप प्रजापति की सन्तानों ने उन्हें प्रायश्चित कराया ॥१॥ राजा सोम ने उज्वल चरित्र वाली नारी सर्व प्रथम बृहस्पति को दी । मित्रावरुण ने इसमें सहमति प्रकट की और यज्ञ को सम्पन्न करने वाले अग्नि उसे हाथ पकड़ कर ले गए ॥२॥ यह पत्नी विधिवत् विवाहिता है । सबने यही कहा । इनकी खोज में जो दूत गया था, उस पर इन्हें आसक्ति नहीं हुई । बलवान राजा का राज्य जैसे रक्षित होता है, उसी प्रकार इनका सतीत्व भी सुरक्षित रहा ॥३॥ तपस्वी सप्तर्षियों ने और सनातन देवताओं ने इनके सम्बन्ध में कहा कि यह अत्यन्त पवित्र चरित्र वाली हैं । उन्होंने बृहस्पति को पति बनाया है । तप के प्रभाव से निम्न स्तर वाला मनुष्य भी उच्च स्थान में बैठ सकता है ॥४॥ बिना स्त्री के बृहस्पति ने ब्रह्मचर्य पालन किया । वे सब देवताओं में मिलकर उन्हीं के

अवयव रूप होगए। जैसे उन्होंने सोम का द्वारा पत्नी को प्राप्त किया था, इसी प्रकार उन्होंने जुहू नाम की पत्नी को भी पाया ॥५॥ देवताओं और मनुष्यों ने मिलकर उनकी भार्या फिर उन्हीं को सौंप दी। राजाओंने भी शुद्ध आचरण की शपथ के सहित उनकी पत्नी उन्हें दी ॥६॥ देवताओं ने उनकी पत्नी को शुद्ध चरित्र वाली और निष्पाप बताया। फिर उन्होंने सर्व श्रेष्ठ पार्थिव सम्पत्ति को बाँटकर सुखपूर्वक निवास किया ॥७॥

सूक्त ११०

(ऋषि:—जमदग्नी रामो वा। देवता—आप्रियः। छन्दः—त्रिष्टुप्)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१
तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५।८

हे मेधावी अग्ने! तुम मनुष्यों के घर में प्रवृद्ध होकर सब देवताओं का पूजन करो। तुम्हारा मित्र उपासक तुम्हारा यज्ञ करता है, यह जानकर सब देवताओं को यहाँ लाओ। तुम श्रेष्ठ बुद्धि वाले और दौत्यकर्म में चतुर हो ॥१॥ हे अग्ने! यज्ञ के साधन रूप जो पदार्थ हैं, उन्हें मधुयुक्त करके अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं से आस्वादन करो। श्रेष्ठ भावना के सहित हमारी स्तुति और यज्ञ को समृद्ध करो। हमारे यज्ञ को देवताओं के लिए ग्रहणीय करो ॥२॥ हे अग्ने! तुम स्तुत्य, नमस्कार योग्य और देवताओं का

आह्वान करने वाले हो। हे देवहोता महान्देव ! तुम वसुगण के सहित आगमन करो। तुम्हारे समान यज्ञकर्त्ता अन्य कोई नहीं है, इसलिए हम तुम्हें प्रेरित करते हैं। तुम समस्त देवताओं के निमित्त यज्ञ करो ॥३॥ प्रारम्भ में कुश विस्तृत कर वेदी को आच्छादित किया जाता है। उनके लिए श्रेष्ठ कुश को विस्तृत करते हैं। उस कुश पर सब देवताओं सहित अदिति सुखपूर्वक विराजमान होते हैं ॥४॥ सुन्दर वेश भूषा से सज्जित हुई नारियाँ जैसे पति के समीप जाती हैं, वैसे ही इन सब द्वारों की अभिमानिनी देवियाँ विस्तृत हों। हे द्वार देवियो ! तुम इस प्रकार खुल जाओ जिससे देवगण उसमें सरलतापूर्वक प्रविष्ट हो सकें ॥५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उपसानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥८
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९
उपावसृज त्मन्या समञ्जदेवाना पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥९

रात्रि में निद्रा का जो सुख है, उसे रात्रि और उषा प्रकट करें। वे यज्ञ-भाग पाने में समर्थ हैं। अतः परस्पर युक्त होकर विराजें। वे दोनों

दिव्य लोक में निवास करने वाली नारी के समान शोभावती और तेज धारण करने वाली हों ॥ ६ ॥ देवताओं द्वारा नियुक्त दो होता ही श्रेष्ठ स्तोत्र उच्चारित करते हैं। वही यज्ञ-कार्य का सम्पादन करते हैं। वही ऋत्विजों को कर्म की प्रेरणा देते हैं। वे प्रकाश को प्रकट करने वाले और कर्म में चतुर हैं॥७॥ भारती हमारे यज्ञ में शीघ्र आगमन करें। इला भी इस यज्ञ को जानकर यहाँ आवें। यह दोनों और तीसरी सरस्वती अद्भुत कर्म वाली हैं। यह तीनों देवता हमारे अभिमुख श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठित हों ॥ ८ ॥ देवताओं की मातृ रूपिणी आकाश-पृथिवी हैं। उन दोनों को जिन देवता ने प्रकट किया और सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों की रचना की है, उन त्वष्टादेव का, हे होता! पूजन करो। तुम अन्नवान् एवं मेधावी हो, अतः यज्ञ-कर्म में कोई अन्य तुम्हारी समानता करने में समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ हे यूप! देवताओं के लिए यथा समय तुम स्वयं यज्ञीय द्रव्य लाकर अर्पित करो। वनस्पति, शमिता और अग्नि इस मधु घृत-सम्पन्न यज्ञीय पदार्थ का सेवन करें ॥१०॥ अग्नि ने उत्पन्न होते ही यज्ञ की रचना की। वही देवताओं के लिए अग्रगण्य दूत हुए। अग्नि-रूप होता मन्त्र का उच्चारण करें। जो यज्ञीय द्रव्य स्वाहा के साथ प्रदान किया जाता है, उसे देवगण स्वीकार करें ॥ ११॥

सूक्त १११

(ऋषिः—अष्ट्रादंष्ट्रो वैरूपः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्,)

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥१

ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥२

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥३

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि दाधार यो धरुणं सत्यताता ॥४

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
मही चिद् द्यामातनोत्सूर्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥५।१०

हे स्तोताओ ! ज्यों-ज्यों तुम्हारी बुद्धि का विकास हो, त्योंही विकसित स्तोत्रों का उच्चारण करो। सत्य कर्म के द्वारा इन्द्र को आहूत करो। वे इन्द्र वीरकर्मा हैं और स्तुतियों को जानकर स्तोताओं पर अनुग्रह करते हैं ॥१॥ जल के आश्रय के भी आश्रय रूप इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी हैं। जैसे अल्प वयस्क गौ का बछड़ा मिलता है, वैसे ही इन्द्र सबसे मिलने वाले हैं। यह इन्द्र कोलाहल करते हुए उत्पन्न होते हैं वे बहुत से जल का निर्माण करते हैं ॥२॥ इन्द्र इस स्तोत्र को सुनते हैं। वे विजय प्राप्त करने वाले हैं। उन्होंने सूर्य का पथ निर्मित किया है। उन्होंने सेना को उत्पन्न किया। वे गौओं के अधिपति और स्वर्ग लोक के भी स्वामी हैं। उनका विरोध करने में कोई समर्थ नही है ॥३॥ अंगिराओं ने जब स्तुति की, तब इन्द्र ने अपने बल से मेघ के आवरण को विदीर्ण किया। उन्होंने सत्य रूप में शक्ति धारण की और अधिक जल की रचना की ॥ ४ ॥ एक ओर आकाश-पृथिवी और दूसरी ओर इन्द्र हैं। वे सब सोम-यागों के ज्ञाता हैं। वे दुःखों के नष्ट करने वाले हैं। सूर्य को प्रकाशित कर उन्होंने आकाश को सुशोभित किया है। वे धारण कर्म में कुशल हैं, इसीलिए उन्होंने आकाश को अधर में धारण किया है ॥५॥

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥६

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥७

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।

क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥८
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुचेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥६
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१०॥११

हे इन्द्र ! तुमने वृत्र का संहार किया । यज्ञ-विमुख वृत्र जब वृद्धि को प्राप्त होरहा था, तब तुमने अपने पराक्रम से उसकी समस्त माया को दूर कर दिया । फिर हे इन्द्र ! तुम बल से पूर्ण होकर विकराल बन गये थे ॥६॥ जब उपाएं सूर्य से मिलीं, तब सूर्य की रश्मियों ने विभिन्न रूप धारण किया । फिर जब नक्षत्र को आकाश में देखा, तब मार्ग चलने वाला कोई मनुष्य सूर्य के दर्शन न कर सका ॥७॥ जो जल इन्द्र की आज्ञा से प्रवाहित हुआ, यह जल बहुत दूर चला गया । उस जल का मस्तक और अग्रभाग कहाँ है ? हे जल ! तुम्हारा मध्य और अन्त कहाँ है ॥८॥हे इन्द्र ! वृत्रासुर ने जब जल को रोक लिया था, उस समय तुमने जल का उद्धार किया । तभी वह जल वेग से धावित हुआ । इन्द्र ने जब अपनी इच्छा से जल को छोड़ा तब वह जल किसी प्रकार न रुक सका ॥६॥ समस्त जल मिलकर समुद्र की ओर गमन करते हैं । शत्रुओं को क्षीण करने वाले और शत्रु-नगरी को तोड़ने वाले इन्द्र सब जलों के अधिपति हैं । हे इन्द्र ! पृथिवी पर स्थित समस्त यज्ञीय पदार्थ और कल्याणकारी स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करें ॥१०॥

सूक्त ११२

(ऋषि— नभः प्रभेदनो वैरूपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्यप्रातः सावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥ १ ॥

यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥ २ ॥
हरित्वता वर्चसा सूर्यस्व श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥ ३ ॥
यस्य त्यत्ते महिमानं मदेष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥ ४ ॥
यस्य शश्वत्पपिवाँ इन्द्र शत्रूननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरन्धिं तविषीमियर्ति स ते मदाय सुत इंद्र सोमः ॥ ५ ॥ १२

हे इन्द्र ! यह संस्कृत सोम प्रस्तुत है। जितना चाहो पान करो। जो सोम प्रातः सवन में तुम्हारे पीने के योग्य है। तुम उसे पीकर शत्रु का संहार करने को उत्साहित होओ। हम श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा तुम्हारा पूजन करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ मन से द्रुतगति वाला है। अपने उसी रथ पर आरूढ़ होकर आगमन करो। जिन अश्वों द्वारा तुम सुख-पूर्वक गमन करते हो, वे हर्यश्व वेगवान् हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने हरित् तेज और सूर्य से भी अधिक आभा वाले होकर अपने देह को अलंकृत करो। हम तुम्हें बंधुभाव से आहूत करते हैं। तुम हमारे साथ बैठकर सोम पान द्वारा हर्ष को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥ सोम पान द्वारा उत्पन्न हर्ष से तुम अत्यन्त महिमा वान् होते हो। तुम्हारी उस महिमा को धारण करने में आकाश-पृथिवी असमर्थ हैं। हे इन्द्र ! तुम अपने प्रीतिमय अश्वों को योजित कर यजमान के घर में हविरन्न की ओर आगमन करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! जिस यजमान के सोम को पीकर तुमने अपने पराक्रम को प्रदर्शित कर शत्रु का नाश किया है, वही यजमान आज तुम्हारे लिए श्रेष्ठ स्तुतियाँ प्रस्तुत कर रहा है। तुम्हारे हर्ष के लिए ही यह मधुर सोम अर्पित है ॥ ५ ॥ [१२]

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥ ६ ॥
वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥ ७ ॥
प्र त इंद्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥ ८ ॥
नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥ ६ ॥
अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत्सत्यशुष्माभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥१०॥१३

हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम इस सोम पात्र को सदा प्राप्त करते हो । इसका पान करो । जिस सोम की कामना देवता करते हैं, वही मधुर और हर्षकारी सोम पात्र में भरा है ॥६॥ हे इन्द्र ! अन्न एकत्र करके स्तोतागण तुम्हें विभिन्न स्थानों में आहूत करते हैं । परन्तु हमारे द्वारा अर्पित सोम अत्यन्त मधुर है, तुम इसी का आस्वादन करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! प्राचीन कालमें तुमने जो पराक्रम प्रदर्शित किया था, मैं उसका कीर्त्तन करता हूँ । तुमने जल के लिए मेघ को विदीर्ण किया था और स्तुति करने वाले को सरलता से गौ प्राप्त कराईं थीं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो । तुम स्तोताओं के मध्य सुशोभित होओ । कर्म-कुशल व्यक्तियों में तुम सबसे अधिक बुद्धिमान् हो । पास या दूर कहीं भी कोई तुमसे अधिक अनुष्ठित नहीं होता । हे इन्द्र ! हमारी ऋचाओं को बढ़ाकर विभिन्न फल वाली करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी याचना करते हैं । हमें तेजस्विता प्रदान करो । हम तुम्हारे बन्धु के समान हैं । तुम्हारी शक्ति महान् है । तुम संग्राम में तत्पर होने वाले हो । जहाँ धन-प्राप्ति की आशा नहीं, वहाँ भी तुम हमें धन-प्राप्त कराने वाले बनो ॥ १० ॥ [१३]

सूक्त ११२ (दसवां अनुवाक)

(ऋषिः—शतप्रभेदनो वैरूप. । देवता—इन्द्र । छन्द.—त्रिष्टुप्,)

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमां अवर्धत ॥१॥
तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसाशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वां अभवद्वरेण्यः ॥ २ ॥
वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥ ३ ॥
जज्ञान एव व्यबाधत स्पृध प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥ ४ ॥
आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥ ५ ॥ १४

सब देवताओं के सहित आकाश और पृथिवी इन्द्र को पुष्ट और बल वान बनावें। जब उन्होंने सोमपान किया, तब वे वीरकर्मा होकर श्रेष्ठ महिमा वाले हुए और उन्होंने अनेक श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन किया ॥ १ ॥ मधुर सोम लता के टुकड़ों को विष्णु ने भेजा, तब इन्द्र की उस महिमा का उद्-घोष किया गया। हे धनवान इन्द्र ! तुम सहकारी देवताओं के साथ मिल कर वृत्र के हनन द्वारा सर्वोत्कृष्ट हो गये ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम विकराल तेज वाले हो। जब तुम स्तुति की कामना करते हुए शस्त्रास्त्र धारण कर वृत्र से संग्राम करने को अग्रसर हुए तब सब मरुतों ने तुम्हारी स्तुति की। इससे तुम्हारी महिमा बढ़ी और वे भी मेधावी हुए ॥ ३ ॥ इन्द्र ने उत्पन्न होते ही शत्रु को मार डाला। उन्होंने संग्राम की इच्छा से अपने बल की वृद्धि की। उन्होंने वृत्र को विदीर्ण किया, मनुष्यों की रक्षा की और अपने यत्न से ही स्वर्ग को उन्नत लोक किया ॥ ४ ॥ विकराल शत्रु सेनाओं की ओर इन्द्र अकस्मात् धावित हुए। अपनी महिमा से उन्होंने आकाश पृथिवी

को अपने वश में किया। जो वज्र दानशील वरुण और मित्र के लिये कल्याण कारी है, उसी लौह रूप वज्र को इन्द्र ने धारण किया ॥ ५ ॥ [१४]

इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥ ६ ॥
या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥ ७ ॥
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥ ८ ॥
भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥९॥
त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥ १० ॥ १५

विभिन्न प्रकार के शब्द करते हुए इन्द्र शत्रु का संहार करने में लगे। उनके पराक्रम का उद्‌घोष करता हुआ जल निकला। अंधकार में निवास करने वाले वृत्र ने जल को रोक रखा था। इन्द्र ने अपनी शक्ति से उसे विदीर्ण किया ॥ ६ ॥ परस्पर स्पर्द्धा करते हुए इन्द्र ने और वृत्र ने भी अपने-अपने पराक्रम का आरम्भ में प्रदर्शन किया और फिर अत्यन्त कुपित होकर संग्राम करने लगे। जब वृत्र का वध हुआ तभी अंधकार नष्ट होगया। इन्द्र की महिमा ही इतनी महान है कि उनके नाम का उच्चारण सर्व प्रथम किया जाता है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! स्तुतियों और मधुर सोम रस के अर्पण द्वारा देवताओं ने तुमको प्रहृष्ट किया। तब तुमने विकराल वृत्र का हनन किया। इससे मनुष्यों ने शीघ्र ही अन्न प्राप्त किया। भस्म करने योग्य पदार्थ को जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला से दग्ध कर डालते हैं, उसी प्रकार मनुष्य उस अन्न का दाँतों से चर्वण करते हैं ॥ ८ ॥ हे स्तोताओ! इन्द्र ने जो मित्रता के कार्य किये हैं, उनका गुण गान अपने बन्धुत्व पूर्ण स्तोत्रों

द्वारा करो। इन्द्र ने ही धुनि और चुमुरि नामक दैत्यों का संहार किया और राजा दभीति की स्तुति को सुना ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करते समय मैंने जिस ऐश्वर्य और श्रेष्ठ अश्वादि को तुमसे माँगा था, वह सब मुझे प्रदान करो। मैं पापों से पार होकर सुख-मार्ग को प्राप्त होऊँ। मैं जिस स्तोत्र की रचना कर रहा हूँ, उस पर ध्यान देने की पूर्णतः कृपा करो ॥ १० ॥ [१४]

सूक्त ११४

(ऋषिः—सध्रिर्वैरूपो घर्मो वा तापसः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥ १ ॥
तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ २ ॥
चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥ ३ ॥
एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥४
सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥ ५ । १६

सूर्य अग्नि दोनों ही तेजस्वी हैं। वह सब ओर विचरण करते हुए तीनों लोकों में व्याप्त हो गये। मातरिश्वा ने अपने कर्म से उन्हें प्रसन्न किया। जब देवताओं ने साम मंत्रों के साथ सूर्य को पाया, तब उन दोनों ने समान भाव से दिव्य जल की रचना की ॥ १ ॥ यज्ञकर्त्ता विद्वान यज्ञ के अवसर पर तीन विभूतियों का यज्ञ करते हैं। उस यज्ञ में ही अग्नियों के उत्पत्ति परिचय अन्य देवताओं से होता है। मेधावी जन इन अग्नियों का

स्थान के ज्ञाता हैं। वे अग्नि अत्यन्त गोपनीय स्थान में निवास करते हैं ॥ २ ॥ एक वेदी चार कोण वाली है। उसका रूप श्रेष्ठ और स्निग्ध है। वह श्रेष्ठ सामग्री द्वारा आच्छादित होती है। जहाँ दो पक्षी विराजमान होते हैं, वहाँ उस वेदी पर सभी देवता अपना यज्ञ भाग प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ प्राण रूप पक्षी ब्रह्माण्ड रूप समुद्र में स्थित हुआ। वह सम्पूर्ण जगत के देखने वाला है। मैंने भी उसे अपनी उत्कृष्ट बुद्धि से देखा है। वह अपनी समीपस्थ वाणी का सेवन करता है और माता रूपी वाणी उसका पोषण करती है ॥ ४ ॥ ईश्वर रूप पक्षी एक है, परन्तु मेधावी जन उसे अपने-अपने दृष्टिकोण से विभिन्न रूप वाला बताते हैं। यज्ञानुष्ठान में वे उसकी विभिन्न छन्दों से उपासना करते और द्वादश सोम-पात्रों को स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥ [१६]

षट्त्रिंशांश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ।.६॥

चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ।। ७ ॥

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥ ८ ॥

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥ ९ ॥

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥१०॥१७

मेधावीजन चालीस साम–पात्रों की स्थापना करते हुए स्तोत्र पाठ करते हैं। वही द्वादश छन्दों का उच्चारण करते हैं। वे अपनी बुद्धि से अनुष्ठान कर्म करते हुए ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्रों द्वारा यज्ञ रूप रथ

का वहन करते हैं ॥६॥ यज्ञ रूप ईश्वर की चौदह महिमाएं भुवन रूप से स्थापित हैं । सप्तहोता स्तोत्रों से यज्ञ कार्य का सम्पादन करते हैं । सब यज्ञ में आने वाले देवगण सोम पीते हैं। वह यज्ञ-मार्ग संसार व्यापी है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ है ? ॥७॥ उक्थ मन्त्र पन्द्रह हजार हैं । वे भी आकाश पृथिवी के समान महान् हैं । जैसे सहस्र महिमा वाले स्तोत्र का पार नहीं पाया जाता, वैसे ही वाणी का पार नहीं पाया जाता ॥८॥ सब के जानने वाले मेधावी कौन है ? मूल वाक्य को किस विद्वान् ने समझा है ? सात ऋत्विजों पर आठवें ब्रह्मा हो सकें ऐसे प्रधान पुरुष कौन से हैं ? इन्द्र के हर्यश्व को किस उपासक ने देखा है ? ॥९॥ कुछ अश्व रथ के धुरे में योजित किये जाते हैं और कुछ सवारी देते हुए पृथिवी पर घूमते हैं । जब सारथि रथ युक्त अश्व का वहन करता है, तब उसको थकान दूर करने के लिए उन्हें पौष्टिक पदार्थ दिया जाता है ॥१०॥

सूक्त ११५

(ऋषि—उपस्तुतो वार्ष्टिहव्य। देवता—अग्निः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप् शक्वरी)

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥१

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥२

तं वो वि न द्रुपदं देवमन्धस इन्दु प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वन्हि न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥३

वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥४

स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखार्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ॥५।१८

इस बाल रूप अग्नि का प्रभाव विचित्र है। इसे दुग्ध पान के निमित्त अपने माता-पिता के पास नहीं जाना पड़ता। इस उत्पन्न हुए बालक के लिए स्तन का दुग्ध नहीं मिलता। उत्पन्न होते ही इस बालक ने अत्यन्त दौत्य कर्म का निर्वाह किया है ॥१॥ दानशील और विभिन्न कर्म वाले अग्नि का बीज बोया जाता है। वह अपने ज्वाला रूप दाँतों से वन का भक्षण करते हैं। जुहू पात्र में स्थित यज्ञ-भाग इन्द्र को प्रदान किया गया। जैसे बलवान बैल तृण भक्षण करता है, वैसे ही इन्द्र यज्ञ-भाग का सेवन करते हैं ॥२॥ जैसे पक्षी वृक्ष पर आश्रय लेते हैं, वैसे ही अरणि रूप वृक्ष पर अग्नि आश्रित होते हैं। वे अन्न के देने वाले, वन को भस्मीभूत करने वाले और जल धारण करने वाले हैं। वे अपने तेज से महान होकर मुख से हव्य ग्रहण करते हैं। वे महान्‌कर्मा अग्नि अपने मार्ग को लाल-रंग का करते हैं। हे स्तोतागण! ऐसे गुण वाले महान् अग्नि की तुम स्तुति करो ॥३॥ हे अग्ने! तुम जरा-रहित हो। जब तुम भस्म करने लगते हो, तब तुम्हारे सहायक वायु आकर तुम्हारे चारों ओर होजाते हैं। यज्ञानुष्ठान में ऋत्विग्गण भी तुम्हें सब ओर से घेरकर स्तुति करते हैं। उस समय तुम तीन रूप वाले होते हो तब तुम्हारा बल प्रदर्शित होता है और ऋत्विग्गण युद्ध को प्राप्त वीरों के समान शब्द करते है ॥४॥ हे अग्ने! स्तोत्र उच्चारण द्वारा स्तुति करने वालों के तुम मित्र हो। तुम्हीं सबसे अधिक शब्द करते हो। अग्नि ही हमारे स्वामी हैं। वही निकटस्थ शत्रु को नष्ट करते हैं। वही मेधावी स्तोताओं का पालन करते हैं। वह सबके आश्रयभूत हैं ॥५॥ [१८

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे।
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ॥६
एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान्॥७
ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक्।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥८

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
तांश्च पाहि गृणतश्च सूरीन्वषड् वषळित्यूर्ध्वासो ।
अनक्षन्नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥९॥१९

हे अग्ने ! कोई भी अन्नवान् देवता तुम्हारी समता नहीं कर सकता। तुम सब में श्रेष्ठ और बलवान् हो । संकटकाल में धनुर्धारण पूर्वक तुम ही अपने उपासकों की रक्षा करते हो। हे स्तोतागण ! वे अग्नि मेधावी हैं। तुम उनकी शीघ्र स्तुति करो और सोत्साह उन्हें हविरन्न अर्पित करो ॥६॥ कर्म रत और मेधावी पुरुष अग्नि का बल का पुत्र और वैभवशाली कहते हुए उनकी स्तुति करते हैं। उन पर अग्नि की कृपा होती है और वे संतुष्ट होते हैं। आकाश में चमकते हुए ग्रह और नक्षत्र आदि के समान प्रकाशमान अग्नि अपने तेज से शत्रुओं को पराभूत करते हैं ॥७॥ हे अग्ने ! तुम बल के पुत्र एवं समर्थ हो। मैं उपस्तुत अपने स्तोत्र द्वारा पूजन करता हूँ। हम स्तोता तुम्हारी कृपा को प्राप्त करते हुए धन, सन्तान और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥८॥ हे अग्ने ! वृष्टिहव्य ऋषि के पुत्र उपस्तुत तथा अन्य स्तोताओं ने तुम्हारी स्तुति की है। तुम उन सबका पालन करने वाले होओ। उन्होंने नमस्कार युक्त वषट् मन्त्र द्वारा तुम्हारी स्तुति की है ॥९॥

सूक्त ११६

ऋषि—अग्नियुत स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥१
अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥२
ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।

ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरणासि शत्रून् ॥३
आ द्विवर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥४
नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥५॥२०

हे इन्द्र ! तुम बलवानों में श्रेष्ठ हो । तुमको हम अन्न-धन की प्राप्ति के लिए आहूत करते हैं । अतः तुम शक्ति प्राप्त करने को और वृत्र का हनन करने को इस मधुर सोमरस का पान करो । तुम इस मधुर सोम में तृप्त होकर जल-वृष्टि करो ॥१॥ हे इन्द्र ! खाद्यान्न युक्त यह सोम-रस उपस्थित है । यह चरित होकर पात्र में स्थित हुआ है । तुम इसके श्रेष्ठ रस का सेवन कर हर्षित मन से हमें कल्याण प्रदान करो । तुम हमें ऐश्वर्य देकर भाग्यशाली बनाने को आओ ॥२॥ हे इन्द्र ! दिव्य सोम तुम्हारे लिए हर्षकारी हो । मनुष्यों के मध्य उत्पन्न होने वाला पार्थिव सोम भी तुम्हें हर्षयुक्त करे । जिस सोम को पीकर तुम धन देने वाले होओ, वह सोम तथा जिसे पीकर शत्रु का नाश करो वह सोम भी तुम्हें हर्षयुक्त बनावे ॥३॥ इहलोक और परलोक में इन्द्र ही सर्वत्र गमनशील,दृढ़कर्त्तव्यशील और वृष्टि के करने वाले हैं । हमने उनके लिए इस सेवनीय सोम-रस को सब ओर सींचा है । अपने दोनों अश्वों द्वारा वे इसके पास आवें । हे इन्द्र ! तुम शत्रु का नाश करने वाले हो । मधु के समान सोम पूर्ण गुण वाला है । उसे पानकर अपने बल को प्रदर्शित करने के लिए संग्राम भूमि में शत्रुओं का हनन करो ॥४॥ हे इन्द्र ! अपने तीक्ष्ण आयुधों द्वारा राक्षसों को पृथिवी पर गिराओ । तुम विकराल रूप वाले के निमित्त बल और उत्साहवर्द्धक सोमरस हम प्रदान करते हैं । तुम संग्राम भूमि में शत्रुओं का सामना करो और कोलाहल पूर्ण स्थिति में डटे हुए शत्रुओं के अवयवों को छिन्न-भिन्न करदो ॥५॥

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवास्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥६॥

इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वोद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥७॥

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥

प्रेन्द्राग्निभ्या सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अयाइव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्य धनदा उद्भिदश्च ॥९॥२१॥

हे इन्द्र ! हे स्वामिन् ! तुम यज्ञ-कर्म की वृद्धि करो । दुष्ट शत्रुओं पर अपने धनुष को प्रयुक्त करो । शत्रुओं को जीतते हुए अपने बल से ही शरीर की वृद्धि करो । तुम हमारे प्रति अनुकूल होते हुए ही महानता को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो । हम इस यज्ञीय द्रव्य को तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत करते हैं । तुम हम पर क्रोधित न होते हुए इसे स्वीकार करो । यह सोम रस और पुरोडाश आदि तुम्हारे लिए ही संस्कृत हुआ है । इन सम्पूर्ण पदार्थों का सेवन करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! यह यज्ञीय द्रव्य तुम्हारी ओर गमन करते हैं । जिस आहार-योग्य अन्न का पाक हुआ है तथा जो सोम रखा है, उस सब का तुम सेवन करो । हम तुम्हें इनके सेवनार्थ ही आहूत करते हैं । फिर यजमान का अभीष्ट पूर्ण हो ॥ ८ ॥ भले प्रकार रचे गए स्तोत्रों को मैं इन्द्र और अग्नि के निमित्त करता हूँ । जैसे नदी में नाव चलती है, वैसे ही श्रेष्ठ मन्त्र वाली स्तुति भी गमनशीला है । ऋत्विजों के समान देवगण भी हमारी परिचर्या करते हैं । ये हमें शत्रु-नाश के निमित्त महान् धन प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥   [२१]

सूक्त ११७

(ऋषि:—भिक्षुः । देवता— धनान्नदानप्रशंसा ।
छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

न वा उ देवा: क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५।२२॥

देवगण ने प्राण का नाश करने वाली भूख बनाई है। परन्तु भोजन कर लेने पर भी मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलता। इस पर भी दानशील पुरुष के धन में न्यूनता नहीं आती और अदानशील व्यक्ति का कल्याण करने में कोई समर्थ नहीं होता ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के यहाँ क्षुधार्त मनुष्य अन्न की याचना करता है, तब वह धन और अन्न से सम्पन्न पुरुष अपने हृदय को कठोर बना कर उसे भोजन नहीं देता और स्वयं भोजन कर लेता, उसे सुख देने में कोई समर्थ नहीं है ॥ २ ॥ अन्न की कामना से याचना करने वाले को जो अन्न दे, वही दानी कहाता है। उसे यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। उसके लिए शत्रु भी मित्र होने लगते हैं ॥ ३ ॥ जो अपना मित्र अन्न की कामना से पास आता है और उसे भी जो अन्नवान् व्यक्ति अन्न नहीं देता, वह मित्र कहलाने के योग्य कदापि नहीं है। ऐसे मित्र के पास नहीं ठहरना चाहिए। उसके घर को घर ही न समझे और किसी दानशील अन्नवान् के पास ही याचना करे ॥ ४ ॥ दाता को दीर्घ पुण्य मार्ग प्राप्त होता है, इसलिए अन्नयाचक को अन्न अवश्य प्रदान करे। जैसे रथ का पहिया विभिन्न दिशाओं में घुमाया जाता है, वैसे ही धन भी विभिन्न व्यक्तियों के पास

आता-जाता रहता है। वह कभी किसी एक व्यक्ति पास अथवा एक ही स्थान पर नहीं टिकता ॥ ५ ॥ [२२]

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥
कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥७॥
एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥
समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ
न समं पृणीतः ॥ ९ ॥ २३ ॥

अनुदार मन वाले व्यक्ति के यहाँ भोजन न करे। क्योंकि उदारता-रहित अन्न विष के समान है। जो मित्र और देवता को न देता हुआ स्वयं ही भोजन करता है, वह मूर्ख पुरुष साक्षात् पाप का ही भक्षण करता है ॥६॥ कृषि कर्म वाला हल अन्न का उत्पादक है। वह अपने मार्ग पर चल कर अन्न प्रकट करने वाला होता है। जैसे विद्वान् व्यक्ति मूर्ख की अपेक्षा श्रेष्ठ है, वैसे ही दानशील व्यक्ति प्रभावशील दानहीन से श्रेष्ठ होता है ॥ ७ ॥ जिसके पास सम्पत्ति का एक भाग है, वह दो भाग वाले से सम्पत्ति माँगता है। दो वाला, तीन भाग वाले के पास और तीन भाग वाला चार भाग वाले के पास गमन करता है। इस प्रकार न्यून धन वाला व्यक्ति अपने से अधिक धन वाले से धन माँगता है। ऐसे ही संसार का क्रम चलता है ॥ ८ ॥ हमारे दोनों हाथ एक से हैं, परन्तु उनकी शक्ति एक-सी नहीं है। एक गौ की दो बछिया भी बढ़ कर एक बराबर दूध नहीं देतीं। एक साथ उत्पन्न दो भ्राता भी समान बल वाले नहीं होते। एक वंश वाले दो व्यक्तियों में भी कोई अदानशील होता है और कोई दानश्रेष्ठ होता है ॥९॥ [२३]

सूक्त ११८

(ऋषि—उरुक्षय आमहीयवः । देवता:—अग्नी रक्षोहा । छन्दः—गायत्री)

अग्ने हंसि न्य त्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥ १ ॥
उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे ।
यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥ २ ॥
स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा ।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥ ३ ॥
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः ।
रोचमानो विभावसुः ॥ ४ ॥
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥ ५ । २४ ॥

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ प्रतिज्ञा वाले हो । तुम अपने स्थान में मनुष्यों के मध्य प्रज्वलित होकर बढ़ो और शत्रु का नाश करने वाले होओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! यह स्रुक तुम्हारे निमित्त ही ग्रहण किया है । तुम्हारे लिए श्रेष्ठ आहुति प्रदान की गई है । तुम इस घृताहुति से प्रसन्न होओ ॥ २ ॥ अग्नि का आह्वान किया गया । वाणी द्वारा उनकी स्तुति की गई । सभी देवताओं के आह्वान से पूर्व उन्हें स्रुक द्वारा स्निग्ध किया जाता है, तब वे प्रदीप्त होते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि में जब आहुति दी जाती है तब उनका शरीर घृत से स्निग्ध होता है । वे घृत से सींचे जाने पर अत्यन्त दीप्ति वाले और प्रकाशवान् होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के लिए हवि वाहक होते हो । जब उपासकगण तुम्हारा आह्वान करते हैं, तब स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए तुम वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥ ५ ॥ [२४]

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत ।

अदाभ्य गृहपतिम् ॥ ६ ॥

अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥ ७ ॥

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥ ८ ॥

तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ ९ ॥ २५ ॥

हे मनुष्यो ! अग्नि अविनाशी, दुर्धर्ष और गृहपति हैं । तुम घृताहुतियों से उनका पूजन करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम अपने प्रचण्ड तेज से असुरों को भस्म करो और यज्ञ की रक्षा के लिए दीप्ति को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अपने विस्तृत स्थान पर प्रतिष्ठित होते हुए दीप्तिमय होओ और अपने स्वाभाविक तेज से राक्षसियों को भस्म करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करते हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं, क्योंकि तुम मनुष्यों के साथ रह कर यज्ञ-कर्म को भले प्रकार सम्पन्न करते हो । तुम हवियों को वहन करने वाले हो । तुम्हारा निवास-स्थान विचित्र है ॥ ९ ॥ [२५]

सूक्त ११९

(ऋषिः—लव ऐन्द्रः । देवता—आत्मस्तुतिः । छन्दः—गायत्री)

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १ ॥

प्र वाताइव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ २ ॥

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥

नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सु: पञ्च कृष्टयः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥ २६

मैं इन्द्र गौ, अश्व आदि धनों को देने की इच्छा कर रहा हूँ क्योंकि मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ १ ॥ वायु जैसे वृक्ष को कम्पित कर ऊपर को उठाता है, वैसे ही पान किए जाने पर सोम-रस मुझे उन्नत करता है। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है ॥ २ ॥ जैसे द्रुतगामी अश्व रथ को ऊपर रखता है, वैसे ही पान किये जाने पर सोम ने भी मुझे उन्नत किया है। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ ३ ॥ जैसे हुंकार करती हुई गौ अपने बछड़े की ओर जाती है, वैसे ही स्तुतियाँ मेरी ओर गमन करती हैं। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ ४ ॥ त्वष्टा जैसे रथ के ऊपर के स्थान का निर्माण करते हैं, वैसे ही मैं स्तुति करने वाले के मन में स्तोत्र का निर्माण करता हूँ। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ ५ ॥ पंचजन मेरी दृष्टि से छिप नहीं सकते। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ ६ ॥ [२६]

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥

अभि द्यां महिना भुवमभी मां पृथिवीं महीम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥

ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १० ॥

दिवि मे अन्यः पक्षो अधो अन्यमचीकृषम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ११ ॥

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १२ ॥
गृहो याम्यरङ्कृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १३ ॥ २७

आकाश पृथिवी रूप दोनों लोक मेरे एक पार्श्व की भी समता नहीं कर सकते । मैं अनेक बार सोम रस का पान कर चुका हूँ ॥ ७ ॥ स्वर्ग और विस्तीर्ण पृथिवी को मेरी महिमा ही व्याप्त करती है । मैंने अनेक बार सोम-पान किया है ॥ ८ ॥ यदि मैं चाहूँ तो इस पृथिवी को अपनी शक्ति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर रख दूँ । मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ ९ ॥ जिस स्थान को चाहूँ, उसे ही नष्ट कर डालूँ । मैं इस विस्तीर्ण पृथिवी को भी भस्म करने में समर्थ हूँ । मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ १० ॥ मेरा एक पार्श्व स्वर्ग में और एक पृथिवी पर है । मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ ॥ ११ ॥ मैं आकाश के समान उन्नत और महान् से भी महान् हूँ । मैंने अनेक बार सोम-रस का पान किया है ॥ १२ ॥ जब मेरी स्तुति होती है, तब मैं देवगण के लिए हव्य वहन करता हूँ और अपना भाग पाकर चला जाता हूँ । मैंने अनेक बार सोम रस का पान किया है ॥ १३ ॥ [२७]

सूक्त १२०

(ऋषि—बृहद्दिव आथर्वणः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥४॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥ १

जिनसे प्रकाशमान सूर्य उत्पन्न हुए, वे इन्द्र सर्व श्रेष्ठ हैं । उनसे पूर्व कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ । वे जन्म लेते ही शत्रु का नाश करने में समर्थ होते हैं । उस समय देवगण भी उनकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र शत्रुओं के हननकर्त्ता, अत्यन्त तेजस्वी और महान् बल से सम्पन्न हैं। वे दस्युओं के हृदयों को भयभीत करते हैं । हे इन्द्र ! तुम विश्व के सब प्राणियों का कल्याण करते और उन्हें पवित्र करते हुए सुख देते हो, तब वे सब प्राणी तुम्हारी श्रेष्ठ स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ जब देवताओं को तृप्त करने वाले यजमान विवाह करके गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं. तब वे अपत्यवान होकर तुम्हारे द्वारा समस्त यज्ञ कार्यों को सम्पन्न करते हैं । हे इन्द्र ! तुम स्वाद युक्त से भी अधिक सुस्वादु पदार्थ प्रदान करो । इस विचित्र मधु से [?]ि मधु का मिश्रण करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम सोम-पान से हृष्ट होकर धनों पर विजय पाते हो, तब स्तुति करने वाले ऋषिगण भी तुम्हारे साथ सोम पीकर हर्ष प्राप्त करते हैं । हे इन्द्र ! तुम अजेय हो । अपने महान् बल को प्रदर्शित करो । तुम्हें विकराल कर्मा राक्षस भी पराभूत न कर पावें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! संग्राम क्षेत्र में तुम्हारी सहायता से ही हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । उस समय अनेक शत्रुओं से हमारा सामना होता है । मैं स्तुतियों द्वारा तुम्हारे आयुधों को तीक्ष्ण कर तुम्हें उत्साहित करता हूँ ॥ ५ ॥ [१]

स्तु षेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥ ६ ॥
नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥ ७ ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ ८ ॥
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्व मिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥ २

मैं उन इन्द्र की स्तुति करता हूँ जो विलक्षण तेज वाले, विभिन्न रूप वाले, हमारे आत्मीय और श्रेष्ठ स्वामी हैं। उन्होंने ही अपने बल से वृत्र, नमुचि, कुयव आदि असुरों को हराया और उनका संहार किया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! जिस घर में तुम हविरन्न द्वारा तृप्त किये जाते हो, उस घर को दिव्य और पार्थिव धनों से सम्पन्न करते हो। जब सब जीवों को उत्पन्न करने वाली आकाश-पृथिवी कम्पित होती हैं, तब तुम ही उन्हें स्थिर करते हो। उस समय तुम अनेक कर्मों को सम्पन्न करते हो ॥ ७ ॥ ऋषियों में श्रेष्ठ बृहद्दिव स्वर्ग की कामना से इन्द्र की स्तुति कर रहे हैं। वे इन्द्र पर्वत को हटा कर शत्रु पुरों के सब द्वारों का उद्घाटन करने में समर्थ हैं ॥ ८ ॥ बृहद्दिव ऋषि, अथर्वा के पुत्र हैं । इन्होंने इन्द्र के निमित्त अपनी स्तुतियाँ उच्चारित कीं। पृथिवी पर बहने वाली नदियाँ निर्मल जल को प्रवाहित करती हुईं, मनुष्यों का कल्याण सम्पादन करने वाली होती हैं ॥ ९ ॥ [२]

सूक्त १२१

(ऋषि—हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । देवता—कः । छन्द—त्रिष्टुप्)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥ ३

सर्व प्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। वे उत्पन्न होते ही सब प्राणियों के स्वामी हुए । उन्होंने ही इस आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थान पर स्थिर किया। उन प्रजापति का हम हव्य द्वारा पूजन करेंगे ॥ १ ॥ जिन प्रजापति ने प्राणी को शरीर और बल प्रदान किया है, उनकी आज्ञा में सभी देवता चलते हैं । जिनकी छाया ही मधुर स्पर्श वाली है और मृत्यु भी जिनके आधीन रहती है, उन प्रजापति के 'क' आदि अनेक नाम हैं ॥ २ ॥ जो अपनी महिमा से ही चलने और देखने वाले प्राणियों के अद्वितीय स्वामी हैं और जो इन मनुष्यों और पशुओं के भी ईश्वर हैं, उनके 'क' आदि अनेक नाम हैं ॥ ३ ॥ सब हिमाच्छादित पर्वत जिनकी महिमा से उत्पन्न हुए और समुद्र से युक्त पृथिवी भी जिनकी कृति समझी जाती है तथा यह समस्त दिशाएँ जिनकी भुजा के समान हैं, वे प्रजापति 'क' आदि अनेक नाम वाले हैं ॥ ४ ॥ इस पृथिवी और ऊँचे आकाश को जिन्होंने अपनी महिमा से दृढ़ किया है, जिन्होंने अन्तरिक्ष में जल की रचना की है और जिन्होंने सूर्य की, सूर्य मंडल में स्थापना की है, वे प्रजापति 'क' आदि अनेक नाम वाले हैं ॥ ५ ॥ [३]

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०४

शब्दायमान पृथिवी और आकाश जिनकेद्वारा दृढ़ और परिपूर्ण हुए आकाश पृथिवी ने जिन्हें महिमामय किया, उन 'क' आदिनाम वाले प्रजापति के आश्रित हुए सूर्य नित्य प्रति उदित और प्रकाशित होते हैं ॥ ६ ॥ जिस महान् जल ने समस्त भुवन को आच्छादित कर लिया था, उसी जल से अग्नि और आकाश की उत्पत्ति हुई। इसी से देवताओं का प्राण-वायु भी उत्पन्न हुआ। प्रजापति 'क' आदि अनेक नाम वाले हैं ॥७॥ जल ने अपने बल से जब अग्नि को प्रकट किया, तब जिन प्रजापति ने अपनी महिमा से उस जल को सब ओर से देखा और जो देवताओं में प्रमुख हैं, उन प्रजापति के 'क' आदि अनेक नाम हैं ॥८॥ जो प्रजापति पृथिवी को उत्पन्न करते हैं, जो धारण करने में यथार्थ क्षमतावान् हैं, जिन्होंने आकाश की रचना की और सुखदाता जल को यथेष्ट रूप से प्रकट किया, वे 'क' आदि नाम वाले] प्रजापति हमें हिंसित न करें ॥९॥ हे प्रजापति ! इन उत्पन्न पदार्थों को तुम्हारे सिवा अन्य कोई अपने वश में नहीं कर सकता। हम जिस कामना से तुम्हारा यज्ञ कर रहे हैं, हमारी वह कामना सिद्ध हो और हम महान् ऐश्वर्य के स्वामी हों ॥१०॥

सूक्त १२२

(ऋषि:—चित्रमहा वासिष्ठः। देवता—अग्नि।
छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥१
जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् ॥२

सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ॥३
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ॥४
त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ॥५।५

अद्‌भुत रूप वाले अग्नि सूर्य के समान तेजस्वी हैं । वे कल्याण-कारी अतिथि के समान प्रीति करने योग्य हैं । जो अग्नि संसार के धारण करने वाले और विपत्तियों के दूर करने वाले हैं, वे होता और गृहस्वामी होते हुए हमको श्रेष्ठ बल और गौ प्रदान करते हैं । मैं उन्हीं अग्नि की स्तुति करता हूँ ॥१॥ हे अग्ने ! मेरे स्तोत्र पर ध्यान देकर प्रसन्न होओ । तुम श्रेष्ठ कर्म वाले और सभी ज्ञातव्य बातों के जानने वाले हो । तुम घृताहुति को प्राप्त होकर स्तोता को साम गान का आदेश दो । देवगण जब तुम्हारा कार्य देखते हैं तब वे अपने अपने कर्म में लगते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम सर्वत्र गमनशील और अविनाशी हो । श्रेष्ठ कर्म वाले पुरुषों को धन-दान की इच्छा करो । समिधाओं द्वारा जो तुम्हें प्रदीप्त करें, तुम उसे श्रेष्ठ सम्पत्ति और सन्तानादि प्राप्त कराओ । तुम इस पूजन को स्वीकार करो ॥३॥ यज्ञ द्रव्यों से सम्पन्न यजमान सब लोकों के अधीश्वर अग्नि की स्तुति करते हैं । वे अग्नि ध्वजा रूप और सर्व श्रेष्ठ होता हैं । वे घृत-युक्त आहुति ग्रहण कर अभीष्ट फल प्रदान करते और दानी को श्रेष्ठ बल से सम्पन्न करते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम सबसे आगे जाने वाले दूत हो । तुम्हें मृत्यु से रक्षा करने को आहूत करते हैं । मरुद्‌गण तुम्हें दानशील पुरुष के घर में प्रतिष्ठित करते हैं । हे आनन्द देने वाले अग्नि-देव ! भृगुवंशी ऋषि तुम्हें स्तुतियों से प्रदीप्त करते हैं ॥५॥

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिऋतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥६
त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥७
नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥६

हे अग्ने ! तुम विचित्रकर्मा हो । यज्ञानुष्ठान में लगे हुए यजमान के लिए तुम यश रूपी पयस्विनी गौ का दोहन करो । तुम घृताहुति को पाकर पृथिवी आदि तीनों लोकों को प्रकाश से भरते हो । तुममें शुभ कर्म वाला आवरण दृष्टिगोचर होता है । तुम सर्वत्र गमनशील हो ॥६॥ हे अग्ने ! उषा काल प्राप्त होते ही तुम्हें दूत मान कर यजमान आहुति देते हैं । देवगण भी तुम्हें घृत द्वारा प्रदीप्त करते हुए पूजन के निमित्त प्रवृद्ध करते हैं ॥७॥ हे अग्ने ! वसिष्ठ वंशज ऋषियों ने अपने यज्ञानुष्ठान में तुम्हारा आह्वान किया । तुम यजमानों के घर को ऐश्वर्य से सम्पन्न करो । तुम अपनी कल्याणकारिणी रक्षाओं के द्वारा हम उपासकों की रक्षा करो ॥८॥

सूक्त १२३

(ऋषि—वेनः । देवता—वेनः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अय वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥१
समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२
समानं पूर्वीरभिवावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥३॥
जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।

ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥४॥
अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन्।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५॥७

वेन देवता ज्योतिर्मान हैं। वे जल के उत्पादक अन्तरिक्ष में सूर्य के पुत्र रूप जल की वृष्टि करते हैं। जब सूर्य से जल मिलता है तब मेधावी स्तोता उन वेन नामक देवता को मधुर स्तुतियों से सन्तुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ वेन अन्तरिक्ष से जलों का प्रेरण करते हैं। उन उज्ज्वल रूप वाले वेन की पीठ दिखाई देती है। वे जल के उन्नत स्थान में ही तेजस्वी होते हैं। सबके जन्म स्थान स्वर्ग को उनके पारषदों ने गुंजायमान किया ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष का जल वेन के साथ रहता है। वह शिशुरूपिणी विद्युत की माता के समान है। वह जल अपने साथी वेन से मिलकर शब्दवान हुआ। तब अन्तरिक्ष में मधुर जल की वृष्टि का शब्द उत्पन्न होकर वेन की स्तुति करने लगा ॥३॥ मेधावी स्तोताओं ने भैंसे के समान वेन के शब्द को सुना। तब उनके रूप की कल्पना करने लगे। उन्होंने वेन के लिए यज्ञ किया और नदी को भरने वाला जल पाया। वे गन्धर्व रूप वेन जल के स्वामी हैं ॥४॥ विद्युत रूपी अप्सरा वेन की पत्नी के समान है। उन्होंने मन्द मुसकान करते हुए मेघ में निवास किया ॥५॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥८॥८

हे वेन! तुम अन्तरिक्ष में उड़ने वाले पक्षी के समान हो। तुम्हारे दोनों पंख स्वर्णिम हैं। सब लोकों का शासन करने वाले वरुण के तुम दूत हो। पक्षी जैसे अपने शिशु का भरण-पोषण करता है, वैसे ही तुम सम्पूर्ण

विश्व का भरण पोषण करते हो। सब प्राणी तुम्हारा दर्शन करते और तुमसे स्नेह करते हैं ॥ ६ ॥ वेन स्वर्ग के उन्नत प्रदेश में वास करते हैं। उनके पास अद्भुत शस्त्रास्त्र हैं। वे श्रेष्ठ रूप से आच्छादन किये हुए हैं। वे भीतर से इच्छित जल वृष्टि करते हैं ॥ ७ ॥ वेन जल से सम्पन्न हैं। वे अपने कर्म के लिए दूरदर्शी नेत्रों से देखते हुए अंतरिक्ष में गमन करते हैं। वे उज्वल आलोक से तेजस्वी होते हैं और तृतीय स्वर्ग लोक के उच्च भाग में सब लोकों द्वारा चाहे हुए जल को उत्पन्न करते हो ॥ ८ ॥ [८]

सूक्त १२४

(ऋषिः—अग्निः, वरुण, सोमानां, निहवः देवता—अग्निः ।
छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः ॥१

अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यन्प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि ।
शिवं यत्सन्तमशिवो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेमि ॥२॥

पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयाया ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि ।
शंसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि ॥३॥

बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि ।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ॥४॥

निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे ।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥५।६

हे अग्ने! यह ऋत्विज्, यजमान आदि पाँच जन हमारे इस यज्ञ का संचालन करते हैं। यह यज्ञ तीन सवनों वाला है। इसमें अनुष्ठान करने वाले सात होता हैं। तुम हमारे इस यज्ञ में आकर हवि-वाहक दूत बनो ॥१॥ हे स्तोताओ! देवगण मुझ अग्नि से निवेदन करते हैं, इसलिए मैं प्रकाश-

हीन अव्यक्त रूप से, प्रकाशयुक्त व्यक्त रूप में आता हुआ, सब ओर देखता और अमृतत्व प्राप्त करता हूँ। जब यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण होता है, तब मैं भी यज्ञ स्थान को छोड़ कर अव्यक्त रूप से ही अपने उत्पत्ति स्थान अरणि में निवास करता हूँ ॥ २ ॥ पृथिवी से अन्यत्र जो आकाश का गमन मार्ग है, उस पर चलने वाले सूर्य की वार्षिक गति के अनुसार विभिन्न ऋतुओं का मैं अनुष्ठाता हूँ। मैं पितृ रूप बलवान देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त स्तुति करता हूँ। यज्ञ के लिए त्याज्य और अपवित्र स्थान को छोड़ कर मैं यज्ञ-योग्य पवित्र स्थान की ओर गमन करता हूँ ॥ ३ ॥ मैंने इस यज्ञ स्थान में अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं। मैंने अपने पिता रूप अरणि से उत्पन्न होकर इन्द्र का वरण किया है। मेरा दर्शन न होने पर चन्द्रमा, वरुण आदि गिर पड़ते हैं और राष्ट्र में विप्लव फैल जाता है। तब मैं रक्षा के लिए प्रकट होता हूँ ॥ ४ ॥ मेरे आगमन को देखते ही राक्षस निर्बल होते हैं। हे वरुण! तुम भी मेरे स्तोता बनो। हे ईश्वर! तुम भी सत्य से असत्य को पृथक् कर मेरे राज्य के स्वामी होओ ॥ ५ ॥ [६]

इदं स्वरिदमिदास वाममयं प्रकाश उर्व न्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ॥६॥

कविः कवित्वा दिवि रूपमासजदप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवस्ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ॥७

ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥८॥

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥९॥१०

हे सोम! यह स्वर्ग अत्यन्त रमणीक है। यह दिव्य प्रकाश से प्रकाशित है। यह विस्तृत अंतरिक्ष है। हे सोम! तुम प्रकट होओ, तब तुम्हारे यज्ञीय द्रव्य होने पर वृत्र वध के कार्य में लगें। हम विभिन्न यज्ञीय

पदार्थों के द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ मित्र देवता ने अपने कर्म चातुर्य द्वारा आकाश में अपना तेज स्थापित किया। वरुण ने स्वल्प उद्योग से ही मेघ से जल का उद्‌घाटन किया। सभी जल विश्व के कल्याणार्थ नदी के रूप में प्रवाहित होते हैं। वे सभी नदियाँ वरुण के उज्वल तेज से सुसज्जित होती हैं ॥ ७ ॥ सभी जल वरुण का तेज पाते हैं। उन्हीं के समान यज्ञीय द्रव्य ग्रहण कर प्रसन्न होते हैं, और वरुण उनके पास गमन करते हैं। भयभीत प्रजा जैसे राजाश्रय में जाती है, वैसे ही भयभीत जल वृत्र के पास से भागते हुए वरुण के आश्रय में जाते हैं ॥ ८ ॥ जो उन भयभीत जलों के सहायक होते हैं, वे इन्द्र या सूर्य कहाते हैं। वे स्तुति योग्य देवता जल के पीछे पीछे गमन करते हैं। विद्वानों ने उन्हें इन्द्र कह कर ही प्रबुद्ध किया है ॥ ९ ॥ [१०]

सूक्त १२५

(ऋषि —वागाम्भृणी । देवता—वागाम्भृणी । छन्द —त्रिष्टुप्, जगती)

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥११

मैं वाग्देवी रुद्रगण और वसुगण के साथ घूमती हूँ। मैं आदित्यगण तथा अन्य देवताओं के साथ निवास करती हूँ। मैं मित्रावरुण को धारण करने वाली और इन्द्र, अग्नि, अश्विद्वय का आश्रय करने वाली हूँ ॥ १ ॥ पाषाण द्वारा पिस कर जो सोम प्रकट होते हैं, मैं उन्हें धारण करने वाली हूँ। त्वष्टा, पूषा और भग भी मेरे द्वारा ही धृत हैं। जो अनुष्ठाता यजमान सोम रस निष्पन्न करके देवताओं को तृप्त करता है, उसे मैं धन प्रदान करती हूँ ॥ २ ॥ मैं राज्यों की अधिष्ठात्री और धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञान से सम्पन्न और यज्ञों में प्रयुक्त साधनों में श्रेष्ठ हूँ। मैं सब प्राणियों में वास करती हूँ। देवताओं ने मुझे अनेक स्थानों में स्थापित किया है ॥ ३ ॥ प्राण-धारण, श्रवण दर्शन, भोजन आदि सब कर्म मेरी सहायता द्वारा ही किये जाते हैं। मुझे न मानने वाले क्षीणता को प्राप्त होते हैं। हे विज्ञ ! मैं जो कहती हूँ, वह यथार्थ है ॥ ४ ॥ जिसके आश्रय को देवता और मनुष्य प्राप्त होते हैं, मैं उसकी उपदेशिका हूँ। जिसे मैं चाहूँ, वही मेरी कृपा से बलवान, मेधावी, स्तोता और कवि हो सकता है ॥ ५ ॥ [११]

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥८॥१२

स्तुतियों से विमुख पुरुषों का संहार करने की इच्छा से इन्द्र जब धनुष ग्रहण करते हैं, तब मैं उनके धनुष को दृढ़ करती हूँ। मैं ही आकाश-पृथिवी में व्याप्त होकर मनुष्य के लिए संग्राम करती हूँ ॥ ६ ॥ मैंने आकाश को प्रकट किया है, इसलिए मैं उसके पिता के समान हूँ। इस जगत का मस्तक वही आकाश है। मैं समुद्र के जल में निवास करती हूँ और वहीं

से बढ़ती हूँ। मैं अपने ऊँचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती हूँ ॥ ७ ॥ मैं जब लोकों को रचती हूँ, तब वायु के समान विचरण करती हूँ। मैं अपनी महिमा से महिमामयी होकर आकाश पृथिवी का उल्लंघन कर चुकी हूँ ॥ ८ ॥ [१२]

सूक्त १२६

(ऋषि—कुल्मलबर्हिष शैलूषि., अंहोमुग्वा वामदेव्य.।
देवता.—विश्वेदेवा: । छन्द.—बृहती, त्रिष्टुप्)

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥१॥
तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ॥२॥
ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ न. पर्षण्यति द्विष. ॥३॥
यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विष. ॥४॥
आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ॥५॥
नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विष. ॥६॥
शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ॥७॥
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयु ॥८॥१३॥

हे देवगण! अर्यमा, मित्र, वरुण जिसकी शत्रु से रक्षा करते हैं, उसका अमंगल नहीं होता और पाप भी उसे नहीं सताता ॥ १ ॥ हे वरुण,

मित्र और अर्यमा ! पाप और शत्रु के पाश से हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥ वरुण, मित्र और अर्यमा हमारी अवश्य रक्षा करेंगे। हे देवगण ! हमें शत्रु से बचाओ और पापों के पार ले चलो ॥ ३ ॥ हे वरुण, मित्र और अर्यमा ! तुम नेता का कार्य करने में कुशल हो। तुम विश्व के पालन करने वाले हो। हम शत्रु से मुक्त होते हुए तुम्हारे आश्रय में सुखी हों ॥ ४ ॥ मित्रावरुण, आदित्य और अर्यमा हमें शत्रु पाश से रक्षित करें। हम शत्रु के पाश से छूट कर मंगल के लिए रुद्र, मरुद्गण और इन्द्राग्नि का आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ वरुण, मित्र और अर्यमा हमारे मार्ग-दर्शक हैं। वही हमें पार लगाते हैं। वे पापों को नष्ट करने में समर्थ हैं। यह सब प्राणियों के अधिपति हमें शत्रुओं से रक्षित करें ॥ ६ ॥ वरुण, मित्र और अर्यमा अपनी रक्षाओं से हमारा कल्याण करें। हम जिस सुख की कामना करते हैं, वह सुख हमें प्रदान करते हुए शत्रु के हाथ से हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥ जब उज्वल वर्णा गौ का पाँव बन्धन में डाला गया, तब यज्ञ-भाग के अधिकारी वसुगण ने उसे मुक्त किया। हे अग्ने ! हमें दीर्घायु दो और पाप से बचाओ ॥ ८ ॥ [१३]

सूक्त १२७

(ऋषि:—कुशिकः सौभरो, रात्रिर्वा भारद्वाजी । देवता—
रात्रिस्तवः । छन्दः—गायत्री)

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य क्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु द्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि ।
वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥
यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥
उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उप ऋणेव यातय ॥ ७ ॥
उप ते गाइवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोम न जिग्युपे ॥ ८ ॥ १४ ॥

आगमन करने वाली रात्रि ने अन्धकार को विस्तृत किया है। वह नक्षत्रों द्वारा अलंकृत और सुशोभित हुई है ॥ १ ॥ दीप्तिमती रात्रि अत्यन्त विस्तार वाली होगई। स्वर्ग स्थित देवताओं और पार्थिव प्राणियों को इस रात्रि ने ही आच्छादित किया है। फिर प्रकाश के उत्पन्न होने पर अन्धकार का नाश होगया ॥ २ ॥ आने वाली उषा को उस रात्रि ने अपनी बहिन के समान सत्कृत किया और प्रकाश के उत्पन्न होने पर अन्धकार का नाश हो गया ॥ ३ ॥ चिड़ियाँ जैसे वृक्ष पर रैन बसेरा करती हैं, वैसे ही जिस रात्रि के आगमन पर हम सुषुप्ति को प्राप्त हुए थे, वह रात्रिदेवी हमारा मंगल करने वाली हो ॥ ४ ॥ रात्रि के आगमन पर सब ग्राम निस्तब्ध होगए। पक्षी, पशु मनुष्यादि सब प्राणी और द्रुतवेग वाला बाज पक्षी भी शांत होकर सो गए ॥ ५ ॥ हे रात्रिदेवी! वृक, वृकी हमारे पास न आवें। चोर भी हमारे घर से बहुत दूर रहें। इस प्रकार तुम हमारे लिए कल्याणकारिणी होओ ॥ ६ ॥ रात्रि का काला अन्धकार छागया है। उस अन्धकार में मेरे पास की सब वस्तुऐं ढक गई हैं। हे उषा! तुम ऋण का परिशोध करने और उससे मुक्त करने वाली हो। उसी प्रकार तुम घोर अन्धकार से भी मुक्त करती हो ॥ ७ ॥ हे रात्रि, तुम आकाश की पुत्री हो। तुम्हारे गमन काल में, मैं इस गौ के समान स्तुति को तुम्हारे निमित्त ही कर रहा हूँ, अतः इसे स्वीकार करो ॥ ८ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[१४]

सूक्त १२८

(ऋषि—विहव्यः। देवताः—विश्वेदेवाः। छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥२॥
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥३॥
मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४॥
देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥५।१५॥

हे अग्ने ! संग्राम के उपस्थित होने पर मुझे तेजस्वी करो। हम तुम्हें प्रदीप्त करके अपने देह को बलवान बनाते हैं। मेरे सामने सब दिशाओं के जीव झुकें। तुम जिसके स्वामी हो, वह हम अपने शत्रुओं को जीतने वाले हों ॥ १ ॥ विष्णु, मरुद्गण, इन्द्र, अग्नि और अन्य सब देवता संग्राम भूमि में मेरा पक्ष ग्रहण करें। आकाश के समान प्रशस्त पृथिवी मेरे अनुकूल हो। मेरी इच्छा के अनुसार ही शत्रु भी मेरे सामने झुक जाँय ॥ २ ॥ मेरे यज्ञ में आकर तृप्त होने वाले देवता मुझे धन प्रदान करें। मैं आशीर्वाद प्राप्त करता हुआ देवताओं का आह्वाता होऊं। प्राचीन काल में जिन ऋषियों ने देव-याग किये वे ऋषिगण मुझ पर कृपा करें। मेरा शरीर स्वस्थ रहे और मैं सुन्दर अपत्यादि से सम्पन्न होऊं ॥ ३ ॥ मेरे यज्ञीय पदार्थ देवताओं के लिए ग्रहणीय हों। मैं किसी पाप के वश में न पड़ूं। सभी देवता प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दें, जिससे मैं अपने अभिलषित ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकूँ ॥४॥ आकाश, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल, औषधि यह छः देवियाँ हमें समृद्ध करें।

हे देवगण ! मुझे बलवान बनाओ । हमारी सन्तान का और हमारा भी शरीर विघ्नों से बचें । हे सोम ! शत्रु हमारा नाश न कर सकें ॥ ५ ॥ [१५]

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते मैषां चित्तं प्रबुधा वि नेशत ॥६॥
धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥७॥
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं
चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ ९ ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! दुर्धर्ष होकर सब प्रकार हमारे रक्षक होओ । तुम शत्रुओं के आक्रमण को व्यर्थ कर हमें बचाओ । हमारे शत्रु अपनी इच्छा-पूर्ति में विफल हों और यहाँ से भाग जावें । शत्रुओं की बुद्धि नष्ट हो जाय ॥ ६ ॥ जो इन्द्र सृष्टि रचने वालों के भी सृष्टा हैं, जो लोकों के स्वामी, शत्रुओं के जीतने वाले और हमारी रक्षा करने वाले हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ । दोनों अश्विनीकुमार, बृहस्पति और अन्य सब देवगण मेरे इस यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें । यजमान का कर्म व्यर्थ न हो ॥ ७ ॥ जो महान् तेज को प्राप्त होकर महिमायुक्त हुए, जो विभिन्न स्थानों में निवास करते हैं, जिन्हें सर्व प्रथम आहूत किया जाता है, वे इन्द्र हमारा कल्याण करें । हे इन्द्र ! तुम हर्यश्वों के स्वामी हो । हमको सुख-सन्तान से सौभाग्यशाली बनाओ । तुम हमारे प्रतिकूल मत होना तथा किसी प्रकार भी हमारा अनिष्ट न करना ॥ ८ ॥ हमारे शत्रु इन्द्र के प्रभाव से पलायन करें । हम उन्हें इन्द्राग्नि की अनुकूलता प्राप्त कर जीत लें । आदित्यगण, वसुगण और रुद्रगण मुझे समान पुरुषों में श्रेष्ठ बनावें । वे हमें बली, मेधावी और धनवान करें ॥ ९ ॥ [१६]

सूक्त १२६ (ग्यारहवाँ अनुवाक)

(ऋषिः—प्रजापतिः परमेष्ठी । देवता—भाववृत्तम् । छन्दः—त्रिष्टुप्)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२
तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥१७

प्रलयकाल में असत् नहीं था । सत्य भी उस समय नहीं था । पृथिवी और आकाश भी नहीं थे । आकाश में स्थित सप्तलोक भी नहीं थे । सब कौन कहाँ रहता था ? ब्रह्माण्ड कहाँ था ? गम्भीर जल भी कहाँ था ? उस समय अमरत्व और मृतत्व भी नहीं था । रात्रि और दिवस भी नहीं थे । वायु से शून्य और आत्मा के अवलम्ब से श्वास प्रश्वास वाले एक ब्रह्ममात्र ही थे । उनके अतिरिक्त सब शून्य थे ॥ २ ॥ सृष्टि-रचना से पूर्व अन्धकार ने अंधकार को आवृत्त किया हुआ था । सब कुछ अज्ञात था । सब ओर जल ही जल था । वह सर्वव्याप्त ब्रह्म भी अविद्यमान पदार्थ से ढका था । वहीं एक तत्त्व तप के

प्रभाव से विद्यमान था ॥३॥ उस ब्रह्म ने सर्व प्रथम सृष्टि-रचना की इच्छा की। उससे सर्व प्रथम बीज का प्राकट्य हुआ। मेधावीजनों ने अपनी बुद्धि के द्वारा विचार करके अप्रकट वस्तु से प्रकट वस्तु की उत्पत्ति कल्पित की ॥४॥ फिर बीज धारणकर्त्ता पुरुष की उत्पत्ति हुई। फिर महिमायें प्रकट हुईं। उन महिमाओं का कार्य दोनों पार्श्वों तक प्रशस्त हुआ। नीचे स्वधा और ऊपर प्रयति का स्थान हुआ ॥५॥ प्रकृति के तत्व को कोई नहीं जानता तो उनका वर्णन कौन कर सकता है ? इस सृष्टि का उत्पत्ति-कारण क्या है ? यह विभिन्न सृष्टियाँ किस उपादान कारण से प्रकटीं ? देवगण भी इन सृष्टियों के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं, तब कौन जानता है कि यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई ? ॥६॥ यह विभिन्न सृष्टियाँ किस प्रकार हुईं ? इन्हें किसने रचा ? इन सृष्टियों के जो स्वामी दिव्यधाम में निवास करते हैं, वही इनकी रचना के विषय में जानते हैं। यह भी सम्भव है कि उन्हें भी यह सब बातें ज्ञात न हों ॥७॥

सूक्त १३०

(ऋषि—यज्ञः प्राजापत्यः। देवता—भाववृत्तम्। छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१
पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥२
कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३
अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।

विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ।।५
चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ।।६
सहस्तोमाः सहछंदस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ।।७।१८

सब ओर सूत्र को विस्तृत कर यज्ञ रूप वस्त्र को बुनते हैं। देवताओं के निमित्त किए गए अनेकों अनुष्ठानों द्वारा इसे विस्तृत किया गया। जो पितर-गण यज्ञ में पधारे हैं, वही इस वस्त्र को बुनते हुए कहते हैं—'लम्बा बुनो, चौड़ा बुनो ॥१॥ एक वस्त्र को लम्बा करते और दूसरे पितर उसे चौड़ाई के लिए विस्तृत करते हैं। यह वस्त्र स्वर्ग तक प्रशस्त हुआ है। सब ज्योतिर्मान देवगण इस यज्ञ मंडप में विराजमान हैं। इस बुनाई के कार्य में साम-मन्त्रों का ही ताना बाना डाला जाता है ॥२॥ देवताओं ने जब प्रजापति का यज्ञ किया तब उस यज्ञ की सीमा क्या थी? देवताओं की मूर्ति कैसी थी? घृत क्या था? यज्ञ की परिधियाँ क्या थीं? छन्द और उक्थ कौन से थे? संकल्प कौन-से होते थे? ॥३॥ उष्णिक् छन्द सविता का सहायक था, गायत्री, छन्द अग्नि का सहायक हुआ, अनुष्टुप छन्द सोम के अनुकूल हुआ, उक्थ छन्द सूर्य का साथी हुआ और बृहती छंद बृहस्पति का आश्रित हुआ ॥४॥ विराट छन्द मित्रावरुण के साथ हुआ, त्रिष्टुप् छन्द इन्द्र, दिवस और सोम का साथी बना, जगती छन्द अन्य देवताओं का आश्रित हुआ। इस प्रकार ऋषियों ने यज्ञ-कार्य किया ॥५॥ प्राचीन काल में जब यज्ञ का आरम्भ हुआ तब हमारे पूर्वज ऋषि और मनुष्यों ने विधिपूर्वक यज्ञ को सम्पन्न किया। जो प्राचीन काल में यज्ञानुष्ठाता हुए, मैं उन्हें अपने हृदय रूप चक्षु से इस समय देख रहा हूँ ॥६॥ दिव्य रूप वाले स्तोत्रों और छन्दों को एकत्र कर बारम्बार यज्ञानुष्ठान किया और सभी यज्ञ का काल निश्चित किया। सारथि जैसे अश्व के लगाम को ग्रहण करता है, उसी प्रकार मेधावी ऋषियों ने पूर्वजों के अनुसार ही अनुष्ठान सम्पन्न किया ॥७॥

सूक्त १३१ (दसवां अनुवाक)

(ऋषि:—सुकीर्ति: काक्षीवत: । देवता—इन्द्र: । छन्द:—त्रिष्टुप्,)

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥१

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मु: ॥२

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्त: ॥३

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथु: काव्यैर्दंसनाभि: ।
यत्सुरामं व्यपिब: शचीभि: सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५

इन्द्र: सुत्रामा स्ववाँ अवोभि: सुमृळीको भवतु विश्ववेदा: ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतय: स्याम ॥६

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेष: सनुतर्युयोतु ॥७।१९

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के जीतने वाले हो । हमारे चारों ओर जो शत्रु अवस्थित हैं, तुम उन्हें दूर भगाओ । हम तुम्हारे द्वारा विशिष्ट कल्याण को प्राप्त करें और सदा सुखी रहें ।१॥जिस प्रकार जौ के खेत में जो उत्पन्न होता है, वे अपने उस जौ को पृथक् पृथक् कर अनेक बार में काटते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! जो अनुष्ठाता यज्ञ में नमस्कार नहीं करते अथवा जो पुरुष यज्ञ-विमुख हैं, उन पापियों के खाद्यान्न को बारम्बार नष्ट करने वाले होओ ॥२॥ जिस शकट में एक चक्र ही है, वह शकट कभी अपने गन्तव्य स्थान

को प्राप्त नहीं हो सकता। उस शकट से संग्राम के अवसर पर अन्न-लाभ की आशा नहीं की जा सकती। गौ, अश्व, अन्न और धनादि की कामना करने वाले मेधावी पुरुष इन्द्र की मैत्री के लिए यत्न करते हैं ॥३॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों मंगलमय हो। जब इन्द्र ने नमुचि के साथ संग्राम किया था, तब तुम दोनों ने इन्द्र से मिल कर सोम पान किया और रणक्षेत्र में उनके सहायक हुए ॥४॥ हे अश्विनीकुमारो! माता पिता जैसे अपने पुत्र का पालन करते हैं, वैसे ही तुमने श्रेष्ठ सोम-रस को पीकर अपने बल से इन्द्र की रक्षा की। हे इन्द्र! उस समय बुद्धि को देने वाली सरस्वती भी तुम्हारे अनुकूल थी ॥५॥ इन्द्र सर्वज्ञ हैं। वे ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ रक्षक हैं। वे हमारी रक्षा करें और सुख प्रदान करें। वे शत्रुओं को दूर भगा कर हमारे भय को नष्ट करें। हम श्रेष्ठ बल को प्राप्त करें। यज्ञ का भाग प्राप्त करने वाले इन्द्र की प्रसन्नता को हम पावें। वे हमसे हर हर प्रकार सन्तुष्ट रहें। वे हमारे निकटस्थ और दूर देशीय शत्रु को हमारी दृष्टि से दूर करें ॥६॥७ [१६

सूक्त १३२

(ऋषि—शकपूतो नार्मेधः। देवता—लिंगोक्ता: मित्रावरुणौ, छन्द—बृहती, पंक्तिः)

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसुरीजानं भूमिरभि प्रभूषणि।
ईजानं देवावश्विनावभि सुम्नैरवर्धताम् ॥१

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि।
युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ॥२

अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः।
दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥३

असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा।
मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥४

अस्मिन्त्स्वे तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगताहन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात्तनूष्व: प्रियासु यज्ञियास्वर्वा ॥५
युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमि: पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभि: ॥६
युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता न: कणूकयन्तीर्नृमेधस्त्रे अंहस: सुमेधस्त्रे अंहस: ॥७॥२०

'यज्ञानुष्ठान करने वाले के लिए ही दिव्य धनों की प्राप्ति होती है वही पार्थिव धनों को भी प्राप्त करता है । अश्विनीकुमार उसे विभिन्न सुखों से सम्पन्न करते हैं ॥१॥ हे मित्रावरुण ! तुमने पृथिवी को धारण किया है । हम श्रेष्ठ ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए तुम्हारा पूजन करते हैं । यजमान से तुमने जो मैत्रीभाव स्थापित किया है, उसके द्वारा हम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥२॥ हे मित्र और वरुण देवता ! तुम्हारे निमित्त जब हम यज्ञ सामग्री जुटाते हैं, तभी हम अपने इच्छित धन को अपने पास उपस्थित पाते हैं । यज्ञ में दान करने वाला यजमान जब धन प्राप्त करता है, तब कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता ॥३॥ हे बलवान् मित्र देवता ! सूर्यमंडल स्थित सूर्य का तेज तुमसे भिन्न है । हे सबके राजा वरुण ! तुम्हारे रथ का शीर्ष स्थान इधर ही आता दिखाई देता है । यह यज्ञ हिंसक राक्षसों का नाश करने वाला है । अतः अकल्याण इसका स्पर्श भी नहीं कर सकता ॥४॥ शुक्र शकपूत का पाप दुष्ट प्रकृति वाले राक्षसों का नाश करें । मित्र देवता मेरा हित करने वाले हों । वही मेरे शरीर की रक्षा करने वाले हों । हमारे श्रेष्ठ से श्रेष्ठ यज्ञीय पदार्थों की भी मित्र रक्षा करें ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम अदिति के पुत्र हो । तुम अत्यन्त मेधावी हो । आकाश पृथिवी को जल से शोधित करो । नीचे के इस लोक को श्रेष्ठ पदार्थों से पूर्ण करो । सूर्य की रश्मियों के द्वारा सम्पूर्ण लोक को सुख आरोग्य प्रदान करो ॥६॥ तुम अपने कर्म बल से ही

सबके अधीश्वर हुए हो। तुम्हारा जो रथ वन में विचरण करता है, वह रथ अश्वों के द्वारा वहन करने योग्य बने। जब सब शत्रु क्रोध से कोलाहल करें, तब नृमेध ऋषि विपत्ति से मुक्त हों ॥७॥

सूक्त १३३

(ऋषि—सुदः पैजवनः । देवता—इन्द्रः । छन्द—शक्वरी, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३

यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि वि बाधो असि सासहिः ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४

यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥५

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥६

अराय्यं सु त्वमिन्द्र तं शिक्षा या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोघ्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥७॥२१

इन्द्र के रथ के आगे उनकी सेना उपस्थित है। तुम उस सेना का भले प्रकार पूजन करो। संग्राम भूमि में शत्रु जब समीप आकर युद्ध करता है, तब इन्द्र पीछे नहीं हटते और शत्रु को मार डालते हैं। वही इन्द्र हमारे स्वामी हैं। वे हमारी ओर ध्यान दें। उनके प्रभाव से शत्रुओं की ज्या टूट जावे ॥१॥ निम्न स्थान में जाती हुई जल राशि को हे इन्द्र ! तुमने ही प्रवाहित किया है। तुमने ही मेघ को विदीर्ण किया। शत्रु तुम्हें हिंसित नहीं कर सकता, क्योंकि तुम किसी के द्वारा नहीं जीते जा सकते। तुम संसार का पालन करने वाले हो। हम तुम्हें सबसे अधिक मानकर तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुए हैं। तुम्हारे प्रभाव से शत्रुओं की ज्या टूट जाय ॥२॥ अदानशील शत्रु हमारी दृष्टि से ओझल होजाय। हमारी हिंसा कामना करने वाले शत्रुओं का संहार करो। जब तुम देने की इच्छा करो, तब हम धन प्राप्त करें। शत्रुओं की ज्या टूट जाय ॥३॥ हे इन्द्र ! जो भेड़िया के समान हिंसक वृत्ति वाले प्राणी हमारे सब ओर विचरण करते हैं, उन्हें मार कर पृथिवी पर गिरादो। क्योंकि तुम शत्रुओं को संकटग्रस्त करते और उन्हें रुलाते हो। उन शत्रुओं की ज्या टूट जाय ॥४॥ हे इन्द्र ! हमसे निम्न श्रेणी के, समान जन्म वाले जो शत्रु हमारा अनिष्ट चिन्तन करें, उनको वैसे ही अधोगति दो जैसे आकाश से सभी पदार्थ नीचे रहते हैं। हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं की ज्या छिन्न होजाय ॥५॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे आज्ञानु-वर्ती हैं। हम तुम्हारी मैत्री के लिए सदा यत्नशील रहते हैं। तुम हमें पुण्य मार्ग पर चलने वाला करो। हम सभी पापों से मुक्त हों। हमारे शत्रुओं की ज्या टूट जाय। हे इन्द्र तुम हमको वह धन बताओ, जिससे स्तुति करने वाले की कामना सिद्ध हो। पृथिवीरूपिणी यह सुविस्तीर्ण गौ महान् स्तन वाली होकर सहस्र धाराओं से दूध सींचे और हमें तृप्ति प्रदान करे ॥७॥

सूक्त १३४

(ऋषिः—मान्धाता यौवनाश्वः, गोधा । देवता—इन्द्रः ।
छन्दः—पङ्क्ति)

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥

अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥

अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभि
र्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥

अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभि
र्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ४ ॥

अव स्वेदा इवाभितो विष्वक्पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वायाइव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मति
र्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ५ ॥

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ६ ॥

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ॥ ७ ॥ २२

हे इन्द्र ! उषा के समान तुम भी आकाश पृथिवी को अपने तेज से भर देते हो। तुम मनुष्यों के ईश्वर और महान् से भी महान् हो। तुम अपनी कल्याणमयी माता अदिति की कोख से उत्पन्न हुए हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो दुष्ट स्वभाव वाला व्यक्ति हमारे वध की इच्छा करता है, वह महाबली हो तो भी तुम उसे बलहीन कर देते हो। तुम हमारे अनिष्ट चिंतक शत्रु को पृथिवी पर गिराते हो। तुम अपनी कल्याणमयी माता द्वारा उत्पन्न हुए हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले एवं अ यन्त बली हो। सबको सुखी करने वाले अपने महान् अन्न को अपने बल से हमारी ओर भेजो और हमारी रक्षा भी करो। तुम अपनी मङ्गलमयी माता द्वारा उत्पन्न हुए हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने सैकड़ों कर्म किये हैं। तुम जब विभिन्न प्रकार के अन्नों को प्रेरित करते हो, तब सोम याग करने वाले यजमान का अपनी असीम महिमा से पालन करते हो। तुम ही उसे धन प्रदान करते हो। तुम अपनी मङ्गलमयी माता द्वारा उत्पन्न हुए हो ॥ ४ ॥ जैसे स्वेद सब ओर गिरता है, वैसे ही इन्द्र के आयुध सब ओर गिरें। वे आयुध सबको व्याप्त करने वाले हों। हम कुबुद्धि से मुक्ति पावें। तुम अपनी मङ्गलमयी माता अदिति की कोख से उत्पन्न हुए हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य वाले और मेधावी हो। अंकुश जैसे हाथी को वश में रखता है, वैसे ही वश में रखने वाले 'शक्ति' नामक आयुध को तुम धारण करते हो। अपने पाँवों से छाग जैसे वृक्ष की शाखा को खींचता है, उसी प्रकार तुम अपने आयुध से खींच कर शत्रु को धराशायी करते हो। तुम अपनी मङ्गलमयी माता की कोख से उत्पन्न हुए हो ॥ ६ ॥ हे देवगण ! तुम्हारे कर्म में हम कोई त्रुटि नहीं करते। हमारे कार्य में शिथिलता या उदासीनता का पुट नहीं है। हम विधि पूर्वक और मन्त्रों द्वारा अनुष्ठान कर्म

करते हैं। हम यज्ञीय पदार्थों को एकत्र कर अनुष्ठान को सम्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥ [२२]

सूक्त १३५

(ऋषिः—कुमारो यामायनः । देवता—यमः । छन्दः—अनुष्टुप्)

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥ १ ॥

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥ २ ॥

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेष विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥ ३ ॥

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥ ४ ॥

कः कुमारमजनयद्रथं को निर्वर्तयत् ।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ॥ ५ ॥

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥ ६ ॥

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥ ७ । २३

सुन्दर पत्तों से सुशोभित जिस वृक्ष पर देवताओं के साथ बैठे हुए यम सोमपान करते हैं, मैं उसी वृक्ष पर जाकर बैठूं। और अपने पूर्वजों का साथी होऊँ। इससे हमारे पितरों की कामना पूर्ण होगी ॥ १ ॥ मैंने अपने पिता की दया रहित 'पूर्व पुरुषों का साथी' होने वाली बात के प्रति विरक्ति प्रकट की थी। परन्तु अब मैंने उस विरक्ति को त्याग कर अनु-

रक्ति को ग्रहण किया है ॥ २ ॥ हे नचिकेत कुमार ! तुमने बिना चक्र के नवीन रथ की कामना की थी। तुम उस रथ में ईर्षा भी नहीं चाहते थे। तुम्हारी इच्छा थी कि वह रथ सर्वत्र गमनशील हो। परन्तु तुम बिना समझे ही उस रथ पर सवार हो गए हो ॥ ३ ॥ हे कुमार ! तुमने अपने बन्धु-बांधवों का त्याग कर उस रथ को हाँक दिया। उस रथ में तुम्हारे पिता के सांत्वनापूर्ण वचनों ने गति उत्पन्न की है। उनका वह वचन नौका रूप आश्रय हुआ है। उस नौका पर अवस्थित होकर वह रथ यहाँ से दूर चला गया ॥ ४ ॥ इस बालक को किसने उत्पन्न किया ? किसने इस रथ को भेजा ? यह बालक प्राणियों के लोक में जिस प्रकार पहुँचेगा, उस बात को कहने वाला कौन है ? ॥ ५ ॥ प्राणियों के लोक में यह बालक जिसके द्वारा पहुँचेगा वह बात प्रथम ही बता दी गई है। पहले पिता का उपदेश और फिर प्रत्यागमन की बात प्रकट हुई ॥ ६ ॥ यह यमराज का धाम है। यह देवताओं द्वारा निर्मित बताया जाता है। यहाँ यमराज को सुख देने के लिए वेणु वादन होता और वह स्तुतियों के द्वारा यमराज अलंकृत होते हैं ॥ ७ ॥ [२३]

सूक्त १३६

(ऋषि—मुनयो वातरशनाः। देवता—केशिनः। छन्दः—अनुष्टुप्)

केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥ १ ॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥ २ ॥

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥ ४ ॥

वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥ ५ ॥
अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥ ६ ॥
वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥ ७ । २४

अग्नि और सूर्य जल तथा आकाश-पृथिवी के धारणकर्त्ता हैं। वही सम्पूर्ण जगत् को अपने प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं। यही ज्योति केशी रूप से वर्णित है ॥ १ ॥ वातरसन वंशज ऋषि पीत वल्कल धारण करते हैं और देवत्व को प्राप्त होकर वायु वेग से गमन करने में समर्थ हुए हैं ॥ २ ॥ हमने सब लौकिक व्यवहारों का त्याग कर दिया। अब हम उन्मुक्त होगए। हम वायु से भी ऊँचे चढ़ गए। हमारी आत्मा वायु में मिल गई। तुम हमारे देह को ही देखते हो ॥ ३ ॥ वे ऋषिगण आकाश में उड़ कर सब पदार्थों को देखने में समर्थ हैं। जहाँ जितने देवता निवास करते हैं, वे सबसे स्नेह करने वाले एवं बन्धु के समान हैं। वे सत्याचरण करते हुए ही अमृतत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ वे ऋषिगण अश्व रूप होकर वायु मार्ग पर विचरण करते हैं। वे वायु के सहगामी हुए हैं। देवगण उनसे मिलने की कामना करते हैं। वे पूर्व-पश्चिम स्थित समुद्रों में निवास करने वाले हैं ॥ ५ ॥ अप्सराओं, गन्धर्वों और हरिणों में विचरणशील केशी देव सभी जानने योग्य विषयों के ज्ञाता हैं। वे रस के उत्पन्न करने वाले, सबके मित्र और सुख प्रदान करने वाले हैं ॥ ६ ॥ जब केशी देवता रुद्र के साथ जल पीते हैं, तब वायु उस जल को कम्पित करते हैं और कठिन माध्यमिकी वाक् को क्षीण करते हैं ॥ ७ ॥ [२४]

१३७ सूक्त

(ऋषि—सप्तऋषय एकर्चाः । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-अनुष्टुप् ।)

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुन. ॥ १
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥ २
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रप' ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥ ३
आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभि. ।
दक्ष' ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ ४
त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥ ५
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ६
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥ ७ । २५

हे देवगण ! मुझ गिरे हुए को उन्नत करो । मुझ अपराधी को अपराध-मुक्त करो । हे देवताओ ! मुझ उपासक की आयु को दीर्घ करो ॥१॥ समुद्र के स्थान तक दो वायु प्रवाहमान हैं । हे स्तोता ! एक वायु तुम में बल भर दे और दूसरी वायु तुम्हारे पापों को नष्ट करदे ॥२॥ हे वायो ! तुम इस ओर प्रवाहित होकर औषधि को यहाँ लाओ और जो हमारे लिए अमं[illegible] का कारण है उसे यहाँ से दूर ले जाओ । हे वायो ! तुम भेषज रू[illegible] हो और देवताओं के दूत रूप से सर्वत्र गमन करते हो ॥३॥ हे यजम[illegible]न ! मैं तुम्हें हिंसा से बचाने वाली रक्षाओं के साथ कल्याण करने के लि[illegible]ए यहाँ आया हूँ । मैंने तुम में श्रेष्ठ बल स्थापित करने का कार्य भी किय[illegible] है । मैं तुम्हारे रोगों को भी दूर कर रहा हूँ ॥४॥ देवगण, मरुद्गण [illegible]र संसार के सब प्राणी

इसके अनुकूल हों। यह पुरुष आरोग्य-लाभ करें ॥५॥ जल औषधि रूप है, यह सभी रोगों को दूर करने वाली औषधि के समान गुणकारी है। यही जल तुम में औषधि के सब गुण स्थापित करे ॥६॥ वाणी के साथ जिह्वा गति करती है। दोनों हाथ दस अँगुलियों से युक्त हैं। मैं तुम्हारे रोग को दूर करने के लिए अपने दोनों हाथों से तुम्हारा स्पर्श करता हूँ ॥७॥ [२५]

१३८ सूक्त

(ऋषि-अङ्ग औरवः। देवता-इन्द्र। छन्दः-जगती।)

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१
अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम्।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा ॥२
वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः।
दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवां ऋजिश्वना ॥ ३
अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥ ४
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥५
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम्।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ॥६।२६

हे इन्द्र तुम्हारा बन्धुत्व प्राप्त करने के लिए अनुष्ठाताओं ने यज्ञीय द्रव्य एकत्र कर बलासुर का वध किया। उस समय तुम्हारी स्तुति की गई। तुमने कुत्स को सूर्योदय के दर्शन कराए और जल को प्रवाहित कर वृत्र के सब कर्मों को व्यर्थ कर दिया ॥१॥ हे इन्द्र! तुमने माता के समान जल को छोड़ा और पर्वतों में उसे मार्ग दिया। तुमने ही पर्वत स्थित गौओं को हाँका और मधुर सोम-रस का पान किया। तुमने वृष्टि प्रदान द्वारा वृक्षों को पुष्ट

किया । तुम्हारे ही कर्म से सूर्य तेजस्वी हुए और श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति की गई ॥२॥ सूर्य ने अपने रथ को आकाश-मार्ग पर अग्रसर किया। उन्होंने देखा कि उपासक दस्युओं को हराने में समर्थ नहीं हैं । इन्द्र ने ऋजिश्वा से मैत्री स्थापित की और पिप्रु नामक राक्षस की माया का नाश कर दिया ॥३॥ इन्द्र ने शत्रुओं की विकराल सेनाओं का संहार कर डाला । जैसे सूर्य भूमि से रस को खींचते हैं, वैसे ही उन्होंने शत्रुओं के नगरों से धन को खींच लिया । इन्द्र ने उपासकों की स्तुतियों को स्वीकार कर अपने तेजस्वी आयुध से शत्रु को भूमि पर गिराया ॥४॥ इन्द्र की सेना से युद्ध करने में समर्थ कोई नहीं है । उसने सब ओर गमन करने वाले और शत्रुओं को चीरने वाले वज्र से वृत्र को पतित किया । इन्द्र के उस वज्र से शत्रु भय-भीत हों । जब इन्द्र चलने को प्रस्तुत हुए तब उषा ने अपने शकट को चलाया ॥५॥ हे इन्द्र ! यह सब वीर कर्म तुम्हारे ही कहे जाते हैं । तुमने ही यज्ञ में विघ्न करने वाले मुख्य राक्षस का हनन किया था । तुमने ही अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के गमन मार्ग को बनाया । जब वृत्र सूर्य के रथ के पहिये को पृथक् करता है, तब सबके पिता स्वर्गलोक तुम्हारे द्वारा ही उस चक्र को व्यवस्थित कराते हैं ॥६॥　　　　[२६]

१३६ सूक्त

(ऋषि—विश्वावसुर्देवगन्धर्वः । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप्)

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ १
नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ २
रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।
देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ३
विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन् ।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसां परि सूर्यस्य परिधींरपश्यत् ॥ ४

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ॥ ५
सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥ ६ । २७

सविता देवता रश्मियों से सम्पन्न और तेजस्वी हैं । उनके केश स्वर्णिम हैं । वे पूर्व की ओर आकर प्रकाश को प्रकट करते हैं । उन मेधावी के उत्पन्न होने पर ही पूषा देवता आगे आते हैं । वे सम्पूर्ण जगत के द्रष्टा हैं । वही सब प्राणियों की रक्षा करते हैं ॥१॥ सविता देव मनुष्यों पर अनुग्रह करते हुए सूर्य मंडल में निवास करते और द्यावा पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं । वही सब दिशाओं और कोणों को प्रदर्शित करते और पूर्व, पर, मध्य और प्रान्त आदि भागों को भी प्रकाश देते हैं ॥२॥ सूर्य धन के कारण रूप हैं । सम्पत्तियाँ उन्हीं के आश्रय में एकत्र होती हैं । देखने योग्य पदार्थ को वे अपनी महिमा से प्रकाशित करते हैं । वे जिस कार्य को करते हैं, वह सिद्ध होता है । जहाँ समस्त धन एकत्र होता है, वहाँ वे इन्द्र के समान दण्ड के समान होते हैं ॥३॥ हे सोम ! जब स्मित जल ने विश्वावसु को देखा तब वह पुण्य कर्मों के प्रभाव से अद्भुत रूप में बह निकला । जल को प्रेरित करने वाले इन्द्र ने जब उक्त बात को जाना तब उन्होंने सूर्य मंडल का सब ओर से निरीक्षण किया ॥४॥ जल के रचने वाले विश्वावसु दिव्यलोक में निवास करते हैं । वे हमें सब बात बतावें । जो बात ज्ञात नहीं है अथवा सत्य है, उसे जानने वाली हमारी बुद्धि की भी वे रक्षा करें ॥५॥ इनको नदियों के निम्न भाग में स्थित एक मेघ दिखाई दिया । उन्होंने पोषणमय द्वार को खोला । विश्वावसु ने उन्हें सब नदियों की बात बताई । वे इन्द्र मेघों के बल के भले प्रकार ज्ञाता हैं ॥६॥ [२७]

१४० सूक्त

(ऋषि—अग्निः पावकः । देवता—अग्नि । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ ४
इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥ ५
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ । २८

हे अग्ने ! तुम्हारा अन्न प्रशंसा के योग्य है । तुम्हारी ज्वालाएँ अद्भुत तेज वाली हैं । प्रकाश ही तुम्हारा धन है । तुम कर्म करने में चतुर हो और दानशील व्यक्ति को श्रेष्ठ धन देने वाले हो ॥१॥ हे अग्ने ! जब तुम अपने तेज के साथ उदय को प्राप्त होते हो, तब तुम्हारा तेज सभी को पवित्र करता है । तुम आकाश पृथिवी को स्पर्श करते हो । तुम उनके पुत्र हो और वे तुम्हारी माता हैं । अतः तुम उनके सामने क्रीडा करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी और तेज से उत्पन्न हुए हो । तुम्हें श्रेष्ठ स्तुतियों के द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है । हमने विविध प्रकार की यज्ञ-सामग्री तुम में हुत की है ॥३॥ हे अग्ने ! तुम विनाश रहित हो । तुम अपनी नवोदित रश्मियों से अलंकृत होकर हमारे धन की वृद्धि करो । तुम श्रेष्ठ रूप वाले होकर सर्व फलदाता यज्ञ में विराजमान होते हो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ को सुशोभित करने वाले, मेधावी, अन्न प्रदान करने वाले और श्रेष्ठ पदार्थ समर्पित करने वाले हो । तुम हमें श्रेष्ठ अन्न और सब फल उत्पन्न करने वाला धन प्रदान करो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥ सुख की प्राप्ति के लिए यज्ञ-योग्य, सर्वदर्शक और प्रवृद्ध अग्नि को मनुष्यों ने उत्पन्न किया है । हे अग्ने ! तुम दिव्यलोक

में निवास करने वाले हो। तुम्हारा कान सब बातें सुनने में समर्थ है, इसलिए सब यजमान तुम्हारा स्तव करते हैं ॥६॥ [२८]

१४१ सूक्त

(ऋषि—अग्निस्तापसः । देवता:-विश्वेदेवाः । छन्दः-अनुष्टुप्)

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ १
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥ २
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ३
इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः सङ्गत्यां सुमना असत् ॥ ४
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ५
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ६ । २९

हे अग्ने ! तुम हम पर प्रसन्न होओ। हमें उचित उपदेश दो। हे धनदाता ! हमें धन दान दो ॥१॥ बृहस्पति, भग, अर्यमा तथा अन्य सब देवता, वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के सहित आकर हमें धन दें ॥२॥ बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, अग्नि, आदित्यगण, प्रजापति और राजा सोम को हम अपनी रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥३॥ इन्द्र, वायु, बृहस्पति का आह्वान करने से सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए हम इनका आह्वान करते हैं। धन-प्राप्ति के लिए सब हमारे अनुकूल हों ॥४॥ हे स्तोतागण ! तुम बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, अर्यमा सविता और सरस्वती से दान की याचना करो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम समस्त अग्नियों से मिलकर हमारे यज्ञ को

सम्पन्न करो और हमारे स्तोत्र की वृद्धि करो। हमारे यज्ञ में धन दाता देवताओं को दान के लिए आहूत करो ॥६॥　　　　　　　　　　　　[२६]

१४२ सूक्त

(ऋषि—शार्ङ्गाः । देवता—अग्निः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य न्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥ १
प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयत. साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धिय. पुरश्चरन्ति पशुपाइव त्मना ॥ २
उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणा भवन्ति सा ते हेति तविषी चक्रु धाम ॥ ३
यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ॥ ४
प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथास ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥ ५
उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥६
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेत. पन्था तेन याहि वशाँ अनु ॥ ७
आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणी. ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥ ८ । ३०

हे अग्ने ! यह जरिता ऋषि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे समान अन्य कोई व्यक्ति हमारा स्वजन नहीं है। तुम्हारा निवास स्थान श्रेष्ठ है। हम तुम्हारे उत्ताप से दग्ध न हों, इसलिए अपनी तेजस्वी ज्वालाओं को हमसे दूर रखो ॥१॥ हे अग्ने ! जब तुम अन्न की कामना करते हुए प्रकट होते हो तब तुम्हारी उत्पत्ति अत्यन्त सुन्दर होती है। तुम भाई के समान

-सब लोकों को सुशोभित करते हो। तुम्हारे इधर-उधर गमनशील ज्वालाओं को देखकर हमारे स्तोत्र प्रकट हुए हैं। वे ज्वालाएं पशुओं के स्वामी के समान अग्रगमन वाली होती हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो। तुम जलाते समय बहुत से वृक्षों को स्वयं ही छोड़ते हो। धन-धान्य सम्पन्न भू-भाग को तुम अन्न-रहित कर देते हो। इस प्रकार कोप करने वाली तुम्हारी ज्वालाओं के हम कोप-भाजन न हों ॥३॥ जब तुम वृक्षों को ऊपर नीचे से दग्ध करते हो, तब लुटेरों के समान पृथक्-पृथक् गमन करते हो। जब तुम्हारे पीछे वायु प्रवाहित होता है, तब तुम उस हरे-भरे भू-भाग को उसी प्रकार अन्न रहित कर देते हो, जिस प्रकार नाई दाढ़ी मूँछों को साफ कर देता है ॥४॥ अग्नि की ज्वालाएं अनेक हैं, पर यह एक स्थान को ही गमन करती हैं। हे अग्ने ! तुम इनके द्वारा सम्पूर्ण जंगल को दग्ध करते हो और झुक-झुक कर ऊँचे स्थानों पर चढ़ जाते हो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम्हारे तेज, बल और ज्वालाओं का उदय हो। तुम ऊपर नीचे जाओ आओ। सभी देवता तुमसे मिलें। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥६॥ [३०]

१४३ सूक्त

(ऋषि-अत्रिः सांख्यः। देवता-अश्विनौ। छन्द-अनुष्टुप्।)

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥ १

त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥ २

नरा दंसिष्ठवत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना।
आ यन्नः सदने पृथौ सुमने पर्षथो नरा ॥४

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम्।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥ ५

आ-वा सुम्नैः शंयूइव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।

समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥ ६ । १

हे अश्विनीकुमारो ! यज्ञ करते करते ही महर्षि वृद्ध हो गए, तुम दोनों ने उन्हें अश्व के समान गन्तव्य स्थान पर पहुँचने वाला बना दिया। कक्षीवान् ऋषि को तुमने जो युवावस्था प्रदान की, वह जीर्ण रथ को नवीन कर देने के समान थी ॥ १ ॥ अत्यन्त बली शत्रुओं ने अत्रि को द्रुतगामी अश्व के समान बाँध रखा था। जैसे दृढ़ गाँठ को खोलना कठिन होता है, वैसे कठिन बंधन से तुमने अत्रि को छुड़ाया। तब वे युवा पुरुष के समान अपने स्थान को प्राप्त हुए ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम उज्ज्वल वर्ण वाले और नेता हो। महर्षि अत्रि को बुद्धि देने की कामना करो। जब तुम ऐसा करोगे तब मैं फिर तुम्हारी स्तुति करूँगा ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम श्रेष्ठ अन्न वाले हो। हमारे महान् यज्ञ के आरम्भ में होने पर जब तुमने उसकी रक्षा की, तब हमें यह ज्ञात हुआ कि तुमने हमारे स्तोत्र को स्वीकार कर लिया है ॥ ४ ॥ समुद्र की तरङ्गों पर डूबते उतराते भुज्यु के लिये तुम पंख वाली नाव लेकर गये और समुद्र से उसे पार लगाकर अनुष्ठान करने की सामर्थ्य प्रदान की ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सबके जानने वाले और नेता हो। तुम दाता होकर अपने धन के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो। जैसे दूध से थन पूर्ण होता है, वैसे ही तुम हमें धन से पूर्ण कर दो ॥ ६ ॥ [1]

१४४ सूक्त

(ऋषि—सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, बृहती, पंक्तिः ।)

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते । दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥ १

अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।

अयं विभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥ २

घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः । अव दीधेदहीशुवः ॥ ३

यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।

शतचक्रं यो ह्यो वर्तनिः ॥ ४
यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार बन्धुता ॥ ५
एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥ ६ । २

हे सृष्टि रचयिता इन्द्र ! यह अमृत के समान मधुर सोम तुम्हारी ओर अश्व के समान गमन करता है। यह सोम बल का आश्रय रूप और प्राण के समान है ॥ १ ॥ इन्द्र दानशील हैं। उनका वज्र प्रशंसनीय है। वे इन्द्र ऊर्ध्वकृशन नामक स्तोता के रक्षक हैं। ऋभुगण के समान यह भी यज्ञ करने वाले का पालन करते हैं ॥ २ ॥ यह तेजस्वी इन्द्र अपने यजमानों के पास भले प्रकार गमन करते हैं। मुझ सुपर्णश्येन ऋषि के वंश को उन्होंने भली भाँति प्रवृद्ध किया है ॥ ३ ॥ श्येन अत्यन्त दूर देश से सोम को ले आये। यह सोम सभी अनुष्ठानों के लिए श्रेष्ठ है। वह वृत्र-वध के लिए उत्साहवर्द्धन करता है ॥ ४ ॥ वह लोहित वर्ण वाला, श्रेष्ठ दर्शन और देव-विमुखों द्वारा अवध्य है। श्येन उसे अपने पञ्जे में रखकर ले आये। हे इन्द्र ! इस सोम का रस, प्राण और परमायु प्रदान करो और सोम के निमित्त हमसे भी मित्रता स्थापित करो ॥ ५ ॥ जब इन्द्र सोम-पान कर लेते हैं, तब वे हमारी भले प्रकार रक्षा करते हैं। हे श्रेष्ठकर्मा इन्द्र ! हमें यज्ञ के लिए अन्न और आयु प्रदान करो। यह सोम यज्ञानुष्ठान के निमित्त ही निष्पन्न किया गया है ॥ ६ ॥ [२]

१४५ सूक्त

(ऋषि—इन्द्राणी । देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम् । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः ।)

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥ १
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।

सपत्नी मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥ २

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।

अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ३

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने ।

परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः ।

उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६ । ३

मैं उस अत्यन्त गुणवती, लतारूपिणी औषधि को खोदता हूँ। इसके द्वारा सपत्नी को क्लेश दिया जाता है और पति को आकर्षित किया जाता है ॥ १ ॥ हे औषधि ! तुम्हारे पत्तों का मुख ऊँचा है। तुम पति का प्रेम प्राप्त करने में कारण रूप हो। तुम्हें देवताओं ने ही इस योग्य बनाया है। तुम्हारा तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है। तुम मेरी सपत्नी (सौत) को यहाँ से दूर करो और मेरे पति को मेरे वश में रहने वाला करो ॥ २ ॥ हे औषधि तुम सर्वश्रेष्ठ हो। मैं भी तुम्हारी कृपा से प्रमुखों में प्रमुख होऊँ। मेरी सपत्नी निकृष्ट से निकृष्ट हो जाय ॥ ३ ॥ सपत्नी किसी के लिए प्रिय नहीं होती, इसलिए मैं अपनी सपत्नी का नाम तक नहीं लेती। मैं उसे दूर से भी दूर भेज देना चाहती हूँ ॥ ४ ॥ हे औषधि ! तुम अद्भुत शक्ति वाली हो। मेरा सामर्थ्य भी अद्भुत है। तुम मेरे पास आगमन करो तब हम और तुम दोनों अपने सम्मिलित प्रयत्न से सपत्नी को निर्बल करें ॥ ५ ॥ हे स्वामिन् ! यह महान् शक्ति वाली औषधि मेरे द्वारा तुम्हारे सिरहाने स्थापित की गई है। मैंने शक्तिशाली तकिया तुम्हारे सिरहाने को रखा है। जैसे गौ बछड़े की ओर जाती है और जल नीचे की ओर गमन करता है, वैसे ही तुम्हारा मन मेरी ओर गमनशील हो ॥ ६ ॥ [३]

१४६ सूक्त

(ऋषि—देवमुनिरैरम्मदः । देवता-अरण्यानी । छन्द-अनुष्टुप् ।)

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीँ ॥१
वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ॥२
उत गावइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ३
गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ४
न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥ ५
आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥६ । ४

हे अरण्यानी ! तुम देखते-देखते ही दृष्टि से ओझल हो जाते हो। तुम गाँव के मार्ग पर क्यों नहीं जाते ? क्या तुम एकाकी रहने में भयभीत नहीं होते ? ॥ १ ॥ कोई जन्तु बैल के समान शब्द करता और कोई 'चीं' करता हुआ ही उसका उत्तर-सा देता है, उस समय लगता है कि वे वीणा के प्रत्येक स्वर को निकालते हुए अरण्यानी का यश-गान करते हैं ॥ २ ॥ इस जङ्गल में कहीं गौएँ चरती हुई जान पड़ती हैं और कहीं लता गुल्म आदि से निर्मित कुटीर दिखाई पड़ती है। ऐसा भी लगता है कि सायंकाल में वनमार्ग से अनेक शकट निकल रहे हों ॥ ३ ॥ अरण्यानी में निवास करने वाला व्यक्ति रात्रि में शब्द सुनता है। एक पुरुष गौ को बुलाता है और दूसरा पुरुष वृक्ष से काष्ठ को काटता है ॥ ४ ॥ कस्तूरी के समान ही अरण्यानी सौरभमय हैं। वह अन्न से परिपूर्ण है। पहले वहाँ कृषि का अभाव था। वह हरिणों की

आश्रयदात्री हैं। मैं इस प्रकार उस गृहद् अरण्यानी की स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ [४]

१४७ सूक्त

(ऋषि—सुवेदा शैरीषिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्य विवेरपः ।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिव ॥१
त्व मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वा विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥ २
एषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मधम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्नये धने ॥ ३
स इन्नु राय. सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभि. ॥ ४
त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥ ५ । ५

हे इन्द्र ! तुम्हारा क्रोध अत्यन्त भीषण होता है। तुमने वृत्र का संहार कर विश्व का मंगल करने के लिए वृष्टि मार्ग की रचना की। यह आकाश-पृथिवी तुम्हारी आश्रिता हैं। हे वज्रिन् ! यह पृथिवी तुम्हारे भय से कम्पित होती है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रशंसा के पात्र हो। अन्न का उत्पादन कल्पित करके तुमने अपनी महिमा से मायावी वृत्र को संकटग्रस्त किया। गौ की कामना करने वाले उपासक तुमसे याचना करते हैं। सभी यज्ञों में आहुति के समय स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे पुरुहूत इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान हो। अत. इन मेधावी स्तोताओं के समक्ष प्रकट होने की कृपा करो। यह तुम्हारे अनुग्रह से ही समृद्धशाली और बलवान हुए हैं। पुत्र-पौत्रों और विभिन्न इच्छित सम्पत्तियों और ऐश्वर्यों की प्राप्ति के निमित्त यह यज्ञानुष्ठान का आरम्भ कर अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र का पूजन करते हैं ॥ ३ ॥ जो उपासक सोम-पान से उत्पन्न हर्ष इन्द्र को देना जानता है, वह अपने अभीष्ट धन की

याचना करता है। हे बलवान इन्द्र! तुम जिस यज्ञ-दान वाले पुरुष को समृद्ध करना चाहते हो, वह उपासक पुरुष शीघ्र ही अन्न, धन और भृत्यादि से युक्त होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! बल की प्राप्ति के निमित्त विशेष प्रकार से तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। तुम हमें अत्यन्त धन और बल प्रदान करो। तुम रमणीय दर्शन वाले और मित्रावरुण के समान दिव्य ज्ञान के अधीश्वर हो। संसार के सभी दिव्य और भौतिक ऐश्वर्य को तुम ही हमारे लिए बाँटते हो ॥ ५ ॥ [५]

१४८ सूक्त

(ऋषि–पृथुर्वैन्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः ॥ १
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥ २
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥ ३
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥ ४
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥ ५ । ६

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! हम अन्न एकत्र कर और सोम का निष्पादन कर तुम जिस स्तुति की कामना करते हो, उसे तुम्हारे निमित्त करेंगे। जो ऐश्वर्य तुम्हारे मनोनुकूल है उसे तुम हमें बहुसंख्यक रूप में प्रदान करने वाले होओ। हे इन्द्र! हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त होकर अपने उद्योग द्वारा ही सम्पत्ति-सम्पन्न हो जाँयगे ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम श्रेष्ठ दर्शन वाले और वीर कर्मा हो। तुम उत्पन्न होते ही सूर्य के तेज द्वारा दस्युओं को दूर करते हो। जो शत्रु गुफा में छिप जाता है अथवा जल में वास करता है, उसे भी पराभूत

करने में तुम समर्थ हो। जब वर्षा होगी तब हम सोमाभिषव करेंगे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो। तुम मेधावी जनों के स्तोत्र प्राप्त करने की सदा अभिलाषा करते हो। तुम हमारी स्तुतियों से सहमति प्रकट करो। सोमाभिषव करके उसके द्वारा हमने तुम्हारी जो प्रीति प्राप्ति की है, उसके द्वारा ही हम तुम्हारे आत्मीय बनें। हे इन्द्र ! जब तुम रथारूढ़ होकर आगमन करो, तब हम तुम्हें यह हविरन्न अर्पित करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! यह सब स्तोत्र प्रयुक्त हैं। यह तुम्हारे लिए ही उच्चारित किये गये हैं। तुम मुख्य से भी मुख्य पुरुषों को अन्न प्रदान करो। तुम्हारे प्रीति पात्र उपासक तुम्हारे निमित्त ही यज्ञानुष्ठान करते हैं। तुम हमारे संचित स्तोत्रों की भले प्रकार रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मैं पृथु तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम मेरे स्तोत्र को श्रवण करो। मैं अपने सुन्दर स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति कर रहा हूँ। हे इन्द्र ! मुझ वेनपुत्र ने इस घृतादि सामग्री वाले यज्ञानुष्ठान में उपस्थित होकर तुम्हारा स्तोत्र किया है। जैसे नदी का प्रवाह निम्नगामी होता है, वैसे ही अन्य सभी स्तोता तुम्हारे समक्ष झुक रहे हैं ॥ ५ ॥ [६]

१४९ सूक्त

(ऋषि—अर्चन्हैरण्यस्तूप। देवता—सविता। छन्द—त्रिष्टुप।)

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २
पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥ ३
गावइव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥ ५ । ७

सविता देवता ने अपने विभिन्न कर्मों द्वारा पृथिवी को स्थिर किया है। उन्होंने सहारे के बिना आकाश को दृढ़ता से अधर में स्थापित किया है। उसी आकाश में समुद्र के समान दुर्धर्ष जल भी निवास करता है। कम्पित अश्व से समान यह मेघ राशि भी अपना शरीर भड़काती है। इसका स्थान उपद्रव रहित है। सवितादेव इसीसे जल निकालते हैं ॥ १ ॥ जिस अन्तरिक्ष में निवास करने वाले मेघ पृथिवी को भिगो देते हैं। उस अन्तरिक्ष को जल के पुत्र सवितादेव जानते हैं। उन्हीं सवितादेवा ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यावापृथिवी को भी विस्तृत किया है ॥ २ ॥ स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए अविनाशी सोम के द्वारा जिन देवताओं का यज्ञ किया जाता है, वे देवता सविता के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं। शोभामय पंख वाले गरुड़ ने सवितादेव से प्रथम जन्म लिया था। उन्हीं सविता देव की धारण क्रिया के आश्रय में वे रहते हैं ॥ ३ ॥ सबकी प्रार्थना के योग्य सवितादेव स्वर्ग को धारण करने वाले हैं। जैसे गौ ग्राम की ओर जाने को उत्सुक होती है, वैसे ही सविता हमारे पास आगमन करने में उत्सुक होते हैं। जैसे प्रसूता धेनु दूध पिलाने के अभिप्राय से बछड़े की ओर जाती है, जैसे वीर अश्व की ओर गमन करता है, वैसे ही सविता भी याज्ञिकों की ओर गमन करते हैं ॥ ४ ॥ हे सवितादेव ! अङ्गिरा वंशज मेरे पिता ने जिस प्रकार अपने यज्ञ में तुम्हारा आह्वान किया था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी शरण प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता हुआ परिचर्या करता हूँ। जैसे यजमान सोम को निष्पन्न करने में उत्साहित होता है, वैसे ही मैं भी तुम्हारे कर्म में उत्साहित हूँ ॥ ५ ॥ [७]

१५० सूक्त

(ऋषि-मृलीको वासिष्ठः। देवता-अग्नि। छन्द-बृहती, जगती।)

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि ॥ १

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे ॥ २

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥ ३
अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्नि मनुष्या ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥ ४
अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥ ५ । ८

हे अग्ने ! तुम देवताओं के निमित्त हव्य वहन करते हो। तुम प्रज्वलित और प्रदीप्त हुए हो। तुम हमारे इस यज्ञानुष्ठान में आदित्यगण, वसुगण और रुद्रगण के सहित आगमन करो कल्याण उपस्थित करो॥ १ ॥ हे अग्ने ! यह यज्ञ-भूमि है, यह स्तोत्र है। तुम यहाँ आकर इनका अनुमोदन करो। तुम प्रदीप्त हो गये हो। हम अपने कल्याण के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं॥ २ ॥ हे अग्ने तुम मेधावी हो। सभी तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। मैं श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जो देवता सदा मङ्गलमय कार्यों को ही करते हैं, उन्हें साथ लेकर हमारे यज्ञ में आगमन करो॥ ३ ॥ अग्नि ही देवताओं के पुरोहित हैं। सब मनुष्यों और मेधावी ऋषियों ने अग्नि को प्रदीप्त किया है। महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त मैं अग्नि का आह्वान करता हूँ। वे अग्नि मेरा कल्याण करें॥ ४ ॥ इन अग्नि ने संग्राम उपस्थित होने पर भरद्वाज, अत्रि, कण्व, त्रसदस्यु और गविष्ठिर की भली प्रकार रक्षा की थी। पुरोहित वसिष्ठ उन्हीं अग्निदेव का आह्वान करते हैं। वे मेरा कल्याण करें॥ ५ ॥ [८]

१५१ सूक्त

(ऋषि—श्रद्धा कामायनी । देवता—श्रद्धा । छन्द—अनुष्टुप्)

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।

प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ । ६

श्रद्धा के बिना अग्नि प्रदीप्त नहीं होते । जिस यज्ञीय पदार्थ का होम किया जाता है, वह भी श्रद्धा से ही सुफल होता है । समत्ति के मस्तक पर श्रद्धा ही निवास करती है । यह सब बातें यथार्थ ही हैं ॥ १.॥ हे श्रद्धे ! दानशील को अभीष्ट फल प्रदान करो । जो दान करने की इच्छा करता है (परन्तु धनाभाव से दान नहीं कर पाता) उसे भी इच्छित फल का भागी बनाओ । हे श्रद्धे ! इन याज्ञिकों और यजमानों को अभीष्ट फल दान करो ॥२ इन्द्रादि देवताओं ने भीषणकर्मा राक्षसों के प्रति संहार कर्म का निश्चय किया । हे श्रद्धे ! इन याज्ञिकों और यजमानों को अभीष्ट फल प्रदान करो ॥३ वायु को अपने रक्षक रूप में प्राप्त करने वाले देवता और मनुष्य श्रद्धा की आराधना करते हैं । मन में जब कोई निश्चय उठता है, तब उपासकगण श्रद्धा का ही आश्रय लेते हैं । श्रद्धा की अनुकूलता से ही वैभव की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल, मध्यान्ह और सायंकाल में हम श्रद्धा का ही आह्वान करते हैं । हे श्रद्धे ! हम आराधकों को तुम अपनी महिमा से परिपूर्ण करो ॥ ५ ॥ [६]

१५२ सूक्त (बारहवाँ अनुवाक)

(ऋषि–शासो भारद्वाजः । देवता–इन्द्रः । छन्द–अनुष्टुप् ।)

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥ १
स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।

वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥२
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥४
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥ ५ । १०

हे इन्द्र ! जो तुम्हारा मित्र हो जाता है, उसका पराभव या मृत्यु नहीं होती, क्योंकि तुम विचित्र कर्म वाले, शत्रुओं के नाशक और महान् हो। मैं इस स्तोत्र द्वारा उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ प्रजाओं के अधिपति इन्द्र वृत्र का संहार करने वाले, संग्राम करने वाले, शत्रु को अभिभूत करने में समर्थ, कामनाओं के वर्षक मङ्गलप्रद, अभय प्रदान करने वाले सोमपान करने वाले हैं। ऐसे इन्द्र हमारे अभिमुख पधारें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र के नाशक हो। इन दैत्यों और शत्रुओं का संहार करो। वृत्र के दोनों जबड़ों को छिन्न करो और उसके क्रोध को व्यर्थ कर दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को मारो। युद्ध की इच्छा करने वाले विरोधियों के बल को क्षीण करो। जो हमें नीचे गिराना चाहता है, उसे घोर अन्धकार में पतित करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! शत्रुओं की बुद्धि का नाश करो। जो हमें क्षीण करने की इच्छा करता है, उसे मारने के लिए अपने आयुध को चलाओ। तुम हमें शत्रु के क्रोध से बचाकर श्रेष्ठ कल्याण दो और शत्रु के भीषण अस्त्र को काट डालो ॥ ५ ॥ [१७]

१५३ सूक्त

(ऋषि–इन्द्रमातरो देवजामयः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥ १
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ३

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ४
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥ ५ । ११

कर्तव्य में लगी हुई इन्द्र की माताएं, उत्पन्न हुए इन्द्र के निकट जाकर उनकी परिचर्या करती हैं, तब इन्द्र उन्हें श्रेष्ठ सुख प्राप्त कराते हैं ॥ १ हे इन्द्र ! तुम उत्पन्न होते ही बल, वीर्य और तेज से सम्पन्न हो गये। तुम प्राणियों को बढ़ाने वाले हो, अतः हमारी कामना पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो। तुमने ही अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है। तुम्हीं ने अपनी महिमा से स्वर्ग को सबसे ऊपर स्थिर किया है ॥३ हे इन्द्र ! सूर्य तुम्हारे कर्म में सहयोगी हैं। तुमने उन्हें अपने हाथों से धारण किया है। तुम अपने वज्र को अपनी महिमा से ही तीक्ष्ण करते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! समस्त प्राणियों को तुम अपने तेज से ही पूर्ण करते हो। उसी के द्वारा तुमने समस्त स्थानों को व्याप्त किया हुआ है ॥ ५ ॥ [११]

१५४ सूक्त

(ऋषि–यमी । देवता-भाववृत्तम् । छन्द–अनुष्टुप् ।)

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ ३
ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितृन्तपस्वतो यम तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥४
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ ५ । १२

कोई पितर घृत-सेवन करते हैं और कोई अभिषुत सोम रस का पान करते हैं। जिन पितरों के लिए मधुर रस का स्रोत प्रवाहित है, हे प्रेत ! तुम उनके पास ही गमन करो ॥ १ ॥ तप के बल से जो दुर्धर्ष हुए हैं, तप के बल से जो स्वर्ग में पहुँचे हैं और जिन्होंने घोर तप किया है, हे प्रेत ! तुम उनके पास ही गमन करो ॥ २ ॥ जो संग्राम भूमि में संग्राम करते हैं, जिन्होंने अपने देह के मोह को त्याग दिया है अथवा जिन्होंने प्रचुर दक्षिणा दी है, हे प्रेत ! तुम उनके पास गमन करो ॥ ३ ॥ जो प्राचीनकालीन पुरुष पुण्य कर्मों द्वारा फल के अधिकारी हुए हैं, जो पुण्य के स्रोत को विस्तृत कर चुके हैं और जिन्होंने तपस्या का फल संचय किया है, हे प्रेत ! तुम उनके पास गमन करो ॥ ४ ॥ जिन मेधावी जनों ने सहस्रों कर्मों की विधि निश्चित की है और जो सूर्य की सदा रक्षा करते हैं, जिन्होंने तप के प्रभाव से उत्पन्न होकर तप किया है, हे यम ! यह प्रेत उन्हीं पितरों के पास निवास करे ॥ ५ ॥   [१२]

१५५ सूक्त

(ऋषि—शिरिम्बिठो भारद्वाज । देवता—अलक्ष्मीघ्नम् ब्रह्मणस्पति, विश्वेदेवा । छन्द—अनुष्टुप् ।)

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥ १

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥ २

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ३

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकी ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ ४

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ ५ ॥ १३

हे अलक्ष्मी ! तुम सदा दान से विमुख रहती हैं। तुम्हारी आकृति विकराल है, तुम क्रोध पूर्वक कुत्सित शब्द किया करती हो। तुम इस पर्वत पर आगमन करो। मैं शिरिम्बिठ तुम्हें जन-सम्पर्क से दूर रहने के लिए दृढ़ उपाय करता हूँ ॥ १ ॥ यह अलक्ष्मी वृक्ष, लता और अन्न आदि नष्ट करने वाली है। यही दुर्भिक्ष को उपस्थित करती है। मैं उस अलक्ष्मी को इस लोक से और उस लोक से भी दूर भगाता हूँ। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम्हारा तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है। दान को विरोध करने वाली इस दुष्कर्मा अलक्ष्मी को तुम यहाँ से दूर भगाओ ॥ २ ॥ समुद्र के किनारे निकट यह जो काष्ठ बह रहा है, उसका स्वामी कोई नहीं है। हे अलक्ष्मी ! तुम्हारी आकृति भयङ्कर है, तुम उस पर चढ़कर समुद्र के उस पार चली जाओ ॥ ३ ॥ हे अलक्ष्मियो ! तुम हिंसामयी और कुत्सित शब्द करने वाली हो। जब तुम जाने में तत्पर होकर यहाँ से चली गईं, तब इन्द्र के सभी शत्रु जल में उठ कर मिटने वाले बुलबुलों के समान ही अदृश्य हो गये ॥ ४ ॥ इन्होंने गौओं को मुक्त किया, इन्हीं ने अग्नि की अनेक स्थानों में स्थापना की। इन्हीं ने देवताओं को हवि रूप अन्न प्रदान किया। फिर इन इन्द्र पर आक्रमण करने में कौन समर्थ होगा ? ॥ ५ ॥ [१३]

१५६ सूक्त

(ऋषि--केतुराग्नेयः। देवता--अग्निः। छन्द--गायत्री।)

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु। तेन जेष्म धनन्धनम् ॥१
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या। तां नो हिन्व मघत्तये ॥२
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्। अङ्ग्धि खं वर्तया पणिम् ॥३
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि। दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्। बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५

द्रुतगामी अश्व जैसे घुड़दौड़ के स्थान में दौड़ाये जाते हैं, वैसे ही अग्नि को हमारे स्तोतागण दौड़ा रहे हैं। उन अग्नि की अनुकूलता को प्राप्त हुए हम यजमान सब धनों पर विजय प्राप्त करने वाले हों ॥ १ ॥ हे अग्ने !

तुम्हारी कृपा से जैसे हम गौओं को प्राप्त करते हैं, वैसे ही तुम सेना के समान सहायता देने वाले अपने रक्षण-साधनों को हमें प्राप्त कराओ। तुम्हारी कृपा से हम धन प्राप्त करने वाले हों ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम असंख्य गौओं और अश्वों के सहित प्रचुर धन हमें प्रदान करो। अन्तरिक्ष से वृष्टि जल का सिंचन करो और वाणिज्य कर्म को प्रशस्त करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जो सूर्य जरा रहित हैं, जो सब लोकों को प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं और जो सदा गमन करते रहते हैं, उन सूर्य को तुम्हीं ने अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित किया है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हो, तुम सब देवताओं में श्रेष्ठ हो और सभी से प्रीति करते हो। तुम हमारी यज्ञ वेदी में विराजमान होकर हमारी स्तुति सुनो और अन्न लेकर आओ ॥५॥ [१४]

१५७ सूक्त

(ऋषि:—भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः। देवता-विश्वेदेवा।
छन्द-त्रिष्टुप्)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवा ॥१
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥२
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववितां तनूनाम् ॥३
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥४
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥५॥१५

संसार के सभी प्राणी हमें सुख प्रदान करें और इन्द्रादि सभी समर्थ देवता हमारे लिए कल्याण को उपस्थित करने वाले हों ॥१॥ इन्द्र तथा आदित्यगण हमारे यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें। वे हमारी देह को आरोग्यता प्रदान करें और हमारे पुत्र-पौत्रादि को भी व्याधि से बचावें ॥२॥ आदित्यगण और मरुद्गण को सहायक बनाकर इन्द्र हमारे शरीर की रक्षा करें ॥ ३ ॥ जब देवगण वृत्रादि राक्षसों को मार कर आये उस समय उनका अमृतत्व, सुरक्षित हुआ ॥४॥ विभिन्न प्रकार वाली स्तुतियाँ देवताओं के निकट गईं। फिर अन्तरिक्ष से जल-वृष्टि होती दिखाई पड़ी ॥५॥ [१५]

१५८ सूक्त

(ऋषि—चक्षु: सौर्यः। देवता-सूर्यः। छन्द-गायत्री)

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१
जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः।२
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः चक्षुर्धाता दधातु नः॥३
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम ॥४
सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य। वि पश्येम नृचक्षसः॥५॥१६

दिव्य लोक से उत्पन्न उपद्रव से सूर्य, अन्तरिक्ष के उपद्रव से वायु और पृथिवी के उपद्रव से अग्नि देवता हमारी भले प्रकार रक्षा करें ॥१॥ हे सविता! तुम हमारे अनुष्ठान को स्वीकार करो। तुम्हारे तेज की प्राप्ति के लिए सौ यज्ञ किये जाते हैं। शत्रुओं के जो तीक्ष्ण आयुध हमारे पास आकर पतित हों, उनसे हे सविता देव, हमारी रक्षा करो ॥२॥ सविता देव हमें चक्षु शक्ति दें, पर्वत हमें चक्षु-शक्ति दें, विधाता देव हमारे नेत्रों में ज्योति प्रदान करें ॥३॥ हे सूर्य! हमें दर्शन शक्ति प्रदान करो। सभी पदार्थों को भले प्रकार देखने के लिए हमारे नेत्रों को ज्योति से पूर्ण कर दो। हम संसार की सभी वस्तुओं को भले प्रकार देखने में समर्थ हों ॥४॥ हे सूर्य! ऐसा अनुग्रह करो जिससे हम भले प्रकार तुम्हारे दर्शन करते रहें। जिन पदार्थों को मनुष्य-नेत्र देख सकते हैं, उन सब पदार्थों को देखने में समर्थ हों ॥५॥ [१६]

१५९ सूक्त

(ऋषि—शची पौलोमी। देवता-शची पौलोमी। छन्द-अनुष्टुप्)

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥१
अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥२
मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।

उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥३

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४

असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥५

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥६॥१७

सूर्य का उदय होना ही मेरे भाग्य का उदित होना है । मेरी सभी सपत्नियाँ मुझसे पराभूत हो चुकी हैं । मैंने अपने पतिदेव को अपने वश में कर लिया है ॥१॥ मैं इस घर में मस्तक के समान मुख्य एवं ध्वजा रूप हूँ। मैं अपने पति को आकर्षित कर उनके मधुर वचनों को श्रवण करती हूँ । वे मुझे सर्वोपरि मान कर मेरे कार्यों में सम्मति प्रकट करते और मेरी इच्छानुसार व्यवहार करते हैं ॥२॥ मेरे पुत्र पराक्रमी हैं । मेरी पुत्री भी अत्यन्त रूपवती और शोभामयी है । मैं सभी को अपने शासन में रखती हूँ। पति भी मेरा नाम आदर सहित लेते हैं ॥३॥ जिस यज्ञानुष्ठान द्वारा इन्द्र ने महान् यश और उत्कृष्टता प्राप्त की, मैंने भी देवताओं का वही यज्ञ किया है। हे देवगण! अब मेरे सभी शत्रु पराभूत हो चुके हैं ॥४॥ मेरा शत्रु विजय प्राप्त नहीं करता, मैं उन्हें हराने में समर्थ हूँ। मेरा शत्रु जीवित नहीं रहता, क्योंकि मैं उन्हें सामने आते ही मार देती हूँ। जैसे निर्बल पुरुषों का धन अन्य व्यक्ति छीन कर ले जाते हैं, वैसे ही मैं अन्य स्त्रियों के दर्प को चूर्णित कर डालती हूँ ॥५॥ मैं सब सपत्नियों पर विजय पाती हुई उन्हें हराती हूँ। मैं अपने प्रभाव से इन वीर इन्द्र पर भी शासन करती और सभी बांधवों को अपने वश में रखती हूँ ॥६॥ [१७]

१६० सूक्त

(ऋषि–पूरणो वैश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।

इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।

इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।

न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।

निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥१८

यह सोम-रस अत्यन्त तीव्र गुण वाला है । इसमें अन्य रस मिश्रित किए गए हैं । हे इन्द्र ! तुम इसका पान करो । तुम अपने रथ को वहन करने वाले दोनों अश्वों को इधर लाने के लिए प्रेरित करो । तुम्हें अन्य यजमान तृप्त न कर सकें । इसीलिए यह मधुर सोम-रस अभिषुत हुआ है ॥१॥ हे इन्द्र ! जो सोम अभिषुत हुआ है, वह तुम्हारे निमित्त ही है । यह सभी उच्चारित स्तोत्र तुम्हारा आह्वान करते हैं, अतः हमारे इस यज्ञ को स्वीकार करो । हे सबके जानने वाले इन्द्र ! तुम यहीं आकर इस सोम को पियो ॥२॥ जो यजमान निर्लेप भाव से और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक, अपनी हार्दिक भावना द्वारा इन्द्र के निमित्त सोम का निष्पीड़न करता है, उस देवोपासक की गौओं को इन्द्र क्षीण नहीं करते । वे उसे श्रेष्ठ कल्याण प्रदान करते हैं ॥३॥ जो इन ऐश्वर्यवान् इन्द्र के निमित्त मधुर सोम का अभिषव करता है, इन्द्र उसे दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं । वे उसके अनुष्ठान में आकर उसका कर-स्पर्श करते हैं । जो पुरुष श्रेष्ठ कर्मों से द्वेष करते हैं, उन्हें वे पराक्रमी इन्द्र सर्वथा नष्ट कर डालते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! गौ, अश्व और अन्न की कामना करते हुए हम तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में हैं । हमने यह अभिनव स्तोत्र तुम्हारे लिए ही रचा है । हम तुम्हें कल्याणकारी जानकर ही आहूत करते हैं ॥५॥१८

१६१ सूक्त

(ऋषि—यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः । देवता—राजयक्ष्मघ्नम् ।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥५॥१९

हे रोगिन् ! मैं तुम्हें अज्ञात क्षय रोग से और दुर्दान्त राजयक्ष्मा से यज्ञानुष्ठान द्वारा मुक्त करता हूँ । इस प्रकार तुम्हारी प्राण-रक्षा होगी । यदि किसी पापग्रह ने इस रोगी को अपने पाश में डाल लिया है तो इन्द्र और अग्नि इसे उस पाश से छुड़ावें ॥१॥ इस रोगी की आयु क्षीण होगई हो, यदि यह इस लोक से चले गए के समान होगया हो, अथवा यह मृत्यु के मुख में जा चुका हो, तो भी मैं मृत्यु देवता निर्ऋति के निकट से इसे लौटाता हूँ । यह मेरे स्पर्श द्वारा ही सौ वर्ष तक जीवित रहेगा ॥२॥ मैंने जो आहुति दी है, वह सहस्र नेत्र वाली है । वह सौ वर्ष की आयु प्रदान करती है । मैं उसी आहुति के प्रभाव से इस रोगी को पुनः लौटा लाया हूँ । इन्द्र इसे सब दोषों से मुक्त कर सौ वर्ष की आयु दें ॥३॥ हे रोगिन् ! तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो । तुम सुख से सौ वसंत और सौ हेमन्त ऋतु जीओ । इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति और सविता इस अनुष्ठान में हमारी हवियों से प्रसन्न होकर इसे शतायुष्य करें ॥४॥ हे रोगिन् ! मैंने तुम्हें प्राप्त कर

लिया । मैं तुम्हें लौटा लाया । तुम यहाँ पुनः नवीन होकर आए हो । मैंने तुम्हारे सभी अङ्गों, नेत्रों और परम आयु को भी पा लिया है ॥२४॥ [१९]

१६२ सूक्त

(ऋषि–रक्षोहा ब्राह्मः । देवता–गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम् । छन्द–अनुष्टुप्)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२
यस्ते हन्ति पतयन्तं निपत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥४
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६॥२०

अग्नि राक्षसों का संहार करने वाले हैं । वे हमारे स्तोत्र से सहमत होकर समस्त विघ्नों को दूर करें । वह हमारे सब उपद्रवों को शान्त करें । हे नारी ! जिन उपद्रवों से तुम रोगिणी बनी हो, उन सब उपद्रवों को अग्नि देव दूर कर दें ॥१॥ हे नारी ! जिन पिशाचों, राक्षसों, रोग-व्याधियों ने तुम्हारे देह को आक्रान्त किया है, उन सबको, राक्षसों का नाश करने वाले अग्निदेव हमारे स्तोत्र से सहमत होकर नष्ट कर डालें ॥२॥ हे नारी ! जो रोग रूप पिशाच तुम्हारे गर्भ को नष्ट करता है अथवा नष्ट करना चाहता है, उसे हम तेरे शरीर से दूर भगाते हैं ॥३॥ जो रोग तुम्हें निश्चेष्ट कर तुम्हारे बल को खींच लेता है उसे हे नारी ! हम तुम्हारी देह से दूर करते हैं ॥४॥

हे नारी ! जो रोग तुम्हें अनजाने में अथवा भूल से प्राप्त हुआ है और जो तुम्हारी सन्तान का नाश करने को तत्पर है, उस रोग को तेरे शरीर से निकालते हैं ॥५॥ हे नारी ! जो व्याधि तुम्हें दुःस्वप्न देखने से अथवा अधिक आलस्य रूप निद्रा के द्वारा प्राप्त होगई है और वह तुम्हारे गर्भस्थ शिशु को नष्ट कर देने को तत्पर है, उसे हम तुम्हारे शरीर से दूर करते हैं ॥६॥ [२०]

१६३ सूक्त

(ऋषि—विवृहा काश्यपः । देवता-यक्ष्मघ्नम् । छन्द-अनुष्टुप्)

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यं मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥४
मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि त ॥६॥२१

हे रोगिन् ! तुम्हारे दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नथुने, शिर, मस्तिष्क, जिह्वा और ठोडी आदि से यक्ष्मा रोग को बाहर निकालता हूँ ॥१॥ हे रोगिन् ! तुम्हारे कंठ की धमनियों, हड्डियों की संधि, दोनों बाहुओं, दोनों कंधों और स्नायु आदि में प्राप्त हुए रोग को बाहर करता हूँ ॥२॥ हे रोगिन् ! तुम्हारी स्थूल नाड़ी, क्षुद्र नाड़ी, हृदय, मूत्राशय, वृहद्‌ंड, यकृत तथा अन्य विभिन्न अवयवों में प्राप्त तुम्हारे रोग को निकालता हूँ ॥३॥ हे रोगिन् !

-तुम्हारी जंघाओं, गुल्मों, पाँवों, कटि देश आदि से समस्त व्याधि को दूर करता हूँ ॥४॥ हे रोगिन् ! तुम्हारे लोम, नख आदि शरीर के सभी उपांगों से रोग को निकालता हूँ ।।५॥ हे रोगिन् ! तुम्हारे शरीर के प्रत्येक संधि-स्थान, लोम आदि सर्वाङ्ग में, जहाँ कहीं भी रोग की उत्पत्ति हुई हो, वहीं से रोग को निकालता हूँ ॥६॥ [२१]

१६४ सूक्त

(ऋषि–प्रचेताः । देवता–दुःस्वप्नघ्नम् । छन्द–अनुष्टुप, त्रिष्टुप, पंक्तिः)

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥१
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युजन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥२
यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥३
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥४
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥२२

हे दुःस्वप्न ! तुमने हमारे मन पर अधिकार किया है, तुम अब यहाँ से दूर भागो और वहीं विचरण करो । हमसे बहुत दूर जो निर्ऋति देवता विराजमान हैं, उनसे हम पर कृपा करने को कहो । क्योंकि मनुष्य के अभीष्ट विस्तृत होते हैं और वे अभीष्टों को विफल करने वाली हैं ॥१॥ प्राणवान् मनुष्य विस्तृत कामनाओं वाले होते हैं । वे श्रेष्ठ अभीष्ट सम्पत्ति की कामना करते हैं । वे श्रेष्ठ फल प्राप्त करने की आशा में सदा रहते हैं । यमराज उन्हें अपने मङ्गलमय चक्षु से देखते हैं ॥२॥ अपनी आशा को फलवती करने

के लिए, निराश होने पर, निद्रावस्था में अथवा जागते हुए ही हमसे जो अपराध बन जाते हैं, उनसे उत्पन्न पापों को अग्नि हमसे दूर करें ॥३॥ हे इन्द्र ! हे ब्रह्मणस्पते ! हमने जो दुष्कर्म किये हों और उनके फलस्वरूप हमारा जो अमङ्गल होने को हो, उस शत्रु रूप अमंगल से आंगिरस प्रचेता हमारी रक्षा करें ॥४॥ आज हमारी विजय हुई है, पाने योग्य वैभव हमने प्राप्त कर लिया है। हम सभी अपराधों से भी मुक्त हो चुके हैं। हमारी सुषुप्तावस्था में अथवा वाणी द्वारा ही जो पाप हमसे होगया हो, उसका दुष्ट फल हमारे शत्रु को पीड़ित करे। हम जिससे वैर करते हैं, वह उसी को प्राप्त हो ॥५।२२

१६५ सूक्त

(ऋषि—कपोतो नैर्ऋत । देवता—कपोतापहतौ प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम् । छन्द—त्रिष्टुप्)

देवा कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥३
यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥४
ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥५॥२३

हे विश्वेदेवो ! यह पारावृत निर्ऋति का भेजा हुआ दूत है। यह हमें पीड़ित करने को ही हमारे घर में आगया है। हम इस कपोत का पूजन करते हैं। हम इस अमंगल को अपने पास से दूर करते हैं। इसके द्वारा हमारे गौ, अश्व आदि पशु, पुत्र पौत्र, दास दासी आदि मनुष्य व्याधि में

न फँसे ॥१॥ हे विश्वेदेवो! हमारे घर में जिस कपोत को प्रेरित किया गया है, वह हमारा अमंगल न करे, कल्याणकारी ही हो। मेधावी और हमारे स्वजन अग्नि हमारी हवियों को स्वीकार करें। शत्रुओं का पंखमय तीक्ष्ण आयुध हमें छोड़ कर अन्यत्र चला जाय ॥२॥ यह पंख वाला कबूतर हमारी हिंसा न करे। यह हमारे लिए आयुध रूप न होजाय। विस्तृत स्थान में अग्नि देव प्रतिष्ठित हुए हैं, यह भी उसी स्थान पर बैठे। हे देवगण! यह कपोत हमारे लिए अमंगलजनक न हो। हमारे मनुष्यों और पशुओं का कल्याण हो ॥३॥ इस उलूक की अमंगलसूचक ध्वनि व्यर्थ होजाय। यह कबूतर अग्नि स्थान में बैठता है। जिन यमराज का दूत होकर यह कपोत हमारे घर में आया है, मृत्युरूपी उन यमराज को हम प्रणाम करते हैं ॥४॥ हे देवगण! यह कबूतर घर में रहने योग्य नहीं है, तुम इसे अपने प्रभाव से दूर भगाओ। इसके द्वारा जिस अमंगल की आशंका हुई है, उसे नष्ट करके हमारी गौ को सुखपूर्वक आहार प्राप्त करने वाली करो। यह अत्यन्त वेग से उड़ने वाला कबूतर हमारे अन्न को त्याग कर अन्यत्र गमन करे ॥५॥ [२३]

१६६ सूक्त

(ऋषि–ऋषभो वैराजः शाक्वरो वा। देवता–सपत्नघ्नम्।
छन्द–अनुष्टुप्, पंक्तिः)

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१
अहमस्मि सपत्नहेन्द्रइवारिष्टो अक्षतः।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२
अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नीइव ज्यया।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४
योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम्।

अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूकाइवोदकान्मण्डूका उदकादिव ॥५॥२४

हे इन्द्र ! मुझे अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ करो। मैं अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूँ अपने विरोधियों का संहार करूँ। तुम्हारी कृपा से मैं सर्वोत्कृष्ट होकर महान् गोधन को प्राप्त करूँ ॥१॥ मैंने शत्रुओं का विध्वंस कर डाला। मुझे हिंसित करने में अब कोई समर्थ नहीं है। मेरे सब शत्रु मेरे द्वारा पददलित हुए ॥२॥ हे शत्रुओ! जैसे धनुष के दोनों छोरों को प्रत्यंचा से आबद्ध करते हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हें इस स्थान में बंधनयुक्त करता हूँ। हे वाचस्पते! इन शत्रुओं को आदेश दो कि यह मेरे विषय में किसी से कोई बात न करें ॥३॥ मैं अपने तेज को कर्म के उपयुक्त बनाता हूँ, मैं अपने उसी तेज के द्वारा शत्रु को पराजित करने में प्रवृत्त हुआ हूँ। हे शत्रुओ! मैं तुम्हारी बुद्धि, कार्य और संगठन सबको विनष्ट किये देता हूँ ॥४॥ मैंने तुम्हारी अर्थ-संचय शक्ति को छीन लिया है। मैं तुमसे श्रेष्ठ होगया हूँ। मैं मस्तक के समान ही तुमसे ऊँचा हूँ। जैसे जल में रहने वाले मेंढक कोलाहल करते हैं, वैसे ही तुम मुझसे दब कर चीत्कार करो ॥५॥ [२४]

१६७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रजमदग्नी। देवता—इन्द्रः, लिङ्गोक्ताः। छन्द-जगती)

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥१
स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥२
सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥३
प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥४॥२५

हे इन्द्र! यह मधुर सोम रस तुम्हारे लिए ही अभिषुत हुआ है। सोमयुक्त इस कलश के स्वामी तुम ही हो। तुमने अपने तप से स्वर्ग पर

विजय प्राप्त की है। तुम हमें अभीष्ट धन और पुत्रादि प्रदान करो ॥१॥ जिन इन्द्र ने स्वर्ग पर विजय पाई हैं और जो सोम रूप अन्न को पाकर विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न होते हैं। ऐसे उन इन्द्र को ही हम अपने प्रस्तुत सोम-रस के समीप आमंत्रित करते हैं। हे इन्द्र ! हमारे इस यज्ञ को जानो। हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त होकर तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी स्तुति करने में लीन हूँ। मैं राजा वरुण के सोम-युक्त यज्ञ-स्थान में उपस्थित हुआ हूँ। हे धाता ! हे विधाता ! तुम्हारा आदेश पाकर ही इस कलश में स्थित सोम-रस को मैंने पिया है ॥३॥ हे इन्द्र तुम्हारी प्रेरणा से ही मैंने चरु सहित विभिन्न पदार्थ एकत्र किये हैं। मैं स्तोता होकर तुम्हारे निमित्त इस स्तोत्र का पाठ करता हूँ। (इन्द्र का कथन) हे विश्वामित्र और जमदग्नि ऋषियो ! सोम के अभिषुत होने पर मैं जब गृह में धन सहित प्रविष्ट होऊँ, तब तुम भले प्रकार मेरा स्तव करना ॥४॥ [२५]

१६८ सूक्त

(ऋषि–अनिलो वातायनः। देवता–वायुः। छन्द–त्रिष्टुप्ः)

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१
सम्प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥२
अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥३
आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४॥२६

रथ के समान वेगवान् वायु की महिमा का मैं बखान करता हूँ। इनका शब्द वायु के समान घोर शक्ति वाला है। यह वृक्षादि की तोड़ फोड़ करते हुए आते हैं। यह सब ओर के वर्ण को बदलते हुए जाते हैं। यह पृथिवी के रज-कणों को सब ओर बखेरते हैं ॥१॥

इन वायु के वेग से चलने पर पर्वत तक कम्पित होते हैं। जैसे अश्व युद्धस्थल की ओर गमन करता है, वैसे ही पर्वत आदि सब वायु के आश्रय में जाते हैं। अश्वों की सहायता से रथारूढ हुए वायु देवता सब लोकों के राजा के समान गमन करते हैं ॥२॥ वायु जब अन्तरिक्ष में वेग से चलते हैं तब वे कठिनता से स्थिर होते हैं। यह जल के बन्धु एवं जल के आगे प्रकट होने वाले हैं। इनका स्वभाव सत्य से ओत-प्रोत है। यह कहाँ उत्पन्न हुए ? कहाँ से इनका आगमन हुआ ? ॥३॥ वायु देवता प्राण रूप हैं। यह लोकों के अपत्य के समान हैं। यह इच्छानुसार विचरण करते हैं। इनके रूप के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते। इनके गमन का शब्द ही सुना जाता है। हम उपासकगण अपने यज्ञ में श्रेष्ठ हविरन्न द्वारा इन वायु का पूजन करते हैं ॥४॥ [२६]

१६६ सूक्त

(ऋषि—शबरः काक्षीवतः। देवता-गावः। छन्द-त्रिष्टुप्)

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१
याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्टया नामानि वेद।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२
या देवेषु तन्व मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३
प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥४॥२७

सुखप्रद वायु गौओं की ओर प्रवाहित हों। यह गौएँ बल देने वाले तृण आदि का सेवन करें। यह जल पीकर तृप्त हों। हे रुद्र ! इन श्रेष्ठ गौओं को सुखपूर्वक रखो ॥१॥ गौएँ कभी एक-से रंग की होती हैं और कभी विभिन्न रंग वाली होती हैं। यज्ञ में स्थित इन गौओं के ज्ञाता हैं। आंगिरावंशियों ने इन्हें तप द्वारा पृथिवी पर उत्पन्न किया है। हे पर्जन्य ! तुम हमारी गौओं का मंगल करो ॥२॥ गौएँ अपने शरीर का रस रूप दुग्ध देवताओं के यज्ञ के निमित्त

प्रदान करती हैं। सोम उनकी विशिष्ट आहुतियों के साथी हैं। हे इन्द्र! इन गौओं को सन्तानवती बनाकर दुग्ध से परिपूर्ण करो और हमारे गोष्ठ में भेजो ॥३॥ प्रजापति ने देवताओं और पितरों के परामर्श से यह गौएं मुझे प्रदान की हैं। इन गौओं को मंगलमयी बना कर हमारे गोष्ठ में स्थापित करते हैं। तब वे सन्तानवती होकर हमें दुग्ध प्रदान करती हैं ॥४॥ [२७]

१७० सूक्त

(ऋषि—विभ्राट् सूर्यः। देवता—सूर्यः। छन्द—जगती, पंक्तिः)

विभ्राड् बृहत्पिवतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४॥२८

अत्यन्त तेजस्वी सूर्य हमारे मधुर सोम-रस का पान कर तृप्त हों और अभिषवकर्त्ता यजमान को श्रेष्ठ आयु प्रदान करें। वे सूर्य वायु की प्रेरणा पाकर सब प्राणियों की रक्षा करते हुए उनका पालन-पोषण करते हैं और कभी भी न मिटने वाली शोभा को प्राप्त होते हैं ॥१॥ सूर्य के रूप से महान् ज्योतिर्पिण्ड उदय को प्राप्त हुआ है। यह महान् तेजस्वी, भले प्रकार प्रतिष्ठित और सर्व श्रेष्ठ अन्न प्रदान करने वाले हैं। आकाश पर विराजमान होकर यह आकाश के ही आश्रय रूप बने हैं। यह शत्रु का नाश करने वाले, वृत्र के मारने वाले, राक्षसों और वैरियों का संहार करने में समर्थ हैं ॥२॥ समस्त ज्योति-पिण्डों में सूर्य सर्व श्रेष्ठ एवं अग्रगन्ता हैं। वे संसार के जीतने वाले एवं धन के भी जीतने वाले हैं। यह महान् तेजस्वी और समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले हैं। यह जल-वृष्टि के लिए प्रशस्त होने वाले

बल के साक्षात् रूप और तेज से सम्पन्न हैं ॥३॥ हे सूर्य ! तुम अपने तेज द्वारा प्रकाशित होकर अन्तरिक्ष के चमकते हुए स्थान को प्राप्त हुए हो । तुम्हारी महिमा सभी श्रेष्ठ कर्मों में सहायक होती है । वही सब यज्ञों के अनुकूल होकर सब लोकों का पालन करती है ॥४॥   [२८]

१७१ सूक्त

(ऋषि—इटो भार्गव । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्राव: सुतावत: । अशृणोः सोमिनो हवम् ॥१
त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः । अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥२
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् । मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३
त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि । देवानां चित्तिरो वशम् ।४।२६

हे इन्द्र ! जब इट नामक ऋषि ने सोम का अभिषव किया, तब तुमने उन ऋषि की रक्षा करते हुए उनके श्रेष्ठ आह्वान को सुना था ॥१॥ हे इन्द्र ! जब तुमने यज्ञ को पृथक् किया तब वह भय से कम्पित होगया । तब तुम सोमाभिषवकारी इट-ऋषि के घर में प्रविष्ट हुए ॥२॥ हे इन्द्र ! अस्त्रबुध्न के पुत्र ने तुम्हारा बारम्बार स्तोत्र किया था, तुमने इसीलिए वेन पुत्र पृथु को उनके आधीन कर दिया ॥३॥ हे इन्द्र ! जब तेजस्वी सूर्य पश्चिम में गमन करते हैं, तब देवता भी नहीं जानते कि वे कहाँ छिप गए । उन सूर्य को तुम्हीं पूर्व में पुनः लेकर आते हो ॥४॥   [२६]

सूक्त १७२

(ऋषि—संवर्तः । देवता—उषा । छन्द—गायत्री)

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१
आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२
पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३
उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४।३०

हे उषे ! तुम अपने तेज के सहित आगमन करो । गौएँ अपने दूध से

भरे हुए थनों के सहित गमनशील हुई हैं ॥१॥ हे उषे ! यह श्रेष्ठ स्तोत्र प्रस्तुत हैं । तुम इन्हें स्वीकार करने को यहाँ आगमन करो । यज्ञ करने वाले यजमान श्रेष्ठ सामग्री लेकर दानशील होता हुआ यज्ञ करता हैं ॥२॥ हम अन्न को एकत्र कर उत्कृष्ट पदार्थों को दान करने की इच्छा कर रहे हैं । हम इस यज्ञ को सूत्र के समान बढ़ाते हैं । हे उषा देवी ! यह यज्ञ हम तुम्हें प्रदान करते हैं ॥३॥ रात्रि की बहिन उषा है । उसने रात्रि के घोर अन्धकार को दूर कर दिया और श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त होकर अपने रथ को चलाया ॥४॥३०

१७३ सूक्त

(ऋषि-ध्रुवः । देवता-राज्ञःस्तुतिः । छन्दः-अनुष्टुप्)

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलिः ।
इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्र: केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥३१

हे राजन् ! तुम राष्ट्र के अधिपति बनाए गए हो । तुम इस राष्ट्र के स्वामी बनो । तुम स्थिर मति, अटल विचार और दृढ़ कार्यों के करने वाले होओ । तुम्हारी प्रजा तुम्हारे प्रति अनुरक्त रहे । तुम्हारे राष्ट्र का अमंगल न हो ॥१॥ हे राजन् ! तुम पर्वत के समान अटल होकर यहीं निवास करो । तुम

इस राज्य से हटना नहीं। जैसे इन्द्र अविचलित रूप से रहते हैं, वैसे ही तुम भी निश्चय होओ। तुम अपने राज्य को सुदृढ़ बनाने वाले बनो ॥ २॥ इन्द्र ने अक्षय यज्ञ सामग्री प्राप्त की और इस अभिषिक्त सम्राट् को अपना आश्रय प्रदान किया। ब्रह्मणस्पति ने भी इस राजा को आशीर्वाद दिया ॥३॥ पृथिवी, आकाश, सभी पर्वत और यह सम्पूर्ण जगत जिस प्रकार अविचल है, उसी प्रकार यह राजा भी प्रजाओं के मध्य दृढ़ भाव से रहे ॥४॥ हे राजन्! वरुण तुम्हारे राज्य को दृढ़ करें। बृहस्पति इसे अविचलित करें। इन्द्र और अग्नि देवता भी इस राष्ट्र को सुदृढ़ बनावें ॥५॥ यह हवि अक्षय है, यह सोम-रस कभी भी क्षीण नहीं होता। हम इन्हें एकत्र करते हैं। हे राजन्! इन्द्र ने भी तुम्हारी प्रजा को एक शासन में रहने वाली और कर देने वाली किया है ॥६॥ [३१]

१७४ सूक्त

(ऋषिः—अभीवर्तः। देवता—राज्ञः स्तुति। छन्दः—अनुष्टुप्।)

अभवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥१

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥२

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥४

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥३२

हम यज्ञ सामग्री एकत्र कर देवताओं की सेवा में उपस्थित होंगे। इन्द्र भी हव्य प्राप्त कर हमारे अनुकूल होगए। हे ब्रह्मणस्पते! हमने हवन-सामग्री द्वारा भले प्रकार यज्ञ किया है। तुम हमें राज्य प्राप्ति के कर्म में लगाओ।

हे राजन् ! जो हमारे विपरीत पक्ष वाले हैं, जो हमारी हिंसा की अभिलाषा करने वाले शत्रु, सेना एकत्र कर संग्राम के लिए आते हैं और जो हमसे वैर करते हैं, तुम उन सबको हरा कर भगाओ ॥२॥ हे राजन् ! तुमने सविता देव की अनुकूलता प्राप्त की है। सोम भी तुम्हारे प्रति अनुकूल हुए हैं। सब प्राणियों ने तुम्हारे प्रति अपनी अनुकूलता प्रकट की है। अतः तुम इस विश्व में सब के प्रिय हुए हो ॥३॥ हे देवगण ! इन्द्र जिस अन्न के द्वारा कर्मों में प्रवृत्त होकर अन्नवान्, ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ हुए हैं, उसी अन्न के द्वारा मैं भी यज्ञानुष्ठान के द्वारा शत्रुओं से मुक्ति पा सका हूँ ॥४॥ मैंने अपने शत्रुओं को मार डाला, अब मेरे शत्रु नहीं रहे। मैं विपक्षियों को निवारण कर राज्य का अधिपति होगया हूँ। इस देश के सब प्राणियों और राज्याधिकारियों आदि का भी मैं स्वामी बना हूँ ॥५॥ [३२]

सूक्त १७५

(ऋषि:—ऊर्ध्वग्रावार्बुद: । देवता—ग्रावाण: । छन्द:—गायत्री)

प्र वो ग्रावाण: सविता देव: सुवतु धर्मणा । धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥१
ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् । उस्रा: कर्तन भेषजम् ॥ २
ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषस: । वृष्णो दधतो वृष्ण्यम् ॥ ३
ग्रावाण: सविता नु वो देव: सुवतु धर्मणा ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ । ३३

हे सोम के निष्पीड़नकारी पाषाणो ! सवितादेव तुम्हें अपने बल से सोमाभिषव कर्म में प्रयुक्त करें। फिर तुम अपने कर्म में लगकर सोम-रस को सिद्ध करो ॥१॥ हे पाषाणो ! दुःख के सब कारणों को हमसे पृथक् करो। कुमति को हमारे निकट से दूर भगाओ। गौओं का दुग्ध हमारे लिए औषधिरूप हो ॥२॥ परस्पर मिले हुए पाषाण, एक विस्तृत पाषाण के सब ओर सुशोभित हैं। रस का वर्षण करने वाले सोम पर वे पाषाण अपना बल प्रदर्शित करते हैं ॥३॥ हे पाषाणो ! सविता देव सोम-याग करने वाले यजमान लिए सोमाभिषव कर्म में तुम्हें नियुक्त करें ॥४॥

१७६ सूक्त

(ऋषि—सूनुरार्भवः । देवता—अभव', अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री)

प्र सूनव ऋभूणा बृहन्ननन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वनायमोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥ १
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥ २
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥ ३
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मन ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृत ॥ ४ । २८

जब ऋभुगण कर्म-क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए, तब उन्होंने वह्नि अपनी जननी गौ को घेर कर खड़े होते हैं, वैसे ही विश्व को धारण करने के लिए भूमंडल को घेर कर खड़े होगए ॥१॥ हे स्तोता ! अग्नि मेधावी हैं । उन्हें देवताओं के योग्य स्तोत्र से अपने अनुकूल करो । यह विधिपूर्वक हमारे यज्ञीय-द्रव्य को देवताओं के पास पहुँचावें ॥२॥ यह अग्नि वही है, जो देवताओं के पास जाते हैं । यह होता हैं । इन्हें यज्ञ कर्म की कामना से स्थापित किया जाता है । यह रथ के समान ही हव्य वाहक हैं । यह अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त हैं । यह यज्ञ की सम्पन्नता के ज्ञाता ऋत्विजों द्वारा घिरे रहते हैं ॥३॥ अग्नि का प्राकट्य अमृत के समान उपकारी है । यह अपने उपासकों के रक्षक हैं । यह बलवानों में भी बलवान हैं । यह परम आयु को बढ़ाने के लिए हमारे अनुष्ठान में प्रकट हुए हैं ॥४॥　　　　　　　　　　　　　　　　[३४]

१७७ सूक्त

(ऋषि—पतङ्गः प्राजापत्य । देवता—मायाभेद । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥१
पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः ।

तां द्योतमानां स्वर्य मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥ २
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३ । ३५

मेधावी जनों ने एक पतंग को देखा और मन में विचार किया कि उस पर आसुरी माया का प्रभाव पड़ चुका है। ज्ञानी जनों ने कहा कि यह समुद्र के समान परमात्मा में विलीन होना चाहता है। तब उन्होंने विधाता के तेज में प्रविष्ट होने की कामना की ॥१॥ मन ही मन शब्द को धारण करते हुए पतंग को गर्भकाल में ही गंधर्व ने वाणी की शिक्षा दी। यह वाणी दिव्य एवं बुद्धि की अधिष्ठात्री है। यही स्वर्ग का सुख प्राप्त कराती है। सत्य मार्ग पर चलने वाले मेधावी जन इस वाणी की सदा रक्षा करते हैं ॥२॥ इन्द्रियों के पालनकर्त्ता प्राण का कभी नाश नहीं होता। वह कभी पास और कभी दूर तथा विभिन्न मार्गों में विचरण करता रहता है। वह कभी एक-एक वस्त्र धारण करता है और कभी अनेक वस्त्रों को एक साथ पहनता है। इस प्रकार उसका जगत में आवागमन बारम्बार लगा रहता है ॥३॥ [३५]

१७८ सूक्त

(ऋषि—अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । देवता—तार्क्ष्यः । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १
इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतो रिषाम ॥ २
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥ ३ । ३६

जिस महान् पराक्रमी गरुड़ को सोम के लाने के लिए देवताओं ने भेजा था, जो विपक्षियों का जीतने वाला, शत्रुओं के रथों को वशीभूत करने वाला, सेनाओं को संग्राम भूमि की ओर प्रेरित करने वाला है तथा जिसके

रथ को कोई हिंसित नहीं कर सकता, उसी तार्क्ष्य का हम कल्याण की इच्छा करते हुए आह्वान करते हैं ॥१॥ हम तार्क्ष्य (गरुण) की दान-शक्ति का आह्वान करते हैं। जैसे इन्द्र से हम उनके दान की याचना करते हैं, वैसे ही तार्क्ष्य से करते हैं। हम अपने कल्याण के लिए और विपत्ति से नौका के समान पार पाने के निमित्त उनकी दान-शक्ति का आश्रय ग्रहण करते हैं। हे आकाश-पृथिवी! तुम महान्, सर्व व्यापक और गंभीर हो। हम तुम्हारे आश्रय में रहकर यात्रा-मार्ग में मृत्यु को कदापि प्राप्त न हों ॥२॥ सूर्य जैसे अपने तेज द्वारा वर्षा के जल की वृद्धि करते हैं। वैसे ही तार्क्ष्य ने चार वर्णों और निषाद को शीघ्र ही ऐश्वर्य से भर दिया। उन तार्क्ष्य की गति हजारों धनों के देने वाली है, जैसे वाण अपने लक्ष्य की ओर चलता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता ॥३॥ [२६]

१७९ सूक्त

(ऋषि—शिविरौशीनरः, प्रतर्दनः काशिराजः, वसुमना रौहिदश्वः।
देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥ १
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्।
परि त्वासते निधिभि सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ । ३७

हे ऋत्विजो! उठकर इन्द्र के योग्य यज्ञ-भाग को प्रस्तुत करो। यदि यज्ञीय हव्य का पाक हो चुका है तो यज्ञ करो और यदि अभी अपक्व है तो उसके पाक-कर्म को शीघ्रता से पूर्ण करो ॥१॥ हे इन्द्र! हव्य का पाक हो चुका है। तुम हमारे पास आगमन करो। सूर्य अपने दैनिक मार्ग में आधे से कुछ कम मार्ग की यात्रा कर चुके हैं। जैसे कुल की रक्षा करने वाले पुत्र इधर उधर जाने वाले गृहस्वामी के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार

इस यज्ञ में सभी बन्धुजन यज्ञ योग्य पदार्थों को एकत्र कर तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥२॥ गौ के थन में दुग्ध का प्रथम पाक होता है। फिर वह दुग्ध अग्नि में पकाया जाता है तब पाक की श्रेष्ठ क्रिया पूर्ण होती है। उस समय वह नवीन रूप में और निर्दोष हो जाता है। हे इन्द्र ! तुम बहुत से धनों को बाँटते हो। मध्यान्हकालीन यज्ञ में जो 'दधिधर्मख्य' हवि तुम्हें अर्पित की जाती है, उस हवि को तुम अत्यन्त रुचि के साथ सेवन करो ॥३॥३७

१८० सूक्त

(ऋषि–जयः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥ १
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताळ्हि वि मृधो नुदस्व ॥ २
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ ३ । ३८

हे इन्द्र ! तुम्हारा बहुतों ने आह्वान किया है। तुम्हारा तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है। तुम विपक्षियों को पराभूत कर भगा देते हो। तुम्हारा दान यहाँ अवस्थित हो। तुम अपने दक्षिण हस्त द्वारा धन प्रदान करो, क्योंकि तुम धन राशि के अधिपति हो ॥१॥ पर्वत पर रहने वाला, कुत्सित पाँव वाला पशु जैसे विकराल रूप वाला होता है, वैसे ही विकराल रूप में तुम अत्यन्त दूरस्थ धाम स्वर्ग से यहाँ आये हो। हे इन्द्र ! तुम अपने महान् वज्र को तीक्ष्ण करो और उसके द्वारा शत्रुओं तथा विपक्षियों को मार कर भगाओ ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम उत्पन्न होते ही इतने तेजस्वी हुए हो कि अत्याचारियों के दुष्ट कर्मों को रोकते हो। तुम धर्मानुयायी पुरुषों के अभीष्टों को सिद्ध करते हो और शत्रुता करने वाले पापियों को ललकारते हो। इस जगत को तुमने देवताओं के पालनार्थ विस्तृत किया है ॥३॥   [३८]

१८१ सूक्त

(ऋषि-प्रथो वासिष्ठः, सप्रथो भारद्वाजः, घर्म , सौर्यः । देवता—विश्वेदेवा ।
छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥ १

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥ २

तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥ ३ । ३६

वसिष्ठ वंशज प्रथ और भरद्वाज-वंशज सप्रथ हैं । उनमें से वसिष्ठ तेजस्वी सविता, विष्णु और धाता के निकट से रथन्तर साम को ले आए हैं। वह अनुष्टुप् छन्द वाला मन्त्र घर्म नामक हवि का शोधन करने वाला और श्रेष्ठ है ॥१ जिस बृहत् साम द्वारा यज्ञानुष्ठान किया जाता है तथा जो तिरोहित था, उस बृहत को सविता आदि देवताओं ने प्राप्त किया था । तेजस्वी सविता, धाता, अग्नि और विष्णु के पास से उस बृहत् को भरद्वाज ले आए ॥२॥ अभिषेक की क्रिया को सम्पन्न करने वाला घर्म (यजुमन्त्र) यज्ञ के कार्य में मुख्य रूप से उपयोगी है । धाता आदि देवताओं ने उसे ध्यान के द्वारा प्राप्त किया था । धाता, विष्णु और सूर्य के पास से उस बृहत् को पुरोहितगण ले आए ॥३॥ [३६]

१८२ सूक्त

(ऋषि—तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः । देवता—बृहस्पति. छन्द-त्रिष्टुप्)

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ १

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ २

तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ ३ । ४०

बृहस्पति दुर्गति का नाश करें । हमारे पाप को दूर करने के हमारे स्तोत्र को समृद्ध करें । वह यजमान के रोग और भय को निकाल ले जायँ और समस्त अमंगलों का भी नाश करें ॥१॥ नाराशंस नामक प्रयाज में हमारे रक्षक हों । अनुयाज में भी वे हमारा कल्याण करने वाले हों। वे हमारे अकल्याण और दुर्बुद्धि का नाश करें । यजमान के रोग और भ को निकाल कर ले जाँय और समस्त अमंगलों को भी नष्ट करें ॥२॥ स्तो से विद्वेष रखने वाले राक्षसों को बृहस्पति भस्म कर दें । उनके इस यत्न से हिंसाकारी राक्षसों का नाश होगा । वे हमारी कुबुद्धि और अकल्याण क नाश करें । वे यजमान के रोग को दूर करें और उसे भय रहित बनावें ॥३॥

१८३

(ऋषि–प्रजावान्प्राजापत्यः । देवता–अन्वृचं यजमानयजमानपत्नीहोत्राशिषः । छन्द–त्रिष्टुप्)

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २
अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥ ३ । ४१

हे यजमान ! हृदय-चक्षु द्वारा मैंने तुम्हें देखा है । तुम तपस्या द्वारा उत्पन्न होकर ज्ञानी हुए हो । तपस्या के द्वारा ही तुम समृद्धि को पा सके हो । तुम यहाँ पुत्र की कामना करते हो, इसलिए पुत्र को प्राप्त करो और धन लाभ करते हुए इस लोक में रहो ॥१॥ हे भार्ये ! हृदय-चक्षु द्वारा मैंने तुम्हें देखा है । तुम श्रेष्ठ रूप वाली हो । तुम यथा समय अपत्य-कामना करती हो । तुमने पुत्र की कामना की है, अतः तुम्हारी वह कामना सर्वथा फलवती

॥२॥ मैं होता हूँ, वृक्षादि को फलयुक्त करता हूँ। मैं अन्य प्राणियों को भी
त्यवान करता हूँ। मैं पृथिवी पर प्रजोत्पादन कर्म करता हूँ और यज्ञानुष्ठान
ा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हूँ ॥३॥ [४१]

१८४ सूक्त

(ऋषि—त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्य.। देवता—लिङ्गोक्ता:
(गर्भार्थाशी:)। छन्द—अनुष्टुप्)

ष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ २
ण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ ३ । ४२

वष्णु इस नारी को अपत्यवती करें। त्वष्टा इसे प्रजनन योग्य बनावें।
से गर्भ-शक्ति दें और धाता इसे गर्भ धारण योग्य बनावें ॥१॥
ली, हे सरस्वती! इसके गर्भ की रक्षा करो। हे अश्विनीकुमारो!
म कमल से ... हो। तुम इस नारी के गर्भ का पालन
नी! ... तुम्हारे जिस गर्भस्थ शिशु की रक्षा के
मय ... पर घिसा है, दशवें मास में प्रसव होने
है ॥३॥ [४२]

१८५ सूक्त

देवता-अदिति. (स्वस्त्ययनम्)। छन्द-गायत्री)

मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥१
वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ २

तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ ३ । ४०

बृहस्पति दुर्गति का नाश करें । हमारे पाप को दूर करने के लिए हमारे स्तोत्र को समृद्ध करें । वह यजमान के रोग और भय को निकाल ले जायँ और समस्त अमंगलों का भी नाश करें ॥१॥ नाराशंस नामक प्रयाज में हमारे रक्षक हों । अनुयाज में भी वे हमारा कल्याण करने वाले हों । वे हमारे अकल्याण और दुर्बुद्धि का नाश करें । यजमान के रोग और भय को निकाल कर ले जाँय और समस्त अमंगलों को भी नष्ट करें ॥२॥ स्तोत्र से विद्वेष रखने वाले राक्षसों को बृहस्पति भस्म कर दें । उनके इस यत्न से हिंसाकारी राक्षसों का नाश होगा । वे हमारी कुबुद्धि और अकल्याण का नाश करें । वे यजमान के रोग को दूर करें और उसे भय रहित बनावें ॥३॥४०

१८३

(ऋषि–प्रजावान्प्राजापत्यः । देवता–अन्वृचं यजमानयजमानपत्नीहोत्राशिषः । छन्द–त्रिष्टुप्)

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २
अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥ ३ । ४१

हे यजमान ! हृदय-चक्षु द्वारा मैंने तुम्हें देखा है । तुम तपस्या द्वारा उत्पन्न होकर ज्ञानी हुए हो । तपस्या के द्वारा ही तुम समृद्धि को पा सके हो । तुम यहाँ पुत्र की कामना करते हो, इसलिए पुत्र को प्राप्त करो और धन लाभ करते हुए इस लोक में रहो ॥१॥ हे भार्ये ! हृदय-चक्षु द्वारा मैंने तुम्हें देखा है । तुम श्रेष्ठ रूप वाली हो । तुम यथा समय अपत्य-कामना करती हो । तुमने पुत्र की कामना की है, अतः तुम्हारी वह कामना सर्वथा फलवती

हो ॥२॥ मैं होता हूँ, वृक्षादि को फलयुक्त करता हूँ। मैं अन्य प्राणियों को भी अपत्यवान करता हूँ। मैं पृथिवी पर प्रजोत्पादन कर्म करता हूँ और यज्ञानुष्ठान द्वारा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हूँ ॥३॥ [४१]

१८४ सूक्त

(ऋषि—त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः। देवता—लिङ्गोक्ता. (गर्भार्थाशीः)। छन्द—अनुष्टुप्)

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ २
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ ३ । ४२

विष्णु इस नारी को अपत्यवती करें। त्वष्टा इसे प्रजनन योग्य बनावें। प्रजापति इसे गर्भ-शक्ति दें और धाता इसे गर्भ धारण योग्य बनावें ॥१॥ हे सिनीवाली, हे सरस्वती! इसके गर्भ की रक्षा करो। हे अश्विनीकुमारो! तुम स्वर्णिम कमल से अलंकृत होते हो। तुम इस नारी के गर्भ का पालन करो ॥ हे पत्नी! अश्विनीकुमारों ने तुम्हारे जिस गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए सुवर्णमय दो अरणियों को परस्पर घिसा है, दसवें मास में प्रसव होने पर उसी शिशु को हम यहाँ बुलाते हैं ॥३॥ [४२]

१८५ सूक्त

(ऋषि—सत्यधृतिर्वारुणि। देवता-अदितिः (स्वस्त्ययनम्)। छन्द—गायत्री)

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ॥१
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः ॥ २

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३।४३

मित्र, अर्यमा और वरुण का अत्यन्त तेज वाले, महान् और दुर्धर्ष आश्रय को हम प्राप्त हों ॥१॥ उक्त तीनों देवताओं के आश्रय में जो निवास करते हैं, उन पुरुषों पर घर, मार्ग, वन आदि बीहड़ स्थानों में भी वैरियों की हिंसक-गति व्यर्थ हो जाती है ॥२॥ उक्त तीनों अदिति के पुत्र हैं। यह जिसे निरन्तर ज्योति प्रदान करते हैं, उसका जीवन संकट-ग्रस्त नहीं होता और शत्रु के हिंसामय यत्न उसके प्रति निरर्थक होजाते हैं ॥३॥ [४३]

१८६ सूक्त

(ऋषि—उलो वातायनः । देवता—वायुः । छन्द—गायत्री)

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र ण आँयूषि तारिषत् ॥१
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥ २
यददो वात ते गृहे मृतस्य निधिर्हितः । ततो नो देहि जीवसे ॥३ । ४४

वायु देवता औषधि के समान गुणकारी होकर हमारे पास आवें। वे हमारी आयु को बढ़ावें और मंगलमय तथा सुखकारी हों ॥१॥ हे वायो ! तुम हमारे पिता और भाई हो। हमारे जीवन के लिए औषधियों को गुणवती करो ॥२॥ हे वायो तुम्हारे धाम में अमृत की जो निधि प्रतिष्ठित है, उसके द्वारा हमारे शरीर को जीवन दो ॥३॥ [४४]

१८७ सूक्त

(ऋषि—वत्स आग्नेयः । देवता—अदितिः । छन्द—गायत्री)

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ॥ १
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः ॥ २
यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः ॥ ३
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः ॥ ४

यो अस्य पारे रजस शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥४५

हे स्तोताओ ! मनुष्यों की कामनाओं के सिद्ध करने वाले अग्नि की स्तुति करो । वे शत्रु के हाथ से हमारी रक्षा करें ॥१॥ यह अग्नि अत्यन्त रस्य धाम से अन्तरिक्ष को लाँघ कर यहाँ आये हैं, यह हमें शत्रु के हाथ से रक्षित करें ॥२॥ यह अग्नि जल की वर्षा करने वाले और अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से राक्षसों को मारने वाले हैं । यह हमें शत्रु के हाथ से रक्षित करें ॥३॥ अग्नि सब लोकों का पृथक् पृथक् निरीक्षण करते हैं और एकत्र भाव से भी देखते हैं । वे हमें शत्रु के हाथ से छुड़ावें ॥४॥ उन्हीं अग्नि ने स्वर्ग के ऊपर श्रेष्ठ तेजोमय रूप से जन्म धारण किया । वे हमें शत्रु के हाथ से छुड़ावें ॥५॥ [४५]

१८८ सूक्त

(ऋषि—श्येन आग्नेयः । देवता—अग्निर्जातवेदाः । छन्द—गायत्री)

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम् । इदं नो बर्हिरासदे ॥ १

अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुष । महीमियर्मि सुष्टुतिम् ॥ २

या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः ।
ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ॥ ३ । ४६

हे पुरोहितो और यजमानो ! अग्नि मेधावी हैं, तुम उन्हें प्रदीप्त करो । वे अन्नवान हैं और चारों दिशाओं को व्याप्त करते हैं । वे हमारे कुश पर विराजमान हों ॥१॥ मेधावी यजमान अग्नि के पुत्र रूप हैं । अग्नि वर्षा के जल को सींचते हैं । मैं इन अग्नि के लिए सुन्दर स्तोत्र प्रस्तुत करता हूँ ॥२॥ हे अग्ने ! तुम अपनी तेजस्विनी धूम्रमयी शिखाओं द्वारा देवताओं को हवि पहुँचाते हो । तुम उन देवताओं के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥३॥ [४६]

१८९ सूक्त

(ऋषि—सार्पराज्ञी । देवता—सार्पराज्ञी सूर्यो वा । छन्द—गायत्री)

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।

प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ । ४७

महान् तेजस्वी और गतिपरायण सूर्य उदित होकर अपनी मातृभूत-पूर्व दिशा से मिलते हैं। फिर वे अपने पिता आकाश की ओर गमन करते हैं ॥ १ ॥ सूर्य के देह से प्रकाश निकलता है। वह प्रकाश इनके प्राण के मध्य से प्रकट हुआ है। इन्होंने महान् होकर व्योम को व्याप्त कर लिया है ॥ २ ॥ सूर्य के तीनों स्थान सुशोभित हैं। यह सूर्य गतिमान हैं। इनके लिए स्तुतियों का पाठ होता है। यह अपनी रश्मियों से अलंकृत हुए नित्यप्रति प्रकाशित होते हैं ॥ ३ ॥ [४७]

१९० सूक्त

(ऋषि—अघमर्षणो माधुच्छन्दसः । देवता—भाववृत्तम् । छन्द—अनुष्टुप्)

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ४८

तेजोमय तप के द्वारा यज्ञ और सत्य की उत्पत्ति हुई। फिर दिवस

और रात्रि उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् जल से परिपूर्ण समुद्र उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ जल से परिपूर्ण समुद्र से संवत्सर की उत्पत्ति हुई। ईश्वर ने दिवस रात्रि की रचना की। निमिष आदि से युक्त विश्व के ईश्वर ही अधिपति हैं ॥ २ ॥ प्राचीनकाल के अनुसार ही ईश्वर ने सूर्य, चन्द, स्वर्गलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष की रचना की ॥ ३ ॥ [४८]

१६१ सूक्त

(ऋषि-संवनन: । देवता-अग्नि, संज्ञानम् । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥ २

समानो मन्त्र समिति समानी समान मन सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३

समानी व आकूति समाना हृदयानि व ।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ॥ ४ । ४:

हे अग्ने ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम सब प्राणियों में निवास करते हो। तुम्हीं यज्ञ वेदी पर प्रदीप्त होते हो। तुम हमें धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे स्तोताओ ! तुम एकत्र होओ। समान रूप से स्तोत्र का उच्चारण करो। तुम समान मन वाले होओ। जैसे देवगण समान मति वाले होकर यज्ञ में हविरन्न ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुम भी समान मति वाले होकर धनादि ग्रहण करने वाले होओ ॥ २ ॥ इन स्तोताओं के स्तोत्र समान हों। यह एक साथ यहाँ आवें। इनके मन भी समान हों। हे पुरोहितो, मैं

तुम सबको समान मन्त्र से अभिमन्त्रित करता हुआ साधारण हवि द्वारा तुम्हारा यज्ञ करता हूँ ॥ ३ ॥ हे यजमानो और पुरोहितो ! तुम्हारा कर्म समान हो। तुम्हारे हृदय और मन भी समान हों। तुम समान मति वाले होकर सब प्रकार सुसंगठित होओ ॥ ४ ॥

॥ अष्टम अष्टक समाप्त ॥

॥ ऋग्वेद संहिता समाप्त ॥

पृष्ठ-संख्या के विषय में—

दो विभिन्न स्थानों में छपाई होने के कारण इस खण्ड में पृष्ठ १२२६ के बाद ३० पृष्ठ बढ़ गये हैं, जिन पर १२२६/१ से लगाकर १२२६/३० का नम्बर डाला गया है। इस प्रकार इस खण्ड की कुल पृष्ठ संख्या ६९८ है।